પ્રાપ્તિસ્થાન
શ્રી અ ભા શ્વે સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ગ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ

*

બીજી આવૃત્તિ પ્રત ૧૦૦૦
વીર સંવત ૨૪૮૪
વિક્રમ સંવત ૨૦૧૪
ઇસ્વી સન્ ૧૯૫૮

*

મુદ્રક અને મુદ્રણસ્થાન
જયંતિલાલ દેવચંદ મહેતા
જય ભારત પ્રેસ,
ગરેડીઆ કુવા રોડ
શાક માર્કીટ પાસે, રાજકોટ

प्राक्कथन

रोग से आक्रान्त मनुष्य के लिये जैसे औषध सेवन नितान्त आवश्यक है, उसी प्रकार भवरोग से सतप्त प्राणियो के लिये सामायिक आदि क्रियायें आवश्यक है । क्यो कि विना इनके आत्मामें निर्मलता नहीं आ सकती, और अनिर्मल आत्मा कभी भी भवरोग से मुक्त नही हो सकता।

ये सामायिक आदि मनुष्यो के लिये अवश्यकर्तव्य होने के कारण आवश्यक कहलाते हैं, और इनका ग्रथन इस आगममें किया गया है अतः यह आगम भी 'आवश्यक' कहलाता है ।

इस 'आवश्यक सूत्र' की परमोपयोगिता देखकर पूज्यश्री घासीलालजी म सा. ने इस पर, सस्कृतमें विस्तृत प्रस्तावना सहित 'मुनितोषणी' नामक टीका लिखी है । यह टीका अत्यन्त सरल होने के कारण साधारण सस्कृतज्ञो के लिये भी सुबोध है। सर्वसाधारण के लाभार्थ इस टीकाका हिन्दी और गुजराती भाषा में अनुवाद भी किया गया है । इस लिये सभी वर्ग के जिज्ञासुओं के लिये यह उपादेय है ।

इस आवश्यकसूत्र की प्रथम आवृत्तिका प्रकाशन श्री श्वे. स्था जैन शास्त्रोद्धार समिति (राजकोट) ने सन् १९५१ ई में किया था । प्रथम आवृत्ति की सभी प्रतियाँ वितरित हो चुकी हैं, अत इस सूत्र की यह द्वितीय आवृत्ति प्रकाशित की गयी है । आत्मार्थी जन इससे पूर्णतया लाभ उठावें यही हमारी आकाङ्क्षा है ।

निवेदक
मगनलाल छगनलाल शेठ
मानद मत्री,
श्री अ भा श्वे स्था जैनशा समिति
राजकोट.

એક અપીલ

આપ ગચ્છપતિ હો કે સઘપતિ હો
સાધુ મહાત્મા હો કે શ્રાવક હો

પરતુ

આ શુભકાર્યમા મદદ કરવાની આપની ચોકકસ ફરજ છે
કારણ કે આપણી સમાજના ઉત્થાનના આવા ભગીરથ
કાર્યમા આપનો જેટલો વધુ સહકાર મળશે તેટલુ
કાર્ય વ્હેલુ પૂર્ણ થશે

ઘડી ઘડી આવા સતનો ભેટો થવો દુર્લભ છે

૩૨ સૂત્રો જલ્દીથી તૈયાર કરાવી લેવાય તેની કાળજી રાખવાની છે

અને તેથીજ આપશ્રીને અપીલ કરવામા આવી છે

સમગ્ર સમાજનુ કાર્ય થતુ હોય ત્યા સામ્પ્રદાયકવાદ
કે મ્રાતવાદ નજ હોવો જોઈએ

રૂા. ૧૦,૦૦૦ આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી,
સમિતિના પ્રમુખ, દાનવીર શેઠશ્રી



શેઠ શાતિલાલ મગળદાસ શાહ
અમદાવાદ

શ્રી-વર્ધમાન-શ્રમણ-સંઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આપેલ

સમ્મતિપત્ર



ઉપરાંત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ–રચિત

બીજા સૂત્રોની ટીકા માટે તેઓશ્રીના મતવ્યો



તેમજ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન-પદ્ધતિવાળા કોલેજના પ્રોફેસરો

તેમજ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો

ઠે ગ્રીન લોજ પાસે
ગરેડીયા કુવારોડ
રાજકોટ સૌરાષ્ટ્ર

શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા. જૈન-
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.

(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥ श्रीवीरगौतमाय नमः ॥

सम्मति-पत्रम्

मए पंडियमुणि-हेमचंदेण य पंडिय मूलचन्दवासवारापत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सक्कय-हिंदी-भासाहिं जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नाम सुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाण अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ विउजणाण पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ। आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्व उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरूव जे जहा तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाण फुडरूवेण वण्णण कड, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय-जुत्ता सिज्झइ! सक्कयछाया सुत्तपयाण पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठव्वा। अम्हाण समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाण सब्भावो समाजस्स अहोभग्ग अत्थि, किं? उत्तविज्जमुणिरयणाण कारणाओ जो अम्हाण समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेर साहिच्च च लुत्तप्पाय अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाण पाविहिइ अओह आयारमणि-मंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवाय देमि- ॥

वि स १९९० फाल्गुन-शुक्लत्रयोदशी मङ्गले (अलवर स्टेट)	इइ- उवज्झाय-जइण मुणी,आयारामो (पचनईओ)

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी महाराज तथा न्याय व्याकरण के ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७ श्री हेमचद्रजी महाराज, इन दोनो महात्माओंका दिया हुआ श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण सवच्छर २४५८ आसोई
(पुण्णमासी) १५ सुक्कवारो लुहियाणाओ।

मए मुणिहेमचदेण य पडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवासगसुत्तस्स अगारधम्मसजीवणीनामिया वित्ती पडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवत सुया, समीईण, इय वित्ती जहाणाम तहा गुणेवि धारेइ, सच्च, अगाराण तु इमा जीवण (सजमजीवण) दाई एव अत्थि। वित्तिकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जुसेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ, कम्मपुरिसट्टवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढत्ता य, इच्चाइविसया अस्सिं फुडरीइओ वण्णिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाण-भरहवासस्स य कत्तुणा विसयप्पयारेण चित्त चित्तित, पुणो सक्कयपाढीण, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए भासीण य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एय कज्ज परमप्पससणिज्जमत्थि। पत्तयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव लाहप्पय, अविउ सावयस्स तु (उ) इम सत्थ सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं, अच्चतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमोवयारो कडो, अहय सावयस्स बारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि, जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ पुरिसक्कारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दसणिज्जो, किंबहुणा इमीसे वित्तीए पत्तेयविसयस्स फुडसद्देहिं वण्णण कय, जइ अन्नोवि एव अम्हाण पसुत्तप्पाए समाजे विज्ज भवेज्जा तया नाणस्स चरित्तस्स तहा सघस्स य खिप्प उदयो भविस्सइ, एव ह मन्ने॥

भवईओ—

उवज्झाय—जइणमुणि—आयाराम,—पचनईओ,

सम्मतिपत्र

(भाषान्तर)

श्री वीर निर्वाण स० २४५८ आसोज
शुक्ला (पूर्णिमा) १५ शुक्रवार लुधियाना

मैने और पडितमुनि हेमचन्द्जीने पडितरत्नमुनिश्री घासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशाग सूत्रकी गृहस्थधर्मसजीवनी नामक टीका पडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थोके तो जीवनदात्री-सयमरूप जीवनको देनेवाली ही है। टीकाकारने मूलसूत्र के भावको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है? और विशेष धर्म क्या है? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकको धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमे भलीभाँति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजलाली पर था? और वर्तमान समय जैन धर्म किस स्थितिमे पहुचा है? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर सस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोको भी पुरा लाभ होगा, क्योंकि टीका सस्कृत है उसकी सरल हिन्दी करदी गई है। इसके पढनेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह कार्य परम प्रशसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावकों (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अत' टीकाकारको कोटिश धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैन जनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावकके बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है। तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहातक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान चारित्र तथा श्रीसघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मै मानता हूँ–

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पजाबी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा प मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराजके दिये हुए, श्री उपाशकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है–

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी सस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बडे परिश्रम व पुरुषार्थसे तैयार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्तियोकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढकर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुवा, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे–यह एक हमारे लिये बडे गौरवकी बात है।

वि. स १९८९ मा आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की 'अनगार धर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१.

मैने आचार्यश्री घासीलालजी म द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनि श्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया ।

यह नि.सन्देह कहना पडता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म ने बडे परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलो पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें है। मूल स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकों को लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मै स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूँगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बनाकर शास्त्रमें दीगई अनमोल शिक्षायों से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे ।

श्रीमान्‌जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इसपर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे है पहुचने पर समाचार देवें ।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म ठाने ६ सुख शान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म सा ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर सुखशाता पूछें ।

पूज्य श्री घासीलालजी म जी का लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते है इसलिये १ कॉपी आप भेजने की कृपा करें, फिर आपको वापिस भेज देवेंगे। आपके पास नहीं हो तो जहा से मिले वहासे १ कॉपी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें ।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक
प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर – उपाध्याय – पण्डित – मुनि श्रीआत्मारामजी महाराज (पजाव) का आचाराङ्गसूत्र की आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मति-पत्र।

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्रीघासीलालजी (महाराज)की वनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्र के प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निवद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रम से अन्य सिद्धान्त का सग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयों का विशेषरूप से सस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

मैं आशा करता हूँ कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति पठन द्वारा जैनागम-सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्पित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमों के विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी वनेंगे।

वि स २००२
मृगसर सुदि १

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
लुधियाना (पजाव)

—:❀:—

शुभमस्तु ॥

बीकानेरवाळा समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठिआनो अभिप्राय

❀

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह वडा उपकारका कार्य है। इससे जैनजनता को काफी लाभ पहुँचेगा।

(ता. २८-३-५६ ना पत्रमाथी)

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि- जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-
महाराजना पञ्चनद-(पजाव)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थबोधिनीनाम्नी सस्कृतवृत्तिरुपयोगपूर्वक सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इय हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्य प्रकटयति। श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितु यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते। यथा चेय वृत्तिः सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि। अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सुभिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु प्रयतमानैर्मुनिभि. श्रावकैश्च ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषा विदुषा मनस्तोषाय जैनागमसूत्राणा साराऽवबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थ सरलाः सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तास्तान् सूत्रग्रन्थान देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रम सफलयितु सरला सुबोधिनीं चेमा सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्य सुयोग्या हसनिभा पाठकाः।" इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा
लुधियाना.

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनि.।

ऐसेही —

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि :—

श्रीमान की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वांग-सुन्दर एवम् .. का उपकारक है।

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र
आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य-पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुवा

सम्मतिपत्र

लुधियाना. ता ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाबचन्दजी पानाचदजी । सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला ! निरयावलिका विषय पूज्यश्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होने से उनके शिष्य प. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मति पत्र लिख दिया है आपको भेज रहे हैं ! कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ?!

भवदीय.
गुजरमल बलवतराय जैन

॥ सम्मतिः ॥
(लेखक जैनमुनि प श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृत हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादसहित च श्रीनिरयावलिकासूत्र मेधाविनामल्पमेधसा चोपकारक भविष्यतीति सुदृढ मेऽभिमतम्, सस्कृतटीकेय सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-व्याख्यायुतत्वाच टीकैषा सस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्‌भाषाविज्ञाना महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् सभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराजाना परिश्रमोऽय प्रशसनीयो धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमा । एवमेव श्री-समीरमल्लजी श्री कन्हैयालालजी मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्य, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोपोऽपि दत्त' स्यात्तर्हि वरतर स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सर्वऽप्यवेपकविद्वासोऽनुभवन्ति ।

पाठका ः सूत्रस्यास्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयाना परि[illegible]यिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि- जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-
महाराजना पञ्चनद-(पजाव)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थबोधिनीनाम्नी सस्कृतवृत्तिरुपयोगपूर्वक सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इय हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्य प्रकटयति। श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितु यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते। यथा चेय वृत्तिः सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि। अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सुभिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषा विदुषा मनस्तोषाय जैनागमसूत्राणा साराववोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थ सरला सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तास्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रम सफलयितु सरला सुबोधिनी चेमा सूत्रवृत्ति स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्य सुयोग्या हसनिभाः पाठकाः।" इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२ श्रावणकृष्णा प्रतिपदा लुधियाना	उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः।

ऐसेही —

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि :—

श्रीमान की की हुई टीकावाला उपासकदशाग सेवक के दृष्टिगत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वांग-सुन्दर एवम् उच्चकोटि का उपकारक है।

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुधारक श्रीयुत् माधवलालजी

-- ० --

ता २५-११-३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुवा उपासक दशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक बयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ शुख शांती में निराजमान हैं आपके वहा विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शाति पूछे आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय मे यहां विराजित मुनिवरों की सम्मती मगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी समाज में अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्य ने किया हो ऐसा नजर नहीं आता दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों हैं सस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभ कामना है आशा है कि स्थानकवासी सघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ　　　　भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

*

आगरा से:—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महारज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण महान विद्वान संतोए तेमज विद्वान श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे

(१) लुधियाना– सम्वत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्दजी महाराज

(२) लाहौर–वि० स० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित रत्न श्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डित रत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचंदजी महाराज

(३) खिचन से ता. ९–११–३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज

(४) बालाचोर–ता. १४–११–३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानीजी श्री रतनचन्दजी महाराज

(५) बम्बई–ता १६–११–३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचंद्रजी महाराज

(६) आगरा–ता १८–११–३६, जगत् वल्लभ श्री १००८ श्री जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी महाराज

(७) हैद्राबाद (दक्षिण) ता २५–११–३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचन्दजी महाराज तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७ श्री सोभाग्यमलजी महाराज

(८) जयपुर–ता २६–११–३६ का पत्र, सम्प्रदाय के गौरववर्धक शांत-स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज

(९) अम्बाला–ता २९–११–३६ का पत्र, परम प्रतापी पंजाब केशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री रामजी महाराज

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी

- ० -

ता २५-११-३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुवा उपासक दशाग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांती में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शाति पूछे आपने उपासकदशाग सूत्र के विपय मे यहा विराजित मुनिवरों की सम्मती मगाई उसके विपय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी समाज में अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्य ने किया हो ऐसा नजर नही आता दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों हैं सस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भापा होने से चारों भापा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभ कामना है आशा है कि स्थानकवासी सघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेप शुभ भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

*

आगरा से'—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महारज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचन से लिखते हैं कि:—

उन पण्डितरत्न महाभाग्यवत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हू।

परन्तु :—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है वास्तव मे ऐसे उत्तम व सबके समझाने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसा ग्रन्थ ही गौरव बढा सकते हैं-ये दोनो ग्रन्थ वास्तव में अनुपम है ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाश से यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकार मे दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।

—: ❀ :—

ता २९-११-३६
अम्बाला (पजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पजाब केशरी पूज्य श्री काशीरामजी महाराज की सेवा मे पढ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासकदशाङ्ग सूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरु की एक प्रति भी प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं, ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवाये की बडी आवश्यकता है। इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका
शशिभूषण शास्त्री
अध्यापक जैन हाई स्कूल
अम्बाला शहर

शान्त स्वभावी वैराग्य मूर्ति तत्व वारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खुबचन्दजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासक दशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीलालजी महाराज ने उपासक दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में बडा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधक पूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होने से भगवान निग्रन्थो के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल शकता है



बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पंडित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि :-

उत्तरोत्तर जोता मूळ सूत्रनी संस्कृतटीकाओ रचवामा टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरुरी लेवा जेवु छे, वळी कराचीना श्री संघे सारा कागळमा अने सारा टाइपमा पुस्तक छपावी प्रगट कर्यु छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.



बम्बई शहेर में विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।



खीचन से स्थविर क्रिया पात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडितरत्न मुनि समृथमलजी महाराज श्री फरमाते हैं कि-विद्वान महात्मा पुरुषोंका प्रयत्न सराहनीय है क्या जैनागम श्रीमद् उपासक दशाङ्ग सूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बडी ही सुन्दरता से लिखी है।



શ્રમણ સંઘના પ્રચાર મંત્રી પંજાબ કેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદજી મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય

*

શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્ર વારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઇ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈન સમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબુત કરવાવાળું છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં યથાશક્તિ ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

*

દરીયાપુરી સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરી સાર ધીરં

પૂજ્ય પાદ જ્ઞાન પ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં-

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશો નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્માંરાધનમાં લીન હશો.

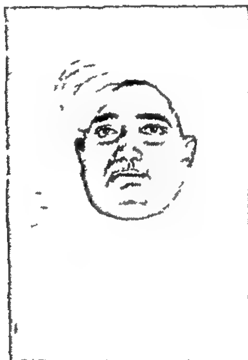
સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરીત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે ટીકા ખૂબ સુંદર, સરળ અને પંડિતજનોને સુપ્રિય થઇ પડે તેવી છે સાથે સાથે ટીકા વીનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઇ શકે અત્રે પૂજ્ય આચાર્ય ગુરુદેવને આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂં છે એજ

આસો શુદ ૧૦, મંગળવાર તા. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઇચ્છતો,
દયા મુનિના પ્રણિપાત

*

રૂા. ૬,૦૦૦ આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી,



(સ્વ) શેઠ હરખચંદ કાલીદાસ વાડીયા

ભાણવડ

શ્રમણ સઘના પ્રચાર મત્રી પજાબ કેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચદજી મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમા પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલા અભિપ્રાય

*

શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્ર વારિધિ પડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનુ જે કાર્ય થઇ રહ્યુ છે તે કાર્ય જૈન સમાજ તેમા ખાસ કરીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સસ્કૃતિની જડને મજબુત કરવાવાળુ છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમા યથાશક્તિ ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

*

દરીયાપુરી સપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સબંધે વિચારો

નમામિ વીર ગિરી સાર ધીર

પૂજ્ય પાદ જ્ઞાન પ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામા—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમા હશો નિરતર ધર્મધ્યન ધર્મારાધનમા લીન હશો

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરીત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાગ એક એક ભાગ અહીં છે ટીકા ખૂબ સુદર, સરળ અને પડિતજનોને સુપ્રિય થઇ પડે તેવી છે સાથે સાથે ટીકા વીનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઇ શકે અત્રે પૂજ્ય આચાર્ય ગુરુદેવને આખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂ છે એજ

આસો શુદ ૧૦, મગળવાર તા ૨૫-૧૦-૫૫

પુન પુન શાતા ઇચ્છતો,
દયા મુનિના પ્રણિપાત.

*

દરીયાપુરી સમ્પ્રદાયના પંડિત રત્ન ભાઈચંદજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી

રાણપુર તા ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિમુનિવરોની ાવામા આપ સર્વ સુખ સમાધીમા હશો.

સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ સુંદર થઇ રહ્યુ છે તે જાણી અત્યત આનદ આપના ્રશીત થયેલા કેટલાક સૂત્રો જોયા. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી કા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઇ પડે તેવી છે સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય ને ભાવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામા સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના

લી પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી
પૂ શ્રી ભાઇચંદ મહારાજની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનિના
પાયવંદન સ્વીકારશો.

*

તા ૧૧-૫-૫૬
વીરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદજી મહારાજના સમ્પ્રદાયના ાર્યાર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા ૧૧-૩-૫૬ના પત્રથી ઉધ્ધૃત

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના દર્શક જે સૂત્રોનું લખાણ સુંદર સરળ ભાષામા થાય છે તે સાહિત્ય પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ, ય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઇ શક્યા નથી છતા જેટલુ સાહિત્ય જોયું તે બહુ જ સારૂ અને મનન સાથે લખાયેલ છે તે લખાણ શાસ્ત્ર આજ્ઞાને રૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક કલ્યાણ ઇચ્છુકોને વાચવા યોગ્ય છે આમા નકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ક્રિયાકાંડની રચના શાસ્ત્રાનુકૂળ છે ાર્ય શ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઇ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

લી. કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ
[illegible]



ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારવાર અભિનંદન છે શાસનનાયક દેવ તેમના શરિરાદીને સશકત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ

ચાતુર્માસ સ્થળ લીંબડી
આ ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ

લિ
સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્ય શ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્ર વિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે ને માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યુ છે આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણીજ સુંદર છે સંસ્કૃત રચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુકત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃત રચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ

આવા મહાન કાર્યમા પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથ કાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ
તા ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર
મહાવીર જયતિ

મુનિ પૂર્ણચંદ્રજી

*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલભાઈ મંગળદાસભાઈ
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિ મા આપની સમિતિ દ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાથી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર, આચારાગ સૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિક સૂત્ર,

લીંબડી સંપ્રદાયના સદાનંદી મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે-જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર નામ ગોત્ર બાધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે જ્ઞાન પ્રચાર કરનાર, કરવામા સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવર્ણિય કર્મને ક્ષય કરી-કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે શાસ્ત્રજ્ઞ-પરમ શાન્ત, અને અપ્રમાદિ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાશના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમા પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશ ધન્યવાદના અધિકારી છે વંદનિય છે-તેમની જ્ઞાન પ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાનપ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમા સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સૂચના છે કે –

શાસ્ત્રોદ્ધારક પ્રવર પંડિત અપ્રમાદિ સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ કરી રહેલ છે તેમા સહાય કરવા માટે-પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઇ રહેલ છે તેને પહોચી વળવા માટે સારૂ સરખુ ફંડ જોઇએ એના માટે મારી એ સૂચના છે કે – શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો,-જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર અને કચ્છમા પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે છતા જો સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે

આર્થિક અનુકુળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યા સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યા સુધીમા એમની જ્ઞાન શક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઇ લેવો કદાચ સૌરાષ્ટ્રમા વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઇ શેઠ જેવાએ વિનતી કરી અમદાવાદ પધરાવવા અને ત્યા-અનુકુળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઇએ

થોડા વખતમા જામજોધપુરમા શાસ્ત્રોદ્ધાર કમીટી મળવાની છે તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરિરાદીને સશકત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ

ચાતુર્માસ સ્થળ લીંબડી
સા ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ

લિ
સદાનદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સપ્રદાયના પૂજ્ય શ્રી પુનમચદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્ર વિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહાગજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે ને માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે આગમો ઉપરની તેમની સસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણીજ સુદર છે સસ્કૃત રચના માધુર્ય તેમજ અલકાર વગેરે ગુણોથી યુકત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સસ્કૃત રચનાની કદર કરવી જોઇએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઇએ

આવા મહાન કાર્યમા પડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે તેમનુ આગમ ઉપરની સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથ કાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ
તા ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર
મહાવીર જયતિ

મુનિ પૂર્ણચદ્રજી

*

ખભાત સપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઇ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલભાઈ મગળદાસભાઈ
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુા અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિ૰ મા આપની સમિતિ દ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનુ કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાથી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર, આચારાગ સૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિક સૂત્ર,

દશવૈકાલિક સૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો સસ્કૃત હિદી અને ગુજરાતી ભાષાઓમા હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણુજ લાભદાયિક છે તે વાચન ઘણુજ સુદર અને મનોરજન છે આ કાર્યમા પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત પુરુષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણુ લાભનુ કારણ છે

હસ સમાન બુદ્ધીવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂ છુ કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ઘરમા વસાવાની સુદર તકને ચૂકશો નહિ કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરપરને પુષ્ટીરૂપ સૂત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઇ રહ્યા છો તેમા મહાન નિર્જરાનું કારણ જોવામા આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ એજ

લી શારદાબાઈ સ્વામી

ખભાત સપ્રદાય

*

બરવાળા સપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોઘીબાઇ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધધુકા તા ૨૭–૧–૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મગળદાસભાઇ
પ્રમુખ અ૦ ભા૦ શ્વે૦ સ્થા૦ જૈનશાસ્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ રાજકોટ

અત્રે બિરાજતા ગુ૦ ગુણના ભડાર મહાસતીજી વિદુષી મોઘીબાઇ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિ ઠાણા બન્ને સુખશાતામા બિરાજે છે આપને સૂચન છે કે અપ્રમત અવસ્થામા રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશોજી એજ આશા છે

વિશેષમા અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલા સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઇ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલા તે સૂત્રો તમામ આદ્યોઉપાન્ત વાચ્યા મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગ માર્ગની ખૂબજ ઉન્નત્ત બનાવનાર છે તેમા આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાય રૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવુ છે હસ સમાન

આત્માઓ જ્ઞાન ઝરણાઓથી આત્મરૂપ વાડીને વિકસીત કરશે ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઇ રહ્યા છે. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂ કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી મોઘીબાઇ સ્વામી
ના ફરમાનથી લી ખોડીદાસ ગણેસભાઈ-ધંધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમા અને હિન્દીમા ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમા વ્યાપ્ત થયેલા છે શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હુ જોઇ શકયો છુ, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિન્દી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે, એ એમનો ટુંકો પરિચય કરતા સહજ જણાઇ આવે છે શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામા તેમને પોતાના, શિષ્ય-વર્ગનો અને વિશેષમા ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે, તે જોઇ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યુ છે સ્થાનકવાસી સમાજમા વિદ્વતા ઘણી ઓછી છે તે દિગંબર, મૂર્તિપૂજક શ્વેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમા આવતા હુ વિરોધના ભય વગર, કહી શકુ પૂ. મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમા પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારા આપવામા આવ્યા છે ભાષા શુદ્ધ છે એમ હુ ચોક્કસ કહી શકુ છુ ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજ શ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમા અને કુટુંબોમા વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે

પ્રતાપગંજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ,
એમ. એ.

દશવૈકાલિક સૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો સસ્કૃત હિંદી અને ગુજરાતી ભાષા ઓમા હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણુ જ લાભદાયિક છે તે વાચન ઘણુ જ સુદર અને મનોરજન છે આ કાર્યમા પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અથાગ પુરુષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણુ લાભનું કારણુ છે

હસ સમાન બુદ્ધીવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવુ છે માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂ છુ કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ઘરમા વસાવાની સુદર તકને ચૂકશો નહિ કારણુ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરપરાને પુષ્ટીરૂપ સૂત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઇ રહ્યા છો તેમા મહાન નિર્જરાનું કારણુ જોવામા આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ એજ

લી શારદાબાઈ સ્વામી

ખભાત સપ્રદાય

*

બરવાળા સપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોઘીબાઇ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધધુકા તા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મગળદાસભાઇ
પ્રમુખ અ૦ ભા૦ શ્વે૦ સ્થા૦ જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ રાજકોટ

અત્રે બિરાજતા ગુ૦ ગુણના ભડાર મહાસતીજી વિદુષી મોઘીબાઇ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિ ઠાણા બન્ને સુખશાતામા બિરાજે છે આપને સૂચન છે કે અપ્રમત અવસ્થામા રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશોજી એજ આશા છે

વિશેષમા અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલા સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઇ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલા તે સૂત્રો તમામ આદ્યોપાન વાચ્યા મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગ માર્ગની ખૂબજ ઉન્નત્ત બનાવનાર છે તેમા આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાય રૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવુ છે હસ સમાન

આ સૂત્રો જોતા પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઇ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી આપણે જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે તેની વસ્તુ ગભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે આટલા ગહન અને સર્વશ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાતર પૂ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામા જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનુ સરળ ભાષામા ભાષાતર દરેક જીજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઇ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણુસ, સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણુ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામા સૂત્રો લખવામા આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઇએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમા સકળાયેલા જોઇએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે તેમનુ જીવન સૂત્રોમા વણાઇ ગયુ છે

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમા પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમા વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો. રસિકલાલ કસ્તુરચદ ગાધી
એમ એ એલ એલ બી
ધર્મેન્દ્રસિહજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુબઇ અને ઘાટકોપરમા મળેલી સભાએ ભિનાસર કોન્ફરન્સ તથા સાધુ સમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી શ્વેતાબર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ-સશોધન અને સ્વતત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમા લઇ તે પાર પાડવા મહેનત લઇ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમા સર્વાનુમતે સાહિત્ય મત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ ભા શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઇ રહ્યુ છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મત્રીશ્રી

મુબઇની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુબઈ તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલ મગળદાસ
પ્રમુખ શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
રાજકોટ

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકાલિક આવશ્યક, ઉપાસકદશાગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા આ સૂત્રો ઉપર સસ્કૃતમા ટીકા આપવામા આવી છે અને સાથે સાથે હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાતરો પણ આપવામા આવ્યા છે, સસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હિન્દી ભાષાતરો જોતા આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર ગ્રથોમા પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજરાતી તથા હિન્દીમા થયેલા ભાષાતરમા ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોધપાત્ર છે એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે ૩૨ સૂત્રોમાથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે બીજા ૭ સત્રો લખાઇને તૈયાર થઈ ગયા છે આ બધા જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઇને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમા અમૂલ્ય સપત્તિરૂપ ગણાશે એમા સશય નથી આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષત સ્થાનકવાસી સમાજનો સપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

પ્રો રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ
સેટ ઝેવિયર્સ કોલેજ મુબઈ
પ્રો તારા રમણલાલ શાહ
સોફીયા કોલેજ, મુબઇ.

*

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય.

જયમહાલ
જાગનાથ પ્લોટ
રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પ મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈન સમાજ માટે એક એવા કાર્યમા વ્યાપ્ત થએલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયેગી થઇ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ મે જોયા

આ સૂત્રો જોતા પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઇ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી આપણે જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે તેની વસ્તુ ગભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે આટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાતર પૂ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામા જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનુ સરળ ભાષામા ભાષાતર દરેક જીજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઇ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ, સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામા સૂત્રો લખવામા આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઇએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમા સકળાયેલા જોઇએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે તેમનુ જીવન સૂત્રોમા વણાઇ ગયુ છે

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમા પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમા વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો. રસિકલાલ કસ્તુરચદ ગાધી
એમ એ એલ એલ બી
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુબઇ અને ઘાટકોપરમા મળેલી સભાએ ભિનાસર કોન્ફરન્સ તથા સાધુ સમેલનમા મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી શ્વેતાબર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ–સશોધન અને સ્વતત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમા લઇ તે પાર પાડવા મહેનત લઇ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમા સર્વાનુમતે સાહિત્ય મત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ ભા શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઇ રહ્યુ છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મત્રીશ્રી

મુંબઇની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઇ તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલ મંગળદાસ
પ્રમુખ . શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા જૈન શાસ્રોદ્ધાર સમિતિ,
રાજકોટ

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકાલિક આવશ્યક, ઉપાસકદશાગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા આ સૂત્રો ઉપર સસ્કૃતમા ટીકા આપવામા આવી છે અને સાથે સાથે હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાતરો પણ આપવામા આવ્યા છે, સસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હિન્દી ભાષાતરો જોતા આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર ગ્રથોમા પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજરાતી તથા હિન્દીમા થયેલા ભાષાતરમા ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે ૩૨ સૂત્રોમાથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે બીજા ૭ સત્રો લખાઇને તૈયાર થઈ ગયા છે આ બધા જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમા અમૂલ્ય સપત્તિરૂપ ગણાશે એમા સશય નથી આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષત સ્થાનકવાસી સમાજનો સપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

પ્રો રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ
સેટ ઝેવિયર્સ કોલેજ મુબઈ
પ્રો તારા રમણલાલ શાહ.
સોફીયા કોલેજ, મુબઇ

*

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ
જાગનાથ પ્લોટ
રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પ મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈન સમાજ માટે એક એવા કાર્યમા વ્યાપ્ત થએલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયેગી થઇ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ મે જોયા

નવાઇ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઇને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઇ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિન્દી વાચકને હિન્દી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખુ સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે

કેટલાકોને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનુ આપણુ કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે બીજા કોઇપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઇ જાય છે સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભ મહાવીરે તે વખતથી લોક ભાષામા (અર્ધ માગધી ભાષામા) સૂત્રો બનાવેલા છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામા ઘણા સરળ છે

માટે કોઇ પણ વાચકને એવો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાતોનું સાચુ જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવુ નહિ એટલુ જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલા સૂત્રોજ વાચવા

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવુ કોઇ પણ સસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સત્રો લખાયેલ પડયા છે, બે સૂત્રો—અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાગ સૂત્રો—લખાય છે તે પણ થોડા વખતમા તૈયાર થઇ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામા આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઇ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ઘરમા વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ

'જૈન સિદ્ધાન્ત' પત્ર – મે ૧૯૫૫

*

૧થા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામા છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ એ એ પોતાનુ સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યુ છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનદન આપે છે અને તેમના કામને જ્યા જ્યા અને જે જે જરૂર પડે-પડિતની અને નાણાની-પોતાની પાસેના ફડમાથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશસાપૂર્વક પસદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કાઇ ત્રુટી હોય તે પ ર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમા જઇ બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવુ કોઇપણ કામ સત્તા ઉપરના અધીકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે

(સ્થા જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતત્ર વિચારક અને નિડર લેખક 'જૈન સિદ્ધાત'ના તત્રીશ્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમા બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઇ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઇએ તેમના એક પત્રમા મને લખેલુ કે—

> "આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમા મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામા આવતા નથી લાબી તપાસને અતે મે મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજીને પસદ કરેલા છે"

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઇ પોતે વિદ્વાન હતા શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા આવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શીક્ષા વાચના લેતા, તેમ જ્ઞાન ચર્ચા પણ કરતા એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસદગી યથાર્થ જ હોય એમા

નવાઇ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઇને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઇ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિન્દી વાચકને હિન્દી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખુ સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે

કેટલાકોને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનુ આપણુ કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે બીજા કોઇપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઇ જાય છે સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભ મહાવીરે તે વખતથી લોક ભાષામા (અર્ધ માગધી ભાષામા) સૂત્રો બનાવેલા છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામા ઘણા સરળ છે

માટે કોઇ પણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાતોનું સાચુ જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવુ નહિ એટલુ જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલા સૂત્રોજ વાચવા

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવુ કોઇ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડયા છે, બે સૂત્રો—અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાગ સૂત્રો—લખાય છે તે પણ થોડા વખતમા તૈયાર થઇ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામા આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઇ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ઘરમા વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ

'જૈન સિદ્ધાન્ત' પત્ર – મે ૧૯૫૫

*

શ્રુત ભક્તિ

(પૂ આચાર્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મ સા ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનદજી મહારાજ

તા ૨૩–૬–૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય, જ્ઞાન દિવાકર પ મુનિશ્રી **ઘાસીલાલજી** મ ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધ, સ્વપર કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના દ્યોતક એવા **શ્રી જિનાગમ** પર પ્રકાશ પાડે છે તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પડિત છે અને જિન વાણીનો પ્રકાશ સસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિન્દીમા મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમા લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનદનો વિષય છે

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી પરતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજોએ શ્રુત પરપરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુત પરપરાથી સચવાતુ જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્દ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લભીપુર-વળામા તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યાં આજે આ સિદ્ધાતો આપણી પાસે છે તે અર્ધ માગધી પાલી ભાષામા છે અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મ ભાષા છે તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરન્તુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણા શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે એ આપણી આખો છે તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની–જૈન માત્રની ફરજ છે તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્ભાગ્યે જ્ઞાન દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે સત્સકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્રોદ્ધાર સમિતિ દ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે આવા અનુપમ કાર્યમા સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમા વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે

ભ૦ મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શુ ફળ પ્રાપ્ત થાય છે? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે અને તેઓ સસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે અને સસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતા મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા જ્ઞાન કાર્યમા મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગબરો અને અન્ય ધર્મીઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે હિન્દુ ધર્મમા પવિત્ર મનાતા ગ્રથ ગીતાના સેકડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમા પ્રગટ થયા છે ઇસાઇ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રન્થ બાઇબલના પ્રચારાર્થે તેનુ જગતની સર્વ ભાષાઓમા ભષાતર કરી, તેને પડતર કરતા પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-

સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે મુસ્લીમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનુ પણ અનેક ભાષાઓમા ભાષાતર કરી સમાજમા પ્રચાર કરે છે આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવા જોઇએ અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઇએ આવા પવિત્ર કાર્યમા સાપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઇએ અને શુદ્ધ આશયથી યત્તા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવુ જોઇએ સમિતિના નિયમાનુસાર રૂા ૨૫૧) ભરી સમિતિના સભ્ય બનવુ જોઇએ ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાન પ્રચારનું આ ખાતુ સર્વશ્રેષ્ઠ ગણાવુ જોઇએ

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહમેશ તત્પર રહેવું જોઇએ જેથી પરમ શાન્તિ અને જીવન સિદ્ધિ મેળવી શકાય (સ્થા જૈન તા ૫-૭-૫૬)

શ્રી અ ભા શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના પ્રમુખશ્રી વગેરે

શાણપુર

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાન્ત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના પુનિત પગલા થયા છે ત્યારથી ઘણા લાબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણિય કર્મના પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઇ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનત ઉપકારક કાર્યમા તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લ્યે છે મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તે બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત માત્ર પાચ-સાત સાધુઓ જો સ્થાનકવાસી જૈન સમાજમા હોય તો સમાજનુ શ્રેય થતા જરાએ વાર ન લાગે સમાજ કાશમા સ્થા જૈન સપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પ ણુ વો દિન

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને મ્હારી એક નમ્ર સૂચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે તેમને ગામોગામ વિહાર કરવા અને શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય કરવુ તેમા ઘણી શારીરિક-માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે તો કોઇ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાના શ્રાવકો ભકિતવાળા હોય, વાડાના રાગના વિષથી અલીપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યા સુધી સ્થીરતા કરી શકે એના માટે પ્રબધ કરવો જોઇએ બીજા કોઇ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમા યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તો વધુ સારૂ મ્હારી આ સૂચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપુ છુ ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનદન પાઠવુ છુ તે સ્વીકારશોજી

લિ સદાનદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

"જૈન સિદ્ધાંતના" તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસીઓમા પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સસ્થા છે અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઇ આનદ થાય છે

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિન્દી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવા એ કાઇ સહેલુ કામ નથી એ એક મહાભાગ્ત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવ સૂત્રો બહાર પડી ચૂકયા છે, હાલમા ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઇ ગયા છે અને જ બુદ્વીપ પ્રજ્ઞપ્તિ તથા નદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યા છે

હાલમા મત્રી શ્રી સાકરચદ ભાઇચદ સમિતિના કામમા જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમની ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનુ સશોધન તથા સસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની, તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ઘરમા વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામા આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડુ ઋણ અદા કર્યું ગણાય

ભગવાને કહ્યુ છે કે **पढम णाण तओ दया** પહેલુ જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાચવાજ જોઇએ તેનું અધ્યયન કરવુ જોઇએ અને તેનો ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઇએ

એટલા માટે આ શાસ્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈને પોતાના ઘરમા વસાવવાજ જોઇએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાજ સમાયેલુ છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાચે એ ખાસ જરૂરનું છે

"જૈન સિદ્ધાત" ડીસેમ્બર– ૫૯



શ્રી ઉપાશક દશાગ સૂત્રને માંટે અભિપ્રાય.

મૂળ સૂત્ર તથા પૂ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ બનાવેલ સસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત

પ્રકાશક- અ ભા શ્વે સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, ગ્રીન લૉજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડુ (મોટુ) કદ પાકુ પુઠુ જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિમત ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અગ સૂત્રોમાનુ ઉપાશકદશાગ એ સાતમુ અગ સૂત્ર છે, એમા ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે તેમા પહેલુ ચરિત્ર આનદ શ્રાવકનુ આવે છે

આનદ શ્રાવકે જૈન ધર્મ અગીકાર કર્યો અને બારવ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધા તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે તેની અતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે

આનદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધા તે બારે વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધુ આપેલુ છે તે જ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા अरिहंत चेइयाई શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહતનુ ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે પણ તે અર્થ તદન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સબધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણો આપી સાબિત કરેલ છે અને अरिहंत चेइयाई નો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચવું જોઇએ એટલુ જ નહિ પણ વારવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમા વસાવવુ જોઇએ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્દ્ધમાન શ્રમણ સઘના આચાર્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજનુ સમતિ પત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સમતિ પત્રો આપેલા છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે

"જૈન સિદ્ધાત" જાન્યુઆરી, ૫૭



"જૈન સિદ્ધાંતના" તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસીઓમા પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સસ્થા છે અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઇ આનદ થાય છે

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિન્દી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવા એ કાઇ સહેલુ કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવ સૂત્રો બહાર પડી ચૂકયા છે, હાલમા ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઇ ગયા છે અને જબુદ્રીપ પ્રજ્ઞપ્તિ તથા નદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યા છે

હાલમા મત્રી શ્રી સાકરચદ ભાઇચદ સમિતિના કામમા જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમની ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનુ સશોધન તથા સસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની, તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ઘરમા વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામા આવે તો જ મહારાજશ્રીનુ થોડુ ત્રાણ અદા કર્યુ ગણાય

ભગવાને કહ્યુ છે કે **पढम णाण तओ दया** પહેલુ જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાચવાજ જોઇએ તેનું અધ્યયન કરવુ જોઇએ અને તેનો ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઇએ

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈને પોતાના ઘરમા વસાવવાજ જોઇએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાજ સમાયેલુ છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાચે એ ખાસ જરૂરનું છે

"જૈન સિદ્ધાત" ડીસેમ્બર– ૫૯



આ સાલે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય પ મુનિશ્રી કન્હૈયાલાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે અને અત્યાર સુધીમા મુબઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ મેમ્બર બની ગયા છે અને મુબઈમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ઇચ્છવા ચોગ્ય છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ મોજશોખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે જેનું વાચન કરવાથી આત્માને શાતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

સેંકડો સર્ટીફીકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા
કેટલાક તાજા અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તંત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમા અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા. જૈન ઉપાશ્રયમા બિરાજમાન છે તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખુબ જ ખંત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતા પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમા તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના સૂત્રોની ટીકા જેમ બને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે સ્થા. જૈન સમાજમા શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સપૂર્ણ બને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનુ કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઇએ પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલખઋષીજી મહારાજે બત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિન્દી અનુવાદ કરેલ અને સપૂર્ણ બનેલ ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિન્દી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગડાગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાગની હિન્દી ટીકા લખેલ પણ સપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા તેનો હિન્દી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવામા સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા ૨૫૧) ભરીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે આ રીતે એક પથ અને દો કાજ બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે રૂા ૨૫૧ મા ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતના શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મલાભ પણ મળે છે

આ સાલે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય પં. મુનિશ્રી કન્હૈયાલાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે અને અત્યાર સુધીમા મુબઇ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ મેમ્બર બની ગયા છે અને મુબઈમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ઇચ્છવા યોગ્ય છે શ્રીમત્ ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ મોજશોખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે જેનું વાચન કરવાથી આત્માને શાતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

શતાવધાની મુનિશ્રી જયતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર "સ્થાનકવાસી જૈન" તા ૫-૯-૫૭ના અંકમા છપાએલ છે જે નીચે મુજબ છે

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમા ફેરફાર હોઇ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઇને હુ ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ મ સા સાથે જે વાતચીત થઇ તે સમાજને જાણ કરવા સારૂ લખુ છુ

'શાસ્ત્રોનુ કામ એક ગહન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઇ તેમા અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઇએ સપૂર્ણ શાસ્ત્રોનુ જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનુ જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમા બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્ર લેખનનું આ કાર્ય થઇ રહ્યુ છે, તેમા અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમા શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થાય છે ? કરવામા આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમા પણ સમાજને શકા થાય

પણ ખરી રીતે જોતા, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કામ ચાલી રહ્યુ છે તે વિષે સમાજને ખાત્રી આપવામા આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમા પ્રગટ થયેલા આગમોના મૂળ પાઠમા જરાપણુ ફેરફાર કરવામા આવેલ નથી અને ભવિષ્યમા જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમા ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોધ લ્યે

લી

શતાવધાની શ્રી જયત મુનિ–અમદાવાદ

*

રૂા. ૫,૨૫૧ આપનાર આદ્ય સુરબ્બીશ્રી,



કોઠારી હરગોવીદભાઇ જેચંદ
ગજદોટ

"શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય"

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઇ ચૂકયા છે

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઇ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સંસ્થાને યથાશકિત મદદ કરી તેના કાર્યને હજુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા કોન્ફરન્સ જેમ ખોટા બણગા ફુંકનારી સંસ્થાની કોઇ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતા તેઓશ્રી જે મહેનત લઇ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવુ કામ હજુ સુધી બીજા કોઇએ કર્યું નથી અને બીજુ કોઇ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શંકાભર્યું છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હઠે તેમ નથી એવી અમો આશા રાખીએ છીએ

"જૈનસિદ્ધાન" પત્ર ઓકટોમ્બર ૧૯૫૭

"શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય"

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઇ ચૂકયા છે

આ પ્રમાણે આ સસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઇ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સસ્થાને યથાશકિત મદદ કરી તેના કાર્યને હજુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા કોન્ફરન્સ જેમ ખોટા બણુગા ફુકનારી સસ્થાની કોઇ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતા તેઓશ્રી જે મહેનત લઇ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવુ કામ હજુ સુધી બીજા કોઇએ કર્યું નથી અને બીજુ કોઇ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકાભર્યુ છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હઠે તેમ નથી એવી અમો આશા રાખીએ છીએ

"જૈનસિદ્ધાન" પત્ર ઓકટોમ્બર ૧૯૫૭

શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસક દશાગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામા અનુવાદ-થયેલા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોકત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમા હોવા જ જોઇએ તે વાચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણુ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઇ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવદ્ય અને એષણિય સેવા શ્રમણુ પ્રત્યે બજાવી શકે છે વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમા તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અધશ્રદ્ધાએ શ્રમણુ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે પરતુ 'કલ્પ શુ અને અકલ્પ શુ' એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવદ્ય સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણુ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામા ઘસડી રહ્યા છે અને શ્રમણુ વર્ગની પ્રાય કુસેવા કરી રહ્યા છે તેમાથી બચી લાભનું કારણુ થાય અને શ્રમણુને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણુ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામા સહાયક થઇ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે શ્રમણુની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ શાસ્ત્રોદ્ધારનુ અનુવાદન ત્રણુ ભાષામા રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીયા ૨૫૧) ભરી મેમ્બર થનારને રૂા ૪૦૦–૫૦૦ લગભગ ની કીંમતના બત્રીસે આગમો ફ્રી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૧) ભરી મેમ્બર થઇ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવકઘરે મેળવવા જોઇએ બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે તો તે લાભ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુંબધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોકત બને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કઇક ઓછી રાખે તો હરકોઇ ગામમા શ્રીમત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મફત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઇ દરેક ઘરમા વસાવી શકે

—એક ગૃહસ્થ

નોધ-ઉપરની સૂચનાને અમે આવકારીએ છીએ આવા સૂત્રો દરેક ઘરમા વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાચવા યોગ્ય છે તત્રિ–

"રત્નજ્યોત" પત્ર

તા. ૧–૧૦–૫૭

રૂા ૫,૦૦૧ આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી,



(૨૧) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઇ
સોલાપુર

आवश्यकसूत्रस्य विषयानुक्रमणिका

इति



॥ श्री वीतरागाय नमः ॥



जैनाचार्य-जैनधर्म-दिवाकर-पूज्यश्री घासीलालजीमहाराजेन

आवश्यकसूत्रस्य मुनितोषण्याख्या व्याख्या वितन्यते—

इह हि जन्मजरामरणाऽऽधिव्याधिजनितदुःखपटलसङ्कुले क्षणक्षण-विलक्षणव्यवहारेऽनन्तविस्तारेऽसारेऽपि सारवदाभासमाने संसारे सर्व एव प्राणिनः सुखप्राप्तिं दुःखाभिहतिं च कामयमानाः सदरीदृश्यन्ते, किन्तु सुख-दुःखोत्पत्तिकारणज्ञानमन्तरेण तन्न सम्भवत्यतो दुःखहेतुभूतान् 'मिथ्यात्वा-ऽविरति कषाय-प्रमादा ऽशुभयोग-हिंसाऽऽरम्भेर्ष्या-राग-द्वेषप्रभृत्यन्तः—शत्रुसमूहान्

श्री आवश्यकसूत्र की मुनितोषणी नामकी व्याख्या की हिन्दी—

प्रस्तावना

जन्म–जरा–मरण–आधि–व्याधि के दुःखो से भरे हुए, प्रतिक्षण विलक्षण व्यवहार वाले, असार होने पर भी सार सहित मालूम होने वाले इस अनन्त संसार मे, सब जीव सुख चाहते हैं और दुःख का नाश करना चाहते हैं। किन्तु जब तक सुख और दुःख के कारणो का ज्ञान न हो, तब तक सुख की प्राप्ति और दुःख का नाश नहीं हो सकता। इसलिये मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद, अशुभ योग, हिंसा, आरम्भ, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि दुःखों के

પ્રસ્તાવના

આ અખિલ સસાર, જન્મ, જરા, મરણ, આધિ, અને વ્યાધિરૂપ દુખથી ભરેલો છે, પ્રતિક્ષણ ચલિત સ્વરૂપથી દૃશ્યમાન થાય છે, તો પણ આવા ક્ષણભંગુર જગતમા સર્વ જીવો સુખની વાચ્છના રાખે છે અને દુખના નાશની આકાક્ષા ધરાવે છે

પરતુ જ્યા સુધી વાસ્તવિક સુખ દુખનું મૂળકારણ ન જણાય ત્યા સુધી સુખની પ્રાપ્તિ અને દુખનો નાશ થવો અસભવિત છે એટલા માટે દુખના કારણભૂત મિથ્યાત્વ અવિરતિ (સાસારિકસુખમાથી ન નિવર્તવું) કષાય (ક્રોધ માન માયા લોભ) પ્રમાદ (સત્કાર્યોમા આળસ રાખવો) અશુભયોગ (મન વચન કાયાને ખોટી રીતે પ્રવર્તાવવા) હિંસા, આરભ (પોતાના સુખ માટે

सम्यग् विज्ञाय तन्नाशे सत्येव दुःखाद्विमुक्तात्मानः सान्द्रानन्दसन्दोहसन्दानिता मोक्षलक्ष्मीमधिगन्तुमर्हन्ति । तदेव लक्ष्यीकृत्य समस्तजागतिकजन्तुजातहिताय परमकारुणिकेन वीतरागेण भगवता श्रीमहावीरेणाऽवितथपथभूताभ्या सम्यग्ज्ञान क्रियाभ्यामेव सकलसुखनिदानमोक्षप्राप्तिः प्रतिपादिता ।

सम्यग्ज्ञान हि नाऽऽत्मशुद्धिमन्तरेण कदापि सभवति, आत्मशुद्धिश्च क्रिया विना सर्वथैवाऽसम्भविनी, नह्योपधिसेवन विना रोगौपम्यादिज्ञानमात्रेणाऽऽ-

कारण अन्तरग शत्रुओं को भलीभाँति जानकर, नाश करने पर ही दु:ख से छुटकारा पाने वाले अनन्त अविनाशी आत्मिक आनन्द युक्त-मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं। इसी कारण समस्त ससारी, प्राणियों के हित के लिये, परम दयालु, वीतराग भगवान् श्री महावीर ने सम्यग्ज्ञान और सम्यक् क्रिया से ही मोक्ष की प्राप्ति होना बतलाया है।

सम्यग्ज्ञान आत्मा की शुद्धि के विना कदापि नहिं हो सकता, और आत्मा की शुद्धि विना क्रिया के बिलकुल असम्भव है। विना औषध सेवन किये, केवल जान लेने से आरोग्य की प्राप्ति नहीं

અન્ય જીવોને હણવા) ઇર્ષ્યા, રાગ, દ્વેષ, આદિ અતરગ શત્રુઓને જાણી તેના નાશ કરવાથીજ અવિનાશી આત્મિક સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે

એટલા માટે સમસ્ત પ્રાણીઓના હિત માટે પરમકૃપાળુ મહાવીરદેવે સમ્યક્જ્ઞાન, અને સમ્યક્ ક્રિયાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ બતાવી છે

એકાત જ્ઞાન કે એકાત ક્રિયાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થતી નથી ઋષિ-મુની ઓએ કહ્યુ છે કે

'જ્ઞાનક્રિયાભ્યામ્ મોક્ષ'

અર્થાત્-સમ્યક્ જ્ઞાન અને ક્રિયાથીજ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે

જેમ ગાડીવાનને અમુક રસ્તાની માહીતી છે પણ જો તે રસ્તે બળદને દોરીને નહિ લઈ જાય તો તે સ્થળે ગાડીવાન પહોચી શકતો નથી, તેવી રીતે મોક્ષરૂપી નગરમા પહોચવાનો રસ્તો જાણ્યો પણ તે જાણી તથારૂપ ક્રિયા ન થાય તો ઇચ્છિત સ્થળે પહોચી શકાતુ નથી. તેમ જ્ઞાન મેળવવા છતા યથાયોગ્ય ક્રિયા ન થાય તો આત્મિક સુખની પ્રાપ્તિ થવી અશક્ય છે

रोग्यलाभः, किन्तु रोगनिदानज्ञानपूर्वकतदीयौषधिसेवनेनैव, तथैव न क्रिया विना ज्ञानमात्रेण पापक्षयः समस्ति भवितुम्, अपितु ज्ञानपूर्वकक्रिययैवेति।

किञ्च मोक्षस्यान्यवहितकारणमपि क्रियैव, सत्यपि केवलज्ञाने पूर्णयथाख्यातचारित्ररूपक्रियाया अभावे मोक्षाभावात्, तद्भावे च तद्भावात्, अतः सम्यक्चारित्ररूपायाः क्रियायाः सद्भाव एवाऽर्जितस्य कर्मणो निर्जरणसम्भवेन

हो सकती। हाँ, जब रोग के कारण का और औषध का ज्ञान हो जायगा तब यदि औषध का सेवन किया जाय तो रोग मिट सकता है। इसी प्रकार क्रिया के विना अकेले ज्ञान से ही कर्मों का क्षय नही हो सकता, बल्कि ज्ञानपूर्वक क्रिया से होता है।

दूसरी बात यह है कि मोक्ष का अव्यवहित कारण क्रिया ही है, क्योंकी केवलज्ञान के हो जाने पर भी पूर्ण यथाख्यात चारित्र रूप क्रिया के अभाव से मोक्ष नही होजाता। जब पूर्ण यथाख्यात चारित्र हो जाता है तब तत्काल ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। अतः सम्यक्चारित्र रूप क्रिया से ही पहले बंधे हुए कर्मों की निर्जरा होकर अन्त मे समस्त

જેમ રોગનું નિદાન જાણ્યા પછી ઓષધનુ યથાનિયમ સેવન ન થાય તો રોગ જાતો નથી તેમ સાસારિક દુ ખનું કારણુ સમ્યક્ પ્રકારે જાણ્યા છતા જો તે દુ ખના નિવારણુ રૂપ સુક્રિયા ન થાય તો દુ ખનો અત આવતો નથી એટલા જ માટે જ્ઞાન અને ક્રિયા એ બન્નેની આવશ્યકતા છે આ ઉભય પદને અગ્રેજીમા knowledge and action નોલેજ અને એકશન કહે છે

બીજો શાસ્ત્રીય દાખલો એ છે કે કેવળ જ્ઞાન (Perfect knowledge પરફેકટ નોલેજ) થયા પછી પણુ પૂર્ણ યથાખ્યાત (Perfect પરફેકટ) ચારિત્રના અભાવથી આત્મા સિદ્ધગતિને પામતો નથી

સમ્યક્ ચારિત્ર એટલે સમ્યક્ ક્રિયારૂપ વહન આ સમ્યક્ ક્રિયારૂપ વહનથી આત્મા પોતાના કર્મોની નિર્જરા (છુટકારો) કરે છે આ નિર્જરા કરતા કરતા પોતાની શક્તિ વધારે પ્રમાણમા કેળવે છે આટલી શક્તિ કેળવતા કેવળ જ્ઞાન થાય છે છતા અમુક કર્મોની સત્તા રહી જવાથી, આત્માને તે કર્મોની નિર્જરા માટે ઘણુ વધારે પ્રમાણુમા શક્તિ વધારવાની આવશ્યકતા જણાય છે આવા પ્રકારની લેશબધ ક્રિયારૂપ વહનને જેને શાસ્ત્રકારો 'યથાખ્યાતચારિત્ર' ના

कृत्स्नकर्मात्यन्तविमुक्तस्याऽऽत्मनोऽसङ्गतया अपगतलेपबन्धाऽलाबूवत्, बन्धच्छेदादेरण्डबीजवद् ऊर्ध्वगतिस्वभावादग्निशिखावच्च स्वयमेवाऽऽलोकान्तमूर्ध्वगमनमुपपद्यते ।

इत्थं चाभिनवपापकर्माऽसम्बन्धाय चिरकालप्रवृत्तमिथ्यात्वाऽविरति-कषाय-प्रमाद-योगादिजनितकर्मकलापप्रणाशाय च सम्यक्श्रद्धान-सम्यग्ज्ञानवद्भिरपि निरन्तरं सम्यक्चारित्राऽऽचरणपरायणैरेव भवितव्यमिति निर्णये तादृशचारित्रपवित्रकर्मप्रतिपादकमिदं- 'भावावश्यकसूत्रं' सादरमालोच्याऽना-

कर्मोंसे सर्वथा छूट कर आत्मा निस्संग होने से, जिसका लेप पानी के योग से छूट गया हो ऐसी तूँबी की तरह, बंध का विनाश हो जाने से एरण्ड के बीज की भाँति, ऊर्ध्वगमन करने का स्वभाव होने से अग्नि की लौ की नाईं स्वयं ही लोक के अन्त तक ऊर्ध्वगमन करता है। इसलिये नवीन कर्मों का बन्ध रोकने के लिये तथा चिरकाल से लगे हुए मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योग से उत्पन्न होने वाले कर्मों के समूह का नाश करने के लिये सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी जनों को भी सम्यक् चारित्र में परायण रहना चाहिए। यह निश्चय हो जाने पर इस प्रकार के चारित्ररूप पवित्र कर्त्तव्य को प्रतिपादन करने वाला यह 'आवश्यक' नामक शास्त्र आदर के साथ पढ कर शीघ्र ही

નામે ઓળખે છે આ ક્રિયારૂપ વહન છેવટનું વહન છે, અને આ વહન પ્રાપ્ત થયે સર્વ કર્મનો ક્ષય થવો જોઇએ, જે સર્વ કર્મનો ક્ષય થયે અનંત આત્મિક સુખ ઉદ્‌ભવે છે

જેમ લેપ લગાડેલ તુંબીપાત્ર પાણીના યોગથી લેપમાથી મુક્ત થાય છે ને જેમ તે તુંબીપાત્ર પાણીની સપાટીએ તરે છે તેમ આત્મા કર્મરૂપી રજથી ચારિત્ર વડે મુક્ત થઈ સંસારની સપાટી પર રહે છે, જેને અંગ્રેજીમા Surface of the world (સરફેસ ઓફ ધી વર્લ્ડ) કહે છે

નવા કર્મોના બંધનની રૂકાવટ માટે અને લાણા વખતથી વ્યાપ્ત એવા મિથ્યાત્વ અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગથી ઉત્પન્ન થતા કર્મોના નાશને માટે સમ્યગ્ દૃષ્ટિ અને સમ્યક્ જ્ઞાનીઓએ પણ સમ્યક્ ચારિત્રમા પરાયણ રહેવું જોઇએ

यासतो झटिति स्वकीयाऽवश्यकर्मणि विज्ञाते तदनुष्ठानाय प्रवर्त्तितव्यमुभयलोक-साधनसामग्रीसकलनचातुरीचणैर्विचक्षणैः ।

अस्मिन् शास्त्रे निम्नोक्ताः क्रियाः प्रतिपादिताः– (१) सामायिकम् (सावद्ययोगनिवृत्तिः), (२) चतुर्विंशतिस्तवः (२४ जिनस्तुतिः), (३) वन्दनम् (गुरुवन्दना), (४) प्रतिक्रमणम् (प्रायश्चित्तम्), (५) कायोत्सर्गः, (६) प्रत्याख्यानं च ।

या स्वाभीष्टाऽन्यानभीष्टभूता क्रिया सा सावद्यरूपत्वान्नाऽमन्दाऽऽनन्द

सरलता पूर्वक आवश्यक क्रियाएँ जान कर इह–लोक–परलोक को साधन करने की सामग्री इकट्ठी करने में कुशलजनों को उनके अनुष्ठान करने में प्रवृत्ति करना चाहिए।

इस शास्त्र मे निम्न–कहीहुई क्रियाओं का प्रतिपादन किया गया है–(१) सामायिक (सावद्य योग की निवृत्ति) (२) चतुर्विंशति स्तव (२४ जिनस्तुति) (३) वन्दना (गुरुवन्दना) (४) प्रतिक्रमण (प्रायश्चित्त) (५) कायोत्सर्ग और (६) प्रत्याख्यान।

जो क्रिया अपने इष्ट और दूसरे के अनिष्ट के लिये की जाती है, वह सावद्यरूप होने से अनन्त अनुपम आत्मिक आनन्द

ઉપરોક્ત નિશ્ચય એ ચારિત્રરૂપ પવિત્ર કર્તવ્યને પ્રતિપાદન કરવાવાળા આવશ્યક સૂત્રનું સમ્યક્જ્ઞાની અને સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવોએ આદર પઠન કરવું જોઇએ, અને સૂત્રોક્ત ક્રિયાનું યથોચિત અનુષ્ઠાન અવશ્ય થવુ જોઇએ

સદરહુ શાસ્ત્રમા નીચે પ્રમાણે ક્રિયાઓનું પ્રતિપાદન કર્યું છે (૧) સામાયિક (સાવદ્ય કાર્યની નિવૃત્તિ) (૨) ચતુર્વિંશતિસ્તવન – ૨૪ તિર્થંકરોની સ્તુતિ (૩) વદના (ગુરુવદણા) (૪) પ્રતિક્રમણુ=થઇ ગએલ પાપરૂપ ક્રિયાઓને જોઇ જવી અને ફરીથી તેવા પ્રકારની ક્રિયા નહિ કરવાનુ પ્રતિબધન કરવુ અને થએલ પાપ બદલ હૃદયપૂર્વક પશ્ચાત્તાપ કરવો (૫) કાયોત્સર્ગ (કાયાનો વ્યુત્સર્ગ કરવો કાયાના અગોપાગને સ્થિર રાખવાની ક્રિયા) (૬) પ્રત્યાખ્યાન–(પચ્ચખાણુ–અમુક કાર્યો કરવાની બધી કરવી)

જે ક્રિયા પોતાના ઇષ્ટ અને અન્યના અનિષ્ટ માટે કરાય છે તે પાપકારી હોવાથી અનુપમ આત્મિક સુખ પ્રાપ્ત કરાવનારી નથી પરતુ આત્માને

सन्दोहसजननाय प्रभवति, प्रत्युताऽधोगतिनयनायैव जायते। या तु स्वकल्याण-प्रार्थनपूर्वक-समस्तजन्तुजातशाताभिलाषगर्भिता, मैत्री प्रमोद-कारुण्य माध्यस्थ्य-भावनारूपजागरयोत्तरोत्तर-वैराग्यवृद्धिकारिणी, सैव निरवद्यरूपतया वास्तविकाऽऽत्मानन्दास्वादसम्पादिका भवतीत्यस्याः षड्विधाऽऽवश्यकरूपक्रियाया साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकाणामुभयकालमवश्यकरणीयत्वादिद-'भावावश्यक'-मिति कथ्यते, यथोक्तम्—

को देने वाली नहीं, बल्कि अधोगति में लेजाने वाली है। जो अपने कल्याण की प्रार्थना के साथ समस्त प्राणियों के कल्याण की इच्छा से युक्त, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थभावना-रूप जागृति से उत्तरोत्तर वैराग्य बढाने वाली होती है, वही क्रिया सच्चे सुख का आस्वादन करा सकती है। छह प्रकार की यह आवश्यक क्रिया साधु साध्वी श्रावक और श्राविका को दोनों समय अवश्य ही करने योग्य है, इसलिये इसे 'आवश्यक' कहते हैं। कहा भी है—

અધોગતિમા વહન કરનારી છે

જો તેમજ પરકલ્યાણ કરવાના ઇરાદાપૂર્વક મૈત્રી, પ્રમોદ, કારૂણ્ય અને માધ્યસ્થ્ય ભાવનારૂપ ક્રિયાનું આચરણ કરવામા આવે તો તે ભાવનાના પ્રસાદથી આત્મા ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્યમય થાય છે, એટલુ જ નહી, પણ અતુલ્ય સુખનો આસ્વાદન અગીકાર કરી શકે છે મહાત્માઓએ કહ્યુ છે કે —

સત્વેષુ મૈત્રીં ગુણિષુ પ્રમોદ ક્લિષ્ટેષુ જીવેષુ દયાપરત્વમ્,

માધ્યસ્થ્યભાવ વિપરીતવૃત્તૌ, સદા મમાત્મા વિદધાતુ દેવ

અર્થાત્—દરેક જીવો તરફ મૈત્રીભાવ રાખવા, દરેક વ્યક્તિમા ગુણ શોધીને તેની તરફ આનદિત થવુ, દુખી જીવો તરફ કૃપાદૃષ્ટિ રાખવી, વિપરીત આચરણ કરનારી વ્યક્તિઓ તરફ મધ્યસ્થભાવે જોવું

ઉપરોકત ચાર પ્રકારની ભાવના જો ક્રિયારૂપે અગીકાર થાય તો શાશ્વત સુખ તરફ અનુક્રમે વહન થાય છે

આ પ્રકારની આવશ્યક ક્રિયા સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકાએ અવશ્ય આચરવા યોગ્ય છે, તે આવશ્યકતાને લઇ મજકુર સુત્ર-સિદ્ધાતને આપણે 'આવશ્યક સૂત્ર' નામે ઓળખીએ છીએ

"समणेण सावएण य, अवस्सकायव्व हवइ जम्हा ।
यतो अहोनिसस्स य, तम्हा 'आवस्सय' नाम ॥१॥" इति ।

यच्च सूत्रमिदमावश्यकमित्याख्यायते, तत्प्रतिपाद्य-प्रतिपादकाऽभेदाऽभिमायादित्यवगन्तव्यम् । आवश्यक हि नैवोपयोगमन्तरा केवल शुकवद्-आरट्यमान सम्यक्तया फलप्रद, किन्तु सोपयोग स्वात्मनि तद्गतविषयपरिणमनपूर्वक विधीयमान सल्लोकोत्तरफलप्रदमत एवेद-लोकोत्तरभावावश्यकमिति कथ्यते । यथोक्त भगवता—

"जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावए वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेस्से तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए

समणेण सावएण य, अवस्सकायव्व हवइ जम्हा ।
अतो अहोनिसस्स य, तम्हा 'आवस्सय' नाम ॥

इन क्रियाओं को 'आवश्यक' कहने का कारण बतलाया जा चुका है । किन्तु इस सूत्र को भी आवश्यक कहते हैं । वह इसलिये कि यहाँ प्रतिपाद्य-जिसका प्रतिपादन किया जाय (आवश्यक), और प्रतिपादक (शास्त्र) के अभेद की विवक्षा है ।

विना उपयोग लगाये तोतारटन्ती कर लेने से आवश्यक का वास्तविक फल नहीं होता, किन्तु उपयोग के साथ, उनके विषय को आत्मा के साथ एकमेक करते हुए जो आवश्यक किया जाता है वही लोकोत्तर फल देने वाला लोकोत्तर भावावश्यक कहलाता है । भगवान् ने कहा है—

"जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविया वा

જો કોઈ પણ ક્રિયા ઉપયોગપૂર્વક આચરવામા આવે તો જ તેનું વાસ્ત વિક ફળ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે બાકી 'પઢો પોપટભાઈ રાજારામ' તે સૂત્ર અનુસાર પોપટીઆ જ્ઞાનની માફક મુખથી બોલી જવુ, તેથી કાઇ અર્થ સરતો નથી જો ઉપયોગ અને ભાવપૂર્વકજ આવશ્યક ક્રિયાઓનુ આચરણ થાય તોજ તેથી ઉપ લક્ષિત આનદ પ્રાપ્ત થાય છે

ભગવાને કહ્યુ છે કે—

'જો કોઈ સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક શ્રાવિકા તચ્ચિત્તે તન્મયે, તલ્લેસે, તદધ્ય

मन्दोहसजननाय प्रभवति, प्रत्युताऽधोगतिनयनायैव जायते। या तु स्वकल्याण-प्रार्थनपूर्वक-समस्तजन्तुजातशाताभिलाषगर्भिता, मैत्री-प्रमोद-कारुण्य माध्यस्थ्य-भावनारूपजागरयोत्तरोत्तर-वैराग्यवृद्धिकारिणी, सैव निरवद्यरूपतया वास्त-विकाऽऽत्मानन्दास्वादसम्पादिका भवतीत्यस्याः षड्विधाऽऽवश्यकरूपक्रियाया साधु साध्वी-श्रावक-श्राविकाणामुभयकालमवश्यकरणीयत्वादिदं-' भावावश्यक '-मिति कथ्यते, यथोक्तम्—

को देने वाली नहीं, बल्कि अधोगति मे लेजाने वाली है। जो अपने कल्याण की प्रार्थना के साथ समस्त प्राणियों के कल्याण की इच्छा से युक्त, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थभावना-रूप जागृति से उत्तरोत्तर वैराग्य बढाने वाली होती है, वही क्रिया सच्चे सुख का आस्वादन करा सकती है। छह प्रकार की यह आवश्यक क्रिया साधु साध्वी श्रावक और श्राविका को दोनों समय अवश्य ही करने योग्य है, इसलिये इसे 'आवश्यक' कहते हैं। कहा भी है—

અધોગતિમા વહન કરનારી છે

જો તેમજ પરકલ્યાણ કરવાના ઇરાદાપૂર્વક મૈત્રી, પ્રમોદ, કારૂણ્ય અને માધ્યસ્થ્ય ભાવનારૂપ ક્રિયાનુ આચરણ કરવામા આવે તો તે ભાવનાના પ્રસાદથી આત્મા ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્યમય થાય છે, એટલુ જ નહી, પણ અતુલ્ય સુખનો આસ્વાદન અગીકાર કરી શકે છે મહાત્માઓએ કહ્યુ છે કે —

સત્ત્વેષુ મૈત્રીં ગુણિષુ પ્રમોદ ક્લિષ્ટેષુ જીવેષુ દયાપરત્વમ્,

માધ્યસ્થ્યભાવ વિપરીતવૃત્તૌ, સદા મમાત્મા વિદધાતુ દેવ

અર્થાત્—દરેક જીવો તરફ મૈત્રીભાવ રાખવા, દરેક વ્યક્તિમા ગુણ શોધીને તેની તરફ આનદિત થવુ, દુખી જીવો તરફ કૃપાદૃષ્ટિ રાખવી, વિપરીત આચરણ કરનારી વ્યક્તિઓ તરફ મધ્યસ્થભાવે જોવું

ઉપરોક્ત ચાર પ્રકારની ભાવના જો ક્રિયારૂપે અગીકાર થાય તો શાશ્વત સુખ તરફ અનુક્રમે વહન થાય છે

આ પ્રકારની આવશ્યક ક્રિયા સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકાએ અવશ્ય આચરવા યોગ્ય છે, તે આવશ્યકતાને લઇ મજકુર સૂત્ર-સિદ્ધાતને આપણે ' આવશ્યક સૂત્ર ' નામે ઓળખીએ છીએ

"समणेण सावएण य, अवस्सकायव्वं हवइ जम्हा ।
यतो अहोनिसस्स य, तम्हा 'आवस्सय' नाम ॥१॥" इति ।

यच्च सूत्रमिदमावश्यकमित्याख्यायते, तत्प्रतिपाद्य प्रतिपादकाऽभेदाऽभिमायादित्यवगन्तव्यम् । आवश्यकं हि नैवोपयोगमन्तरा केवलं शुकवद्-आरट्यमानं सम्यक्तया फलप्रदः; किन्तु सोपयोगं स्वात्मनि तद्गतविषयपरिणमनपूर्वकं विधीयमानं सल्लोकोत्तरफलप्रदमत एवेदं-लोकोत्तरभावावश्यकमिति कथ्यते । यथोक्तं भगवता—

"जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावए वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेस्से तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए

समणेण सावएण य, अवस्सकायव्वं हवइ जम्हा ।
अतो अहोनिसस्स य, तम्हा 'आवस्सय' नाम ॥

इन क्रियाओं को 'आवश्यक' कहने का कारण बतलाया जा चुका है । किन्तु इस सूत्र को भी आवश्यक कहते हैं । वह इसलिये कि यहाँ प्रतिपाद्य-जिसका प्रतिपादन किया जाय (आवश्यक), और प्रतिपादक (शास्त्र) के अभेद की विवक्षा है ।

विना उपयोग लगाये तोतारटन्ती कर लेने से आवश्यक का वास्तविक फल नहीं होता, किन्तु उपयोग के साथ, उनके विषय को आत्मा के साथ एकमेक करते हुए जो आवश्यक किया जाता है वही लोकोत्तर फल देने वाला लोकोत्तर भावावश्यक कहलाता है । भगवान् ने कहा है—

"जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविया वा

જો કોઈ પણ ક્રિયા ઉપયોગપૂર્વક આચરવામા આવે તો જ તેનું વાસ્તવિક ફળ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે બાકી 'પઢો પોપટભાઈ રાજારામ' તે સૂત્ર અનુસાર પોપટીઆ જ્ઞાનની માફક મુખથી બોલી જવુ, તેથી કાંઈ અર્થ સરતો નથી જો ઉપયોગ અને ભાવપૂર્વકજ આવશ્યક ક્રિયાઓનુ આચરણ થાય તોજ તેથી ઉપલક્ષિત આનંદ પ્રાપ્ત થાય છે

ભગવાને કહ્યુ છે કે—

'જે કોઈ સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક શ્રાવિકા તચ્ચિત્તે તન્મયે, તલ્લેસે, તદધ્ય

अण्णत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेंति, सेत्त लोगुत्तरिय भावावस्सय ॥"

नन्वेव तर्हि उपयोगादिक विनाऽऽवश्यक न कर्त्तव्यमिति नोद्भावनीयम्, वीतरागमार्गे क्रियाया विरक्ति (हिंसादित्याग) रूपत्वात्, सत्यौषधसेवनवदावश्यक सर्वेषा कर्त्तव्यमेव, यथाऽयथाविधानमपि सेव्यमान सत्यौषधमारोग्यायैव प्रभवति, तद्वत–पथ्याऽपथ्यादिविचारणा–तदनुकूलवर्त्तना–पूर्वक सेव्यमान तु तदेवौषध समधिकगुणान् प्रदर्शयति ।

तच्चित्ते तम्मणे तल्लेस्से तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओ काल आवस्सय करेंति, से त्त लोगुत्तरिय भावावस्सय।"

यहॉ यह प्रश्न उठता है कि, यदि उपयोगपूर्वक आवश्यक करने से ही अलौकिक फल की प्राप्ति होती है, तो क्या बिना उपयोग के आवश्यक करना ही नहीं चाहिए ? लेकिन बात ऐसी नहीं है। वीतराग के मार्ग मे क्रियाएँ विरक्ति (हिंसा आदि के त्याग) रूप हैं, इसलिए सत्य औषध के समान उनका सेवन अवश्य करना चाहिए। बिना पथ्य के सत्य औषध का सेवन करने से कुछ न कुछ आरोग्य लाभ होता ही है। और यदि पथ्य अपथ्य का विचार रख कर उसके अनुसार प्रवृत्ति की जाय तो अधिक लाभ होता है। इसी प्रकार उपयोग पूर्वक आवश्यक करने से समस्त कर्मों की निर्जरा होती हैं,

वसाओ तद्भावे आवश्यक क्रिया करशे तो निश्चयपणे लोकोत्तरभावने प्राप्त करशे '

अहिं आ प्रश्न उपस्थित थाय छे के जो उपयोग अने भावपूर्वक आवश्यक क्रियाओ करवामा आवे तोज अलौकिक फळनी प्राप्ति थाय छे, तो फरी प्रश्न थाय छे के विना उपयोगे आवश्यक क्रिया न करवी ? प्रत्युत्तरमा जणावे छे के साकर अधारामा खाय तो पण मिठाश आपे छेज अने प्रकाशमा विचार करीने आस्वादन लेता लेता ते साकर खवाय तो अनेरो आनद अने शारीरिक वृद्धि थाय छे आ उपरथी एम समजाय छे के उपयोग पूर्वक साकर न खवाय तो पण तेनो मीठाश गुण जतो नथी तेमज आवश्यक क्रियाओ कदाच उपयोगपूर्वक न करवामा आवे

उपयोगादिपूर्वकं हि क्रियाऽनुष्ठानं सर्वकर्मनिर्जराकरं भवति, यः कश्चिदुपयोगादिविरहितोऽपि क्रियानुष्ठाने प्रवृत्तस्तस्यापि यदा कदाचित्सम्यक्क्रियाविदधानं कमपि दृष्ट्वा तीव्रवैराग्यप्राप्त्या यथार्थवैराग्यस्य क्षणमात्रमध्यवसायेन सर्वकर्मनिर्जरासंभवस्तस्मादावश्यकं करणीयमेव सर्वेषामिति निर्विवादम् ।

षडध्ययनात्मकस्याऽऽवश्यकस्य द्वितीयं नाम 'प्रतिक्रमण' मित्यस्ति तत्र किं कारणम् ? उच्यते प्रतिक्रमणशब्दः प्रायश्चित्तपर्यायो वर्तते । प्रायश्चित्तं हि पापप्रक्षयस्य प्रधानकारणमस्ति यथा विविधोपस्करपरिष्कृतमपि व्यञ्जनादिकं

और यदि उपयोग के विना करे तो भी संभव है कि कभी दूसरों को सम्यक् प्रकार क्रिया करते देख कर उसे तीव्र वैराग्य की प्राप्ति हो जाय और तीव्र वैराग्य क्षण भर भी हृदयमें टिक जाय तो बेडा पार हुआ समझिए। इसलिये सभी को नित्य प्रति आवश्यक करना आवश्यक है ।

आवश्यक सूत्र के छह अध्ययन है । इसका दूसरा नाम प्रतिक्रमण है। इसका कारण यह है—प्रतिक्रमण का अर्थ है प्रायश्चित्त। प्रायश्चित्त पाप के प्रक्षय का प्रधान कारण है। यदि अनेक प्रकार के मसालों से युक्त भी व्यञ्जन (साग तथा दाल आदि) हैं, परन्तु उनमें लवण न होवे तो वे स्वादु नहीं होते, अपितु फीके लगते है। इसी

તો પણ તે ક્રિયાઓમા રહેલ અહિંસા, સવર, કાયોત્સર્ગ વદન આદિ ગુણોનો લાભ છે જ, પણ જો આવશ્યક ક્રિયાઓ ઉપયોગ અને ભાવપૂર્વક આચરવામા આવે તો પ્રકાશમા ખવાએલ સાકરની માફક અલૌકિક અને અનુપમ આનદ પ્રાપ્ત કરાવે છે અને સમસ્ત કર્મોની નિર્જરા થાય છે

જો કોઈ ઉપયોગ વગર ક્રિયા કરે તો પણ એવો સભવ છે કે અન્યને રૂડા પ્રકારે ક્રિયા કરતો જોઈ તેને તીવ્ર વૈરાગ્યની પ્રાપ્તિ થાય અને એ તીવ્ર વૈરાગ્ય એક ક્ષણભર હૃદયમા સ્થિર થાય તો ભવભ્રમણ નો અત આવે, એમ સમજવુ, તેથી પ્રત્યેક ભવ્યને હમેશ આસ્યક કરવો જરૂરી છે

આવશ્યક સૂત્રના છ અધ્યયન છે તેનુ બીજુ નામ પ્રતિક્રમણ છે, અને તેનુ કારણ એ છે કે પ્રતિક્રમણનો અર્થ પ્રાયશ્ચિત્ત છે, અને પ્રાયશ્ચિત્ત એટલે પાપનો વિશેષ પ્રકારે ક્ષય કરવાનુ મુખ્ય કારણ જેમ વિવિધ મશાલાથી

लवणमन्तरेण न सुस्वादार्हं तथा तपश्चर्या–गुरुस्तुति–प्रत्याख्यानादिका सर्वाऽपि क्रिया प्रायश्चित्त (पश्चात्तापरूप) विना नैव नितान्तसुखफलं प्रापयितुं क्षमा, तद्विषयकं प्रतिक्रमणाख्यं चतुर्थमध्ययनमस्मिन्नस्तीत्यस्य शास्त्रस्य 'प्रतिक्रमण' मिति नामान्तरं जातम् ।

यद्यपि संसृतिगर्तनिपतितानां प्राणिनां यदा तदा येन केन चित्प्रकारेण पापपङ्कलेपो दुर्निवार्यस्तथापि तस्य पापस्य तत्क्षणमेव पश्चात्तापेनाऽऽलोचना क्रियेत चेत्तदा भुक्ततत्क्षणवान्तविषवत् तदुदयेऽपि जीवः पापजनिततीव्रदुःखभाग् न भवेत्, तत्क्षणकृतप्रायश्चित्तेन दुःखनिदानकर्मणां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेश-

प्रकार तपश्चर्या, गुरुस्तुति, प्रत्याख्यान आदि समस्त क्रियाएँ प्रायश्चित्त (पश्चात्ताप रूप) के विना आत्मीय–आनन्दप्रद नहीं होतीं। यह पश्चात्ताप–प्रतिक्रमण इस शास्त्र मे प्रतिपादित किया गया है, अतएव इस समूचे सूत्र का भी नाम प्रतिक्रमण पड गया है।

इस ससाररूपी खड्डे में गिरे हुए जीव कभी न कभी, किसी प्रकार पापकर्मरूपी कीचड में फँस ही जाते हैं। ऐसी अवस्था मे यदि तत्काल ही उस पाप कर्म का पश्चात्ताप करके उसकी आलोचना कर ली जावे तो खाये हुए विष को तत्काल वमन कर देने की तरह उस पाप कर्म के उदय होने पर भी तीव्र दु ख नही भोगना पडता। क्योंकि तत्काल प्रायश्चित्त कर लेने से उसके अनुभाग

વરપુર શાક-દાળ નિમક (સબરસ) ના અભાવે સ્વાદિષ્ટ બનતુ નથી અને નીરસ લાગે છે તેમ તપશ્ચર્યા, ગુરૂ સ્તુતિ, પચ્ચખાણ વિગેરે ક્રિયાઓ પ્રાયશ્ચિત્ત વગર આત્મિક આનદ આપનાર થઇ શકતી નથી આ પ્રતિક્રમણનુ આ શાસ્ત્રમા પ્રતિપાદન કરવામા આવે છે એથી આ આખા સૂત્રનુ નામ પ્રતિ ક્રમણ પડી ગયુ છે

આ સસાર રૂપ ખાડામા પડી ગએલ જીવ ક્યારે ન ક્યારે કોઇને કોઇ પાપકર્મ રૂપ કીચડમા ફસાઇ જાય છે એવી અવસ્થામા જો તત્કાલ તે પાપકર્મનુ પશ્ચાત્તાપ કરીને આલોચના કરવામા આવે તો જેવી રીતે ખવાઇ ગયેલુ ઝેરનુ તરત વમન કરવામા આવે તો, તેની વિઘાતક અસર થતી નથી તેવી રીતે તે પાપ કર્મનો ઉદય ઉપસ્થિત થતા તેનુ તીવ્ર દુ ખ ભોગવવુ પડતુ

बन्धेषु न्यूनत्व-शिथिलत्वसम्भवात् । यथा तत्कालविरचितभित्त्यादीनां तद्गत-सन्धिबन्धशिथिलीकरणे तत्पातने च नैव प्रयासबाहुल्यमपेक्ष्यते किन्तु काल-प्राचुर्ये सति तत्पातने तच्छिथिलीकरणे च प्रचुरपरिश्रमाऽपेक्षासम्भवस्तथैव दुःखहेतुभूतकर्मणां तद्दिवसे तत्क्षणे एव यदि पश्चात्तापः क्रियेत तर्हि नैव तानि भविष्यत्काले स्वोदयेऽपि प्रभूतदुःखप्रदानि जायेरन् प्रत्युताऽऽत्मा लघुकर्मत्वात् ऊर्ध्वगामी सञ्जायेत । यथा मखलीपुत्रो गोशालकः पश्चात्तापप्रायश्चित्तेन स्वकृत-घनकर्माणि क्षपयित्वा द्वादशे देवलोके देवत्वमवाप, एवं प्रसन्नचन्द्रराजर्षिः सप्तमनरकप्रापकाणि कर्माणि बद्ध्वाऽपि पश्चात्तापेन घनघातककर्मविनाशनपूर्वकं

बंध आदि में न्यूनता और शिथिलता हो जाती है। जैसे तत्काल बनाई हुई दीवार को ढीली करने या गिराने में अधिक परिश्रम नही करना पडता, किन्तु बहुत दिनों बाद उसे ढीली करने या गिराने में बहुत परिश्रम करना पडता है। वैसे ही दुःख के कारण भूत कर्म (कार्य) का उसी दिन, उसी क्षण ही पश्चात्ताप कर लिया जाय तो उसके उदय आने पर वह अधिक दुःखदायक नहीं होता, बल्कि आत्मा लघुकर्मी होकर ऊर्ध्वगामी बनता है। मखलीपुत्र गोशालक पश्चात्ताप-प्रायश्चित्त करके, किये हुए घोर कर्मोंको पश्चात्तापसे नाश कर बारहवें देवलोक में देव हुआ। राजऋषि प्रसन्नचन्द्र सातवें नरक में पहुँचानेवाले कर्मोंको मन के परिणामोंसे बांध करके भी पश्चात्ताप के द्वारा घनघातिकर्मों

નથી કારણકે પાપનું તાત્કાલિક પ્રાયશ્ચિત્ત કરવાથી તેના અનુભાગ-બંધ વગેરેમા મંદતા આવી જાય છે જેવી રીતે નવી ચણેલી દિવાલને તાત્કાલિક ઢીલી કરવામા અને પાડવામા વિશેષ પરિશ્રમની જરૂર પડતી નથી પરંતુ તૈયાર થયા બાદ ઘણા દિવસો પછી તેને ઢીલી કરવા માટે અને પાડવા માટે ઘણોજ પરિશ્રમ કરવો પડે છે એવી રીતે દુખના કારણરૂપ થએલ પાપકર્મનું તેજ દિવસે તેજ ક્ષણે પ્રાયશ્ચિત્ત કરવામા આવે તો તે પાપકર્મનો ઉદયવિપાક આવ્યે ઉદય કે વિપાક વિશેષ પ્રમાણમા દુખદાયક બનતા નથી, પરંતુ આત્મા કર્મથી હળવો બની ઉચ્ચગતિ દેવગતિમા જાય છે મંખલીપુત્ર ગોશાલક પોતે કરેલા ઘોર પાપ કર્મોનું પ્રાય શ્ચિત્ત કરી પશ્ચાત્તાપથી પાપકર્મોના ઉદયનો નાશ કરી બારમા દેવલોકે દેવ થયા રાજર્ષિ પ્રસન્નચંદ્રે મનના દુષ્ટ પરિણામો વડે સાતમી નરકે પહોચાડનાર પાપ

वन्धेषु न्यूनत्व-शिथिलत्वसम्भवात् । यथा तत्कालविरचितभित्त्यादीनां तद्गत-सन्धिबन्धशिथिलीकरणे तत्पातने च नैव प्रयासबाहुल्यमपेक्ष्यते किन्तु काल-प्राचुर्ये सति तत्पातने तच्छिथिलीकरणे च प्रचुरपरिश्रमाऽपेक्षासम्भवस्तथैव दुःखहेतुभूतकर्मणा तद्दिवसे तत्क्षणे एव यदि पश्चात्तापः क्रियेत तर्हि नैव तानि भविष्यत्काले स्वोदयेऽपि प्रभूतदुःखप्रदानि जायेरन् प्रत्युताऽऽत्मा लघुकर्मत्वात् ऊर्ध्वगामी सञ्जायेत । यथा मखलीपुत्रो गोशालकः पश्चात्तापप्रायश्चित्तेन स्वकृत-घनकर्माणि क्षपयित्वा द्वादशे देवलोके देवत्वमवाप, एवं प्रसन्नचन्द्रराजर्षिः सप्तमनरकप्रापकाणि कर्माणि बद्ध्वाऽपि पश्चात्तापेन घनघातिकर्मविनाशनपूर्वकं

बंध आदि में न्यूनता और शिथिलता हो जाती है। जैसे तत्काल बनाई हुई दीवार को ढीली करने या गिराने में अधिक परिश्रम नहीं करना पडता, किन्तु बहुत दिनों बाद उसे ढीली करने या गिराने में बहुत परिश्रम करना पडता है। वैसे ही दुःख के कारण भूत कर्म (कार्य) का उसी दिन, उसी क्षण ही पश्चात्ताप कर लिया जाय तो उसके उदय आने पर वह अधिक दुःखदायक नहीं होता, बल्कि आत्मा लघुकर्मी होकर ऊर्ध्वगामी बनता है। मखलीपुत्र गोशालक पश्चात्ताप-प्रायश्चित्त करके, किये हुए घोर कर्मोंको पश्चात्तापसे नाश कर बारहवें देवलोक में देव हुआ। राजऋषि प्रसन्नचन्द्र सातवें नरक में पहुँचानेवाले कर्मोंको मन के परिणामोंसे बांध करके भी पश्चात्ताप के द्वारा घनघातिकर्मों

નથી કારણકે પાપનું તાત્કાલિક પ્રાયશ્ચિત્ત કરવાથી તેના અનુભાગ-બંધ વગેરેમા મંદતા આવી જાય છે જેવી રીતે નવી ચણેલી દિવાલને તાત્કાલિક ઢીલી કરવામા અને પાડવામા વિશેષ પરિશ્રમની જરૂર પડતી નથી પરંતુ તૈયાર થયા બાદ ઘણા દિવસો પછી તેને ઢીલી કરવા માટે અને પાડવા માટે ઘણોજ પરિશ્રમ કરવો પડે છે એવી રીતે દુઃખના કારણરૂપ થએલ પાપકર્મનું તેજ દિવસે તેજ ક્ષણે પ્રાયશ્ચિત્ત કરવામા આવે તો તે પાપકર્મનો ઉદયવિપાક આવ્યે ઉદય કે વિપાક વિશેષ પ્રમાણમા દુઃખદાયક બનતા નથી, પરંતુ આત્મા કર્મથી હળવો બની ઉચ્ચગતિ દેવગતિમા જાય છે મંખલીપુત્ર ગોશાલક પોતે કરેલા ઘોર પાપ કર્મોનું પ્રાય શ્ચિત્ત કરી પશ્ચાત્તાપથી પાપકર્મોના ઉદયનો નાશ કરી બારમા દેવલોકે દેવ થયા રાજર્ષિ પ્રસન્નચંદ્રે મનના દુષ્ટ પરિણામો વડે સાતમી નરકે પહોચાડનાર પાપ

सद्यः केवलाऽऽलोकमासाद्य मोक्षमगच्छत् , तत एव पापप्रायश्चित्तस्य प्राधान्ये नाऽस्य नामापि 'तिक्रमण' मिति जातम् ।

नन्वेवं प्रतिमक्रणस्य (षडावश्यकात्मकस्य) पापनिवर्त्तकत्वे प्रमाणिते प्रतिक्रमणवेत्तॄणा तन्नाशोपायज्ञातत्वात्पापाचरणप्रवृत्तिर्नि शङ्कातश्च नापि परिहार्येति चेन्मैवम्—यथा कस्यचित्पार्श्वे विषापहरणौषध वर्तते तेन किं विष भक्ष्यते ? एव वस्त्रधावनोपयोगिक्षारादिसामग्रीसद्भावेऽपि रजक. किं स्ववस्त्राणि पङ्कादिलेपेन

को नष्ट करके, केवलज्ञान पाए और मोक्ष को प्राप्त हुए। पाप के प्रायश्चित्त की प्रधानता के कारण इस शास्त्र का नाम 'प्रतिक्रमण' है ।

यदि कोई यह तर्क करने लगे कि जब छह अध्ययन रूप प्रतिक्रमण करने से ही पापों से छुटकारा मिल जाता है तो जो प्रतिक्रमण के जानने वाले है वे पापो मे प्रवृत्ति करने से क्यों झिझकेगें और क्यों पापों का त्याग करेगे ? क्योंकि उन्हें पापों से छुटकारा पाने का उपाय मालूम है, जब चाहेंगे तब प्रतिक्रमण करके उनसे छुट्टी पा लेंगे । ऐसा विचार करना भी ठीक नहीं है । क्योंकि जिसके पास विष उतारने की औषधि होती है, वह जान–बूझकर कभी विष खाता है ? क्या कपडे साफ करने के लिये साबुन क्षार आदि पदार्थ जिनके पास मौजूद होते हैं, वे लोग कभी जान बूझकर अपने कपडे कीचड मे लथेड लेते हैं? क्या कोई समझदार

કર્મો બાંધેલ હતા છતા પ્રાયશ્ચિત્ત દ્વારા તે સર્વ ઘનઘાતી કર્મોનો નાશ કરી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો પાપના પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રધાનતાના કારણે આ શાસ્ત્રનું નામ પ્રતિક્રમણ છે

જો કોઇ એવો તર્ક ઉઠાવે કે જ્યારે છ અધ્યયન રૂપ પ્રતિક્રમણ કરવાથી પાપમાથી મુક્ત થાય છે તો જેઓ પ્રતિક્રમણ જાણનારાઓ છે તેઓ પાપમય પ્રવૃત્તિ કરવાથી શા માટે પાછા હઠે ? અથવા પાપ કર્મોનો ત્યાગ શા માટે કરે ? તેઓને તો પાપમાથી મુક્તિ મેળવવાનો ઉપાય હાથમા છે, જ્યારે ઇચ્છા કરે ત્યારે પ્રતિક્રમણ કરી મુક્તિ મેળવી શકે આવો તર્ક ઉઠાવવો ઠીક નથી, કારણ કે જેની પાસે ઝેર ઉતારવાની ઓષધિ છે તેઓ જાણી બુઝીને કદી ઝેર ખાય છે ? વળી જેઓની પાસે કપડા સાફ કરવા માટે સાબુ, ક્ષાર વગેરે પદાર્થો છે તેઓ

मलिनीकरोति ? यद्वा गृहे बह्व्यः सम्मार्जन्यः सन्तीतिकृत्वा किं बहिःप्रदेशादानीय धूल्यादिकं गृहे विक्षिप्यते ? अपितु न, किन्तु यदि प्रमादादिवशादनभिज्ञतया वा विषभक्षणादि कृतं भवेत्तर्हि तत्प्रयोगेण तन्निवारणमभिमतं विपश्चितां तदेव श्रेयस्करं च, अन्यथा तादृशानुचिताऽऽचरणविख्यापितमौर्ख्यस्य निन्दा-दुःखादिभागित्वं समासादितं भवत्यतो नैवं भावनीयं जैनेन्द्रप्रवचनानुशीलनशीलैः।

तच्च प्रतिक्रमणं पञ्चधा भवति-(१) दैवसिकं, (२) रात्रिकं, (३) पाक्षिकं, (४) चातुर्मासिकं, (५) सांवत्सरिकं चेति ।

यह विचार करके कि घर में बहुतेरी समार्जनिया-(बुआरियां) पडी हैं, बाहर से कूडा कचरा इकट्ठा करके घरमें फैलाता है ? नहीं, कदापि नहीं । हाँ, प्रमाद वश या अनजान में विष का भक्षण हो जाय तो उस दवा का प्रयोग करके उसका प्रतिकार करना समझदारी है, और इसी में भलाई है । अन्यथा अपने अनुचित आचरण से मूर्खता प्रगट होगी और निन्दा तथा दुःख का पात्र बनना पडेगा । इसलिये जिनेन्द्र भगवान् के प्रवचन रूपी प्रशम पीयूष (अमृत) के पिपासुओं को ऐसी भावना मन में न लानी चाहिए ।

प्रतिक्रमण पाँच प्रकार का है–१ दिवस सम्बन्धी २–रात्रि सम्बन्धी ३–पाक्षिक (पखवाडा) सम्बन्धी ४–चातुर्मास–सम्बन्धी ५–संवत्सर–

શુ જાણી જોઈને પોતાના કપડા કાદવમા નાખી ગદા કરે છે ? ઘરમા સાફસુફી કરવા માટે ઘણી સાવરણી છે એવો ખ્યાલ કોઈ સમજદાર મનુષ્ય કરી શુ બહારથી પોતાના ઘરમા કચરો એકઠો કરશે ? નહિ, કદાપિ નહિ હા, કદાચ પ્રમાદથી અથવા અજ્ઞાન દશામા વિષ ખાવામા આવે તો તેના ઉતારનો પ્રયોગ કરીને વિષનો પ્રતિકાર કરવો, તેજ ખરી સમજ છે અને તેજ શિષ્ટ રાહ છે આ સમજનુ અનુસરણુ ન કરે તો પોતાના અયોગ્ય આચરણથી પોતાની મૂર્ખાઇ બહાર આવે છે, અને પોતાને નિંદા અને દુખનું પાત્ર બનવુ પડે છે માટેજ જીનેદ્ર ભગવાનના પ્રવચન રૂપ શાન્ત અમૃતના પાન કરનારાઓમા આવી અશિષ્ટ ભાવના આવવી ન જોઇએ, આવો કુતર્ક આવવો ન જોઇએ

પ્રતિક્રમણુ પાચ પ્રકારના છે —(૧) દિવસ–સબધી (૨) રાત્રિ–સબધી (૩) પાક્ષિક–સબધી (૪) ચાતુર્માસ–સબધી (૫) સવત્સર–સબધી દિવસ દરમ્યાન

सद्यः केवलाऽऽलोकमासाद्य मोक्षमगच्छत्, तत एव पापप्रायश्चित्तस्य प्राधान्ये नाऽस्य नामापि 'तिक्रमण' मिति जातम् ।

नन्वेवं प्रतिमक्रणस्य (षडावश्यकात्मकस्य) पापनिवर्त्तकत्वे प्रमाणिते प्रतिक्रमणवेत्तृणा तन्नाशोपायज्ञातत्वात्पापाचरणप्रवृत्तिर्न शङ्कावहा नापि परिहार्येति चेन्मैवम्—यथा कस्यचित्पार्श्वे विषापहरणौषध वर्त्तते तेन किं विष भक्ष्यते? एव वस्त्रधावनोपयोगिक्षारादिसामग्रीसद्भावेऽपि रजकः किं स्ववस्त्राणि पङ्कादिलेपेन

को नष्ट करके, केवलज्ञान पाए और मोक्ष को प्राप्त हुए। पाप के प्रायश्चित्त की प्रधानता के कारण इस शास्त्र का नाम 'प्रतिक्रमण' है।

यदि कोई यह तर्क करने लगे कि जब छह अध्ययन रूप प्रतिक्रमण करने से ही पापों से छुटकारा मिल जाता है तो जो प्रतिक्रमण के जानने वाले हैं वे पापो मे प्रवृत्ति करने से क्यो झिझकेगें और क्यों पापों का त्याग करेगे? क्योंकि उन्हें पापो से छुटकारा पाने का उपाय मालूम है, जब चाहेंगे तब प्रतिक्रमण करके उनसे छुट्टी पा लेंगे। ऐसा विचार करना भी ठीक नही है। क्योंकि जिसके पास विष उतारने की ओषधि होती है, वह जान-बूझकर कभी विष खाता है? क्या कपडे साफ करने के लिये साबुन क्षार आदि पदार्थ जिनके पास मौजूद होते हैं, वे लोग कभी जान-बूझकर अपने कपडे कीचड में लथेड लेते हैं? क्या कोई समझदार

કર્મો બાંધેલ હતા છતા પ્રાયશ્ચિત્ત દ્વારા તે સર્વ ઘનઘાતી કર્મોનો નાશ કરી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો પાપના પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રધાનતાના કારણે આ શાસ્ત્રનું નામ પ્રતિક્રમણ છે

જો કોઇ એવો તર્ક ઉઠાવે કે જ્યારે છ અધ્યયન રૂપ પ્રતિક્રમણ કરવાથી પાપમાથી મુક્ત થાય છે તો જેઓ પ્રતિક્રમણ જાણનારાઓ છે તેઓ પાપમય પ્રવૃત્તિ કરવાથી શા માટે પાછા હઠે? અથવા પાપ કર્મોનો ત્યાગ શા માટે કરે? તેઓને તો પાપમાથી મુક્તિ મેળવવાનો ઉપાય હાથમા છે, જ્યારે ઇચ્છા કરે ત્યારે પ્રતિક્રમણ કરી મુક્તિ મેળવી શકે આવો તર્ક ઉઠાવવો ઠીક નથી, કારણ કે જેની પાસે ઝેર ઉતારવાની ઓષધિ છે તેઓ જાણી બુઝીને કદી ઝેર ખાય છે? વળી જેઓની પાસે કપડા સાફ કરવા માટે સાબુ, ક્ષાર વગેરે પદાર્થો છે તેઓ

सम्पादनेऽपि सर्वे पर्वमहोत्सवादितिथिषु खण्डखाद्यघृतपूरा-ऽपूप लपनश्रीप्रभृतीन् विशिष्टान् भोज्यपदार्थसंभारान् सम्पादयन्ति । यथा वा लोके लोका अनुदिनं भवनं समार्जयन्तोऽपि दीपावल्यादिपर्वसु तत इतः कोणकादिगताऽज्ञातसकलावकरसमार्जनेन सविशेषं गृहगतकचवरादिशुद्धिं विदधतीति सुप्रसिद्धमेव, उक्तश्चात्र

"जह गेहं पइदिवसं पि सोहियं, तहवि पक्खसंधीसु ।
सोहिज्जइ सविसेसं, एवं इह यावि नायव्वं ॥ १ ॥"

घेवर, मालपूआ, लपसी आदि विशिष्ट पक्वान तैयार किये जाते हैं, अथवा जैसे लोग प्रतिदिन मकान की सफाई करते हैं तो भी दीपावली आदि त्योहारों पर अच्छी तरह कोने-आतर तक झाड बुहार कर सफाई करते हैं, वैसे ही दैवसिक और रात्रिक प्रतिक्रमण कर लेने पर भी अनाभोग (अनजाने) लज्जा मन्दपरिणाम आदि कारणोंसे या अज्ञान के कारण यदि पूरी शुद्धि न हो तो पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणों में, लगे हुए उन-उन अतिचार-अनाचार का स्मरण करने से विरक्ति (हिंसा आदि के त्याग) की अधिक भावना होती है और भलीभाँति पाप की शुद्धि हो जाती है। कहा भी है—

"जह गेहं पइदिवसं पि सोहियं, तहवि पक्खसंधीसु ।
सोहिज्जइ सविसेसं, एवं इह यावि नायव्वं ॥ १ ॥"

બનાવવામા આવે છે તેમ છતા પણ તહેવાર અને ઉત્સવના દિવસે ખીર, માલપુવા, લાપસી, મીઠાઈ વગેરે પકવાન તૈયાર કરવામા આવે છે, અને જેવી રીતે મનુષ્યો હમેશા પોતાના મકાનની સફાઇ રાખે છે તો પણ દિવાળી વગેરે તહેવારો ઉપર વિશેષ પ્રકારે ખૂણે ખાચેથી પણ સાફસુફી કરે છે, એવીજ રીતે દૈવસિક અને રાત્રિક પ્રતિક્રમણ કરી લેતા અજાણ પણે, શરમથી મદ પરિણામ આદિ કારણોથી અથવા અજ્ઞાનથી જો પાપોની પૂર્ણ શુદ્ધિ ન હોય તો પાક્ષિક વગેરે પ્રતિક્રમણોમા ભૂતકાળમા લાગેલા અતિચાર અનાચાર (પાપો) ના સ્મરણ કરવાથી હિંસા વગેરેના ત્યાગની અધિક ભાવના જાગૃત થાય છે, અને સપૂર્ણ પણે રૂડી રીતે પાપની શુદ્ધિ થાય છે કહયુ પણ છે–

"जह गेहं पइदिवसंपि सोहियं, तहवि पक्खसंधीसु
सोहिज्जइ सविसेसं, एवं इह यावि नायव्वं ॥ १ ॥

तत्र दिवससंजातपापस्य दैवसिकेन, रात्रिसंजातपापस्य रात्रिकेण, एवं पक्ष चतुर्मास संवत्सरसंजातपापस्य क्रमात् पाक्षिकेण चातुर्मासिकेन सांवत्सरिकेण प्रतिक्रमणेन शुद्धिर्विधातव्या भव्यभावनशीलैः ।

ननु प्रतिक्रमणस्य दैवसिक-रात्रिकोभयभेदेनैव सर्वपापप्रक्षयद्वारा शुद्धिसंभवः, प्रतिदिवससंजातपापस्य दिनान्ते दैवसिकेन, रात्रिकृतस्य च रात्र्यन्ते रात्रिकेण प्रतिक्रमणेन शुद्धिसंभवात्, किं पुनः पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिक-प्रतिक्रमणैः प्रयोजनम् ? इति चेदत्रोच्यते-लोके यथोभयकाल प्रतिदिवसमशनादि-

सम्बन्धी। दिन में लगे पापों की दैवसिक से, रात्रिमे लगे हुए पापों की रात्रिक से, इसी प्रकार पक्ष, चतुर्मास और सम्वत्सर (वर्ष) में लगे हुए पापो की शुद्धि क्रमशः पाक्षिक चातुर्मासिक और सावत्सरिक प्रतिक्रमण से भव्य जीवों को करनी चाहिए।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि प्रतिक्रमण के दैवसिक और रात्रिक भेद ही ठीक हैं। इन्हींके द्वारा समस्त पापों से छुटकारा पाया जा सकता है। दिनमें जो पाप लगेंगे उनकी दिन के अन्तमें किये जाने वाले दैवसिक प्रतिक्रमण से और रात्रि मे लगे हुए पापों की रात्रिके अन्त मे किये जानेवाले रात्रिक प्रतिक्रमण से शुद्धि हो जाएगी। फिर पाक्षिक, चातुर्मासिक और सावत्सरिक प्रतिक्रमणों की क्या आवश्यकता है ? इसका समाधान यह है-कि जैसे लोकव्यवहार मे प्रतिदिन दो बार भोजन बनाया जाता है, फिर भी त्योहार और उत्सव के समय खीर,

थयेला पापोनुं दैवसिकथी, रात्रिमा थयेला पापोनुं रात्रिकथी, आ प्रमाणे पख वाडिया, चातुर्मास अने सवत्सर दरम्यान थयेला पापोनी शुद्धि अनुक्रमे पाक्षिक चातुर्मासिक अने सावत्सरिक प्रतिक्रमणथी भव्य जीवोए करवी जोईए

અહીં એક એવો પ્રશ્ન ઉઠે છે કે પ્રતિક્રમણના દૈવસિક અને રાત્રિક ભેદ યોગ્ય છે અને એનાથીજ સમસ્ત પાપોથી મુક્ત થઈ શકે છે દિવસ દરમ્યાન જે પાપ થય તેની શુદ્ધિ દિવસને અતે દૈવસિક પ્રતિક્રમણથી અને રાત્રિ દરમ્યાન થયેલા પાપોની શુદ્ધિ રાત્રિને અતે રાત્રિક પ્રતિક્રમણથી થાય છે, તો પછી પાક્ષિક ચાતુર્માસિક અને સાવત્સરિક પ્રતિક્રમણો કરવાની શી જરૂર છે ?

આ તર્કનું સમાધાન એ છે કે જેવી રીતે લોક વહેવારમા બે વાર ભોજન

कृतातीचारविस्मरणादिदोषबाहुल्यप्रसङ्गः, ततः दैवसिकादिप्रतिक्रमणमवश्यमेवानुष्ठेयम्। अन्यदपि श्रूयताम्—

यथा कोऽपि मृदुलपल्लवितकलम्बः प्रचण्डमार्तण्डाऽऽतपेन म्लानो न केवलमेकवारसलिलसिञ्चनेन किन्त्वनेकशः सलिलसेकेन पूर्वावस्थामाप्नोति तथैवाऽत्राऽपि बोध्यम्। अन्यच्च—

पूर्वं तु आत्मसयमे तीव्रोपयोगस्याऽखण्डपरिणत्याऽविचलावस्थया पापलेपोऽसभाव्यः, यदि प्रमादादिना पापसपर्कस्तदा तत्क्षण एव पश्चात्तापादिना तस्य

पाप की विशुद्धि के लिए दैवसिकादि प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए। फिरभी उदाहरण यह है।

जैसे लहलहाता हुआ पौधा धूपसे मुरझा जाय तो एक वार जल सींचने से ही हराभरा नही हो सकता! वारम्वार जल सींचने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार व्रतरूपी पौधा अतिचाररूपी धूपसे मुरझा गया तो उसे पूर्वावस्थामें वारम्वार प्रतिक्रमणरूप जलसिञ्चन की आवश्यकता है अत एव दैवसिक रात्रिक आदि सभी प्रतिक्रमण करने योग्य हैं। अथवा–

प्रथम तो चाहिए कि तीव्र उपयोग की अखड परिणति और अविचल अवस्था द्वारा पापका लेप भी न लगने दें। यदि प्रमादा-

---

અનેક દોષોનો પ્રસગ આવે છે એ કારણથી ઉપર કહેવામા આવેલા પાપની વિશુદ્ધિને માટે દૈવસિકાદિ પ્રતિક્રમણ અવશ્ય કરવુ જોઇએ ફરી પણ સાભળો!

જેવી રીતે લીલાછમ રહેલા છોડવાઓ (વૃક્ષના છોડવા) તાપથી તદ્દન સૂકાઇ જાય તો એક વખત પાણી સીચન કરવાથી તે લીલાછમ જેવા થઈ શકતા નથી, પરન્તુ તે છોડવાઓને વારવાર પાણીનું સીચન કરવાની આવશ્યકતા રહે છે એ પ્રમાણે વ્રતરૂપી છોડ અતિચાર રૂપી તાપથી તદ્દન સૂકાઇ ગયા તો તેને પૂર્વે જે સ્થિતિમા હતા તેવી સ્થિતિમા લાવવા માટે વારવાર પ્રતિક્રમણ રૂપ પાણીનું સિંચન કરવાની આવશ્યકતા છે એટલા માટે દૈવસિક રાત્રિક આદિ સર્વ પ્રતિક્રમણ કરવા યોગ્ય છે અથવા—

પ્રથમ તો ઇચ્છીએ કે તીવ્ર ઉપયોગની અખડ પરિણતિ અને અવિચલ અવસ્થા દ્વારા પાપનો લેપ પણ લાગવાજ નહિ દેવો જોઇએ પરન્તુ જો કે

तथैव प्रतिवासर दैवसिकरात्रिकप्रतिक्रमणमुभयकालमावश्यककरणे ऽपि अनाभोगलज्जामन्दपरिणामादिकारणवशेनाऽनभिज्ञतया वा यदि सम्यक्शुद्धिर्न जायेत तदा तेन पाक्षिकादिषु तत्तदतिचारस्मरणेन समधिकवैराग्यभावनापुरस्सरा पापशुद्धिः समीचीना भवति, ततः पाक्षिकादिप्रतिक्रमणमपि करणीयमेवेति सिद्धम्।

अस्तु तावत्, किन्तु सावत्सरिकप्रतिक्रमण यत्र कर्त्तव्यत्वेन विहित तत्र किमन्यैर्दैवसिकादिभिः प्रयोजनम्? सवत्सरसञ्जातपापव्राताना सवत्सरान्ते सावत्सरिकप्रतिक्रमणेन क्षय स्यादेवेति चेत्, उच्यते–दैवसिकादिप्रतिक्रमण विधानेन सद्यः–सलग्नमलमलिनसद्योधौतवस्त्रवत्सद्यःकृतपापपरिशुद्धिः सद्य एव सजायते, तेन च चारित्रशुद्धिर्विशिष्टतरा भवति, कालातिक्रमे सति प्रतिक्रमणेन

अतः पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण भी अवश्य करना चाहिये।

प्रश्न–जब सावत्सरिक प्रतिक्रमण करने का विधान कर दिया तो दैवसिक आदि प्रतिक्रमण की क्या आवश्यकता है? वर्ष भरमें जो पाप लगेंगे उनका वर्षके अन्तमे सावत्सरिकप्रतिक्रमणसे क्षय हो ही जायगा।

उत्तर—यह है कि जिस प्रकार कपडे पर लगे हुए दाग को तत्काल धोनेसे वह साफ हो जाता है उसी प्रकार दैवसिकादि प्रतिक्रमण करनेसे लगे हुए पापकी तत्काल परिशुद्धि हो जाती है, जिससे चारित्रशुद्धि अत्यन्त विशिष्ट होती है। समय के बीत जाने पर जो प्रतिक्रमण किया जाय तो लगे हुए दोषो का विस्मरण हो जाना आदि अनेक दोषों का प्रसग आता है, अत. ऊपर की ऊपर

માટે પાક્ષિક વગેરે પ્રતિક્રમણો અવશ્ય કરવા જોઇએ

પ્રશ્ન – જ્યારે સાવત્સરિક પ્રતિક્રમણ કરવાનો નિર્દેશ કરવામા આવ્યો છે તો પછી દેવસિક, રાત્રિક પ્રતિક્રમણ કરવાની શી જરૂર છે? વર્ષ દરમ્યાન જે પાપો થાય તેનું નિવારણ વર્ષને અતે સાવત્સરિક પ્રતિક્રમણ કરવાથી થઈ જાય છે

ઉત્તર—એ છે કે–જેવી રીતે કપડા ઉપર લાગેલા ડાઘને તત્કાલ ધોઇ નાખવાથી તે કપડુ સાફ થઈ જાય છે તે પ્રમાણે દૈવસિકાદિ પ્રતિક્રમણ કરવાથી જે કોઈ પાપ લાગેલા હોય તેની તત્કાલ શુદ્ધિ થઇ જાય છે જેના વડે ચારિત્ર શુદ્ધિ અત્ય ત વિશુદ્ધ થઇ જાય છે સમય વીતી ગયા પછી જો પ્રતિક્રમણુ કર વામા આવે તો જે કાઇ દોષો લાગેલા હેય તેનું વિસ્મરણ (ભૂલી જવુ) થવુ આદિ

मुकदिवसे एतावदेतावद्द्रव्य दास्यामी"ति तेनाऽस्माद्ऋणदानदिवसात्पर पञ्चमे मासि सकुसीदसकलद्रव्यशोधन भविष्यतीति, तत्राऽधमर्णस्य नाय भावस्तिष्ठति यदन्तिमसमये पूर्णे सत्येव मया सर्वं प्रदेयमिति किन्तु यथाऽवसर शीघ्रमेव ऋणविशोधनाया मया प्रयासः कर्त्तव्य इति, अतो यदि नियमितसमयात्प्रागेव ऋण विशोध्येत तदाऽधमर्णस्य महती शोभा सजायते। प्रथमे नियतसमये ऋण-विशोधने साधारणी शोभा, द्वितीये मध्यमा, तृतीये किञ्चिदूना, चतुर्थे न्यूना, एव पूर्णे पञ्चमे मासि तु सकुसीद सर्व द्रव्यमवश्यमेव देय येन व्यवहारो न त्रुट्येत। किन्तु पूर्णे ऽप्यवधौ यद्यधमर्णः साकल्येन ऋण न परिशोधयेत् तदाऽवश्य व्यव-

---

किस्तबन्दी कर दी कि– "मैं इतने इतने दिनोंमें इतना इतना ऋण चुका कर इतने दिनोंमें ऊरिन हो जाऊँगा।" ऐसी दशामें किसी भले कर्जदार का यह भाव नहीं होता कि जब किस्तबन्दी का समय पूरा होगा तबही हम सब चुका देंगे, किन्तु जितना जल्दी हो सकता है पहली बार ही ऋण चुका देना चाहेगा, तो तदनुसार यदि नियमित किस्त के समयसे पहले ही ऋण पूरा चुका दे तो उसकी ससार में शोभा होती है। अगर दूसरी किस्त पर सब ऋण चुका दे तो कुछ कम शोभा होती है, एव तीसरी किस्तपर चुकावे तो उससे कम, चोथीवारमें उससे भी कम शोभा होती है। आखिर पाचवी वार चुकाना तो उसको बिलकुल लाजिमी है। यदि इस समयभी न चुकावेगा तो साख शोभामें हानि और

હપ્તાની મૂદત બાંધી દીધી કે – "હું અમુક દિવસોમા અમુક–અમુક ચુકાવીને આટલા દિવસોમા મુકત થઇ જઇશ" આવી સ્થિતિમા કોઈ પણ સમજદાર દેણદારની એવી ભાવના થતી નથી કે જ્યારે મૂદત બધીનો સમય પૂરો થશે ત્યારેજ હું સર્વ પ્રકારનું કરજ ચૂકાવી આપીશ ? પરતુ જેટલુ વહેલુ કરજ ચૂકાવી શકાય તેટલી ઉતાવળથી કરજ ચૂકવવા બનતુ કરશે તો સસારમા તેની શોભા દેખાશે અથવા તો બીજી મુદ્દત ઉપર તમામ કરજ ચૂકાવી આપશે તો પ્રથમ કરતા શોભા થોડી ઓછી દેખાશે ત્રીજી મૂદત ઉપર ચૂકવશે તો બીજી કરતા પણ શોભા ઓછી, ચોથી મૂદત પર ચૂકવશે તો તેથી પણ ઓછી શોભા દેખાશે છેવટે પાચમી મૂદત પર કરજ ચૂકાવવુ તે તો કરજદાર માટે એકદમ અયોગ્ય છે તો પણ જો તે

नाशो विधेयः। तत्क्षण एव पश्चात्तापाभावे दिवसान्ते रात्र्यन्ते पक्षान्ते चतुर्मासान्ते च क्रमेण प्रतिक्रमणेन पापक्षयो विधातव्यः। यदि च प्रगाढप्रमादादिवशात् पूर्वोक्तसमयेषु पश्चात्तापादि समाचरितं न भवेत् तदा संवत्सरान्ते त्ववश्यमेव शुद्धान्तःकरणेन संवत्सरसमुद्भूतपापानि स्मारं स्मारं प्रतिक्रमणमवश्यमाचरणीयम्, अन्यथा पापाना वज्रलेपायितत्वमेवाऽऽपद्येत। अत्र दृष्टान्तः—

यथा केनचिन्नरेण ऋणविशोधनसमयो नियतीकृतो यथा–"अहं ममुका-

दिवश पापका सपर्क हो जाय तो उसी क्षण पश्चात्तापादि द्वारा उसका नाश कर देना चाहिये। अगर उस वक्त पश्चात्तापादि न हो सका तो दिन, रात्रि, पक्ष, एव चतुर्मास के अन्तमें अनुक्रम से प्रतिक्रमण द्वारा पाप का क्षय कर देना जरूरी है, यदि प्रगाढ प्रमाद आदिके कारण पूर्वोक्त समय चूक गया हो अर्थात् पूर्वनिर्दिष्ट समयमे अतिचार शोधन नही किया गया हो तो सवत्सर (वर्ष) के अन्तमे तो मनुष्यको शुद्धअन्तःकरण हो कर वर्षभर के लगे हुए पापों को याद कर-कर के प्रतिक्रमण अवश्य करनाही चाहिये। ऐसा न किया जाय तो लगे हुए पाप वज्रलेप जैसे हो जावेंगे, अर्थात् पाप से अपने को छुडाना मुश्किल पडेगा। इस पर दृष्टान्त कहते हैं–

जैसे किसी मनुष्यने ऋण चुकाने के लिए पाच बार की

પ્રમાદ આદિ દોષોના વશ થવાથી પાપનો સપર્ક થઈ જાય તો તેજ સમયે પશ્ચાત્તાપાદિ દ્વારા તેનો નાશ કરી દેવો જોઈએ અથવા તો તે સમયે પશ્ચાત્તાપાદિ ન કરી શકાય તો દિવસ, રાત્રિ, પક્ષ, એ પ્રમાણે ચતુર્માસના અન્તમા અનુક્રમથી પ્રતિક્રમણ દ્વારા પાપનો નાશ કરી દેવો જોઈએ, એ જરૂરી વસ્તુ છે

જો વિશેષ, બલવાન પ્રમાદ આદિના કારણે આગળ જે સમય કહ્યો છે તે ભૂલી જવાય તો, અર્થાત્ આગળ કહેલા સમયે પ્રતિક્રમણની ક્રિયા નહિ બની શકે તો સવત્સર (વર્ષ)ના અતમા મનુષ્યોએ શુદ્ધ અતકરણ થઈને એક વર્ષ સુધીમા જે પાપ લાગેલા હોય તેને યાદ કરીને પ્રતિક્રમણ અવશ્ય કરવુજ જોઈએ એ પ્રમાણે કરવામા ન આવે તો લાગેલા પાપ વજ્રલેપ જેવા થઈ જશે, અર્થાત્-પાપથી પોતાને બચવાનું મુશ્કેલ થઈ પડશે તે માટે દૃષ્ટાત કહે છે કે—

માની લ્યોકે —કોઈ મનુષ્યને ઋણ-(દેણુ–કરજ)ચૂકાવવા માટે પાચ

मुकदिवसे एतावदेतावद्द्रव्य दास्यामी"ति तेनाऽस्माद्‌ऋणदानदिवसात्पर पञ्चमे मासि सकुसीदसकलद्रव्यशोधन भविष्यतीति, तत्राऽधमर्णस्य नाय भावस्तिष्ठति यदन्तिमसमये पूर्णे सत्येव मया सर्वं प्रदेयमिति किन्तु यथाऽवसर शीघ्रमेव ऋणविशोधनाया मया प्रयासः कर्त्तव्य इति, अतो यदि नियमितसमयात्प्रागेव ऋण विशोध्येत तदाऽधमर्णस्य महती शोभा सजायते। प्रथमे नियतसमये ऋण-विशोधने साधारणी शोभा, द्वितीये मध्यमा, तृतीये किञ्चिदूना, चतुर्थे न्यूना, एव पूर्णे पञ्चमे मासि तु सकुसीद सर्वं द्रव्यमवश्यमेव देय येन व्यवहारो न त्रुट्येत। किन्तु पूर्णे ऽप्यवधौ यद्यधमर्णः साकल्येन ऋण न परिशोधयेत् तदाऽवश्य व्यव-

---

किस्तबन्दी कर दी कि– "मै इतने इतने दिनोंमें इतना इतना ऋण चुका कर इतने दिनोंमे उरिन हो जाऊँगा।" ऐसी दशामें किसी भले कर्जदार का यह भाव नहीं होता कि जब किस्तबन्दी का समय पूरा होगा तबही हम सब चुका देंगे, किन्तु जितना जल्दी हो सकता है पहली वार ही ऋण चुका देना चाहेगा, तो तदनुसार यदि नियमित किस्त के समयसे पहले ही ऋण पूरा चुका दे तो उसकी ससार मे शोभा होती है। अगर दूसरी किस्त पर सब ऋण चुका दे तो कुछ कम शोभा होती है, एव तीसरी किस्तपर चुकावे तो उससे कम, चोथीवारमें उससे भी कम शोभा होती है। आखिर पाचवी वार चुकाना तो उसको बिलकुल लाजिमी है। यदि इस समयभी न चुकावेगा तो साख शोभामें हानि और

હપ્તાની મૂદ્દત બાંધી દીધી છે – "હુ અમુક દિવસોમા અમુક–અમુક ચુકાવીને આટલા દિવસોમા મુકત થઇ જઈશ" આવી સ્થિતિમા કોઈ પણ સમજદાર દેણદારની એવી ભાવના થતી નથી કે જ્યારે મૂદ્દત બન્નીનો સમય પૂરો થશે ત્યારેજ હુ સર્વ પ્રકારનું કરજ ચૂકાવી આપીશ ? પરતુ જેટલુ વહેલુ કરજ ચૂકાવી શકાય તેટલી ઉતાવળથી કરજ ચૂકવવા બનતુ કરશે તો સસારમા તેની શોભા દેખાશે અથવા તો બીજી મુદ્દત ઉપર તમામ કરજ ચૂકાવી આપશે તો પ્રથમ કરતા શોભા થોડી ઓછી દેખાશે ત્રીજી મૂદ્દત ઉપર ચૂકવશે તો બીજી કન્તા પણ શોભા ઓછી, ચોથી મૂદ્દત પર ચૂકવશે તો તેથી પણ ઓછી શોભા દેખાશે છેવટે પાચમી મૂદ્દત પર કરજ ચૂકાવવુ તે તો કરજદાર માટે એકદમ અયોગ્ય છે તો પણ જો તે

हारस्त्रुट्येत प्रतिष्ठाहानिश्च जायेत, राजद्वारे सातिशय दण्डनीयश्च भवेत्। एव प्रतिक्रमणविषयेऽपि वोद्धव्यम्।

ननु इयमावश्यकक्रिया श्रावकश्राविकाणा सर्वेषामेव करणीयेति तु युक्तम् गृहस्थत्वेन तेषा पापसभवात्, जिनेन्द्रशासनप्रतिपालकाना साधूना तु सर्वसावद्ययोगनिवृत्त्यभ्युपगमेन मनोवाक्कायप्रवृत्तयो विशुद्धा एव भवन्ति कथ पुनस्तेषा पापसभवो येन दैवसिकादिप्रतिक्रमणैस्तेषामपि तच्छुद्धिः कर्त्तव्या भवेत्? इति चेदत्रोच्यते—

यथा तालकनियन्त्रितकपाटावरुद्धगृहेऽपि येन केनचित्मकारेण रजः-

लोकनिन्दा होगी, तथा न्यायालयमे दण्ड पावेगा। यही वात प्रतिक्रमण के विषयमें समझना चाहिए।

प्रश्न यह है कि आवश्यक क्रिया सब श्रावक श्राविकाओ को तो करनी चाहिये, क्योंकि वे गृहस्थ है और गृहस्थ होने से पाप लगने की सभावना है, किन्तु जिनेन्द्र भगवान के शासन का पालन करने वाले साधु और साध्वी तो सावद्य के सर्वथा त्यागी होते हैं, उनके मन वचन और काय की प्रवृत्ति विशुद्ध ही होती है, इन्हें पाप कैसे लग सकता है कि जिसके कारण दैवसिक आदि प्रतिक्रमण करके उन्हें भी पाप की शुद्धि करना आवश्यक हो?।

इसका समाधान यह है कि जैसे बिलकुल बन्द मकान में

સમયે પણ કરજ ચૂકાવી નહિ શકે તો પ્રતિષ્ઠાની હાનિ સાથે લોકનિન્દા થશે તેમજ ન્યાયની અદાલતમા દડ થશે, એજ પ્રમાણે પ્રતિક્રમણના વિષયમા સમજવુ જોઇએ

આ આવશ્યક ક્રિયા સર્વ શ્રાવક શ્રાવિકાઓએ તો કરવીજ જોઇએ કારણ કે તે ગૃહસ્થ છે, અને ગૃહસ્થ હોવાથી પાપ લાગવાનો સભવ છે, પરન્તુ જિનેન્દ્ર ભગવાનના શાસનનુ પાલન કરનારા સાધુ અને સાધ્વી તો સાવદ્યના સર્વથા ત્યાગી હોય છે, તેમના મન, વચન અને કાયાની પ્રવૃત્તિ વિશુદ્ધજ હોય તો તેમને પાપ કેવી રીતે લાગી શકે છે? કે જે કારણથી દૈવસિક આદિ પ્રતિક્રમણ કરીને તેમણે પણ પાપની વિશુદ્ધિ કરવી જરૂરી હોય?

તેનુ સમાધાન એ છે કે —જે પ્રમાણે એકદમ બધ કરેલા મકાનમા પણ

प्रवेशो जायत एव तथैवैतेषां सम्प्रति यथाख्यातचारित्रासम्भवात् साधूनामपि प्रमादसम्भवाच्च सूक्ष्मबादरातिचारसम्भव एव, एतदेवाऽभिप्रेत्य- 'प्रथमान्तिमजिन-साधूनामुभयकाले प्रतिक्रमणमवश्यमेव कर्त्तव्यमिति भगवताऽऽज्ञप्तम्, तथा चोक्तम्-

" सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
मज्झिमयाण जिणाण, कारणजाए पडिक्कमण ॥१॥" इति ।

(आव नि.)

अपि च अतिचारसम्भवाभावेऽपि प्रतिक्रमणकरणेन तज्जनिताऽऽत्मशुद्धेः प्राबल्यं त्ववश्यं सम्भवति तृतीयवैद्यौषधिवत्, यथा—

भी किसी न किसी प्रकार धूल घुस ही जाती है वैसे ही साधुओं के पूर्ण यथाख्यात चारित्र न हो सकने से और प्रमाद का अस्तित्व होने से सूक्ष्म या स्थूल अतिचार लग ही जाते हैं। इसी लिए जिनेश्वर भगवान की आज्ञा है कि—प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के साधुओं को उभयकाल प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए ।

कहा भी है—

सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
मज्झिमयाण जिणाण, कारणजाए पडिक्कमण ॥१॥

(आ. नि)

दूसरी बात यह है कि अतिचार न लगने पर भी प्रतिक्रमण करने से तज्जन्य आत्मशुद्धि की प्रबलता अवश्य होती है। तीसरे वैद्य की

કોઈને કોઈ પ્રકારે ધૂળ ઘુસી જાય છે તેવીજ રીતે સાધુઓને પૂર્ણ રીતે યથાખ્યાત ચારિત્ર નહિ હોઈ શકવાથી અને પ્રમાદનું અસ્તિત્વ હોવાથી સૂક્ષ્મ અથવા સ્થૂલ અતિચાર લાગીજ જાય છે એટલા માટે જિનેશ્વર ભગવાનની આજ્ઞા છે કે પ્રથમ અને અન્તિમ તીર્થંકરોના સાધુઓએ બન્ને સમય પ્રતિક્રમણ અવશ્ય કરવું જોઈએ—

કહ્યુ છે કે—

सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
मज्झिमयाण जिणाण, कारणजाए पडिक्कमण ॥ १ ॥ (आ. नि)

બીજી વાત એ છે કે—અતિચાર નહિ લાગે તો પણ પ્રતિક્રમણ કરવાથી

हारस्त्रुट्येत प्रतिष्ठाहानिश्च जायेत, राजद्वारे सातिशय दण्डनीयश्च भवेत्। एव प्रतिक्रमणविषयेऽपि बोद्धव्यम्।

ननु इयमावश्यकक्रिया श्रावकश्राविकाणा सर्वेषामेव करणीयेति तु युक्तम् गृहस्थत्वेन तेषा पापसंभवात्, जिनेन्द्रशासनप्रतिपालकाना साधूना तु सर्वसावद्ययोगनिवृत्त्यभ्युपगमेन मनोवाकायप्रवृत्तयो विशुद्धा एव भवन्ति कथ पुनस्तेषा पापसभवो येन दैवसिकादिप्रतिक्रमणैस्तेषामपि तच्छुद्धिः कर्तव्या भवेत्? इति चेदत्रोच्यते—

यथा तालकनियन्त्रितकपाटावरुद्धगृहेऽपि येन केनचित्प्रकारेण रजः-

---

लोकनिन्दा होगी, तथा न्यायालयमे दण्ड पावेगा। यही बात प्रतिक्रमण के विषयमे समझना चाहिए।

प्रश्न यह है कि आवश्यक क्रिया सब श्रावक श्राविकाओ को तो करनी चाहिये, क्योंकि वे गृहस्थ हैं और गृहस्थ होने से पाप लगने की सभावना है, किन्तु जिनेन्द्र भगवान के शासन का पालन करने वाले साधु और साध्वी तो सावद्य के सर्वथा त्यागी होते हैं, उनके मन वचन और काय की प्रवृत्ति विशुद्ध ही होती है, इन्हें पाप कैसे लग सकता है कि जिसके कारण दैवसिक आदि प्रतिक्रमण करके उन्हें भी पाप की शुद्धि करना आवश्यक हो?।

इसका समाधान यह है कि जैसे बिलकुल बन्द मकान मे

समये पणु करज चूकावी नहि शके तो प्रतिष्ठानी हानि साथे लोकनिन्दा थशे तेमज न्यायनी अदालतमा दड थशे, એજ પ્રમાણે પ્રતિક્રમણના વિષયમા સમજવુ જોઈએ

આ આવશ્યક ક્રિયા સર્વ શ્રાવક શ્રાવિકાઓએ તો કરવીજ જોઈએ કારણ કે તે ગૃહસ્થ છે, અને ગૃહસ્થ હોવાથી પાપ લાગવાનો સભવ છે, પરન્તુ જિનેન્દ્ર ભગવાનના શાસનનુ પાલન કરનારા સાધુ અને સાધ્વી તો સાવદ્યના સર્વથા ત્યાગી હોય છે, તેમના મન, વચન અને કાયાની પ્રવૃત્તિ વિશુદ્ધજ હોય છે તેમને પાપ કેવી રીતે લાગી શકે છે? કે જે કારણથી દૈવસિક આદિ પ્રતિક્રમણ કરીને તેમણે પણ પાપની વિશુદ્ધિ કરવી જરૂરી હોય?

તેનું સમાધાન એ છે કે —જે પ્રમાણે એકદમ બધ કરેલા મકાનમા પણ

नाशयति, रोगाभावेऽपि सेवित सदाऽऽगन्तुकाऽऽतङ्कान् निवारयति शरीरकान्ति सम्वर्द्धयति, रसायनस्यास्याऽपराप्यद्भुतचमत्कारजननी शक्तिर्विद्यते यदस्य सेवने पुना रोगशङ्काऽपि न सम्भवतीति"। राजा च तत्सर्वं निशम्य तृतीयवैद्योपदिष्ट-मेवौषध तनयाय प्रादापयत्। एव साधुभिरप्यात्मनीनमेतादृश क्रियौषध सेवनीय येन तद्गतकर्मरोगसक्षयपूर्वकमागन्तुम्कर्मरोगावरोधपुरस्सरमात्मशुद्धिः सजायते। अनेन दैवसिकादिकमपि प्रतिक्रमण साधूनामप्यवश्यमासेव्यम्, पापसद्भावे तत्क्षयस्य तदभावे चाऽऽत्मिकविशुद्धेरवश्यम्भावात्।

और अद्भुत है। ऐसी दवा और कहीं नहीं मिल सकती। यह शारीरिक रोगोंको जडसे नष्ट कर देती है और रोग न होने पर आगे आने वाले रोगोंको रोकती है, तथा शरीर की कान्ति बढाती है। इसमे एक और चमत्कार यह है कि इसका सेवन कर लिया तो भविष्यमें आने वाले रोगों की आशका ही नही रहती।" राजाने यह सब सुनकर तीसरे वैद्य की रसायन ही अपने लडके को दिलवाई।

साधुओंको भी ऐसी क्रिया रूपी औषध का सेवन करना चाहिये कि जिससे लगे हुए कर्मोंका नाश और आगामी कर्मोंका निरोध हो कर आत्मशुद्धि हो। अतएव साधुओंको दैवसिक आदि प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इससे पाप लगने पर उसका नाश होता है और पाप न भी लगा हो तो आत्मशुद्धि अवश्य होती है।

રસાયણુ બીજે કોઇ સ્થળે મળી શકતુ નથી આ રસાયણુ શારીરિક રોગોને જડ-મૂળથી નષ્ટ કરી શકે છે અને રોગ ન હોય અને તે રસાયણુનો ઉપયોગ કરવામા આવે તો બીજા રોગોને થતા અટકાવે છે તથા શરીરની કાન્તિ વધારે છે, અને તેમા એક બીજો ચમત્કાર એ છે કે-તેનું સેવન કરવામા આવે તો ભવિષ્યમા રોગ થવાની શકાજ રહેતી નથી રાજાએ આ સર્વ વાત સાભળી ત્રીજા વૈદ્યની દવા (રસાયણુ) જ પોતાના પુત્રને અપાવી

સાધુઓએ પણુ એવી ક્રિયારૂપી ઔષધીનું સેવન કરવુ જોઇએ કે જેનાથી લાગેલા કર્મોનો નાશ થાય અને આગામી કર્મોનો નિરોધ (અટકાવ) થઇને આત્મશુદ્ધિ થાય એટલા કારણુથી સાધુઓએ દૈવસિક આદિ પ્રતિક્રમણુ અવશ્ય કરવુ જોઇએ, કારણુકે પાપ લાગે તો પણુ તેનો નાશ થઇ જાય છે અને પાપ નહિ લાગ્યા હોય તો આત્મશુદ્ધિ અવશ્ય થાય છે

कश्चिन्नरपतिर्वैद्यान् आहूय प्रोक्तवान्– "यद् भवद्भिस्तथा विधीयतां यथा मम प्राणप्रियस्याद्वितीयस्य तनयस्य शरीरे आयत्यां रोगस्पर्शोऽपि न सम्भवेत्" इत्याकर्ण्य तन्मध्यादेको वैद्यः समभ्यधात्– "मत्पार्श्वे एवंविधं रसायनं विद्यते यद् रोगसद्भावे सेवितं सत् तत्क्षणमेव तं नाशयति, रोगाभावे तत्सेवनं तु नूतनरोगोत्पत्तये जायते" इति। द्वितीयेनोक्तम्–"मदौषधं रोगसद्भावे तं विनाशयति, रोगाभावे तत्सेवने तु न कश्चिद्गुणं दोषं वा प्रदर्शयति"। तदनन्तरं तृतीयो वैद्यः सामोदमवादीत्–"हे राजन्! अतिप्रशस्यमद्भुतं च मम रसायनं, नचैतादृग्रसायनमन्यत्र क्वाप्युपलभ्यते, यदिदं देहस्थितानातङ्कान् समूलं

औषधि की तरह। किसी एक राजाने वैद्यों को बुलाकर कहा–" आप लोग कोई ऐसा उपाय कीजिए कि मेरे प्राणोंसे भी प्यारे लडके को भविष्यमे रोग छू भी न सके।" राजाकी बात सुनकर एक वैद्य बोला– "मेरे पास ऐसी दवा है कि रोग होने पर उसका सेवन किया जाय तो पलभरमे उस रोग को मिटा देती है, और रोग न होने पर सेवन किया जाय तो नवीन रोग उत्पन्न कर देती है।" दूसरे वैद्यने कहा– "मेरे पास ऐसी दवा है कि रोग हो तो उसे फौरन दबा देती है और रोग न हो तो न कुछ गुण करती है न अवगुण।" इसके बाद तीसरे वैद्य प्रसन्नतासे बोले–"महाराज? मेरी दवा अति प्रशसनीय

तज्जन्य आत्मशुद्धिनी प्रबलता अवश्य थाय छे त्रीजा वैद्यनी ओषधि प्रमाणे उदाहरणनो खुलाशो ए छे के–कोई एक राजाए वैद्योने बोलावीने कह्यु के– आप लोक कोई एवो उपाय करो के मारा प्राणथी अधिक व्हाला पुत्रने भविष्यमा रोग स्पर्श पण न करी शके? राजानी आ प्रमाणे वात साभळीने एक वैद्य बोल्यो के–" मारी पासे एवु रसायण छे के–रोग थाय तो ते रसायणनुं सेवन करवामा आवे तो एक पलमा ते रसायण रोगने मटाडी शके छे, अने रोग न होय छताय सेवन करवामा आवे तो नवो रोग उत्पन्न करी आपे छे बीजा वैद्ये कह्यु के–मारी पासे एवी दवा छे के रोग होय तो एकदम तेने दबावी दे छे, अने रोग न होय अने दवानो उपयोग कराय तो नथी गुण करती के नथी अवगुण करती त्यार पछी त्रीजा वैद्ये प्रसन्नताथी कह्यु के महाराज! मारी पासे जे रसायण छे ते बहुज वखाणवा योग्य अने अद्‌भुत छे, आवुं

यथा न खलु कोऽपि "श्रावकोऽयम्" इति ज्ञात्वा अभक्ष्यमकल्प्य वा किञ्चिदपि वस्तु समर्पयति, श्रावककुलोत्पन्नत्वेनैव तस्याऽकल्प्यवस्तुजातत्यागित्वप्रसिद्धेः, तथैवाऽत्रापि ज्ञातव्यम् ।

उत्तर-अव्रती हो या व्रती, प्रतिक्रमण सबको पूरा करना चाहिए इसमें कोई दोष नही आसकता, क्योंकि अव्रती प्रतिक्रमण करेगा तो प्रतिक्रमण का महत्त्व समझनेसे व्रत नही ग्रहण करनेका उसे पश्चात्ताप होगा तथा "व्रत ग्रहण करने की क्या जरूरत है ? इनमें क्या धरा है ?" इत्यादि मिथ्या श्रद्धा का पश्चात्ताप होगा, इससे अन्तःकरणमें निर्मलता आदि अनेक आत्मगुण प्रकट होंगे। इसलिए, तथा व्रतधारी को ग्रहण किये हुए व्रतो में लगनेवाले अतिचारोंका, तथा यदि उसने पूरे व्रत न लिये हों तो नही लिये हुए व्रतोंको ग्रहण करने मे किये हुए प्रमाद और व्रत विषयक विपरीत श्रद्धा के विषयमें पश्चात्ताप होगा इसलिए व्रती या अव्रती सबको प्रतिक्रमण करना ही चाहिए, क्यों कि अव्रती भी श्रावक हैं और श्रावक होनेसे ही उन्हे प्रतिक्रमण करने का अधिकार हो ही जाता है ।

ઉત્તર—અવ્રતી (વ્રત ધારણ નહિ કરનાર) હોય અથવા વ્રતી (વ્રત ધારણ કરનાર) હોય એ સૌએ પૂરેપૂરૂ પ્રતિક્રમણ કરવુ જોઇએ, અને એ પ્રમાણે કરવામા કોઇ પ્રકારનો દોષ આવી શકતો નથી કારણ કે અવ્રતી પ્રતિક્રમણ કરશે તો પ્રતિક્રમણનું મહત્વ સમજવાથી વ્રત ગ્રહણ નથી કરી શકયો તેનો પશ્ચાત્તાપ થશે તથા 'વ્રત ગ્રહણ કરવાની શુ જરૂર છે? તેમા શુ લાભ છે?" વગેરે ખોટી શ્રદ્ધાનો પશ્ચાત્તાપ થશે અને તે પશ્ચાત્તાપ કરવાથી અંતઃકરણમા નિર્મલતા આદિ અનેક આત્મગુણો પ્રગટ થશે, એ માટે તથા વ્રતધારીએ જે વ્રતો ધારણ કરેલા હશે તે વ્રતોમા જે જે અતિચારો લાગી શકે છે તે અતિચારોનો તથા કદાચ પૂરા વ્રતો ગ્રહણ નહિ કર્યા હોય તો આજ સુધી વ્રત-ગ્રહણ નહિ કરવામા કરેલો જે પ્રમાદ તેમજ વ્રત વિષેની વિપરીત શ્રદ્ધા તે વિષે પશ્ચાત્તાપ થશે, એટલા માટે વ્રતી અથવા તો અવ્રતીએ પ્રતિક્રમણ કરવુ જોઇએ અવ્રતી પણ શ્રાવક છે અને શ્રાવક હોવાથીજ તેને પ્રતિક્રમણ કરવાનો અધિકાર મળીજ જાય છે

ननु पूर्वं यदभिहितम्-"साधु साध्वी श्रावक-श्राविकाणामिदं षडध्ययनात्मकमावश्यकमवश्यं करणीय"मिति तद्व्रतिनामव्रतिनां वा ? इति जिज्ञासायां व्रत्यव्रतिसाधारण्येन सर्वेषामेव तेषां तत्करणीयमिति सिध्यति सूत्रे प्रतिपदोक्ततया तत्तन्नामाऽनुपादानात्, परं तदन्तर्वर्त्ति प्रतिक्रमणाख्यं चतुर्थमध्ययनं तु व्रतसलग्नाचारशुद्धिमेव प्रतिपादयति ततस्तत्करणमव्रतिनामयोग्यमेव, व्रतिष्वपि भिन्न २ व्रतधारिणो भवन्तीति कथं तेषामिदं संपूर्णमध्ययनं युज्यते ? इति चेद्, अत्रोच्यते-अव्रतिनो व्रतिनो वा भवन्तु नाम तथाऽपि न कोऽपि दोषलेशः समुदेतु क्षमः, अव्रतिनां तद्ग्रहणं तच्छ्रद्धाविपर्यासादिविषयकं, व्रतिनां गृहीतेषु व्रतेषु सलग्नातिचारात्मकः अगृहीतानां चावशिष्टव्रतानां तद्ग्रहणप्रमाद-तच्छ्रद्धाविपर्यासादिविषयकश्च पापपश्चातापः करणीय एव, श्रावकत्वेनैव तेषां तत्करणाधिकारात्।

प्रश्न—आपने पहले कहा है कि-यह षडध्ययनरूप आवश्यक साधु साध्वी श्रावक और श्राविकाओंको अवश्य करना चाहिए, क्योंकि सूत्रमें 'व्रतीको करना चाहिए या अव्रतीको ?' ऐसा विशेष कथन नहीं किया गया है, इससे मालूम होता है कि व्रती और अव्रती दोनोंको ही करना चाहिए, किन्तु इसमें चौथा अध्ययन प्रतिक्रमण का है वह व्रतोंमें लगे हुए अतिचारोंकी शुद्धि के लिए किया जाता है। ऐसी अवस्थामें अव्रती जीव प्रतिक्रमण करके शुद्धि किस की करेगा ? अब रहे व्रती सो उनमें भी कोई किसी व्रतका धारी होता है, कोई किसी व्रतका, उन सब के लिए एकही प्रतिक्रमण (पूरा का पूरा) कैसे उपयुक्त हो सकता है !

પ્રશ્ન—આપે પ્રથમ કહ્યુ છે- આ છ અધ્યયનરૂપ આવશ્યક સાધુ સાધ્વી અને શ્રાવક-શ્રાવિકાઓએ અવશ્ય કરવા જોઇએ, કારણ કે સૂત્રમા વ્રતધારીઓને કરવા જોઇએ કે અવ્રતીઓને ? એવુ વિશેષ કથન કહેવામા આવ્યુ નથી તેથી જાણી શકાય છે કે-વ્રતી અને અવ્રતી સૌએ આવશ્યક કરવુ જોઇએ, પરન્તુ તેમા ચોથુ અધ્યયન પ્રતિક્રમણનું છે તે વ્રતોમા લાગેલા અતિચારોની શુદ્ધિને માટે કહેલુ છે, એવી અવસ્થામા અવ્રતી જીવોએ પ્રતિક્રમણ કરવુ વ્યર્થ છે, જ્યારે તેઓને વ્રતજ નથી તો પ્રતિક્રમણ કરીને શુદ્ધિ કોની કરશે ? હવે વ્રતી વિષે કહેવાનું રહ્યુ તો તેમા કોઇ કયા વ્રતના ધારી અને કોઇ કયા વ્રતના ધારી હોય છે, એ સર્વ માટે એકજ પ્રતિક્રમણ કેવી રીતે ઉપયોગી થઇ શકે ?

यथा न खलु कोऽपि "श्रावकोऽयम्" इति ज्ञात्वा अभक्ष्यमकल्प्यं वा किञ्चिदपि वस्तु समर्पयति, श्रावककुलोत्पन्नत्वेनैव तस्याऽकल्प्यवस्तुजातत्यागित्वप्रसिद्धेः, तथैवाऽत्रापि ज्ञातव्यम् ।

उत्तर–अव्रती हो या व्रती, प्रतिक्रमण सबको पूरा करना चाहिए इसमे कोई दोष नही आसकता, क्योंकि अव्रती प्रतिक्रमण करेगा तो प्रतिक्रमण का महत्त्व समझनेसे व्रत नही ग्रहण करनेका उसे पश्चात्ताप होगा तथा "व्रत ग्रहण करने की क्या जरूरत है ? इनमें क्या धरा है ?" इत्यादि मिथ्या श्रद्धा का पश्चात्ताप होगा, इससे अन्तःकरणमे निर्मलता आदि अनेक आत्मगुण प्रकट होंगे। इसलिए, तथा व्रतधारी को ग्रहण किये हुए व्रतो में लगनेवाले अतिचारोंका, तथा यदि उसने पूरे व्रत न लिये हो तो नही लिये हुए व्रतोंको ग्रहण करने मे किये हुए प्रमाद और व्रत विषयक विपरीत श्रद्धा के विषयमें पश्चात्ताप होगा इसलिए व्रती या अव्रती सबको प्रतिक्रमण करना ही चाहिए, क्यों कि अव्रती भी श्रावक है और श्रावक होनेसे ही उन्हें प्रतिक्रमण करने का अधिकार हो ही जाता है ।

ઉત્તર—અવ્રતી (વ્રત ધારણ નહિ કરનાર) હોય અથવા વ્રતી (વ્રત ધારણ કરનાર) હોય એ બધાએ પૂરેપૂરૂ પ્રતિક્રમણ કરવુ જોઇએ, અને એ પ્રમાણે કરવામા કોઇ પ્રકારનો દોષ આવી શકતો નથી કારણ કે અવ્રતી પ્રતિક્રમણ કરશે તો પ્રતિક્રમણનું મહત્ત્વ સમજવાથી વ્રત ગ્રહણ નથી કરી શકયો તેનો પશ્ચાત્તાપ થશે તથા 'વ્રત ગ્રહણ કરવાની શુ જરૂર છે? તેમા શુ લાભ છે?" વગેરે ખોટી શ્રદ્ધાનો પશ્ચાત્તાપ થશે અને તે પશ્ચાત્તાપ કરવાથી અંતઃકરણમા નિર્મલતા આદિ અનેક આત્મગુણો પ્રગટ થશે, એ માટે તથા વ્રતધારીએ જે વ્રતો ધારણ કરેલા હશે તે વ્રતોમા જે જે અતિચારો લાગી શકે છે તે અતિચારોનો તથા કદાચ પૂરા વ્રતો ગ્રહણ નહિ કર્યા હોય તો આજ સુધી વ્રત–ગ્રહણ નહિ કરવામા કહેલો જે પ્રમાદ તેમજ વ્રત વિષેની વિપરીત શ્રદ્ધા તે વિષે પશ્ચાત્તાપ થશે, એટલા માટે વ્રતી અથવા તો અવ્રતીએ પ્રતિક્રમણ કરવુ જોઇએ અવ્રતી પણ શ્રાવક છે અને શ્રાવક હોવાથીજ તેને પ્રતિક્રમણ કરવાનો અધિકાર મળીજ જાય છે

यद्वा-"अखण्डित सूत्रमुच्चारणीय" मित्यनुशासनात्, सूत्रेऽक्षरमात्रस्यापि हीनतयाऽधिकतया वोच्चारणे "हीणक्खरं अच्चक्खरं" इत्यादिना ज्ञानाऽऽशातनाऽऽख्यापनाच्च सूत्रमखण्डमेव पठनीयम्, अन्यथा यद् यद् व्रतं गृहीतमस्ति तत्तद्विषयकपाठमेव तस्मान्निस्सार्य पठने तु हीनाक्षरात्यक्षराद्यनेकदोषाः सम्भवन्ति सर्वेषां तादृशयोग्यताया असम्भवात्। सत्यामपि योग्यतायामेवकरणेऽन्येषामीर्ष्यादिसम्भवः 'यदहमप्येव कथं न करोमी' ति, तेन च यथोक्तसूत्रशैल्या विध्वंससम्भवात्, तत्तपाठवैषम्याच्चाऽतिशयेनातिचारसम्भवस्तस्मात् सर्वैरखण्डतयैव सूत्रोच्चारणं करणीयमिति सिद्धम्।

अथवा शास्त्रों में कहा गया है कि-'अखण्डित सूत्रमुच्चारणीयम्' अर्थात् सूत्र अखण्डित बोलना चाहिए। इस कथन से यह सिद्ध है कि खण्डित सूत्र बोलना ठीक नहीं है। जिसने जो व्रत लिया है वह यदि उसी व्रतका पाठ निकाल कर पढे तो 'हीनाक्षर' 'अत्यक्षर' आदि बोलने के अनेक दोष लगेंगे। क्योंकि सबमें ऐसी योग्यता नहीं होती कि वे उस-उस पाठ को शुद्ध रीति से निकाल कर पढ़ सकें। जिन थोडे से व्यक्तियों मे ऐसी योग्यता है वे यदि ऐसा करें तो दूसरे अज्ञ जन उनका अनुकरण करने लगेंगे। क्योंकि अधिकांश लोग अनुकरणप्रिय होते है। इससे उपरोक्त सूत्र-पठन-शैली में बहुत बाधा पहुँचेगी। अतएव श्रुतपठन के अतिचार टालने के लिये आवश्यकता है कि सूत्र अखण्डित पढा जाय।

અથવા શાસ્ત્રોમા કહેલુ છે કે—

"अखण्डित सूत्रचमुच्चारणीयम्" અર્થાત્ સૂત્ર અખડિત બોલવુજ જોઇએ-આ વાક્યથી એ સિદ્ધ થાય છે કે ખડિત સૂત્ર બોલવુ તે ઠીક નથી જેણે જે વ્રત લીધુ હોય તે જો એજ વ્રતનો પાઠ કાઢીને વાચે તો "हीनाक्षर अत्यक्षर" આદિ અનેક દોષ લાગશે, કારણુ કે સર્વમા એવી યોગ્યતા નથી કે તે સર્વ પાઠનો શુદ્ધ રીતે ઉચ્ચારણુ કરી શકે જે થોડીએક વ્યકિતઓમા એવી યોગ્યતા છે તે જો એ પ્રમાણે કરશે તો બીજા અજાણ્યા માણુસો તેનું અનુકરણુ કરવા લાગી જશે

કારણુ કે મોટા ભાગના માણુસોને અનુકરણુ પ્રિય છે તે કારણુથી ઉપર કહેલ સૂત્ર-પઠન-શૈલીમા બહુજ હરકત આવશે એ કારણુથી શ્રુત અભ્યાસના અતિચાર નિવારણુ માટે જરૂર છે કે સૂત્ર અખડિત વાચવુ

अस्त्वेव दोषप्रतिविधान तथापि स्वाध्यायजन्य ज्ञानावरणीयकर्मक्षयकर महत्फल त्वव्रतिनामप्यनिवार्यमेव । उक्तञ्च उत्तराध्ययनसूत्रे—

"सज्झाएण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ" इति । एव चाऽव्रतिनामपि तत्कर्तु युज्यत एवेत्यलम् ।

सामायिकम् (१)

ननु 'सामायिकाख्यमध्ययन'-मित्यत्र कः सामायिकशब्दार्थः ?

समस्य=समभावस्य आयः=लाभो यस्मिन् तत् समाय तदेव सामायिकम्,

रही अव्रती जीवों की बात सो प्रतिक्रमण करने से उन्हें ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयरूप स्वाध्यायजन्य महत्फल होगा ही । उत्तराध्ययन में कहा भी है-"सज्झाएण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! सज्झाएण जीवे नाणावरणिज्जं कम्म खवेइ ।" अर्थात्-श्री गौतमस्वामीने पूछा-"प्रभो ! स्वाध्याय से जीव को क्या फल मिलता है ?" भगवान बोले-"गौतम ! स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है ।" अत प्रतिक्रमण अव्रती जीवों को भी करना ही चाहिए ।

सामायिक (१)

प्रश्न-सामायिकाध्ययन आप कहते हैं, सो 'सामायिक' शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर-जिसमे सम-समताभाव का, आय-लाभ हो, उसे

હવે અવ્રતી જીવોની વાત કહીએ તો તે પ્રતિક્રમણ કરવાથી તેને જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયરૂપ સ્વાધ્યાયજન્ય મહાન ફળ થશેજ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમા કહ્યુ છે કે — "सज्झाएण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! सज्झाएण जीवे नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ" અર્થાત્—શ્રી ગૌતમ સ્વામીએ પૂછયુ "પ્રભો ! સ્વાધ્યાયથી જીવોને શુ ફળ મળે છે ? ભગવાને કહ્યુ કે ગૌતમ ? સ્વાધ્યાયથી જીવ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય કરે છે આ કારણથી પ્રતિક્રમણ અવ્રતી જીવોએ પણ કરવુ જ જોઈએ

સામાયિક

પ્રશ્ન—સામાયિકાધ્યયન આપ કહો છો તે 'સામાયિક' શબ્દનો અર્થ શુ છે ?

ઉત્તર—જેમા સમ-સમતા ભાવનો આય-લાભ હોય તેને સામાયિક કહે છે

यद्वा–"अखण्डित सूत्रमुच्चारणीय" मित्यनुशासनात्, सूत्रेऽक्षरमात्रस्यापि हीनतयाऽधिकतया वोच्चारणे "हीणक्खरं अच्चक्खरं" इत्यादिना ज्ञानाऽऽशातना ऽऽख्यापनाच्च सूत्रमखण्डमेव पठनीयम्, अन्यथा यद् यद् व्रतं गृहीतमस्ति तत्तद्विषय-कपाठमेव तस्मान्निस्सार्य पठने तु हीनाक्षरात्यक्षराद्यनेकदोषाः सम्भवन्ति, सर्वेषां तादृशयोग्यताया असम्भवात्। सत्यामपि योग्यतायामेवंकरणेऽन्येषा मीर्ष्यादिसम्भवः 'यदहमप्येवं कथं न करोमी' ति, तेन च यथोक्तसूत्रशैल्या विध्वंससम्भवात्, तत्तत्पाठवैषम्याच्चाऽतिशयेनातिचारसम्भवस्तस्मात् सर्वैरखण्डतयैव सूत्रोच्चारणं करणीयमिति सिद्धम्।

अथवा शास्त्रों में कहा गया है कि–'अखण्डित सूत्रमुच्चारणीयम्' अर्थात् सूत्र अखण्डित बोलना चाहिए। इस कथन से यह सिद्ध है कि खण्डित सूत्र बोलना ठीक नहीं है। जिसने जो व्रत लिया है वह यदि उसी व्रतका पाठ निकाल कर पढे तो 'हीनाक्षर' 'अत्यक्षर' आदि बोलने के अनेक दोष लगेंगे। क्योंकि सबमें ऐसी योग्यता नहीं होती कि वे उस–उस पाठ को शुद्ध रीति से निकाल कर पढ सकें। जिन थोडे से व्यक्तियों में ऐसी योग्यता है वे यदि ऐसा करेंगे तो दूसरे अज्ञ जन उनका अनुकरण करने लगेंगे। क्योंकि अधिकांश लोग अनुकरणप्रिय होते है। इससे उपरोक्त सूत्र–पठन–शैली मे बहुत बाधा पहुँचेगी। अतएव श्रुतपठन के अतिचार टालने के लिये आवश्यकता है कि सूत्र अखण्डित पढा जाय।

અથવા શાસ્ત્રોમા કહેલુ છે કે—

"अखण्डितं सूत्रमुच्चारणीयम्" અર્થાત્ સૂત્ર અખડિત બોલવુજ જોઇએ–આ વાકયથી એ સિદ્ધ થાય છે કે ખડિત સૂત્ર બોલવુ તે ઠીક નથી જેણે જે વ્રત લીધુ છે તે જો એજ વ્રતનો પાઠ કાઢીને વાચે તો "हीनाक्षर अत्यक्षर" આદિ અનેક દોષ લાગશે, કારણ કે સર્વમા એવી યોગ્યતા નથી કે તે સર્વ પાઠનો શુદ્ધ રીતે ઉચ્ચારણ કરી શકે જે થોડીએક વ્યકિતઓમા એવી યોગ્યતા છે તે જો એ પ્રમાણે કરશે તો બીજા અજાણ્યા માણુસો તેનુ અનુકરણ કરવા લાગી જશે

કારણ કે મોટા ભાગના માણુસોને અનુકરણ પ્રિય છે તે કારણુથી ઉપર કહેલ સૂત્ર–પઠન–શૈલીમા બહુજ હરકત આવશે એ કારણથી શ્રુત અભ્યાસના અતિચાર નિવારણ માટે જરૂર છે કે સૂત્ર અખડિત વાચવુ

"चउवीसत्थएण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! चउवीसत्थएण दसणविसोहिं जणयइ ।" इति ।

दर्शनशुद्ध्या च जीव आत्मस्वरूप लभते, यथा भृङ्गगृहस्थितः कीटविशेषः स्वस्यौघदशायामपि तच्छब्ददृढसस्कारेण भृङ्गता प्रतिपद्यते तथैव जीवोऽपि भक्त्युद्रेकेण परम्परया शुद्धस्वरूप लभतेऽतो द्वितीयमावश्यक चतुर्विंशतिस्तवाख्यमस्ति । २ ।

चाहिये। इससे वीतराग प्रभु में जीव की भक्ति होती है। भक्ति से दर्शन की विशुद्धि होती है।

कहा भी है "चउवीसत्थएण भते ! जीवे किं जणयइ ? चउवीसत्थएण दसणविसोहिं जणयइ।"–अर्थात् श्री गौतम स्वामीने पूछा–भगवन् ! चतुर्विंशतिस्तव का जीव को क्या फल होता है ? भगवान् ने उत्तर दिया–दर्शनविशुद्धि होती है। दर्शनविशुद्धि से आत्मा को शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होती है। जैसे भौंरे के घर मे रहा हुआ कीडा अपनी ओघदशा मे भी उसके शब्द के दृढ सस्कार से भौंरा बन जाता है, उसी प्रकार जीव चतुर्विंशतिस्तव द्वारा परम्परा से अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है। अतः दूसरा चतुर्विंशतिस्तव है।

ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૨)

સામાયિક પછી ચોવીસ જિનેન્દ્ર દેવોની સ્તુતિ કરવી જોઇએ, એ વડે વીતરાગ પ્રભુમા જીવોને ભક્તિ થાય છે, અને ભક્તિથી દર્શનની વિશુદ્ધિ થાય છે

કહ્યુ પણ છે કે — चउवीसत्थएण भते ! जीवे किं जणयइ ? चउवीसत्थएणं दसणविसोहिं जणयइ। અર્થાત શ્રી ગૌતમે પૂછ્યુ–ભગવન્ ! ચતુર્વિંશતિસ્તવ (સ્તવન) કરવાથી જીવને શુ ફલ થાય છે ? ભગવાને ઉત્તર આપ્યો કે દર્શનવિશુદ્ધિ થાય છે દર્શનવિશુદ્ધિથી આત્માને શુદ્ધ સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે જેવી રીતે ભમરીના ઘરમા રહેલો કીડો પોતાની ઓઘદશામા પણ તેના શબ્દના દૃઢ સસ્કારથી ભમરી બની જાય છે જેને 'કીટ ભૃગી ન્યાય કહે છે' તે પ્રમાણે જીવ ચતુર્વિંશતિસ્તવથી પરમ્પરાથી પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરે છે તેથી બીજુ સ્થાન ચતુર્વિંશતિસ્તવનું છે

अर्थात् प्राणिमात्रे समभावपूर्वक सावद्यव्यापारविरतिसम्पादकम् , उक्तञ्च-"सामाइएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सामाइएण सावज्जजोग विरइं जणयइ"

समभावेन चित्तस्थैर्यं भवति, तस्मिंश्च सत्येव सकलाः क्रिया यथोक्तविधिना सम्पद्यन्ते, तस्मात् प्रथममिदं सामायिकाध्ययनमुपन्यस्तम् ।

चतुर्विंशतिस्तवः (२)

तदनन्तरं चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः कर्त्तव्या, सा च जीवस्य परमात्मनि सद्भक्तिं जनयति, तया च दर्शनशुद्धिः सञ्जायते, उक्तञ्च—

समाय कहते हैं और उसीको सामायिक कहते हैं। अर्थात् प्राणीमात्र में समता धर कर समस्त सावद्य व्यापार का त्याग करना। कहा भी है-"सामाइएण भंते! जीवे किं जणयइ? सामाइएण सावज्जजोगविरइं जणयइ।" अर्थात् श्रीगौतम स्वामीने पूछा प्रभो! सामायिकसे जीव को क्या फल होता है! भगवान् ने उत्तर दिया-'हे गौतम! सामायिक से सावद्य योग की निवृत्ति होती है और समभाव उत्पन्न होता है, समभाव से चित्त मे स्थिरता आती है, और चित्त की स्थिरता से ही समस्त क्रियाएँ विधि के अनुसार सम्पादित होती हैं। अतः पहले-पहल सामायिक अध्ययन कहा गया है।

चतुर्विंशतिस्तव (२)

सामायिक के अनन्तर चौवीस जिनेन्द्रों की स्तुति करनी

અર્થાત્-પ્રાણી માત્રમા સમતાભાવ રાખીને સમસ્ત સાવદ્ય (પાપમય) વ્યાપારનો ત્યાગ કરવો.

કહ્યુ પણ છે કે— "सामाइएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा! सामाइएण सावज्जजोगविरइं जणयइ"

અર્થાત્-શ્રી ગૌતમ ગણધરે પૂછ્યુ કે હે પ્રભો! સામાયિક કરવાથી જીવને શુ ફળ થાય છે? ભગવાને ઉત્તર આપ્યો કે હે ગૌતમ! સામાયિક કરવાથી સાવદ્ય યોગની નિવૃત્તિ થતા સમભાવ ઉત્પન્ન થાય છે અને સમભાવથી સાવદ્ય ક્રિયાની નિવૃત્તિ થાય છે, તેથી ચિત્તમા સ્થિરતા આવે છે, અને ચિત્તની સ્થિરતાથી સમસ્ત ક્રિયાઓ વિધિ-અનુસાર પ્રાપ્ત થાય છે એ કારણથી પ્રથમ સામાયિક અધ્યયન કહેલુ છે

"चउवीसत्थएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! चउवीसत्थएण दंसणविसोहिं जणयइ ।" इति ।

दर्शनशुद्धया च जीव आत्मस्वरूप लभते, यथा भृङ्गगृहस्थितः कीटविशेषः स्वस्यौघदशायामपि तच्छब्ददृढसंस्कारेण भृङ्गता प्रतिपद्यते तथैव जीवोऽपि भक्त्युद्रेकेण परम्परया शुद्धस्वरूप लभतेऽतो द्वितीयमावश्यकं चतुर्विंशतिस्तवाख्यमस्ति । २ ।

चाहिये । इससे वीतराग प्रभु में जीव की भक्ति होती है । भक्ति से दर्शन की विशुद्धि होती है ।

कहा भी है "चउवीसत्थएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? चउवीसत्थएण दंसणविसोहिं जणयइ ।"—अर्थात् श्री गौतम स्वामीने पूछा—भगवन् ! चतुर्विंशतिस्तव का जीव को क्या फल होता है ? भगवान् ने उत्तर दिया—दर्शनविशुद्धि होती है । दर्शनविशुद्धि से आत्मा को शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होती है । जैसे भौंरे के घर में रहा हुआ कीडा अपनी ओघदशा मे भी उसके शब्द के दृढ संस्कार से भौंरा बन जाता है, उसी प्रकार जीव चतुर्विंशतिस्तव द्वारा परम्परा से अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है । अतः दूसरा चतुर्विंशतिस्तव है ।

ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૨)

સામાયિક પછી ચોવીસ જિનેન્દ્ર દેવોની સ્તુતિ કરવી જોઇએ, એ વડે વીતરાગ પ્રભુમા જીવોને ભક્તિ થાય છે, અને ભક્તિથી દર્શનની વિશુદ્ધિ થાય છે

કહ્યુ પણ છે કે — चउवीसत्थएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? चउवीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ । અર્થાત શ્રી ગૌતમે પૂછ્યુ—ભગવન્ ! ચતુર્વિંશતિસ્તવ (સ્તવન) કરવાથી જીવને શુ ફલ થાય છે ? ભગવાને ઉત્તર આપ્યો કે દર્શનવિશુદ્ધિ થાય છે દર્શનવિશુદ્ધિથી આત્માને શુદ્ધ સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થાય છે જેવી રીતે ભ્રમરીના ઘરમા રહેલો કીડો પોતાની ઓઘદશામા પણ તેના શબ્દના દૃઢ સસ્કારથી ભ્રમરી બની જાય છે જેને 'કીટ ભૃગી ન્યાય કહે છે' તે પ્રમાણે જીવ ચતુર્વિંશતિસ્તવથી પરમ્પરાથી પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરે છે તેથી બીજુ સ્થાન ચતુર્વિંશતિસ્તવનું છે

वन्दनम् (३)

पापपर्यालोचन तु वन्दनपूर्वक गुरुसमक्षमेव करणीयमिति तृतीय वन्दनाख्यमध्ययनमुक्तम्। वन्दनकेन हि जीवस्योच्चगोत्रादिबन्धो जायते, तथोक्तम्—

"वदणएण भते ! जीवे किं जणयइ ? वदणएण जीवे नीयागोय खवेइ उच्चागोय कम्म निबधइ, सोहग्ग च ण अप्पडिहयआणाफल निव्वत्तेइ दाहिणभाव च ण जणयइ" इति वन्दनाख्य तृतीयमध्ययनमुक्तम् ।

वन्दना (३)

पाप की आलोचना वन्दनापूर्वक गुरु के सामने ही करनी चाहिए, यह बात बताने के लिये तीसरा वन्दना नामक अध्ययन है। वन्दना से उच्च गोत्र का बन्ध तथा अन्यान्य फल होते हैं। कहा भी है—"वदणएण भते ! जीवे किं जणयइ ? वदणएण जीवे नीयागोय खवेइ उच्चागोय कम्म निबधइ, सोहग्ग च ण अप्पडिहय आणाफल निवत्तेइ, दाहिणभाव च ण जणयइ" अर्थात् गौतमस्वामी ने पूछा—प्रभो ! वन्दना से जीव को क्या फल होता है ? भगवान् ने उत्तर दिया—वन्दना से नीच गोत्र का क्षय होता है, उच्च गोत्र का बन्ध होता है, सौभाग्य और अप्रतिहत आज्ञा फल को प्राप्त करता है, तथा दाक्षिण्य (अनुकूलता) की प्राप्ति होती है। यह तीसरा अध्ययन हुआ।

વંદના (૩)

પાપની આલોચના વંદનાપૂર્વક ગુરુની સમીપેજ કરવી જોઇએ, એ વાત બતાવવા માટે ત્રીજુ વંદના નામક અધ્યયન છે વંદના વડે કરીને ઉચ્ચ ગોત્રનો બંધ તથા અન્યાન્ય ફળ પ્રાપ્ત થાય છે કહ્યુ છે કે —

વદણએણ ભતે ! જીવે કિં જણયઇ ? વદણએણ જીવે નીયાગોય ખવેઇ ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિબન્ધઇ, સોહગ્ગ ચ ણ અપ્પડિહય આણાફલ નિવત્તેઇ, દાહિણભાવ ચ ણ જણયઇ" અર્થાત્ શ્રી ગૌતમ સ્વામીએ પૂછ્યુ—હે પ્રભો ? વંદના કરવાથી જીવને શુ ફલ થાય છે ? ભગવાને ઉત્તર આપ્યો—ગૌતમ ? વંદના કરવાથી નીચ ગોત્રનો ક્ષય થાય છે, અને ઉચ્ચ ગોત્રનો બંધ થાય છે, સૌભાગ્ય અને અપ્રતિહત આજ્ઞા ફલને પ્રાપ્ત કરે છે તથા દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) ની પ્રાપ્તિ થાય છે આ ત્રીજુ અધ્યયન થયુ

प्रतिक्रमणम् (४)

वन्दनानन्तर पापप्रायश्चित कर्त्तव्यतयोल्लिखित, दिवसे रात्रौ वा यथा कथञ्चित् कोऽप्यतिचारः सलग्नस्तत्प्रकाशन-तदनुतापन तन्निन्दादिविधानेन प्रतिक्रमण विधेय भव्यैः, अनेन व्रतगतच्छिद्राच्छादन जायते, तेनाऽऽगन्तुकाऽऽस्रव-जलमात्मनि न प्रविशतीत्यादि बहुविध फल जीवो लभते, तथा चोक्तम्—

"पडिकमणेण भते! जीवे किं जणयइ? पडिकमणेण वयच्छिद्दाइ पुण जीवे निरुद्धासवे असबलचरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु

(४)

रने का विधान किया गया है। भी अतिचार लगा हो उसकी निन्दा आदि ्तिक्रमण करने से वाला आस्रव पाता। इत्यादि भते! जीवे किं च्छिद्दे पुण जीवे वउत्ते अपुहत्ते

અથવા રાત્રીએ નો પશ્ચાત્તાપ તિક્રમણ કરવાથી આસ્રવરૂપી જલ ાભ થાય છે,

उत्तु

पिहेइ, ग्वउत्ते

अपुहत्ते

वन्दनम् (३)

पापपर्यालोचन तु वन्दनपूर्वक गुरुसमक्षमेव करणीयमिति तृतीय वन्दनाख्यमध्ययनमुक्तम्। वन्दनकेन हि जीवस्योच्चगोत्रादिबन्धो जायते, तथोक्तम्—

"वंदणएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? वंदणएण जीवे नीयागोय खवेइ उच्चागोय कम्म निबधइ, सोहग्ग च ण अप्पडिहयआणाफल निव्वत्तेइ दाहिणभाव च ण जणयइ" इति वन्दनाख्य तृतीयमध्ययनमुक्तम् ।

वन्दना (३)

पाप की आलोचना वन्दनापूर्वक गुरु के सामने ही करनी चाहिए, यह बात बताने के लिये तीसरा वन्दना नामक अध्ययन है। वन्दना से उच्च गोत्र का बन्ध तथा अन्यान्य फल होते हैं। कहा भी है–"वंदणएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? वंदणएण जीवे नीयागोय खवेइ उच्चागोय कम्म निबधइ, सोहग्ग च ण अप्पडिहय आणाफल निव्वत्तेइ, दाहिणभाव च ण जणयइ" अर्थात् गौतमस्वामी ने पूछा–प्रभो ! वन्दना से जीव को क्या फल होता है ? भगवान् ने उत्तर दिया–वन्दना से नीच गोत्र का क्षय होता है, उच्च गोत्र का बन्ध होता है, सौभाग्य और अप्रतिहत आज्ञा फल को प्राप्त करता है, तथा दाक्षिण्य (अनुकूलता) की प्राप्ति होती है। यह तीसरा अध्ययन हुआ।

વંદના (૩)

પાપની આલોચના વંદનાપૂર્વક ગુરુની સમીપેજ કરવી જોઈએ, એ વાત બતાવવા માટે ત્રીજુ વંદના નામક અધ્યયન છે વંદના વડે કરીને ઉચ્ચ ગોત્રનો બંધ તથા અન્યાન્ય ફળ પ્રાપ્ત થાય છે કહ્યુ છે કે—

वंदणएण भंते ! जीवे किं जणयइ ? वंदणएण जीवे नीयागोय खवेइ उच्चागोय कम्म निबन्धइ, सोहग्ग च ण अप्पडिहय आणाफल निव्वत्तेइ, दाहिणभाव च ण जणयइ" અર્થાત્ શ્રી ગૌતમ સ્વામીએ પૂછયુ–હે પ્રભો ? વંદના કરવાથી જીવને શુ ફલ થાય છે ? ભગવાને ઉત્તર આપ્યો–ગૌતમ ? વંદના કરવાથી નીચ ગોત્રનો ક્ષય થાય છે, અને ઉચ્ચ ગોત્રનો બંધ થાય છે, સૌભાગ્ય અને અપ્રતિહત આજ્ઞા ફલને પ્રાપ્ત કરે છે તથા દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) ની પ્રાપ્તિ થાય છે આ ત્રીજુ અધ્યયન થયુ

प्रतिक्रमणम् (४)

वन्दनानन्तर पापप्रायश्चित कर्त्तव्यतयोल्लिखित, दिवसे रात्रौ वा यथा कथञ्चित् कोऽप्यतिचारः सलग्नस्तत्प्रकाशन-तदनुतापन तन्निन्दादिविधानेन प्रतिक्रमण विधेय भव्यैः, अनेन व्रतगतच्छिद्राच्छादन जायते, तेनाऽऽगन्तुकाऽऽस्रव-जलमात्मनि न प्रविशतीत्यादि बहुविध फल जीवो लभते, तथा चोक्तम्—

"पडिकमणेण भंते! जीवे किं जणयइ? पडिकमणेण वयच्छिद्दाइ पिहेइ, पिहियवयच्छिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे असबलचरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु

प्रतिक्रमण (४)

वन्दना के बाद प्रायश्चित्त करने का विधान किया गया है। दिन मे या रात मे किसी भी प्रकार जो कोई भी अतिचार लगा हो उसे प्रकट करके, उसका पश्चात्ताप करके तथा उसकी निन्दा आदि करके भव्य जीवों को प्रतिक्रमण करना चाहिये। प्रतिक्रमण करने से व्रतों में लगे हुए दोष मिट जाते हैं। आगे आने वाला आस्रव रूपी जल आत्मा रूपी नौका मे प्रवेश नही कर पाता। इत्यादि अनेक लाभ होते है। कहा भी है–"पडिक्कमणेण भंते! जीवे किं जणयइ? पडिक्कमणेण वयच्छिद्दाइ पिहेइ, पिहियवयच्छिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे, असबलचरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ।"

પ્રતિક્રમણ (૪)

વંદના પછી પ્રાયશ્ચિત્ત કરવાનું વિધાન કરેલુ છે દિવસમા અથવા રાત્રીએ કોઈ પણ પ્રકારનો જે અતિચાર લાગ્યો હોય તે પ્રગટ કરીને તેનો પશ્ચાત્તાપ કરીને તથા તેની નિંદા કરીને ભવ્ય જીવોએ પ્રતિક્રમણ કરવુ જોઈએ પ્રતિક્રમણ કરવાથી વ્રતોમા લાગેલા દોષોનું નિવારણ થાય છે, આગળ આવવાવાળા આસ્રવરૂપી જલ આત્મારૂપી નૌકામા પ્રવેશ કરવા પામતા નથી ઇત્યાદિ અનેક લાભ થાય છે, કહ્યુ છે કે–

पडिक्कमणेण भंते! जीवे किं जणयइ? पडिक्कमणेण वयच्छिद्दाइ पिहेइ, पिहियवयच्छिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे असबलचरित्ते, अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ।

उवउत्ते अपुहत्ते सुपणिहिए विहरइ" ।

तस्मादिद प्रतिक्रमणाख्य चतुर्थमावश्यकमभिहितम् ।

कायोत्सर्गः (५)

पूर्वक्रियया मानसिकी वाचिकी च शुद्धिः सञ्जाता, तदनन्तर कायिकी शुद्धिरावश्यकीति कायमर्थात्कायममत्व त्यक्त्वाऽऽत्मन्येव रमण जायते तेन

हे भदन्त ! प्रतिक्रमण करने से किम फल की प्राप्ति होती है? हे गौतम !–प्रतिक्रमण, व्रतों के छिद्रों को रोकता है, व्रतों के छिद्र रुकजाने से जीव आस्रवरहित होता है, आस्रव रुक जाने से चारित्र निर्मल होता है, चारित्र निर्मल होने से अष्ट[1] प्रवचन माता में उपयोगवान् (समिति गुप्ति के आराधन में सावधान) होता है, जिससे सयम में तत्परता होती है, और मन, वचन, काया के योग असद्मार्ग से रुक जाते हैं, अतएव वह समाधिभावयुक्त हो कर विचरता है।

यह प्रतिक्रमण नामक चौथा अध्ययन हुआ।

कायोत्सर्ग (५)

पहले की क्रियाओं से मानसिक और वाचिक शुद्धि हुई।

હે ભદન્ત ! પ્રતિક્રમણ કરવાથી કયા ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે ?

હે ગૌતમ ? પ્રતિક્રમણ વ્રતોના છિદ્રોને રોકે છે વ્રતોના છિદ્રો રોકાઈ જવાથી જીવ આસ્રવરહિત થાય છે આસ્રવ રોકાઈ જવાથી ચારિત્ર નિર્મળ થાય છે અને ચારિત્ર નિર્મળ હોવાથી આઠ પ્રવચનમા ઉપયોગવાન (સમિતિ ગુપ્તિની આરાધનામા સાવધાન) બને છે, તેથી સયમમા તત્પરતા વધે છે અને મન વચન કાયાના યોગ અસત્ય માર્ગથી રોકાઈ જાય છે જેથી તે સમાધિભાવવાળો થઈ વિચરે છે

આ પ્રતિક્રમણ નામનું ચોથુ અધ્યયન થયુ

કાયોત્સર્ગ

પ્રથમની ક્રિયાઓ વડે માનસિક અને વાચિક શુદ્ધિ થઈ તેના પછી કાયિક શુદ્ધિ કરવી જરૂરની છે કાયા ધર્મનો આધાર તથા નિમિત્ત ત્યારે બની શકે

टि. १–पाच समिति और तीन गुप्ति मिलकर आठ प्रवचनमाता है।

चातीतप्रत्युत्पन्नप्रायश्चित्तविशुद्ध्यादिभिः प्राणी सुखी भवति, उक्तञ्चात्र—

"काउसग्गेण भंते! जीवे किं जणयइ? काउसग्गेण तीयपडुप्पन्नपायच्छित्त विसोहेइ, विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निव्वुयहियए ओहरियभरुव्वभारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहसुहेण विहरइ"।

इत्यतोऽस्य पञ्चमाध्ययनस्य 'कायोत्सर्ग' इति नाम।

इसके पश्चात् कायिक शुद्धि करना आवश्यक है। काय धर्म का आधार और निमित्त तब ही बन सकता है जब उसमें आत्मीयता–ममता न रहे। शरीर में ममता न होने को ही कायोत्सर्ग करते हैं। यह कायोत्सर्ग धर्मसाधक होने से कायिकशुद्धिरूप है। अतएव कायिकशुद्धि करने के लिये कायोत्सर्ग नामक पाँचवाँ अध्ययन कहा गया है। इससे अतीत अनागत तथा वर्तमान–कालीन प्रायश्चित्त की विशुद्धि आदि होती है और इससे आत्मा सुखी होती है।

कहा भी है–"काउस्सग्गेण भंते! जीवे किं जणयइ? काउसग्गेण तीयपडुपन्नपायच्छित्त विसोहेइ, विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निव्वुयहियए ओहरियभरुव्वभारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहसुहेण विहरइ।"

हे भगवन्! काउस्सग (कायोत्सर्ग) करने से किस फलकी प्राप्ति होती है? हे गौतम! कायोत्सर्ग से अतीत अनागत और

છે કે—જ્યારે કાયામા આત્મીયતા–મમતા ન રહે, એટલે કે શરીરમા મમતા–રહિતપણુ તેનેજ કાયોત્સર્ગ કહે છે તે કાયોત્સર્ગ ધર્મસાધક હોવાથી તે કાયિક શુદ્ધિરૂપ છે એટલા માટે કાયિક શુદ્ધિ કરવા અર્થે કાયોત્સર્ગ નામનુ પાચમુ અધ્યયન કહ્યુ છે તેથી અતીત અનાગત અને વર્તમાન કાલની પ્રાયશ્ચિત્તવિશુદ્ધિ વગેરે થાય છે, અને તેથી આત્મા સુખી થાય છે

કહ્યુ પણ છે કે— "काउस्सग्गेण भंते! जीवे किं जणयइ? काउसग्गेण तीयपडुपन्नपायच्छित्त विसोहेइ, विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निव्वुयहियए ओहरियभरुव्वभारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहसुहेण विहरइ।"

હે ભગવાન્! કાઉસગ્ગ (કાયોત્સર્ગ) કરવાથી કયા ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે? હે ગૌતમ! કાયોત્સર્ગથી અતીત અનાગત અને વર્તમાનમા લાગેલા અતિચારોની

प्रत्याख्यानम् (६)

प्रत्याख्यान नाम इच्छानिरोधः । सर्वाः क्रियाः स्वीकृताश्चेत्तर्हि इच्छानिरोधोऽप्यवश्य करणीयः । सुवर्णादिभूषणानामुज्ज्वलीकरणक्रियेव प्रत्याख्यानमिद विशिष्टात्मशक्तेराविष्करणाय प्रभवति, अतो यथाशक्ति प्रत्याख्यान करणीयमेव, आस्रवद्वारनिरोधादिविशिष्टफलप्रतिपादकम् , उक्तञ्च—

पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? पच्चक्खाणेण आसवदाराइ निरुभइ, पच्चक्खाणेण इच्छानिरोहं जणयइ, इच्छानिरोहगए ण जीवे सव्वदव्वेसु

वर्तमान मे लगे हुए अतिचारों की शुद्धि होती है और हृदय विशुद्ध होता है, हृदय विशुद्ध होने से आत्मा कर्मभार से हलका होकर प्रशस्तध्यानयुक्त बनता है, और समाधिभावमे विचरण करता है ।

प्रत्याख्यान (६)

प्रत्याख्यान इच्छा के निरोध को कहते हैं । जब पूर्वोक्त सभी क्रियाएँ स्वीकार करलीं तो इच्छा का भी निरोध अवश्य करना चाहिए। जैसे सफाई करने से सोनेके आभूषण की उज्ज्वलता बढती है, वैसे ही प्रत्याख्यान से आत्मा में विशिष्ट शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। अतएव आश्रव द्वार के निरोध आदि विशिष्ट फलको देने वाला प्रत्याख्यान करना ही चाहिए । कहा भी है—"पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? पच्चक्खाणेण आसवदाराइ निरुभइ, पच्चक्खाणेण

શુદ્ધિ થાય છે અને હૃદય વિશુદ્ધ બને છે હૃદય વિશુદ્ધ થવાથી આત્મા કર્મભારથી હલવો થઇ પ્રશસ્તધ્યાની બને છે અને સમાધિભાવમા વિચરણ કરે છે

પ્રત્યાખ્યાન (૬)

ઇચ્છાનો નિરોધ કરવો તેને પ્રત્યાખ્યાન કહે છે, જ્યારે પૂર્વ કહેલી તમામ ક્રિયાઓનો સ્વીકાર કરી લીધો તો પછી ઇચ્છાનો નિરોધ પણ અવશ્ય કરવો જોઇએ જેવી રીતે સફાઈ કરવાથી સોનાના આભૂષણોની ઉજ્જવલતા વધે છે, તેવીજ રીતે પ્રત્યાખ્યાનથી આત્મામા વિશિષ્ટ શકિત ઉત્પન્ન થાય છે એટલા માટે આસ્રવ-દ્વારના નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલને આપવાવાળા પ્રત્યાખ્યાન વ્રતને કરવુ જ જોઇએ કહ્યુ છે કે — "पच्चक्खाणेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? पच्चक्खाणेण

विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ ।"

इति षष्ठमावश्यकं प्रत्याख्यानाख्यं समुपन्यस्तम् ।

एतद्धि षडध्ययनात्मकमावश्यकं (प्रतिक्रमण) सर्वेषामुभयकालं करणीयमेव । तत्रापि साधूनामनिवार्यतया कर्त्तव्यमेतत् । यथाऽतिस्वच्छवस्त्रेषु कालिमापातशङ्का, धनिना च लुण्टाकाद्यातङ्को विशेषरूपेण जन्यते तथैव, शुद्धचारित्र-

---

इच्छानिरोहं जणयइ, इच्छानिरोहगए णं जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ।"

हे भदन्त! पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) करने से किस फल की प्राप्ति होती है। हे गौतम! प्रत्याख्यान करने से आस्रवद्वार रुक जाते हैं और इच्छा का निरोध होता है, इच्छा के निरोध से आहारादि में तृष्णा रुक जाती है, और तृष्णावरोध से आत्मा बाह्य तथा आभ्यन्तरिक सन्ताप से रहित होती है।

यह प्रत्याख्यान नामक छट्ठा आवश्यक हुआ।

ये छहों आवश्यक यद्यपि सभी को उभय काल करना चाहिए, तो भी साधुओं के लिये उभय काल करना अनिवार्य है। जैसे अत्यन्त स्वच्छ कपडे पर धब्बा लगने की आशका रहती है या धनवानों को लुटेरों का डर विशेष रूप से रहता है, उसी प्रकार

आसवदाराइं निरुंभइ, पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयइ, इच्छानिरोहगए णं जीवे सव्वदव्वेसु वीणीयतण्हे सीइभूए विहरइ."

હે ભદન્ત! પચ્ચક્ખાણ (પ્રત્યાખ્યાન) કરવાથી કયા ફલની પ્રાપ્તિ થાય છે? હે ગૌતમ! પ્રત્યાખ્યાન કરવાથી આસવદ્વાર રોકાઇ જાય છે અને ઈચ્છાનિરોધ થાય છે, ઇચ્છાનિરોધથી આહારાદિમાં તૃષ્ણા રોકાઈ જાય છે તેમજ તૃષ્ણાવરોધથી આત્મા બાહ્ય આભ્યન્તરિક સન્તાપથી રહિત થઈ જાય છે

આ પ્રત્યાખ્યાન નામનું છઠ્ઠું આવશ્યક પૂર્ણ થયું

આ છ આવશ્યક જો કે સર્વને ઉભય કાળ કરવા જોઇએ, તો પણ સાધુઓ માટે તો બન્ને કાળ કરવું અનિવાર્ય છે જેમ કે સ્વચ્છ કપડા ઉપર ડાઘ લાગવાની શંકા રહે છે અથવા તો ધનવાનને લુટારાનો ભય વિશેષ રહે છે તેવી રીતે શુદ્ધ-ચારિત્રધારી જ્ઞાન આદિ ગુણોથી વિભૂષિત સાધુઓને પાપનો ભય બહુજ રહે છે એ માટે

प्रत्याख्यानम् (६)

प्रत्याख्यान नाम इच्छानिरोधः। सर्वाः क्रियाः स्वीकृताश्चेत्तर्हि इच्छा-निरोधोऽप्यवश्य करणीयः। सुवर्णादिभूषणानामुज्ज्वलीकरणक्रियेव प्रत्याख्यान-मिद विशिष्टात्मशक्तेराविष्करणाय प्रभवति, अतो यथाशक्ति प्रत्याख्यान करणीयमेव, आस्रवद्वारनिरोधादिविशिष्टफलप्रतिपादकम्, उक्तञ्च—

पच्चक्खाणेण भंते! जीवे किं जणयइ? पच्चक्खाणेण आसवदाराइ निरुभइ, पच्चक्खाणेण इच्छानिरोह जणयइ, इच्छानिरोहगए ण जीवे सव्वदव्वेसु

वर्तमान मे लगे हुए अतिचारों की शुद्धि होती है और हृदय विशुद्ध होता है, हृदय विशुद्ध होने से आत्मा कर्मभार से हलका होकर प्रशस्तध्यानयुक्त बनता है, और समाधिभावमें विचरण करता है।

प्रत्याख्यान (६)

प्रत्याख्यान इच्छा के निरोध को कहते हैं। जब पूर्वोक्त सभी क्रियाएँ स्वीकार करली तो इच्छा का भी निरोध अवश्य करना चाहिए। जैसे सफाई करने से सोनेके आभूषण की उज्ज्वलता बढती है, वैसे ही प्रत्याख्यान से आत्मा मे विशिष्ट शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। अतएव आश्रव द्वार के निरोध आदि विशिष्ट फलको देने वाला प्रत्याख्यान करना ही चाहिए। कहा भी है—"पच्चक्खाणेण भंते! जीवे किं जणयइ? पच्चक्खाणेण आसवदाराइ निरुभइ, पच्चक्खाणेण

શુદ્ધિ થાય છે અને હૃદય વિશુદ્ધ બને છે હૃદય વિશુદ્ધ થવાથી આત્મા કર્મભારથી હલવો થઇ પ્રશસ્તધ્યાની બને છે અને સમાધિભાવમા વિચરણ કરે છે

પ્રત્યાખ્યાન (૬)

ઈચ્છાનો નિરોધ કરવો તેને પ્રત્યાખ્યાન કહે છે, જયારે પૂર્વ કહેલી તમામ ક્રિયાઓનો સ્વીકાર કરી લીધો તો પછી ઇચ્છાનો નિરોધ પણ અવશ્ય કરવો જોઇએ જેવી રીતે સફાઈ કરવાથી સોનાના આભૂષણોની ઉજ્જવલતા વધે છે, તેવીજ રીતે પ્રત્યાખ્યાનથી આત્મામા વિશિષ્ટ શકિત ઉત્પન્ન થાય છે એટલા માટે આસવ-દ્વારના નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલને આપવાવાળા પ્રત્યાખ્યાન વ્રતને કરવું જ જોઇએ કહ્યુ છે કે — "पच्चक्खाणेण भंते! जीवे किं जणयइ? पच्चक्खाणेण

तदानीं धर्ममन्तरेण नान्यः कोऽपि तस्य शरणीभूय तदार्त्ति दूरयितुं प्रभवति। तस्मिश्च क्षणे स पूर्वकृतातिचारादीनि स्मार स्मार बहुधा पश्चात्ताप विधत्ते।

अङ्कुरतामापादितः कालान्तरेण दृढमूलश्च पापवृक्षः पश्चाद्दुरुत्पाटनीयो भवति, अतः पूर्वं बीजमेव न वपनीयमिति प्रथमा बुद्धिमत्ता।

यदि कथञ्चिदुप्तमपि भवेत् तर्हि तत्क्षण एव तन्मूलोन्मूलनाय प्रयतनीयमिति द्वितीया।

एवमपि नो चेत्तर्हि पश्चात्तापादिना तच्छैथिल्य त्ववश्य विधेयम्, येन प्रवृद्धोऽपि दु खफलरूः पापवृक्षो निस्सारत्वेन कालान्तरे दुःखलक्षणकटुफलं जन-

---

हुआ समस्त ससार में शरण खोजता है तब धर्म के सिवा और कोई भी शरण नही होता, न कोई उसकी चिल्लाहट मिटा सकता है। उस समय वह पहले किए हुए अतिचार आदि का स्मरण कर-करके अत्यन्त पश्चात्ताप करता है।

अकुरित हुआ तथा कुछ कालमें दृढ जडवाला होकर वह पापवृक्ष फिर बडे कष्टसे उखाडने योग्य होता है, इसलिए बीज न होना पहली श्रेणी की बुद्धिमत्ता है। यदि असावधानी से बोया गया हो तो तत्काल समूल उखाडने के लिए प्रयत्न करना दूसरे दर्जे की बुद्धिमत्ता है। यदि यह भी न हो सके तो पश्चात्ताप आदि करके उसे शिथिल तो अवश्य कर देना चाहिए, जिससे कि दु'खरूप फल देनेवाला पापवृक्ष निस्सार होजाने के कारण

રમા શરણુને શોધે છે ત્યારે ધર્મ વિના બીજુ કોઈ શરણુ નથી થતુ તેમજ તેના ભયને ધર્મ વિના કોઈ મટાડી શકતુ નથી તે સમયે તેણે પ્રથમ કરેલા અતિચારો આદિનુ સ્મરણુ કરી કરીને અત્યન્ત પશ્ચાત્તાપ કરે છે

અકુરિત થયેલ તથા થોડા સમયમા દૃઢમૂળવાળુ બનીને તે પાપવૃક્ષ ફરીને મોટા કષ્ટથી ઉખડી શકે તેવુ થઈ જાય છે એટલા માટે પ્રથમ બીજરૂપે થવા ન દેવુ તે પહેલી શ્રેણીની બુદ્ધિમત્તા છે જો અસાવધાનતાથી બીજ વાવી દેવામા આવ્યુ હોય તો તત્કાલ મૂલસહિત ઉખેડી નાખવાનો યત્ન કરવો તે બીજી શ્રેણીની બુદ્ધિમત્તા છે એ પ્રમાણે ન બની શકે તો પશ્ચાત્તાપ આદિ કરીને તે પાપને શિથિલ તો અવશ્ય કરવુ જ જોઇએ કે જેથી કરીને દુખરૂપ ફલ આપનાવાળુ પાપવૃક્ષ

धारिणा ज्ञानादिगुणगणशालिना साधुना सातिशय पापभय जायते, अतस्तद्रक्षणोपायभूते कर्मणि तेषामवधानदानमावश्यकमित्यत्र तेषा प्रतिक्रमणविधिरुपदर्शितः, अतोऽस्य 'साधुप्रतिक्रमण,-सा०वावश्यक' चेति नामधेय जातमिति ॥

अस्य हेतुमर्थं च सम्यगवगम्य स्वस्वपापाना सक्षयाय शैथिल्यापादनाय च सर्वैरेव भव्यभावनशीलैर्भव्यैः प्रयतनीय, यतो वीतरागप्रणीततया सर्वप्राणिना तत्पालन श्रेयसीयसाधायकमिति ।

इह खलु निखिले जगतीतले जीवो यदाऽधिकाऽधिकाऽऽधिव्याधिबाधाविकलान्तःकरणः 'त्रायस्व त्रायस्वे' -ति समाक्रोशन् शरण गवेषयति,

---

शुद्ध-चारित्रधारी, ज्ञान आदि गुणों से विभूषित साधुओं को पापों का बहुत डर रहता है। अतः उन्हें रोकने की क्रिया में साधुओं को सावधान रहना बहुत आवश्यक है। प्रस्तुत सूत्र में साधुओं के प्रतिक्रमण की विधि बताई गई है, इसलिए इसका नाम 'साधु-प्रतिक्रमण' और 'साधु-आवश्यक' है।

आवश्यक का हेतु और अर्थ सम्यक् रीतिसे जानकर अपने-अपने पापों का क्षय करने अथवा शिथिल करने के लिए सभी भव्यप्राणियों को प्रयत्न करना चाहिए, क्यों कि यह प्रतिक्रमण वीतराग प्रणीत होने से सब प्राणियों को इस प्रतिक्रमण करने रूप वीतराग की आज्ञा का पालन करना कल्याण का साधक है।

जीव आधिव्याधि आदि बाधाओं से अत्यन्त व्याकुल हृदय होकर जब "बचाओ, बचाओ, रक्षा करो" इस प्रकार चिल्लाता

પાપોને રોકવાની ક્રિયામા સાધુઓએ સાવધાન રહેવુ ઘણુ જ જરૂરી છે પ્રસ્તુત સૂત્રમા સાધુઓના પ્રતિક્રમણની વિધિ બતાવી છે એટલા માટે તેનું નામ "સાધુ પ્રતિક્રમણ" અને "સાધુ-આવશ્યક" છે

આવશ્યકનો હેતુ અને અર્થ સમ્યક્ રીતે જાણી કરીને પોતાના પાપનો ક્ષય કરવા અથવા શિથિલ કરવા માટે સો ભવ્ય પ્રાણીઓએ પ્રયત્ન કરવો જોઈએ, કારણ કે આ પ્રતિક્રમણ વીતરાગપ્રણીત હોવાથી સર્વ પ્રાણીઓએ આ પ્રતિક્રમણ રૂપ વીતરાગની આજ્ઞાનું પાલન કરવુ તે કલ્યાણનુ સાધક છે

જીવ આધિ-વ્યાધિ આદિ બધી પીડાઓથી અત્યત-વ્યાકુલ-હૃદય થઈને જ્યારે "બચાવો! બચાવો! રક્ષા કરો!" એ પ્રમાણે ભય પામતો થકો સમસ્ત સસા

तदानीं धर्ममन्तरेण नान्यः कोऽपि तस्य शरणीभूय तदार्त्तिं दूरयितुं प्रभवति । तस्मिंश्च क्षणे स पूर्वकृतातिचारादीनि स्मार स्मार बहुधा पश्चात्ताप विधत्ते ।

अङ्कुरतामापादितः कालान्तरेण दृढमूलश्च पापवृक्षः पश्चाद्दुरुत्पाटनीयो भवति, अतः पूर्वं बीजमेव न वपनीयमिति प्रथमा बुद्धिमत्ता ।

यदि कथञ्चिदुप्तमपि भवेत् तर्हि तत्क्षण एव तन्मूलोन्मूलनाय प्रयतनीयमिति द्वितीया ।

एवमपि नो चेत्तर्हि पश्चात्तापादिना तच्छैथिल्य त्त्ववश्य विधेयम्, येन प्रवृद्धोऽपि दुःखफलकः पापवृक्षो निस्सारत्वेन कालान्तरे दुःखलक्षणकटुफलं जन-

---

हुआ समस्त ससार में शरण खोजता है तब धर्म के सिवा और कोई भी शरण नही होता, न कोई उसकी चिल्लाहट मिटा सकता है। उस समय वह पहले किए हुए अतिचार आदि का स्मरण कर-करके अत्यन्त पश्चात्ताप करता है।

अकुरित हुआ तथा कुछ कालमें दृढ जडवाला होकर वह पापवृक्ष फिर बडे कष्टसे उखाडने योग्य होता है, इसलिए बीज न होना पहली श्रेणी की बुद्धिमत्ता है। यदि असावधानी से बोया गया हो तो तत्काल समूल उखाडने के लिए प्रयत्न करना दूसरे दर्जे की बुद्धिमत्ता है। यदि यह भी न हो सके तो पश्चात्ताप आदि करके उसे शिथिल तो अवश्य कर देना चाहिए, जिससे कि दुःखरूप फल देनेवाला पापवृक्ष निस्सार होजाने के कारण

રમા શરણુને શોધે છે ત્યારે ધર્મ વિના બીજુ કોઈ શરણુ નથી થતુ તેમજ તેના ભયને ધર્મ વિના કોઈ મટાડી શકતુ નથી તે સમયે તેણે પ્રથમ કરેલા અતિચારો આદિનુ સ્મરણુ કરી કરીને અત્યન્ત પશ્ચાત્તાપ કરે છે

અકુરિત થયેલ તથા થોડા સમયમા દૃઢમૂળવાળુ બનીને તે પાપવૃક્ષ ફરીને મોટા કષ્ટથી ઉખડી શકે તેવુ થઈ જાય છે એટલા માટે પ્રથમ બીજરૂપે થવા ન દેવું તે પહેલી શ્રેણીની બુદ્ધિમત્તા છે જો અસાવધાનતાથી બીજ વાવી દેવામા આવ્યુ હોય તો તત્કાલ મૂલસહિત ઉખેડી નાખવાનો યત્ન કરવો તે બીજી શ્રેણીની બુદ્ધિમત્તા છે એ પ્રમાણે ન બની શકે તો પશ્ચાત્તાપ આદિ કરીને તે પાપને શિથિલ તો અવશ્ય કરવું જ જોઇએ કે જેથી કરીને દુ ખરૂપ ફલ આપવાવાળુ પાપવૃક્ષ

यितु न प्रभवेत् प्रत्युत समूल शीर्येत। एव चाऽऽत्मनो निस्सहायाऽवस्था माभूदित्येतदर्थं प्रतिक्रमणमेव शरणीकुर्वाणैः क्रियाऽऽचरणपरायणान्त'करणैरवश्य भवितव्य भव्यैः, येन ऐहिकाऽऽमुष्मिकसुखान्यनुभवितुमर्हताऽधिगम्येत ।

प्रतिक्रमणाऽपरपर्यायमिदमावश्यकमवश्यमनुष्ठेय निजव्रतमखण्डीकर्तुंकामेन साधुना । अनुष्ठान चेदमितिकर्त्तव्यतापरिज्ञानमन्तरेणाऽसम्भवि, तच्च (इतिकर्त्तव्यतापरिज्ञान) गूढार्थकाना सूत्राणा सरलव्याख्ययैव सम्भवति सुकुमारमतीनामिदानीन्तनजनानाम् ।

दु'खरूपी कडुवा फल देने में समर्थ न हो सके, बल्कि शिथिल होता जाय।

आत्मा निस्सहाय न हो इसलिए प्रतिक्रमण की शरण में जानेवाले भव्यो को अन्तःकरणसे क्रिया करने में परायण अवश्य होना चाहिए, जिस से इस लोक और परलोक–सम्बन्धी सुखों की प्राप्ति हो सके।

यह प्रतिक्रमण, दूसरा नाम आवश्यक अपने व्रतों को अखण्डित रखने वाले साधु को अवश्य करना चाहिए। यह अनुष्ठान कर्त्तव्यज्ञान के विना नहीं हो सकता। आजकलके अल्पबुद्धिवालों को कर्त्तव्यज्ञान तब ही हो सकता है, जब गूढ अर्थवाले सूत्रों की सरल व्याख्या कर दी जाय।

નિસ્સાર થઈ જાય, જેથી દુ ખ રૂપી કડવા ફળ આપવા સમર્થ થઈ શકે નહિ અને શિથિલ થઈ જાય

આત્મા નિ સહાય ન થઈ જાય એટલા માટે પ્રતિક્રમણના શરણમા જવા વાળા ભવ્ય જીવોએ ક્રિયા કરવામા પરાયણ અ ત કરણવાળા અવશ્ય થવુ જોઈએ, જેથી આ લોક અને પરલોક સ બ ધી સુખોની પ્રાપ્તિ થઈ શકે

આ પ્રતિક્રમણ કે જેનું નામ આવશ્યક છે તેને પોતાના વ્રત રૂપ ગણીને અખ ડિત વ્રત ધારણ કરવાવાળા સાધુઓએ અવશ્ય કરવુ જોઈએ

આ અનુષ્ઠાન કર્ત્તવ્યજ્ઞાન વિના થઈ શકતુ નથી આજકાલના અલ્પબુદ્ધિ વાળાઓને કર્તવ્યજ્ઞાન ત્યારેજ થાય છે કે જ્યારે ગૂઢ અર્થવાળા સૂત્રોની સરલ વ્યાખ્યા કરી આપવામા આવે

यद्यप्यस्य प्रतिक्रमणस्य भूयस्यो व्याख्या लोचनगोचरतामञ्चन्ति, किन्तु सूक्ष्मेक्षिकया निसमीक्षितासु तासु नैकाऽपि सरला मन्दमतिबोधजनिका च व्याख्या समुपलभ्यते, अतः कोमलबुद्धीनामनायासेन झटित्यर्थाऽवबोधसंजननाय मया सूत्राऽऽशयाऽनुसन्धानपुरस्सरं 'मुनितोषणी'–नामधेया टीकेयं विरचिता। एतस्या प्रायो विषयास्तु प्रमाणीभूतेभ्यः शास्त्रेभ्यः सगृहीता एव, नह्यसगृह्य विषयान् अयत्ने प्राचीनाना महर्षीणामभिप्राय प्रकटीकर्तुं पटिष्ठः कोऽपि भूमिष्ठ उप-

---

यद्यपि प्रतिक्रमण की बहुतेरी टीकाएँ (व्याख्याएँ) दृष्टि-गोचर होती हैं, किन्तु उनमें मन्दमतिवाले भव्यों को बोध करानेवाली सरल व्याख्या कोई नहीं है, इसलिए कोमल बुद्धिवालों को विना विशेष परिश्रम के शीघ्र अर्थ–ज्ञान कराने के लिए मैंने सूत्रों का आशय ध्यानमें रखकर इस आवश्यक सूत्र की मुनितोषणी नामकी टीका बनाई है, इस टीकामें विषयो का सग्रह प्रामाणिक शास्त्रों से किया गया है, क्योंकी विना विषयों के सग्रह किये प्राचीन महर्षियोंका अभिप्राय प्रकट करने में आजकलके विद्वान्

જો કે પ્રતિક્રમણની ઘણીજ ટીકાઓ (વ્યાખ્યાઓ) જોવામા આવે છે પરન્તુ તે સર્વ ટીકાઓમા મદ મતિવાળા ભવ્ય જીવોને બોધ થઇ શકે તેવી સરલ વ્યાખ્યા કોઇ જોવામા આવતી નથી એવો મનમા વિચાર કરીને કોમલબુદ્ધિવાળાઓને વિના વિશેષ પરિશ્રમે શીઘ્ર અર્થજ્ઞાન કરાવવા મે સૂત્રોના આશયને ધ્યાનમા રાખીને આ આવશ્યક સૂત્રની મુનિતોષણી નામની ટીકા બનાવી છે

આ ટીકામા વિષયોનો સગ્રહ પ્રામાણિક શાસ્ત્રોમાથી કરવામા આવ્યો છે, કારણ કે વિષયોનો સગ્રહ કર્યા વિના પ્રાચીન મહર્ષિઓના અભિપ્રાયો

यितु न प्रभवेत् प्रत्युत समूल शीर्येत। एव चाऽऽत्मनो निस्सहायाऽवस्था माभूदित्येतदर्थं प्रतिक्रमणमेव शरणीकुर्वाणैः क्रियाऽऽचरणपरायणान्त करणैरवश्य भवितव्य भव्यैः, येन ऐहिकाऽऽमुष्मिकसुखान्यनुभवितुमर्हताऽधिगम्येत।

प्रतिक्रमणाऽपरपर्यायमिदमावश्यकमवश्यमनुष्ठेय निजव्रतमखण्डीकर्तुकामेन साधुना। अनुष्ठान चेदमितिकर्त्तव्यतापरिज्ञानमन्तरेणाऽसम्भवि, तच्च (इतिकर्त्तव्यतापरिज्ञान) गूढार्थकाना सूत्राणा सरलव्याख्ययैव सम्भवति सुकुमारमतीनामिदानीन्तनजनानाम्।

दुःखरूपी कडुवा फल देने में समर्थ न हो सके, बल्कि शिथिल होता जाय।

आत्मा निस्सहाय न हो इसलिए प्रतिक्रमण की शरण में जानेवाले भव्यो को अन्तःकरणसे क्रिया करने में परायण अवश्य होना चाहिए, जिस से इस लोक और परलोक-सम्बन्धी सुखों की प्राप्ति हो सके।

यह प्रतिक्रमण, दूसरा नाम आवश्यक अपने व्रतों को अखण्डित रखने वाले साधु को अवश्य करना चाहिए। यह अनुष्ठान कर्त्तव्यज्ञान के विना नही हो सकता। आजकलके अल्प बुद्धिवालों को कर्त्तव्यज्ञान तब ही हो सकता है, जब गूढ अर्थवाले सूत्रों की सरल व्याख्या कर दी जाय।

નિસ્સાર થઈ જાય, જેથી દુ ખ રૂપી કડવા ફળ આપવા સમર્થ થઈ શકે નહિ અને શિથિલ થઈ જાય

આત્મા નિ સહાય ન થઈ જાય એટલા માટે પ્રતિક્રમણના શરણમા જવા વાળા ભવ્ય જીવોએ ક્રિયા કરવામા પરાયણ અ ત કરણવાળા અવશ્ય થવુ જોઈએ, જેથી આ લોક અને પરલોક સ બ ધી સુખોની પ્રાપ્તિ થઈ શકે

આ પ્રતક્રિમણુ કે જેનુ નામ આવશ્યક છે તેને પોતાના વ્રત રૂપ ગણીને અખ ડિત વ્રત ધારણ કરવાવાળા સાધુઓએ અવશ્ય કરવુ જોઈએ

આ અનુષ્ઠાન કર્તવ્યજ્ઞાન વિના થઈ શકતુ નથી આજકાલના અલ્પબુદ્ધિ વાળાઓને કર્તવ્યજ્ઞાન ત્યારેજ થાય છે કે જ્યારે ગૂઢ અર્થવાળા સૂત્રોની સરલ વ્યાખ્યા કરી આપવામા આવે

॥ वीतरागायनमः ॥



॥ अथाऽऽवश्यकसूत्र सटीकम् ॥

सिरिवद्धमाणदेवं, जिणणाहं कम्मपडलमलरहियं
भीमभवगहणविब्भम,-भयत्तमणजीवमग्गणेयारं ॥१॥
लद्धिमंतं महातेयं, जिणसासणदीवयं ।
चउण्णाणसमावन्नं नच्चा गणहरं वरं ॥२॥
सद्दत्थसारसंजुत्तं, घासीलालो मुणी वई ।
वित्तिमावस्सयस्साहं, कुणेमि मुणितोसणिं ॥३॥

कर्ममलसे रहित, संसाररूप भयङ्कर अटवी में परिभ्रमण के भय से व्याकुल भव्य जीवों को मोक्षमार्ग पर लाने वाले जिनेश्वर श्री वर्द्धमान स्वामीको ॥ १ ॥ तथा-जिनशासनके प्रदीपक, चार ज्ञान के धारक, 'आमोसहि' आदि लब्धियों[१] को धारण करने वाले, महा तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ श्री गणधर भगवान को नमस्कार करके ॥ २ ॥ मैं घासीलाल मुनि आवश्यक सूत्र की शब्दार्थसारगर्भित मुनि-तोषणी नामक टीका को करता हूँ ॥३॥

કર્મમલ વિનાના, સંસારરૂપી ભયંકર અટવીમાં પરિભ્રમણ કરવાના ભયથી વ્યાકુલ ભવ્ય જીવોને મોક્ષમાર્ગમાં લાવવાવાળા જિનેશ્વર શ્રીવર્ધમાન સ્વામીને (૧) તથા જિનશાસનના પ્રદીપક, ચાર જ્ઞાનને ધારણ કરવાવાળા, "आमोसहि" વગેરે લબ્ધિઓનો[१] ધારણ કરવાવાળા, મહાન તેજસ્વી સર્વશ્રેષ્ઠ શ્રી ગણધર ભગવાનને નમસ્કાર કરીને (૨) હું ઘાસીલાલ મુનિ આવશ્યકસૂત્રની શબ્દાર્થસારગર્ભિત મુનિતોષણી નામની ટીકા યથાબુદ્ધિથી કરૂં છું (૩)

[१] लब्धि स्पर्श करने से ही सब प्रकार की व्याधियों का दूर हो जाना, इत्यादि प्रकार की आत्मशक्ति को लब्धि कहते हैं ।

[१] लब्धि=સ્પર્શ કરવા માત્રથીજ દરેક પ્રકારના રોગો દૂર થઈ જાય, આવા પ્રકારની આત્મશક્તિને લબ્ધિ કહે છે

लभ्यते, तथापि यथाशक्ति पर्यालोच्य जैनागमसिद्धान्तानुसारेण कतिपये वि
अत्र स्पष्टीकृत्य प्रदर्शिताः सन्ति ।

समर्थ नहीं हो सकते। तो भी कितनेक विषय अपनी शक्ति
अनुसार विचार कर जैनसिद्धान्तानुसार स्पष्ट कर के दिखल
गये हैं।

પ્રગટ કરવામા આજકાલના વિદ્વાનો સમર્થ થઈ શકતા નથી તો પણ કેટ
વિષય પોતાની શકિત-અનુસાર વિચાર કરી જૈનસિદ્ધાતાનુસાર સ્પષ્ટ ક
બતાવ્યા છે

'खुत्तो'=कृत्वा[१] । अथवा 'तिखुत्तो' इति पाठमाश्रित्य 'त्रि कृत्वः'[२] इति सस्कृतम्, तथा च सति आदक्षिणप्रदक्षिणमिति क्रियाविशेषणतया समर्थनीयम् । 'वदामि'= वन्दे=वाचा स्तौमि रत्नाधिक, 'नमसामि'–नमस्यामि=प्रणमामि-कायेन नम्रीभवामीत्यर्थः । "सक्कारेमि"–सत्करोमि अभ्युत्थानादिना, "सम्माणेमि"–सम्मानयामि वस्त्रभक्तादिना, कीदृशम् रत्नाधिकमित्याह–"कल्लाण"-कल्याणम्–कल्यो= मोक्षः कर्म्मजनितसकलोपाधिरहितत्वात् तम् आ=समन्तान्नयति=प्रापयतीति, अथवा कल्येन=ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणेनाऽऽरोग्येण आणयति=जीवयति–ससारमोहजालानलज्वालामालावलीढान् मूढान् प्राणिनः प्रशमयतीति वा कल्याणम् । "मगल"

पूर्वक स्तुति करता हूँ, तीन वार उठ–बैठ पाच अग झुका कर नमस्कार करता हूँ, अभ्युत्थान आदि से सत्कार करता हूँ, वस्त्र भक्त (अन्न) आदि से सम्मान करता हूँ, क्योंकि आप कल्याणस्वरूप हैं, अर्थात् कल्य=मोक्ष को देने वाले, अथवा कल्य=ज्ञानदर्शन चारित्ररूप आरोग्य से जन्मजरामरणसताप-सतप्त भव्य जीवों को अपने सदुपदेशद्वारा शान्ति देने वाले हैं, और मङ्गलस्वरूप हैं, क्योंकि ससार के

નમાવીને નમસ્કાર કરૂ છુ અભ્યુત્થાન વિગેરેથી સત્કાર કરૂ છુ વસ્ત્ર ભકત (અન્ન) વિગેરેથી સન્માન કરૂ છુ કારણકે આપ કલ્યાણસ્વરૂપ છો, અર્થાત્ કલ્ય=મોક્ષ આપવાવાળા અગર કલ્ય=જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રરૂપ આરોગ્યથી, જન્મ, જરા, મૃત્યુના દુખથી તપેલા ભવ્ય જીવોને પોતાના સદ્ઉપદેશદ્વારા શાતિ આપવાવાળા છો અને મગળ

१ कृत्वे'–त्यस्य 'खुत्तो' इत्यार्पत्वात् । न च 'तिक्खुत्तो' इत्यस्य 'त्रि कृत्व' इति सस्कृतमिति वाच्यम्, सुजन्तात्कृत्वसुचो दुर्लभत्वात् । 'तिखुत्तो' इति पाठेऽपि द्वित्रिचतुर्भ्यः सुचा कृत्वसुचो वाधात्, उत्थितायाः प्रदक्षिणमित्यस्य सकर्म्मकक्रियाऽऽकाङ्क्षाया दुष्परिहरत्वाच्च । २– आर्पत्वात्कृत्वसुच एव समाधानात् ।

२—'चिती सज्ञाने' इति धातोः 'स्त्रिया क्तिन्' (पा० ३ । ३ । ९४) इति भावे क्तिन् ।

३—वर्णदृढादित्वाद्ब्राह्मणादेराकृतिगणत्वाद्वा स्वार्थे ष्यञ्' 'यस्येति च' (पा० ६ । ४ । १४८) इतीकारलोप., अत्र पक्षे 'चेइय' इत्यार्पत्वात् । यद्वा 'चिञ् चयने' इत्यस्मादेव प्राग्वत् क्तिनादौ चैत्यमिति । धातूनामनेकार्थत्वाज्ञोक्तोऽर्थः । दृष्ट हि परिचिनोतीत्यादौ चिञो ज्ञानार्थकत्वम् । उपसर्गाणा द्योतकत्वमभिमेत्य धातूनामेव तत्तदर्थप्रतिपादकत्वसिद्धान्तात् ।

इह षडध्ययनात्मकश्रमणावश्यकं प्रारीप्सितं, यस्यादौ पञ्चनमस्कारात्मकं मङ्गलं वक्ष्यमाणेभ्यो हेतुभ्यो नियमेन कर्त्तव्यमिति तदर्थं गुरोराज्ञा ग्रहीतव्या, सा च वन्दनापूर्विकेति प्रथमं गुरुवन्दनोच्यते—

॥ मूलम् ॥

तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि ॥ सू० १ ॥

॥ छाया ॥

त्रिः कृत्वा आदक्षिणप्रदक्षिणं वन्दे नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपासे मस्तकेन वन्दे ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

ति=त्रिः, त्रीन्[1] वारानित्यर्थः । आयाहिणपयाहिणं=अञ्जलिपुटं बद्ध्वा तं बद्धाञ्जलिपुटं दक्षिणकर्णमूलत आरभ्य ललाटप्रदेशेन वामकर्णान्तिकेन चक्राकारं त्रिः परिभ्राम्य ललाटदेशे स्थापनरूपम् आदक्षिणप्रदक्षिणम्।

यहां पर छह अध्ययनवाला श्रमणावश्यक सूत्र प्रारम्भ करना है, जिसके आदि में आगे कहेजाने वाले हेतुओं से पञ्चनमस्काररूप मंगल करना जरूरी है, अतएव उसके लिए गुरु महाराजकी आज्ञा लेनी चाहिए, वह आज्ञा वन्दनापूर्वक ही ली जाती है, इसलिए पहले गुरुवन्दना कहते हैं—

'तिक्खुत्तो' इत्यादि। हे गुरुमहाराज! मैं अञ्जलिपुटको तीन बार दाहिने हाथ की ओर से प्रारंभ करके फिर दाहिने हाथ की ओर तक घुमाकर अपने ललाट प्रदेश पर रखता हुआ प्रदक्षिणा

અહિં ૭ અધ્યયનવાળા શ્રમણાવશ્યક સૂત્ર પ્રારંભ કરવું છે જેની શરૂઆતમાં આગળ કહેવામાં આવનાર હેતુઓથી પંચ-નમસ્કારરૂપ મંગલ કરવું જરૂરનું છે, તે માટે ગુરૂ મહારાજની આજ્ઞા લેવી જોઇએ તે આજ્ઞા વંદનાપૂર્વક જ લેવાય છે, તે માટે પ્રથમ ગુરૂવંદના કહે છે

'तिक्खुत्तो इत्यादि' હે ગુરૂ મહારાજ! અંજલિપુટને (બે હાથજોડીને) ત્રણ વખત જમણા હાથ તરફથી આરંભીને ફરી જમણા હાથ સુધી ફેરવીને પોતાના લલાટપ્રદેશ ઉપર રાખીને પ્રદક્ષિણાપૂર્વક સ્તુતિ કરૂં છું ત્રણ વખત ઉઠી બેસી અને પાંચ અંગ

[1]–'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' इति क्रियाऽभ्यावृत्तिगणने सुच्।

इमा पट्टिका त्रिरुचार्य त्रिर्वन्दना च विधाय गुरोः सकाशात्सविनय षडावश्यकाऽऽज्ञा याचेत, तदनु–"इच्छामि ण भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे देवसियं पडिक्कमणं ठाएमि, देवसियनाणदंसणचरित्ततवअइयारचिंतणट्ठं करेमि काउस्सग्गं" इति पट्टिका पठित्वा नमस्कारमन्त्रोच्चारणपूर्वकमावश्यकं समारम्भणीयमिति नमस्कारमन्त्रमाह—

॥ मूलम् ॥

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

नमः अरिहद्भ्यः, नमः सिद्धेभ्यः, नमः आचार्येभ्यः, नम उपाध्यायेभ्यः, नमो लोके सर्वसाधुभ्यः ॥ सू० २ ॥

इस (तिक्खुत्तो के) पाठ को तीन वार पढकर एव तीन वार ऊठ बैठ कर पचाग–नमन–पूर्वक वन्दना करके विनयपूर्वक गुरुसे आवश्यक–प्रतिक्रमण करने की आज्ञा मागे। बादमें 'इच्छामि ण भंते' का पाठ पढकर पहले नमस्कार–मन्त्रोचारणपूर्वक आवश्यक का आरम्भ करना चाहिए, अतएव पहले नमस्कार मन्त्र कहते हैं—

'नमो अरिहंताणं' चार घनघातिक कर्मों का नाश करके अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त करने वाले, अरिहन्त को नमस्कार हो। यहाँ नमः शब्द का अर्थ नमस्कार होता है, वह दो प्रकार का है–(१) द्रव्यनमस्कार और (२) भावनमस्कार। उनमें

આ તિક્ખુત્તા ના પાઠને ત્રણ વખત ભણીને તથા ત્રણ વખત ઉઠી બેસીને પચાગ નમનપૂર્વક વદના કરીને વિનયપૂર્વક ગુરૂદેવ પાસેથી આવશ્યક–પ્રતિક્રમણ કરવાની આજ્ઞા માગવી પછી 'इच्छामि ण भंते' નો પાઠ ભણીને પ્રથમ નમસ્કાર મત્રોચ્ચારણ પૂર્વક આવશ્યકનો આરભ કરવો જોઇએ, એ માટે પ્રથમ નમસ્કાર મત્ર કહે છે 'नमो अरिहंताणं' ચાર ઘન ઘાતિક કર્મોનો નાશ કરીને અનન્ત કેવળજ્ઞાન કેવળદર્શનને પ્રાપ્ત કરવાવાળા અરિહત ભગવાનને નમસ્કાર થાય અહિં नमः શબ્દનો અર્થ

१ प्रह्वीभावार्थकात् नमधातोरौणादिकेऽसिप्रत्यये 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१–१–३७) इति पाणिनिवचनेनाव्ययत्वम्।

म=भवसम्बन्धि बन्धन, तन्निबन्धन दुःखं वा गालयति=नाशयतीति, यद्वा मङ्ग्यते=प्राप्यते स्वर्गो मोक्षो वाऽनेनेति मङ्गः=धर्मः, त लाति=गृह्णातीति मङ्गलः= श्रुतचारित्रधर्मधारकस्तम्। "देवय" देवतैव दैवत धर्मदेवमित्यर्थः । 'चेइय' चैत्यम् , चेतन ³चिचिः=सम्यग्ज्ञानम् , तदेव चैत्यम्⁴ । चैत्यश-दस्य ज्ञानार्थक-त्वमुक्त बोधप्राभृते कुन्दकुन्दस्वामिनाऽपि—

बुद्ध ज बोहंतो, अप्पाणं वेइयाइ अण्ण च ।
पचमहव्वयसुद्धं, णाणमय जाण चेदिहरं" ॥ इति।

राजप्रश्नीयसूत्रे मलयगिरिभिरपि—"कल्लाण मगल देवय चेइय" इत्यस्य व्याख्याया—'कल्याण'—कल्याणकारित्वात्, मगल—दुरितोपशमनकारित्वात्, दैवत=देव त्रैलोक्याधिपतित्वात्, चैत्य—सुप्रशस्तमनोहेतुत्वा'—दिति । भागवते तु चैत्यशब्देन न केवल ज्ञानमेव, अपितु पूर्णज्ञानवानात्मा गृहीतोऽस्ति, तथाहि— "अहङ्कारस्ततो रुद्रश्चित्त चैत्यस्ततोऽभवत्" (तृतीय स्कन्धे. षड्विंशतितमे अ याये श्लो. ६१) इति, विराड्रूपस्य ब्रह्मणो हृदयात् अहङ्कार उत्पन्नस्तस्माद्रुद्रस्तथा चित्त मुत्पन्न, चित्ताच्च चैत्य इत्यर्थ.। चैत्यः=क्षेत्रज्ञ., इति तट्टीकाया श्रीधरस्वामी । 'क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः' इत्यमरः । एवमेवात्रैव स्कन्धेऽध्याये च (श्लो० ७०) प्रोक्तम्—"चित्तेन हृदय चैत्य. क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा। विराट् तदैव पुरुषः सलिला-दुदतिष्ठत" इति तदस्यास्तीति चैत्यस्त¹ सम्यग्ज्ञानवन्तमित्यर्थः। चैत्यशब्दो नानार्थकः स चेहाऽप्रपञ्चितोऽपि प्रसङ्गादन्यत्र निरूपयिष्यते । 'पज्जुवासामि' पर्युपासे=सविधि सेवे । "मत्थएण वदामि' मस्तकेन=मस्तक नमयित्वेत्यर्थः, वन्दे=अभिवादये ॥ सू० १ ॥

दु'खोंका अन्त करनेवाले हैं, अथवा मङ्ग—मोक्ष प्राप्ति के साधनभूत श्रुतचारितरूप धर्म को धारण करने वाले, एव धर्मदेवस्वरूप हैं, और चैत्य अर्थात् ज्ञानवान् हैं, अतएव मनवचन काय से मै आपकी सेवा तथा शिर झुकाकर वन्दना करता हूँ ॥सू० १ ॥

સ્વરૂપ છે, કારણ કે સસારના દુખોનો અત લાવવાવાળા છે અથવા મગ=મોક્ષ-પ્રાપ્તિના સાધનભૂત શ્રુત—ચારિત્રરૂપ ધર્મને ધારણ કરવાવાળા એટલે કે ધર્મદેવ સ્વરૂપ છે, અને ચૈત્ય અર્થાત્ જ્ઞાનવાળા છે એટલે મન વચન અને કાયાથી હુ આપની સેવા અને મસ્તક નમાવીને વદના કરૂ છુ (સૂ० ૧)

---

१ अर्श आदित्वादच् ।

प्रातिहार्यरूपायाः[1] सेवायाः शाश्वतिकनिरतिशयसुखस्य चार्हन्ति=योग्या भवन्तीत्य-र्हन्तस्तेभ्य[2]। अथवा 'अरहद्भ्यः[3]' इतिच्छाया, रागादिनिदानभूतप्रकृष्टविषय-सम्बन्धेऽपि वीतरागत्वादिरूप भाव न रहन्ति=न त्यजन्तीत्यरहन्तस्तेभ्य इत्यर्थः। 'अरुहताण' इति पाठे 'अरोहद्भ्यः'[4] इतिच्छाया, इह पक्षे प्रक्षीणनिखिलकर्मबीजतया कदाऽप्यनुत्पद्यमानेभ्य इत्यर्थः, यदुक्तमौपपातिकसूत्रे—"बीयाण* अग्गिदड्ढाण, पुणरवि अकुरुप्पत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाण कम्मवीए दड्ढे पुणरवि जम्मुप्पत्ती न भवइ" इति। भगवन्तोऽर्हन्तोऽपि हि क्षित्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायषट्क

भव्यो को निर्भय मार्ग बताकर शिवपुरी मे पहुचाने वाले, अथवा भव्यजनों से किये जानेवाले गुणवर्णन अभिवादन आदि के तथा इन्द्रादिक देवताओं से किये हुए अष्टमहाप्रातिहार्यों से युक्त और शाश्वतिक निरतिशय सुख को पानेवाले, या (अरहद्भ्य)=रागादिके कारणभूत प्रकृष्ट विषयों का सबन्ध रहते हुए भी वीतरागत्वरूप अपने स्वभाव को कभी नहीं छोडने वाले, अथवा (अरोहद्भ्यः) कर्मबीज के दग्ध होजाने के कारण फिर से कभी जन्म नही लेने वाले अरिहन्तों को नमस्कार हो।

युक्त અને શાશ્વતિક નિરતિશય સુખને મેળવવાવાળા, અથવા (अरहद्भ्यः) રાગાદિના કારણથી ઉત્કૃષ્ટ વિષયોનો સબન્ધ રહેતા થકા પણ વીતરાગત્વ રૂપ પોતાના સ્વરૂપને ક્યારેય નહીં છોડનાર, અથવા अरोहद्भ्यः કર્મબીજ બળીજવાના કારણે ફરીથી કોઈ વખત જન્મ નહિ લેવાવાળા અરિહંતોને નમસ્કાર હો.

અરિહંત ભગવાન સ્વય ષટકાયની રક્ષા કરતા કરતા બીજાને 'मा हण मा हण' આવા પ્રકારનો ઉપદેશ દેવાવાળા તથા ભયંકર ભવપરંપરાથી ઉત્પન્ન થએલ

१ अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥१॥

२ योग्यतार्थकादकर्मकात् 'अर्ह' धातोर्लटः शत्रादेशः।

३ त्यागार्थक–'रह'–धातोः शत्रन्तस्य नञा समासः।

४– प्रादुर्भावार्थकस्य रुहधातोः शत्रन्तस्य नञा समास आर्षत्वाद्गुणा-भावश्च। व्याख्यानान्तराणि सम्भवन्त्यपि क्लिष्टत्वादनुपयुक्तत्वाच्चोपेक्षितानि।

* छाया–बीजानामग्निदग्धानां पुनरप्यङ्कुरोत्पत्तिर्न भवति, एवमेव सिद्धानां कर्मबीजे दग्धे पुनरपि जन्मोत्पत्तिर्न भवति।

॥ टीका ॥

'णमो अरिहंताणं, नमोऽरिहद्भ्यः=घनघातिकर्मचतुष्टयहन्तृभ्यः । अत्र 'नमः' शब्दस्य द्रव्य (हस्तपादादिपञ्चाङ्ग)–भाव (मानादि)–सङ्कोचार्थकनिपात रूपत्वान्मानादित्यागपुरस्सरशुद्धमनःसन्निवेशपूर्वकः पञ्चाङ्गनमस्कारोऽस्त्वित्यर्थः । नमस्कार्यानाह–'अरिहंताणं'[1] इत्यादिना ।

'अरिहद्भ्यः' अरीन्=ज्ञानावरणीय–दर्शनावरणीय–मोहनीयाऽन्तरायरूपाणि घातिकर्म्माणि घ्नन्ति=नाशयन्तीत्यरिहन्तः[2] तेभ्यः । 'अरहंताणं' इति पाठे 'अर्हद्भ्यः' इतिच्छाया, अत्र पक्षे विकटभवपरम्पराऽटवीपर्यटनपरिश्रान्ति नितान्तक्लान्त प्राणिजातं निर्भयमार्गप्रदर्शनेन तदिष्टां निर्वृतिं (मोक्ष)–पुरीं नेतुं, यद्वा भव्यजनकर्तृकगुणवर्णनाऽभिवादनादे सुरनिकरसम्पादिताऽशोकाद्यष्टक-

द्रव्यनमस्कार दो हाथ दो घुटने एक शिर, इन पांच अंगों को झुकाना । भावनमस्कार–मान आदि का परित्याग करना।

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय, इन घातिककर्मरूप शत्रुओं का नाश करने वाले, अथवा (अर्हद्भ्यः) भयङ्कर संसाररूप अटवी में वार-वार भ्रमण करने से व्याकुल

નમસ્કાર થાય છે તે બે પ્રકારના છે–(૧) દ્રવ્ય નમસ્કાર અને (૨) ભાવ નમસ્કાર એમાં દ્રવ્યનમસ્કાર બે હાથ બે ઘુંટી એક માથું આ પાંચે અંગોને ઝુકાવવા ભાવનમસ્કાર, માન વિગેરેનો પરિત્યાગ કરવો

જ્ઞાનાવરણીય દર્શનાવરણીય મોહનીય અને અંતરાય આ ઘાતિક કર્મરૂપ શત્રુઓનો નાશ કરવાવાળા, અથવા 'અર્હદ્ભ્યઃ' ભયંકર સંસારરૂપ અટવીમાં વારવાર ભ્રમણ કરવાથી વ્યાકુલ ભવ્યોને નિર્ભયમાર્ગ બતાવીને શિવપુરીમાં પહોંચાડવાવાળા, અથવા ભવ્ય લોકોથી કરાએલા ગુણવર્ણન અભિવાદન વિગેરેના તથા ઇંદ્રાદિક દેવતાઓએ કરેલા અષ્ટમહાપ્રાતિહાર્યોથી

१ निरुक्तोक्तरीत्या सत्यादिशब्दवत्पृषोदरादित्वात्साधना बोध्या। उक्तञ्च– "वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ । धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्" इति, "यावतामेव धातूनां लिङ्गं रूढिगतं भवेत् । अर्थश्चाप्यभिधेयस्य,– स्तावद्भिर्गुणविग्रहः" इति च ।

प्रातिहार्यरूपायाः[1] सेवायाः शाश्वतिकनिरतिशयसुखस्य चार्हन्ति=योग्या भवन्तीत्यर्हन्तस्तेभ्य'[2]। अथवा 'अरहद्भ्यः[3]' इतिच्छाया, रागादिनिदानभूतप्रकृष्टविषयसम्बन्धेऽपि वीतरागत्वादिरूप भाव न रहन्ति=न त्यजन्तीत्यरहन्तस्तेभ्य इत्यर्थः। 'अरुहताण' इति पाठे 'अरोहद्भ्यः'[4] इतिच्छाया, इह पक्षे प्रक्षीणाखिलकर्मबीजतया कदाऽप्यनुत्पद्यमानेभ्य इत्यर्थः, यदुक्तमौपपातिकसूत्रे—"बीयाण* अग्गिदड्ढाण, पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाण कम्मबीए दड्ढे पुणरवि जम्मुप्पत्ती न भवइ" इति। भगवन्तोऽर्हन्तोऽपि हि क्षित्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायषट्क

भव्यों को निर्भय मार्ग बताकर शिवपुरी में पहुचाने वाले, अथवा भव्यजनों से किये जानेवाले गुणवर्णन अभिवादन आदि के तथा इन्द्रादिक देवताओं से किये हुए अष्टमहाप्रातिहार्यों से युक्त और शाश्वतिक निरतिशय सुख को पानेवाले, या (अरहद्भ्य')=रागादिके कारणभूत प्रकृष्ट विषयों का सबन्ध रहते हुए भी वीतरागत्वरूप अपने स्वभाव को कभी नही छोडने वाले, अथवा (अरोहद्भ्यः) कर्मबीज के दग्ध होजाने के कारण फिर से कभी जन्म नहीं लेने वाले अरिहन्तों को नमस्कार हो।

યુક્ત અને શાશ્વતિક નિરતિશય સુખને મેળવવાવાળા, અથવા (अरहद्भ्यः) રાગાદિના કારણથી ઉત્કૃષ્ટ વિષયોનો સબન્ધ રહેતા થકા પણ વીતરાગત્વ રૂપ પોતાના સ્વરૂપને ક્યારેય નહી છોડનાર, અથવા अरोहद्भ्यः કર્મબીજ બળીજવાના કારણે ફરીથી કોઈ વખત જન્મ નહિ લેવાવાળા અરિહતોને નમસ્કાર હો.

અરિહત ભગવાન સ્વય ષટ્કાયની રક્ષા કરતા કરતા બીજાને 'मा हण मा हण' આવા પ્રકારનો ઉપદેશ દેવાવાળા તથા ભયકર ભવપરપરાથી ઉત્પન્ન થએલ

१ अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासन च।
भामण्डल दुन्दुभिरातपत्र, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥१॥

२ योग्यतार्थकादकर्मकात् 'अर्ह' धातोर्लट॰ शत्रादेशः।

३ त्यागार्थक-'रह'-धातोः शत्रन्तस्य नञा समास॰।

४— प्रादुर्भावार्थकस्य रुहधातो शत्रन्तस्य नञा समास आर्षत्वाद्गुणाभावश्च। व्याख्यानान्तराणि सम्भवन्त्यपि क्लिष्टत्वादनुपयुक्तत्वाच्चोपेक्षितानि।

* छाया—बीजानामग्निदग्धाना पुनरप्यङ्कुरोत्पत्तिर्न भवति, एवमेव सिद्धाना कर्मबीजे दग्धे पुनरपि जन्मोत्पत्तिर्न भवति।

रक्षन्तरतदर्थे 'मा हण मा हण' इत्यादिवाक्यैः सर्वानुपदिशन्ति भीष्मभवपरम्परो-द्भूतप्रभूतभीतिभूमभीरुभूताऽद्भुतानन्दसन्दोहकन्दलीयमानाऽपुनरावृत्तिविशिष्टनिर्वृतिपुर्यवितथपथं प्रदर्शयन्तीति चैषा नमस्करणीयत्वमर्हताम् ।

'णमो सिद्धाण' इति, नमः सिद्धेभ्यः, असैत्सुः=साधनीयाऽखिलकार्यसाधनेन परिनिष्ठितार्था अभूवन्निति, असेधिषु[१]=शाश्वतिकतयाऽपवर्गम् अनन्तचतुष्टयरूपं मङ्गलं च प्रापन्निति वा सिद्धाः ॥ सिद्धत्वं च सिद्धानां न दीपनिर्वाणवदभावरूपं किन्तु सद्भावस्वरूपमत एव चक्रवर्त्यादिमनुष्यानारभ्याऽनुत्तरविमानपर्यन्तैर्देवैरपि

अरिहन्त भगवान स्वयं षट्काय की रक्षा करते हुए दूसरों को 'मा हण मा हण' इस प्रकार का उपदेश देने वाले, तथा भयङ्कर भवपरम्परासे उत्पन्न महाभय के कारण व्याकुल भव्यों को अलौकिक आनन्द के मूलभूत, पुनरावृत्ति (आवागमन)-रहित मोक्षपुरी के पवित्र मार्ग को दिखलाने वाले है, अतएव ये नमस्कार के योग्य हैं (१) ।

'नमो सिद्धाण' समस्त कर्त्तव्यों की सिद्धि होने के कारण कृतकृत्य, तथा शाश्वतिक मोक्षसुख और अनन्तचतुष्टयरूप मङ्गल को प्राप्त हुए सिद्धों को नमस्कार हो ।

सिद्धों का सिद्धत्व दीपक बुझ जाने की तरह अभावस्वरूप नहीं, किन्तु सद्भावस्वरूप है, अतएव मनुष्यों मे चक्रवर्ती से लेकर

મહાભયના કારણથી વ્યાકુલ ભવ્યોને અલૌકિક આનન્દના મૂળભૂત, પુનરાવૃત્તિ (આવાગમન)-રહિત મોક્ષપુરીના પવિત્ર માર્ગને બતાવવાવાળા છે, એટલે એ નમસ્કાર કરવાને યોગ્ય છે

'नमो सिद्धाण' સકલ કાર્યની સિદ્ધિ હોવાથી કૃતકૃત્ય તથા શાશ્વતિક મોક્ષ સુખ અથવા અનંત-ચતુષ્ટયરૂપ મંગલને પ્રાપ્ત કરેલા સિદ્ધોને નમસ્કાર હો

સિદ્ધોનું સિદ્ધત્વ દીપકના ઠરી જવાની જેમ અભાવસ્વરૂપ નહિ પણ સદ્ભાવ સ્વરૂપ છે એટલા માટે મનુષ્યોમા ચક્રવર્તીથી લઈને અનુત્તર વિમાન સુધી દેવતા ઓને પણ દુર્લભ તથા બીજા સુખોની અપેક્ષાએ એના સુખો અનંત ગણા છે, કારણ

१-'षिधु संराद्धौ' इत्यस्मादनिटो दैवादिकात्, 'षिध गत्याम्' इत्यस्मात्सेटो भौवादिकात्, 'षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च' इत्यस्माद्वेटो भौवादिकाद्वा कर्त्तरि क्त. । व्युत्पत्त्यन्तराणि यथामत्यूहनीयानि ।

सुदुर्लभ सुखान्तरानन्तगुणित भवति तेषा सुख, सर्वकालसमयात्वच्छिन्नतया समावितमनन्तवर्गवर्गवर्गित लोकालोकाकाशयोरनन्तमदेशेषु परिपूर्णतयाऽनन्तमपि कदाचित्स्याद्देवादिसुख, तथापि न जातु सिद्धसुखेन तुलाधृत, तस्यापरिच्छिन्नपरिमाणतया क्वचिदपि समावेशाभावात् । तच्चोक्तमौपपातिकसूत्रे—

"णवि* अत्थि माणुसाणं, तं सोक्ख णवि य सव्वदेवाण ।
ज सिद्धाण सोक्ख, अव्वावाहं उवगयाणं ॥ १३ ॥
ज देवाण सोक्ख, सव्वद्धापिंडिय अणतगुण ।
ण य पावइ मुत्तिसुह, णताहि वग्गवग्गूहि ॥ १४ ॥
सिद्धस्स सुहो रासी, सव्वद्धापिडिओ जइ हवेज्जा ।
सोऽणतवग्गभइओ सव्वागासे ण माइज्जा ॥ १५ ॥" इति ।

अनुत्तर विमान पर्यन्त देवों को भी दुर्लभ, तथा अन्य सुखों की अपेक्षा इनका सुख अनन्त गुण है, कारण यह कि देवादिकों के सुख कदाचित् सर्वकाल में स्थायी अनन्त वर्गों के भी वर्गों से गुणित तथा लोक-अलोकरूप दोनों आकाशों के अनन्त प्रदेशों में भरपूर होकर अनन्त भी हो जायँ तो भी सिद्धों के सुखों की बराबरी नहीं हो सकती, क्योंकि अपरिमित होने से सिद्धों के सुख अपार है ।

એ છે કે દેવાદિકોના સુખો કદાચિત્ સર્વકાળમા સ્થાયી અનત વર્ગોના પણ વર્ગોથી ગુણિત તથા લોક-અલોકરૂપ બન્ને આકાશોના અનત પ્રદેશોમા ભરપૂર થઈને અનત પણ થઈ જાય તો પણ સિદ્ધોના સુખોની બરાબરી થઈ શકતી નથી, કારણ કે અપરિમિત હોવાથી સિદ્ધોના સુખ અપાર છે

---

* नाप्यस्ति मनुष्याणा तत्सौख्य नापि च सर्वदेवानाम् ।
यत्सिद्धाना सौख्यम् , अव्याबाधमुपगतानाम् ॥१३॥
यद्देवाना सौख्य, सर्वाद्धापिण्डितमनन्तगुणम् ।
न च प्राप्नोति मुक्तिसुख, अनन्ताभिर्वर्गवर्गिताभि (अद्धाभिः) ॥१४॥
सिद्धस्य सौख्यराशि', सर्वाद्धापिण्डितो यदि भवेत् ।
सोऽनन्तवर्गभक्त. सर्वाकाशे न मायात् ॥ १५ ॥ इतिच्छाया ।

एतेनैर नमस्करणीयत्वमपि सिद्धाना सिद्धम्, अविनश्वरानन्तज्ञानदर्शन सुखवीर्याक्षयस्थितिप्रभृतिप्रगुणगुणगणगुम्फिताङ्गतया ध्यानाग्निशाङ्ग्यात्मा नन्दोद्रेकोद्भावकत्वेनोपकारित्वात् ।

'णमो आयरियाण' इति, नम आचार्येभ्यः, आ=समन्तात् मर्यादया वा चर्यन्ते परिचर्यन्ते शिष्यादिभिरित्याचार्याः[१] । आचार=ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्यरूप ग्राहयन्तीति, आचिन्वन्ति=वर्द्धयन्ति शिष्याणा ज्ञानादीनीति, आचारयन्ति=सम्पा दयन्ति शिष्यैरागमोक्तविधीनिति वाऽऽचार्याः[२] । अथवा आ=मर्यादया चरन्ति= गच्छन्तीति, आचारैर्वा चरन्तीत्याचार्याः[३] । यद्यपि शिल्पाचार्य-कलाचार्य-

सिद्धों को इसलिये नमस्कार किया गया है कि ये अपने अविनाशी अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, अनन्त अक्षय स्थान आदि उत्कृष्ट गुणोंसे आत्मानन्द के उद्भावक होकर भव्य जीवों के उपकारक हैं। (२)

'नमो आयरियाण' आ=मर्यादापूर्वक शिष्यों से सेवित अथवा शिष्यों को ज्ञान दर्शन चारित्र तप तथा वीर्यरूप आचार की शिक्षा देनेवाले, या उनके ज्ञानादि आचार को बढानेवाले, अथवा ज्ञानाचार आदि की मर्यादामे चलनेवाले आचार्य को नमस्कार हो।

यों तो शिल्पाचार्य कलाचार्य और धर्माचार्य के भेदसे

સિદ્ધોને એટલા માટે નમસ્કાર કરવામા આવેલ છે કે એ પોતાના અવિનાશી અનતજ્ઞાન, અનતદર્શન, અનત સુખ, અનતવીર્ય, અનત અક્ષયસ્થાન વિગેરે ઉત્તમ ગુણોથી આત્મિક આનદના ઉદ્ભાવક થઈને ભવ્ય જીવો માટે ઉપકારક છે

(૨) 'नमो आयरियाण' 'आ'=મર્યાદાપૂર્વક શિષ્યોથી સેવાએલા અથવા શિષ્યોને જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, તપ તથા વીર્યરૂપ આચારની શિક્ષા દેવાવાળા અથવા તેમના જ્ઞાનાદિ આચારને વધારવાવાળા અથવા જ્ઞાનાચાર વિગેરેની મર્યાદામા ચાલવાવાળા આચાર્યને નમસ્કાર થાય

એમ તો શિલ્પાચાર્ય કલાચાર્ય અને ધર્માચાર્યના ભેદથી આચાર્યના

१ आङुपसर्गपूर्वकात् चरधातो कर्मणि ण्यत् उपधावृद्धि ।

२ सत्यादिशब्दवन्निरुक्तोक्तरीत्या पृषोदरादिपाठात्पदसिद्धि ।

३ आङुपसर्गपूर्वकात् चरधातोर्बाहुलकात्कर्त्तरि ण्यत्प्रत्यय ।

धर्माचार्यभेदेनाऽऽचार्यत्रैविध्य तथाऽप्यर्हत्सिद्धसाहचर्यान्नमःपदसान्निध्याच्चात्र धर्माचार्याणामेव ग्रहणम्। तत्त्वं[1] च सूत्रार्थज्ञातृत्वार्थवाचकत्व-गच्छमेधीभूतत्व-गणचिन्तारहितत्व-स्त्रीकथा-राजकथा-देशकथा-भक्तकथा-सम्यक्त्वशैथिल्य-कथावर्जकत्व, तथा नवविधब्रह्मचर्यगुप्तिधारकत्व-पञ्चेन्द्रियसंवरणकारकत्व-कषायचतुष्टयरहितत्व-पञ्चमहाव्रतोपेतत्व- पञ्चविधाचारपालकत्व- पञ्चसमितिसमितत्व-गुप्तित्रयगुप्तत्वरूपषट्त्रिंशद्गुणवत्त्व, सारणा-वारणा-धारणा - नोदना - प्रतिनोदनावत्त्व च। तत्र सारणा=विस्मृतसामाचारिकेभ्यो मुनिभ्यः, 'मुने! भवतेद

आचार्य के तीन भेद हैं, तो भी 'अरिहंत' 'सिद्ध' तथा 'नमो' पद के साहचर्य से यहा पर धर्माचार्य का ही ग्रहण है। जो सूत्रार्थ को जाने, शिष्यों को प्रवचन का मर्म समझावे, गच्छमें मेढी (खलिहान का खभा) समानहो, गण की चिन्ता से रहित हो, सम्यक्त्व को शिथिल करनेवाली कथा का वर्जन करे, तथा नौ वाड ब्रह्मचर्यधारण (९), पांच इन्द्रियों को जीतना (१४), चार कषायो का परित्याग (१८), पाच महाव्रतों (२३) और पांच आचारों का पालन (२८) पाच समिति (३३) और तीन गुप्तियों का धारण (३६), इन छत्तीस गुणों से तथा सारणा, वारणा, धारणा, चोयणा, पडिचोयणा सें युक्त हो।

उनमें सारणा-प्रमादवश सामाचारीमें भूले हुए मुनिको

ત્રણ ભેદ છે તો પણ 'अरिहंत' 'सिद्ध' તથા 'नमो' પદના સાહચર્યથી અહિંયા ધર્માચાર્યનું જ ગ્રહણ છે જેઓ સૂત્રના અર્થને જાણે શિષ્યોને પ્રવચનનું રહસ્ય સમજાવે ગચ્છમા મેધિ સમાન ગણની ચિંતાથી રહિત હોય સમ્યકત્વ શિથિલ થાય એવી કથાનું વર્જન કરે તથા નવવાડ બ્રહ્મચર્યનું પાલન, (૯) પાચે ઈંદ્રિયોને જીતવી (૧૪) ચારે કષાયોનો ત્યાગ (૧૮) પાચ મહાવ્રતો (૨૩) તથા પાચ આચારોનું પાલન (૨૮) પાચ સમિતિ (૩૩) અને ત્રણ ગુપ્તિઓનું ધારણ કરવુ આ છત્રીસ (૩૬) ગુણોથી તથા સારણા, વારણા, ધારણા, ચોયણા અને પડિચોયણાથી યુકત હોય

તેમા સારણા=પ્રમાદથી સામાચારીમા ભૂલેલા મુનિને યોગ્ય જ્ઞાન આપવુ

१ धर्माचार्यत्वम्,

सम्यद्नानुष्ठितमेव कर्त्तव्य'-मित्यादिरीत्योपदेशदानम्। वारणा=कुसङ्गति प्रभृतिप्रवृत्तशिष्यप्रतिषेधनम् 'एव न कदापि कर्त्तव्य'-मिति, इयञ्च[१] द्विविधा द्रव्यतो भावतश्च, यथा कश्चित्प्रौढश्चिकित्सको [२]चिचिकित्सकान् कांश्चिद्रोगिणो वारयति-'युष्माभिरोपथ्यनुकूलपथ्याहारादिना वर्त्तितव्यमितरथा रोगो दुश्चिकित्स्यः स्या'-दिति, इमं चिकित्सकहितोपदेशं प्रेम्णा श्रुत्वा ये तथा पथ्येन वर्त्तन्ते ते ततो रोगान्मुक्त्वा सुखिनो भवन्ति, ये च जिह्वालोलुपिनो वैद्यवचनमनादृत्य यथारुचि विदधते ते तेनैवाऽपथ्यसेवनेन गदद्दलितदेहा निरुपाया मृत्युमुखं प्रविशन्ति,

उचित शिक्षा देना। वारणा=अकृत्य सेवनसे रोकना। यह दो प्रकारकी है। (१) द्रव्यवारणा और (२) भाववारणा, उनमें द्रव्यवारणा जैसे-कोई वैद्य रोगी को कहता है-'अमुक दवामें अमुक अमुक वस्तु पथ्य है इसका सेवन करो और अमुक अमुक वस्तु कुपथ्य है इसे छोडो, नही तो रोग दूर नहीं होगा' इत्यादि, जो रोगी वैद्य के इस वचन को हितबुद्धि से सुनकर इसके अनुकूल पथ्य सेवन करता है वह उस रोग से मुक्त हो कर सुख को प्राप्त करता है, और जो वैद्य के वचन का अनादर कर अपनी इच्छासे वर्त्तता है वह नाना प्रकार के कष्टों को भोगता हुआ मृत्यु तक को भी प्राप्त हो जाता है।

વારણા=નહિ કરવા લાયક કામથી રોકવું તે બે પ્રકારની છે (૧) દ્રવ્યવારણા અને (૨) ભાવવારણા

દ્રવ્યવારણા— જેમ કોઇ વૈદ્ય રોગીને કહે કે 'અમુક દવામા અમુક વસ્તુ ખાવા લાયક છે તેનું સેવન કરો અને અમુક વસ્તુ ખાવા લાયક નથી તેથી તેને છોડો નહિતર રોગ મટશે નહિ' વિગેરે, જે દર્દી વૈદ્યનું આ વચન હિત-બુદ્ધિથી સાભળીને તેને અનુકૂળ યોગ્ય પથ્યનું સેવન કરે છે તે તેના રોગથી છુટીને સુખ મેળવે છે, અથવા જે વૈદ્યનું વચન પાળ્યા વિના પોતાની મરજી પ્રમાણે વર્તે છે તે અનેક પ્રકારના દુખોને ભોગવતો થકો મૃત્યુ સુધી પહોચી જાય છે

१ वारणा।

२ सशयालून्।

सैषा द्रव्यवारणा, भाववारणा तु दृष्टान्तस्यैवोपनयो यथा–काँश्चित्कर्मरोगग्रस्तॉस्ततो मुक्तिकामान् प्राणिन आचार्यवैद्यो वारयति–'युष्माभिः सर्वदा प्रवचनौषधग्रहणपूर्वकं ज्ञानाचारादिपथ्यसेवकैर्भवितव्यमितरथा प्रमादादिरोगोऽयं दुश्चिकित्स्यः स्या'दिति, तेषु ये तथा ज्ञानाचारादिपथ्यपालनेन वर्त्तन्ते ते तस्माद्रोगाद्विमुच्य सुखमश्नुवते, ये चेन्द्रियारामाः कामभोगादिरूपमपथ्यं न त्यजन्ति ते भूयो भूयो जन्म–जरा–मरणानि प्राप्नुवन्तीति। धारणा=विषयान्तरनिवृत्तिपुरस्सरं मनसः संयममार्गे स्थिरीकरणम्। नोदना (चोयणा)=सामाचारीतो बहिः प्रवर्त्तमानानां सामाचारीं पालयितुं प्रवर्त्तना। प्रतिनोदना (पडिचोयणा) च

भाववारणा–दृष्टान्त का उपनय स्वरूप है, जैसे कर्मरोगसे पीडित मोक्षाभिलाषी प्राणियोंको आचार्यरूप वैद्य उपदेश देते है–'इस प्रवचनरूप औषध में ज्ञानाचार आदि पथ्य है इस का सेवन करना चाहिये और विषय भोगादि कुपथ्य है उसे छोडना चाहिये, अन्यथा कर्मरोग का मिटना असम्भव है' इत्यादि, जो इस वचन के अनुसार नियमसे चलता है वह उस कर्म रोग से मुक्त होकर शिवसुख को पाता है, और जो आचार्य के वचन का अनादर कर स्वच्छन्द प्रवृत्ति करता है वह नाना प्रकार के दुःखों को भोगता हुआ वारवार जन्म जरा मरण पाता है।

धारणा–मनको अन्य २ विषयों से हटा कर संयम मार्ग मे स्थिर करना। चोयणा=सामाचारी से बाहर प्रवृत्ति करने वालों को

ભાવવારણા—દૃષ્ટાંતનું ઉપનય સ્વરૂપ છે જેવી રીતે કર્મજન્ય રોગથી પીડિત મોક્ષાભિલાષી પ્રાણિઓને આચાર્યરૂપ વૈદ્ય ઉપદેશ આપે છે 'આ પ્રવચનરૂપ ઔષધમા જ્ઞાનાચાર આદિ પથ્ય છે તેનુ સેવન કરવુ જોઇએ અને વિષયભોગ વિગેરે કુપથ્ય છે તેને છોડી દેવા જોઇએ નહિતર કર્મજન્ય રોગ મટવા કઠિન છે' ઇત્યાદિ જે આ વચન અનુસારે નિયમથી ચાલે છે તે કર્મરોગથી મુક્ત થઈને શિવસુખને પ્રાપ્ત કરે છે, અને જે આચાર્યના વચનોનો અનાદર કરીને સ્વચ્છન્દ પ્રવૃત્તિ કરે છે તે અનેક પ્રકારના દુખોને ભોગવતો વારવાર જન્મ જરા અને મરણ પામે છે

ધારણા=મનને બીજા–બીજા વિષયોમાથી હઠાવીને સયમમાર્ગમા સ્થિર કરવુ ચોયણા=સામાચારીથી બહાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળાને ફરીથી સામાચારીમા પ્રવૃત્ત

पौनःपुन्येन सामाचारीस्खलितानां धिग्धिगित्यादिपरुषभर्त्सनापूर्वकमपगाढप्रेरणा। आचार्यस्य 'गणी'-त्यपि नाम, गणः=साधुसमुदायः सोऽस्त्यस्येति व्युत्पत्तेर्गणी,[1] तस्य गणिन सम्पदः प्रसङ्गतो लक्ष्यन्ते, ता अष्टौ—(१) आचारसम्पत्, (२) श्रुतसम्पत्, (३) शरीरसम्पत्, (४) वचनसम्पत्, (५) वाचनासम्पत्, (६) मति सम्पत्, (७) प्रयोगसम्पत्, (८) संग्रहसम्पच्चेति। एता अपि प्रत्येकं चतुर्विधा, त थाहि-आचारसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) संयमध्रुवयोगयुक्तत्वं, (२) जात्यादिमदर हितत्वम्, (३) अनियतविहारित्वं, (४) वृद्धवन्मनःकायनिर्विकारत्वं चेति।

फिर से सामाचारी में प्रवृत्त करना। पडिचोयणा=वारवार सामाचारी से स्खलितों को रूक्ष वचनों से फटकार कर सामाचारी में प्रवृत्त करना।

आचार्य को गणी भी कहते हैं, उनकी आठ संपदाएँ हैं—

(१) आचारसम्पदा, (२) श्रुतसम्पदा, (३) शरीरसम्पदा, (४) वचनसम्पदा, (५) वाचनासम्पदा, (६) मतिसम्पदा, (७) प्रयोगसम्पदा (८) संग्रहसम्पदा।

[१] आचारसम्पदा के चार भेद हैं— (१) चारित्रमें निरन्तर समाधियुक्त रहना, (२) जात्यादिमद का परित्याग (३) अप्रतिबन्ध विहार, (४) वृद्ध के समान इन्द्रियादिविकार रहित होना।

કરવા પડિચોયણા= વારવાર સામાચારીમાં ભૂલ કરનારને રૂક્ષ વચનોથી ફિટકારીને સામાચારીમાં પ્રવૃત્ત કરવા

આચાર્યને ગણી પણ કહે છે, આચાર્યની આઠ સંપદા છે (૧) આચાર સંપદા, (૨) શ્રુતસમ્પદા, (૩) શરીરસંપદા, (૪) વચનસંપદા, (૫) વાચના સમ્પદા, (૬) મતિસમ્પદા, (૭) પ્રયોગસંપદા, (૮) સંગ્રહસમ્પદા

(૧) આચારસમ્પદાના ચાર ભેદ છે-(૧) ચારિત્રમાં હંમેશાં સમાધિ-યુક્ત રહેવું (૨) જાતિ વગેરેના મદનો પરિત્યાગ, (૩) અપ્રતિબન્ધ-વિહાર, (૪) વૃદ્ધ સમાન ઇન્દ્રિયાદિ-વિકાર-રહિત થવુ

१ 'गणी' इत्यत्र गणशब्दात् 'अत इनिठनौ' (५।२।१५) इति पाणिनिवचनेन मत्वर्थीय इनि।

श्रुतसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) वहुश्रुतत्व, (२) परिचितसूत्रत्व, (३) परिज्ञातोत्सर्गापवादत्वम् (४) उदात्तानुदात्ताद्यनुसन्धानपूर्वकयथोचितवर्णोच्चारयितृत्व चेति। तत्र वहुश्रुतत्व-यदा यावन्ति सूत्राणि तदा तावत्सर्वपरिज्ञातृत्वम्, परिचितसूत्रत्व=स्वनामादिवत्कदाप्यविस्मृतसूत्रत्वम्। शरीरसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) समचतुरस्रसंस्थानत्वम्, (२) सम्पूर्णाङ्गोपाङ्गत्वम्, (३) प्रतिपूर्णेन्द्रियत्वम्, (४) स्थिरसंहननत्व चेति। वचनसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) आदेयवचनत्व, (२) मधुरवचनत्व, (३) मध्यस्थवचनत्व, (४) स्फुटवचनत्व चेति। वाचनासम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) पात्रकुपात्रविवेचकत्व, (२) कृतपूर्वसूत्रार्थ-

[२] श्रुतसम्पदा के चार भेद हैं— (१) जिस समय जितने सूत्र हों उन सब का ज्ञान रखना। (२) अपने नामकी तरह सूत्रों को कभी न भूलना। (३) उत्सर्ग अपवादका ज्ञान रखना। (४) उदात्त अनुदात्त आदि स्वरों के अनुसन्धान पूर्वक वर्णों का शुद्ध उच्चारण करना।

[३] शरीरसम्पदा के चार भेद— (१) समचोरस संस्थान का होना, (२) अंगउपांगों से अविकल होना, (३) सब इन्द्रियों से परिपूर्ण होना, (४) दृढ संहननका होना।

[४] वचनसम्पदा के चार भेद— (१) आदेय वचन होना, (२) मधुर वचन होना, (३) मध्यस्थ वचन होना, (४) स्फुट वचन होना।

[५] वाचना सम्पदा के चार भेद— (१) शिष्यों में पात्र

શ્રુતસમ્પદાના ચાર ભેદ છે (૧) જે સમયે જેટલા સૂત્ર હોય તે સર્વનું જ્ઞાન રાખવુ, (૨) પોતાના નામની જેમ સૂત્રોને કદી પણ નહિ ભૂલવા (૩) ઉત્સર્ગ-અપવાદનું જ્ઞાન રાખવુ, (૪) ઉદાત્ત-અનુદાત્ત આદિ સ્વરોના અનુસંધાન પૂર્વક વર્ણોનો શુદ્ધ ઉચ્ચાર કરવો

(૩) શરીરસમ્પદાના ચાર ભેદ- (૧) સમચોરસ સંસ્થાનનુ હોવુ (૨) અંગ-ઉપાંગોથી અવિકલ થવુ, (૩) સર્વ ઇંદ્રિયોથી પરિપૂર્ણપણુ (૪) દૃઢ સંહનનનું હોવુ

(૪) વચનસમ્પદાના ચાર ભેદ- (૧) આદેય વચન (૨) મધુર વચન (૩) મધ્યસ્થ વચન, (૪) સ્ફુટ વચન

(૫) વાચનાસમ્પદાના ચાર ભેદ- (૧) શિષ્યોમા પાત્ર-કુપાત્રપણાનો

परिपाकाय शिष्याय सूत्रार्थप्रदातृत्व, (३) सूत्राध्ययनार्थमुत्साहदातृत्व (४) पूर्वापरार्थसंगत्यनिपुणत्व चेति। मतिसम्पच्चतुर्द्धा यथा-(१) अवग्रहः (सामान्येन पदार्थनिर्णयः), (२) ईहा (विशेषविमर्शः), (३) अवायः (निश्चयः) (४) धारणा (कालान्तरायाविस्मरण) चेति। [1]प्रयोगसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) वादविषयकस्वसामर्थ्यज्ञान, (२) परिषत्परिज्ञान, (३) क्षेत्रपरिज्ञान, (४) वस्तुपरिज्ञान[2] चेति। संग्रहसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) गणस्थबालवृद्धादिमुनिनि

कुपात्र का विचार करना, (२) पूर्व पढाए हुए सूत्रार्थ का परिपाक होने पर आगे पढाना, (३) सूत्र पढनेके लिए उत्साह देना, (४) सूत्रार्थ की पूर्वापर संगति करने में निपुण होना।

[६] मतिसम्पदा के चार भेद— (१) अवग्रह (सामान्य रूपसे पदार्थों का निर्णय करना), (२) ईहा (विशेष रूप से जानना), (३) अवाय (पदार्थ का ठीक निश्चय करना), (४) धारणा (कालान्तर में नहीं भूलना)।

[७] प्रयोगसम्पदा के चार भेद— (१) वादमें अपने सामर्थ्यका ज्ञान रखना, (२) परिषद् का ज्ञान रखना, (३) क्षेत्र का ज्ञान रखना, (४) राजा मन्त्री आदि का ज्ञान रखना।

[८] संग्रहसम्पदा के चार भेद— (१) गणमें रहे हुए बाल

વિચાર કરવો, (૨) પ્રથમ ભણાવેલા સૂત્રના અર્થનો પરિપાક થયા પછી આગળ અભ્યાસ કરાવવો, (૩) સૂત્રનો અભ્યાસ કરવામા ઉત્સાહ આપવો, (૪) સૂત્રાર્થની પૂર્વાપર સગતિ કરવામા નિપુણ થવુ

(૬) મતિસમ્પદાના ચાર ભેદ—(૧) અવગ્રહ-સામાન્ય રૂપથી પદાર્થોનો નિર્ણય કરવો (૨) ઇહા વિશેષરૂપથી જાણવુ, (૩) અવાય-પદાર્થનો બરાબર નિશ્ચય કરવો (૪) ધારણા-કાલાન્તરમા પણ ભૂલવુ નહિ

(૭) પ્રયોગ સમ્પદાના ચાર ભેદ (૧) વાદ કરવા વખતે પોતાના સામર્થ્યનું જ્ઞાન રાખવુ, (૨) પરિષદનું જ્ઞાન રાખવુ, (૩) ક્ષેત્રનું જ્ઞાન રાખવું (૪) રાજા, મત્રી વગેરેનું જ્ઞાન રાખવુ

(૮) સગ્રહ સપદાના ચાર ભેદ—(૧) ગણમા રહેલા બાલ વૃદ્ધ આદિ

१– प्रयोगसम्पत्=वादमेधा।

२– वस्तुपरिज्ञान=राजामात्यादिपरिज्ञानम्।

र्वाहयोग्यक्षेत्रादिनिरीक्षणविषया, (२) बालग्लानादियोग्यसस्तारकादिव्यवस्था-करणविषया, (३) यथाकाल स्वाध्यायाद्यनुष्ठानविषया, (४) यथायोग्य-विनयविषया चेति। आसामष्टविधसम्पदा विस्तरतो व्याख्या मत्कृदशाश्रुत-स्कन्धसूत्रस्य टीकाया विलोकनीया।

एत एवोक्तलक्षणा आचार्याः (१) प्रवचनप्रभावकोपदेश-(२) वादाधिकरणकशा-श्वतिकजय-(३) निमित्तज्ञान-(४) तपस्वित्वा-(५) ऽञ्जनसिद्धि-(६) लब्धिसिद्धि-(७) कर्मसिद्धि-(८) विद्यासिद्धि-(९) मन्त्रसिद्धि-(१०) योगसिद्धया-(११) ऽऽगमसिद्धि-(१२) युक्तिसिद्धय-(१३) ऽभिप्रायसिद्धि-(१४) गुणसिद्धय-(१५) ऽर्थसिद्धि-(१६) कर्मक्षयसिद्धि-रूपैर्विशिष्टैः षोडशभिर्गुणैरप्युपलक्षिता

वृद्ध आदि मुनियोंके निर्वाहयोग्य क्षेत्र आदिका निरीक्षण करना, (२) बाल-ग्लान आदिके योग्य शय्या-संथारा आदि की व्यवस्था करना, (३) यथाकाल स्वाध्याय आदि करना, (४) यथायोग्य बडों का वन्दन आदि विनय करना।

ये ही उक्तगुणसम्पन्न आचार्य जब-(१) प्रवचनप्रभावक उपदेश देना, (२) वादमें सदा जय, (३) निमित्तज्ञान, (४) तपस्या, (५) अञ्जनसिद्धि, (६) लब्धिसिद्धि, (७) कर्मसिद्धि, (८) विद्यासिद्धि, (९) मन्त्रसिद्धि, (१०) योगसिद्धि, (११) आगमसिद्धि, (१२) युक्तिसिद्धि, (१३) अभिप्रायसिद्धि, (१४) गुणसिद्धि, (१५) अर्थसिद्धि, (१६) कर्मक्षयसिद्धि, इन सोलह विशेष गुणों से युक्त होते हैं तब

મુનિયોના નિર્વાહ યોગ્ય ક્ષેત્ર આદિનો તપાસ કરવો, (૨) બાલ, ગ્લાન આદિના યોગ્ય શય્યા સથારા આદિની વ્યવસ્થા કરવી, (૩) યથાસમય સ્વાધ્યાય આદિ કરવા (૪) મોટા હોય તેનો યથાયોગ્ય વિનય અને વદનાદિ કરવું

ઉપર પ્રમાણે કહેલા ગુણુથી પૂર્ણ હોય તેવા આચાર્ય જ્યારે (૧) પ્રવચન પ્રભાવક ઉપદેશ આપે છે (૨) વાદમા વિજય મેળવે છે, (૩) નિમિત્તજ્ઞાન, (૪) તપસ્યા, (૫) અજનસિદ્ધિ, (૬) લબ્ધિસિદ્ધિ, (૭) કર્મસિદ્ધિ, (૮) વિદ્યાસિદ્ધિ, (૯) મત્રસિદ્ધિ, (૧૦) યોગસિદ્ધિ, (૧૧) આગમસિદ્ધિ, (૧૨) યુક્તિસિદ્ધિ (૧૩) અભિપ્રાયસિદ્ધિ, (૧૪) ગુણસિદ્ધિ, (૧૫) અર્થસિદ્ધિ (૧૬) કર્મક્ષયસિદ્ધિ આ સોળ વિશેષ ગુણોથી યુક્ત હોય છે ત્યારે તે "યુગપ્રધાનાચાર્ય"

परिपाकाय शिष्याय सूत्रार्थप्रदातृत्व, (३) सूत्राध्ययनार्थमुत्साहदातृत्व (४) पूर्वापरार्थसांगत्यनिपुणत्व चेति। मतिसम्पच्चतुर्द्धा यथा-(१) अवग्रहः (सामान्येन पदार्थनिर्णयः), (२) ईहा (विशेषविमर्शः), (३) अवायः (निश्चयः) (४) धारणा (कालान्तरायाविस्मरण) चेति। [1]प्रयोगसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) वादविषयकस्वसामर्थ्यज्ञान, (२) परिषत्परिज्ञान, (३) क्षेत्रपरिज्ञान, (४) वस्तुपरिज्ञान[2] चेति। सग्रहसम्पच्चतुर्द्धा यथा—(१) गणस्थबालवृद्धादिमुनिनि

कुपात्र का विचार करना, (२) पूर्व पढाए हुए सूत्रार्थ का परिपाक होने पर आगे पढाना, (३) सूत्र पढनेके लिए उत्साह देना, (४) सूत्रार्थ की पूर्वापर सगति करने में निपुण होना।

[६] मतिसम्पदा के चार भेद— (१) अवग्रह (सामान्य रूपसे पदार्थों का निर्णय करना), (२) ईहा (विशेष रूप से जानना), (३) अवाय (पदार्थ का ठीक निश्चय करना), (४) धारणा (कालान्तर में नहीं भूलना)।

[७] प्रयोगसम्पदा के चार भेद— (१) वादमें अपने सामर्थ्यका ज्ञान रखना, (२) परिषद् का ज्ञान रखना, (३) क्षेत्र का ज्ञान रखना, (४) राजा मन्त्री आदि का ज्ञान रखना।

[८] सग्रहसम्पदा के चार भेद— (१) गणमें रहे हुए बाल

વિચાર કરવો, (૨) પ્રથમ ભણાવેલા સૂત્રના અર્થનો પરિપાક થયા પછી આગળ અભ્યાસ કરાવવો, (૩) સૂત્રનો અભ્યાસ કરવાને ઉત્સાહ આપવો, (૪) સૂત્રાર્થની પૂર્વાપર સગતિ કરવામા નિપુણ થવુ

(૬) મતિસમ્પદાના ચાર ભેદ – (૧) અવગ્રહ-સામાન્ય રૂપથી પદાર્થોનો નિર્ણય કરવો (૨) ઇહા વિશેષરૂપથી જાણવુ, (૩) અવાય-પદાર્થનો બરાબર નિશ્ચય કરવો (૪) ધારણા-કાલાન્તરમા પણ ભૂલવુ નહિ

(૭) પ્રયોગ સમ્પદાના ચાર ભેદ (૧) વાદ કરવા વખતે પોતાના સામર્થ્યનું જ્ઞાન રાખવુ, (૨) પરિષદનું જ્ઞાન રાખવુ (૩) ક્ષેત્રનું જ્ઞાન રાખવું (૪) રાજા, મત્રી વગેરેનું જ્ઞાન રાખવુ

(૮) સગ્રહ સપદાના ચાર ભેદ – (૧) ગણમા રહેલા બાલ-વૃદ્ધ આદિ

१– प्रयोगसम्पत्=वादमेधा।

२– वस्तुपरिज्ञान=राजामात्यादिपरिज्ञानम्।

गणधरास्तमेव परम्पराऽऽयात शिष्यानध्यापयन्ति ये ते उपाध्याया उच्यन्ते इति सारः। अपिवा आधेः=मनोव्यथाया आयः=लाभः आध्यायः, उपहतः=नाशित आध्यायो यैस्ते उपाध्यायाः=प्रवचनतत्त्वोपदेशेन मुनिहृदयसन्तोपका इत्यर्थः, अतएव नमस्कारार्हाः, ज्ञानदर्शनचारित्रयुक्तत्वाच्च ।

'णमो लोए सव्वसाहूणं' इति, नमो लोके सर्वसाधुभ्यः'। साधयन्ति साध्नुवन्ति चाऽभिलपितार्थं निर्वाणसाधकान् योगान्, यद्वा सम्यग्ज्ञानदर्शन-चारित्ररूपरत्नत्रयबलेनाऽपवर्गमिति, अथवा निरुक्तव्युत्पत्त्या भूतेषु समता ध्यायन्तीति दधत इति, मोक्षमार्गं प्रति गच्छता सहायका भवन्तीति वा 'साधव१, अत्र 'सर्व' पदेन सार्द्धद्वीपद्वयरूपलोकस्था गृह्यन्ते, ते च ते साधवश्च, यद्वा

तीर्थङ्करो से उपदिष्ट और सूत्ररूपमें गणधरो से रचित परम्परा से प्राप्त द्वादशाङ्ग के पढाने वाले, अथवा प्रवचन का पाठ देकर आधि-मनकी व्यथा के आय=प्राप्तिको उप=उपहत अर्थात् दूर करने वाले उपाध्याय को नमस्कार हो। ज्ञानदर्शनचारित्र से युक्त तथा सूत्र पढाने के कारण उपकारी होनेसे उपाध्याय नमस्कार के योग्य हैं।

'नमो लोए सव्वसाहूणं'—अभिलषित अर्थ को, निर्वाणसाधक योगो को अथवा सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप रत्नों से मोक्षको साधनेवाले, अथवा सब प्राणियों पर समभाव रखनेवाले, या मोक्षा-भिलाषी भव्यों के सहायक, तथा अढाई द्वीपरूप लोकमें रहनेवाले

કરોથી ઉપદેશાયેલા અને સૂત્રરૂપમા ગણધરોથી રચાયેલા પરમ્પરાથી પ્રાપ્ત દ્વાદશાગ નો અભ્યાસ કરાવનારા, અથવા પ્રવચનનો પાઠ આપીને આધિ=મનની વ્યથાના આય=પ્રાપ્તિને ઉપ=ઉપહત અર્થાત દૂર કરવાવાળા ઉપાધ્યાયને નમસ્કાર થાય જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રથી યુકત તથા સૂત્રનો અભ્યાસ કરાવવાના કારણે ઉપકારી હોવાથી ઉપાધ્યાય નમસ્કાર કરવા યોગ્ય છે

'नमो लोए सव्वसाहूणं'—અભિલષિત અર્થને, નિર્વાણસાધક યોગોને, અથવા સમ્યક્ જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર રૂપ રત્નોથી મોક્ષને સાધવાવાળા અથવા સર્વ પ્રાણીઓ ઉપર સમભાવ રાખવાવાળા અથવા મોક્ષના અભિલાષી ભવ્ય જીવોને સહાયક તથા અઢી દ્વીપ-રૂપ લોકમા રહેવાવાળા સર્વ

१– 'साधव' औणादिकप्रक्रियया पृषोदरादित्वाद्वा शब्दसिद्धिः ।

भवन्ति, तदा युगप्रधानाचार्या उच्यन्ते। ते चाचार्या यथा तीव्रभानौ भानावस्तमिते प्रदीपो घटपटादिपदार्थजातं स्वभासा भासयति तमश्च व्यपोहति तथा भगवति तीर्थंकरे सिद्धगतिं समाप्ते भुवनत्रयस्य तत्त्वार्थप्रकाशनेन मिथ्यात्वादिकं निजमतिभया व्यपगमयन्तीत्यतो नमस्करणीयत्वमेषाम् ।

'णमो उवज्झायाण' इति 'नम उपाध्यायेभ्यः' उप=समीपम् एत्याधीयते येभ्यस्ते[1] 'उपाध्यायाः। यद्वा उपस्य सामीप्यार्थकत्वादधीत्यस्य चाऽऽधिक्यार्थकत्वात् उप=समीपम् अधि=आधिक्येन ईयते=प्राप्यते येषा ते[2] तथा। अथवा उपाधीयते=समीपावस्थानेन स्मर्यते सूत्रतो जिनभाषितं मुनिभिर्येभ्यस्ते[3] तथा। य द्वादशाङ्गस्वरूपं स्वाध्यायमादावर्थतस्तीर्थंकरा उपदिदिशुस्तदनु च सूत्रतो

'युगप्रधानाचार्य' कहलाते हैं।

जैसे तीव्र किरणोंवाले सूर्यके अस्त हो जाने पर दीपक अपने प्रकाश से घट-पट आदि पदार्थों को प्रकाशित करता और अन्धकार को हटाता है उसी तरह तीर्थङ्कर भगवान के मोक्ष पधार जाने पर आचार्य महाराज तीनों लोक के जीवादि पदार्थोंका प्रकाश करते (स्वरूप बताते) हुए मिथ्यात्व आदि को हटाते हैं, इसलिए उपकारी होने के कारण वे वन्दन करने योग्य हैं।

'नमो उवज्झायाण'–समीपमें आये हुए मुनियों को अर्थरूपमे

કહેવાય છે.

જેવી રીતે તીવ્ર કિરણોવાળો સૂર્ય અસ્ત પામી જાય છે ત્યારે દીપક [દીવો] પોતાના પ્રકાશથી ઘટ-પટ વગેરે પદાર્થોને પ્રકાશિત કરે છે અને અંધકારને દૂર કરે છે તેવી રીતે તીર્થંકર ભગવાનના મોક્ષ ગયા પછી આચાર્ય મહારાજ ત્રણેય લોકના જીવાદિ પદાર્થોનો પ્રકાશ કરીને [સ્વરૂપ બતાવીને] મિથ્યાત્વ આદિને દૂર કરે છે એટલા માટે ઉપકારી હોવાના કારણે તેઓ નમસ્કાર કરવા યોગ્ય છે

'नमो उवज्झायाण' પોતાના સમીપમા રહેલા મુનિઓને અર્થરૂપમા તીર્થ

१–'इङ् अध्ययने' अस्मात् 'इङश्च'(३।३।२१) इति वचनेनाऽऽपादाने घञ्।
२–'यद्वा 'उपाध्याया' उपाऽधिपूर्वकात् 'इण् गतौ' अस्मात् 'अकर्त्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम्' (६।४।७८) इति वचनबलेन बाहुलकाद्वाऽधिकरणे घञ्।
३–अथवा 'इक् स्मरणे' अस्मात्पूर्वोक्तोपसर्गद्वयविशिष्टात्प्राग्वद् घञ्।

'णमो सिद्धाण णमो लोए सव्वसाहूण' इत्युभयात्मक एव नमस्कार उच्येत न तु पञ्चविधात्मक, साधुत्वावच्छिन्नतयाऽर्हदाचार्यादीना साधुष्वन्तर्भावात्, सिद्धाना च कृतकृत्यतया साधुग्रहणेनाऽग्रहणात्। न द्वितीयम्, एव सति हि 'नमो उसभस्स' 'नमो अजिअस्स' इत्यात्रैकैकशो नामग्रहणपूर्वकमेवोक्तिर्युक्ता, ततश्च नमस्काराऽऽनन्त्य प्राप्नोति, अर्हता सिद्धाना च समयभेदेनाऽऽनन्त्यात्, एवमाचार्योपाध्यायसाधूनामपीति सर्वथा पञ्चविधात्मको नमस्कारो न युज्यत इति, अत्रोच्यते–अर्हदादिषु नियमेन साधुगुणसद्भावात्साधुत्व, साधुषु त्वर्हत्त्वा-

हो चुके हैं, इसलिए साधु-पदसे ग्रहण नहीं होसकने के कारण 'नमो सिद्धाण' और अरिहन्त आचार्य उपाध्यायों में साधुपन रहने के कारण 'नमो लोए सव्वसाहूण' इतना ही कहना आवश्यक था। यदि विस्तारसे किया गया मानें तो 'नमो उसभस्स' 'नमो अजिअस्स' इत्यादि प्रकार से सब तीर्थङ्कर अरिहन्तों का, तथा 'नमो एगसमयसिद्धाण' 'नमो दुसमयसिद्धाण' इत्यादि प्रकारसे यावत् सख्यात असख्यात अनन्तसमय सिद्धों का एव आचार्यादिकों का अलग २ नाम ग्रहण करने से अनन्त भेद हो जायँगे, अत एव यह पच नमस्कार न सक्षेपसे कह सकते है और न विस्तारसे।

उत्तर–माना कि अरिहन्त आचार्य आदि भी साधु हैं परन्तु सामान्यतया साधु शब्दसे नमस्कार करने पर सिर्फ साधुनमस्कारका

પદથી ગ્રહણ નહિ થઇ શકવાના કારણે 'नमो सिद्धाण' અને અરિહત આચાર્ય ઉપાધ્યાયોમા સાધુપણુ રહેવાના કારણે 'नमो लोए सव्वसाहूण' એટલુ જ કહેવુ જરૂરી હતુ જો તમે વિસ્તારથી કહેવામા આવ્યુ છે એમ માનશો તો 'नमो उसभस्स' 'नमो अजिअस्स' ઇત્યાદિ પ્રકારથી સર્વ તીર્થ કર અરિહન્તોના તથા 'नमो एगसमयसिद्धाण' 'नमो दुसमयसिद्धाण' ઇત્યાદિ પ્રકારથી તમામ સખ્યાત અસખ્યાત અનન્તસમય સિદ્ધોના, એ પ્રમાણે આચાર્યાદિના જુદા-જુદા નામ ગ્રહણ કરવાથી અનત ભેદ થઇ જશે એ કારણથી આ પાચ નમસ્કાર સક્ષેપથી છે અથવા તો વિસ્તારથી છે એમ કહી શકાશે નહિ

ઉત્તર—માની લ્યો કે અરિહત આચાર્ય આદિ પણ સાધુ છે, પરન્તુ સામાન્ય રીતે સાધુ શબ્દથી નમસ્કાર કરવાથી માત્ર સાધુનમસ્કારનુ જ ફળ થાય

[1]सर्वस्य=सर्वज्ञस्य (अर्हतः) साधवः सर्वसाधवः । अथवा प्राकृते सर्व-सार्वशब्दयोः 'सव्व' इतिरूपसत्त्वात् सार्वस्य=सर्वज्ञस्येत्यादि प्राग्वत् तेभ्य इत्यर्थः । साधवो हि शब्दरूपगन्धरसस्पर्शपञ्चककामगुणनिवृत्ता विशुद्धचारित्रेण विविधाभिग्रहादि नियमैश्च संयुक्ताः मोक्षगुणसाधका उपदेशद्वारा सर्वप्राणिहितकारिणश्च, अतएव नमस्कारार्हाः । आह-सूत्रप्रवृत्तिर्द्विधा सक्षेपतो विस्तरतो वा, सक्षेपतो यथा-सामायिकसूत्रम्, विस्तरतो यथा-द्वादशाङ्गगणिपिटकः तत्रेद नमस्कारात्मक सूत्र किं सक्षेपमधिकृत्य वर्त्तते विस्तर वा? नाद्य, तथा सति हि

सभी या सर्वज्ञ के साधुओं को नमस्कार हो।

शब्द-रूप-गन्ध-रस और स्पर्श, इन पाच कामगुणों से निवृत्त और विशुद्ध चारित्र तथा अनेक अभिग्रहों से युक्त, एव आत्म कल्याण के लिये मोक्षगुण के साधक तथा उपदेश द्वारा प्राणी मात्र के हितकारी होने से साधु नमस्कार के योग्य है।

यहा प्रश्न उठता है कि-सूत्रकी प्रवृत्ति या तो सक्षेपसे होती है, जैसे सामायिक सूत्र, या विस्तार से-जैसे-द्वादशाङ्ग गणिपिटक, सो यह नमस्कार क्या सक्षेपसे किया गया है या विस्तारसे? यदि कहें कि सक्षेपसे किया गया है तो सिद्ध भगवान् कृतकृत्य

અથવા સર્વજ્ઞના સાધુઓને નમસ્કાર કરૂં છું.

શબ્દ-રૂપ-ગન્ધ-રસ અને સ્પર્શ આ પાચ કામગુણોથી નિવૃત્ત અને વિશુદ્ધ ચારિત્ર તથા અનેક અભિગ્રહોથી યુકત એ પ્રમાણે આત્મકલ્યાણ માટે મોક્ષ ગુણના સાધક તથા ઉપદેશ દ્વારા પ્રાણી માત્રના હિતકારી હોવાથી સાધુ નમસ્કાર કરવા યોગ્ય છે

અહિં એક પ્રશ્ન ઉઠે છે કે-સૂત્રની પ્રવૃત્તિ સક્ષેપથી હોય છે, જેવી રીતે-સામાયિક સૂત્ર અથવા તો વિસ્તારથી જેમ કે દ્વાદશાગ ગણિપિટક, તો આ નમસ્કાર સક્ષેપથી કહેવામા આવ્યો છે કે વિસ્તારથી? જો કહેશો કે સક્ષેપથી કહેવામા આવ્યો છે તો સિદ્ધ ભગવાન કૃતકૃત્ય થયેલા છે એટલા માટે સાધુ

१-देवादिशब्दस्य देवदत्तादिपरत्ववत् "विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तपदयोर्वा लोपो वाच्यः" (३।२।८८) इति कात्यायनवार्त्तिकानुशासनबलात् सर्वपद सर्वज्ञपर तेन सर्वस्य=सर्वज्ञस्येत्यर्थ ।

आह—क्रम आनुपूर्वी, सा च द्विविधा–पूर्वानुपूर्वी पश्चादानुपूर्वी च, क्रमेण प्रथममारभ्यान्तानुधावन पूर्वानुपूर्वी, व्युत्क्रमेणान्तमारभ्य प्रथमानुधावन पश्चादानुपूर्वी, तत्रायमर्हदादिनमस्कारक्रमो न पूर्वान्वयी कृतसकलकृत्याना 'सिद्धाण णमोकार करेंति' (आचा० द्वि. श्रु. १५ भा. अ.) इत्यादिनाऽर्हद्भिरपि नमस्कार्यतया सर्वाभ्य[1]र्हितत्वेन प्राक् प्रयोज्याना सिद्धानामादावनभिधानात्। नापि पश्चादानुपूर्वी, तथा सति ह्यर्हदादिपञ्चके सर्वाप्रधानभूतानादौ साधूंस्तत उपाध्यायाँस्तत आचार्यांस्ततोऽर्हतः प्रतिपाद्य सिद्धाना प्रतिपादन युज्यते न तु यथोक्त, तस्मान्नेय पूर्वानुपूर्वी नापि पश्चानुपूर्वीति ।

प्रश्न–आनुपूर्वी (क्रम) दो प्रकार की है, एक पूर्वानुपूर्वी और दूसरी पश्चादानुपूर्वी, प्रधान क्रमको पूर्वानुपूर्वी कहते हैं और अप्रधान क्रमको पश्चादानुपूर्वी, उनमें यह नमस्कार यदि पूर्वानुपूर्वी से किया गया मानें तो 'अरिहताण' से पहले 'सिद्धाण' कहना चाहिये, क्योंकि कृतकृत्य होने तथा अरिहन्तोंसे नमस्कार किये जाने के कारण सिद्ध भगवान अरिहन्तों से भी श्रेष्ठ हैं, यदि पश्चादानुपूर्वी से मानें तो सब से प्रथम साधु, तब उपाध्याय, अनन्तर आचार्य, तदनन्तर अरिहन्त, बादमें सिद्ध को नमस्कार किया जाना चाहिये, न कि उक्त रीतिसे, अतः यह नमस्कार आनुपूर्वी (क्रम) से रहित है, इत्यादि ।

પ્રશ્ન—આનુપૂર્વી [ક્રમ] બે પ્રકારની છે એક પૂર્વાનુપૂર્વી અને બીજી પશ્ચાદાનુપૂર્વી પ્રધાન ક્રમને પૂર્વાનુપૂર્વી કહે છે, અને અપ્રધાન ક્રમને પશ્ચાદાનુ પૂર્વી કહે છે, તેમા આ નમસ્કારને જો પૂર્વાનુપૂર્વીથી કરેલા છે એમ માનશો તો અરિહતાણ થી પહેલા સિદ્धાण કહેવુ જોઇએ કારણ કે કૃતકૃત્ય થવાથી તેમજ અરિહન્તોએ તેમને નમસ્કાર કરેલા છે તે કારણથી સિદ્ધ ભગવાન અરિહન્તોથી પણ શ્રેષ્ઠ છે હવે જો પશ્ચાદાનુપૂર્વીથી માનશો તો સૌથી પ્રથમ સાધુ, તે પછી ઉપાધ્યાય, અનન્તર આચાર્ય, ત્યાર પછી અરિહત અને છેવટે સિદ્ધને નમસ્કાર કરવો જોઇએ નહિ કે ઉપર પ્રથમ કહેવા પ્રમાણે એ કારણથી આ નમસ્કાર–પદ્ધતિ આનુપૂર્વી (ક્રમ)થી રહિત છે વગેરે

१–'अभ्यर्हित च' इति (का. वा १।४।१२) वचनेनाऽभ्यर्हितस्य पूर्वप्रयोगविधानात्।

दयो भजनीयाः (क्वचित्सम्भवन्ति क्वचिन्न), इति सामान्यतः साधुशब्देन नमस्कारेऽर्हन्नमस्कारजन्यस्य विशिष्टफलस्य प्राप्तिर्न जातु सम्भवति, नहि नरसामान्य नमस्कारेण राजादिनमस्कारजन्य विशिष्ट फल क्वचिदपि दृष्टचरम्। नरसामान्यग्रहणेन विशिष्टराजादिपरिज्ञानस्य तत्प्रसादस्य चैकान्तमसम्भवादिति सामान्यतो नमस्कारद्वैविध्य विशिष्टफलानुत्पादकत्वादुपेक्ष्य पञ्चविधो नमस्कार आश्रित इति सक्षेपत एवाय नमस्कारो न विस्तरत इति।

ही फल होता है, अरिहन्त आचार्य आदि के नमस्कार का नहीं, क्योंकि नमस्कार ऐसे शब्दो से किया जाता है जिनसे नमस्करणीयमें रहे हुए असाधारण गुणोंका बोध होसके, अरिहन्त आचार्य आदिमें रहे हुए गुणोका बोध अरिहन्त आचार्य आदि शब्दों से ही होसकता है, साधुशब्दों से कदापि नही! जैसे कोई यह जानकर कि राजा भी तो मनुष्य ही है, मनुष्य शब्दसे राजाको नमस्कार करना चाहे तो वह राजाके नमस्कार का फल नही प्राप्त कर सकता है, राजाके नमस्कारके लिए उसका परिचायक शब्द चाहिये, अत एव जितने शब्दों के विना विशेष–विशेष अवस्था में रहे हुए अरिहन्त सिद्ध आदिको का ग्रहण होना असम्भव था, उतने शब्दोंका ग्रहण करनेपर भी यह पच नमस्कार सक्षेपसे ही है विस्तारसे नहीं।

છે–મળે છે પણ આચાર્ય આદિના નમસ્કારનુ ફળ મળતુ નથી, કારણ કે–નમસ્કાર એવા શબ્દોથી કરવામા આવે છે કે જેના વડે નમસ્કરણીયમા રહેલા અસાધારણ ગુણોનો બોધ થઈ શકે અરિહન્ત, આચાર્ય આદિમા રહેલા ગુણોનો બોધ અરિહન્ત આચાર્ય વગેરે શબ્દોથીજ થઇ શકે છે, પરન્તુ સાધુ શબ્દથી કદાપિ થઇ શકશે નહિ જેમ કોઇ માને કે રાજા પણ મનુષ્ય છે મનુષ્ય શબ્દથી રાજાને નમસ્કાર કરવા ઇચ્છા કરે તો તે માણસ રાજાને નમસ્કાર કરવાનું ફળ પ્રાપ્ત કરી શકશે નહિ રાજાને નમસ્કાર કરવા માટે રાજાના નામનો પરિચય કરાવનાર શબ્દનોજ ઉપયોગ કરવો જોઇએ એ કારણથી જેટલા શબ્દો વિના વિશેષ–વિશેષ અવસ્થામા રહેલા અરિહત સિદ્ધ આદિ સૌનુ ગ્રહણ કરવુ અસભવ છે એટલા શબ્દોનું ગ્રહણ કરતા છતાય આ પચનમસ્કાર સક્ષેપથીજ છે, વિસ્તારથી નહિ

छद्मस्थतीर्थङ्करादिक्रममपेक्षामहे, किं तर्हि ? समुत्पन्नज्ञानदर्शनधराऽर्हदादिक्रममेव, तस्मात्तीर्थप्रवर्तकत्वाद्देशनयाऽपारसंसारपारावारोत्तारणेन भव्येभ्यः सिद्धगतिप्रदत्वाच्चार्हन्त एवाऽभ्यर्हन्तीत्येषामेव युक्तः प्रथमो नमस्कारः ।

ननु तर्ह्याचार्योपदेशतोऽपि कदाचिद्भव्यैरर्हतामवगतेराचार्यादिरेव क्रमो विधेयो नार्हदादिः, न च तथा विहितोऽस्ति, तस्माद् यो यस्योपदेशकस्तस्य तदपेक्षयाऽभ्यर्हितत्वेन प्रागुपादानमिति त्वदुक्तमयुक्तम्, तथा सति हि गौतमादिगणधरादिभिरर्हद्देशनया सिद्धानां, गौतमादिशिष्योपशिष्यादिभिश्च स्वस्वगुरूपदेशतः सिद्धादीनां परिज्ञानाद्गणधराणामर्हदादिस्तच्छिष्यादीनां चाऽऽचार्यादिः क्रम आपद्येतेति पूर्वपक्षिसमाक्षेपः ।

नहीं सकते हैं, इसलिये नमस्कार मन्त्र से कहे हुए अरिहन्त पदसे केवली अरिहन्तोंका ही ग्रहण है, जो कि सिद्ध भगवानके स्वरूप का भी उपदेश देकर भव्यों के अत्यन्त उपकारी हैं, अतः यह नमस्कार पूर्वानुपूर्वी से किये जाने के कारण क्रमशून्य नहीं है।

प्रश्न—जैसे अरिहन्तके उपदेशसे सिद्ध भगवानका ज्ञान भव्यों को होता है वैसेही आचार्यके उपदेशसे अरिहन्तोंका ज्ञान होना सम्भव है, ऐसी अवस्थामें अरिहन्तकी भी अपेक्षा आचार्य ही को प्रथम नमस्कार होना चाहिये, अतः उपदेशक के क्रमसे यह नमस्कार किया गया है, ऐसा कहना उचित नहीं।

જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયેલુ નથી તેથી તેઓને અરિહત અથવા સિદ્ધ શબ્દથી કહી શકાય જ નહિ એટલા માટે નમસ્કાર મત્રમા કહેલા અરિહન્ત પદથી કેવલી અરિહન્તોનુ જ ગ્રહણ થઈ શકે, જે અરિહત, સિદ્ધ ભગવાનના સ્વરૂપનો ઉપદેશ આપીને ભવ્ય જીવોને અત્યન્ત ઉપકારી છે એ કારણથી આ નમસ્કાર પૂર્વાનુપૂર્વીથી કરવામા આવ્યા છે તેથી ક્રમશૂન્ય નથી

પ્રશ્ન—જે પ્રમાણે અરિહન્તના ઉપદેશથી ભવ્ય જીવોને સિદ્ધ ભગવાનનું જ્ઞાન થાય છે, તેવીજ રીતે આચાર્યના ઉપદેશથી અરિહન્તોનું જ્ઞાન થવા સભવ છે એવી સ્થિતિમા અરિહતની અપેક્ષાએ પણ આચાર્યને જ પ્રથમ નમસ્કાર થવો જોઇએ એ કારણથી ઉપદેશકના ક્રમથી આ નમસ્કાર કરવામા આવ્યા છે એમ કહેવુ તે યોગ્ય નથી

तत्रोच्यते—नमस्कारसूत्रमिदं नानुपूर्वीमतिवर्त्तते पूर्वानुपूर्व्याः सद्भावात्, यदुक्तम्-'अभ्यर्हितत्वेनादौ सिद्धाभिधानं युक्तम्' इति, तन्मन्दम्, अर्हदुपदेशेनैव सिद्धावगतेरर्हतामेव तदपेक्षयाऽप्यभ्यर्हितत्वात् कृतसकलकृत्यत्वस्य चोभयत्र साम्यात्, अर्हन्नमस्कार्यत्व तु न हेतुः, यतो भूता भाविनश्चानन्ताः सिद्धा अपि कदाचिच्छद्मस्थावस्थायां कृतार्हन्नमस्कारा एव। 'छद्मस्था' सन्तो भगवन्तोऽर्हन्तो नमस्कुर्वन्ति चेद्गुणाधिकान् सिद्धान्नमस्कुर्वन्तु नाम, नैतावता न' किञ्चिदाच्छिद्यते केवलोत्पत्त्यभावेनार्हत्त्वमप्राप्तस्तदानीमर्हत्त्वासत्त्वात्। न हि वय

उत्तर—नमस्कार करने वाले भव्यों के लिए सिद्धि भगवान की अपेक्षा व्यवहारनयसे अरिहन्त ही में प्रधानता है, कारण यह कि सिद्धों का भी ज्ञान भव्यों को अरिहन्तों के ही उपदेशसे होता है, साथ ही तीर्थप्रवर्त्तक होने से अपनी देशना द्वारा भव्यों को भवसमुद्रसे पारकर सिद्धगति तक पहुँचानेवाले अरिहन्त ही हैं, रही बात कृतकृत्यता और अरिहन्तसे सिद्धोंको नमस्कार किये जाने की, सो दोनो मे बराबर है, क्योंकि अरिहन्तका भी कोई कर्त्तव्य बाकी नही रह पाया है और अनन्त सिद्धों मे से भावी (होनेवाले) सिद्ध भी छद्मस्थ अवस्था मे अरिहन्तको नमस्कार करते ही हैं, अतएव छद्मस्थ अवस्थामे अरिहन्त सिद्धों को और भावि सिद्ध अरिहन्तों को नमस्कार करते हैं, क्योंकि उस अवस्थामे केवलज्ञान उत्पन्न न होने के कारण उनको अरिहन्त या सिद्ध शब्द से कह ही

ઉત્તર—નમસ્કાર કરવાવાળા ભવ્ય જીવો માટે સિદ્ધ ભગવાનની અપેક્ષા વ્યવહારનયથી અરિહન્તોની પ્રધાનતા છે કારણ કે સિદ્ધોનું પણ જ્ઞાન ભવ્ય જીવોને અરિહન્તોના ઉપદેશથી થાય છે તેમજ તીર્થપ્રવર્તક હોવાથી પોતાના ઉપદેશ દ્વારા ભવ્ય જીવોને ભવ સમુદ્રથી પાર ઉતારીને સિદ્ધગતિ સુધી પહોંચાડનારા અરિહન્ત જ છે હવે કૃતકૃત્યની અને અરિહન્તો સિદ્ધોને નમસ્કાર કરે છે તે વિષેની વાત કરવી રહી તે બન્નેમા બરાબર છે, કારણ કે અરિહન્તને પણ કોઈ કર્તવ્ય બાકી રહ્યુ નથી અને અનન્ત સિદ્ધોમાથી ભાવિમા થવાવાળા સિદ્ધ પણ છદ્મસ્થ અવસ્થામા અરહિતને નમસ્કાર કરે છે જ એ કારણથી છદ્મસ્થાવસ્થામા અરિહન્ત સિદ્ધોને અને ભાવિ સિદ્ધો અરિહન્તોને નમસ્કાર કરે છે કારણ કે તે અવસ્થામા કેવલ

पकृष्टत्वबोधनपूर्वकपरनिष्ठोत्कृष्टत्वप्रकारकज्ञानानुकूलः शिरोनमनादिलक्षणो व्यापारविशेषः । 'सव्वपावप्पणासणो' सर्वपापप्रणाशनः, सर्वाणि=निखिलानि अष्टावपीत्यर्थः, प=पङ्किलमर्थान्मलिनभावमापयन्ति=प्रापयन्तीति, पे=पाताले-ऽर्थान्नरकाद्यधोगतौ आपयन्ति=प्रापयन्तीति, प=क्षेमम्, आ=समन्तात् पिबन्ति=शोषयन्तीति, नरकादिकुगतिषु जीवान् पातयन्तीति, कलुषतभाव-रजोभिरात्मान [1]पांशयन्ति=मलिनयन्तीति वा [2]पापानि=ज्ञानावरणीयादि-कर्माणि, तेषा प्र=प्रकर्षेण [3]नाशन'=विध्वसक, 'च' किञ्च, 'सव्वेसिं' सर्वेषा 'मगलाण' मङ्गलाना=द्रव्यभावभेदभिन्नाना, निर्द्धारणे षष्ठी, तेन सर्वेषु मङ्गले-ष्वित्यर्थः, 'पढम' प्रथम=मुख्यमिति यावत् मङ्गल 'हवइ' भवति-अस्तीत्यर्थः ॥१॥

॥ इति नमस्कारमन्त्रव्याख्या ॥

अपेक्षा अन्य को अन्तःकरण से उत्कृष्ट समझते हुए शिर आदि पाच अगो को झुकाना) आत्मा को मलिन करने वाले, अथवा नरकादि कुगति में पहुचाने वाले, या आत्मकल्याण का नाश करनेवाले सब (आठों) पापों (ज्ञानावरणीयादि कर्मों) का नाश करने वाला, तथा द्रव्य-भावरूप सर्व मगलों में श्रेष्ठ मगलस्वरूप है ॥१॥

॥ इति नमस्कारमन्त्रव्याख्या ॥

'एसो' ઇત્યાદિ આ પચ-પરમેષ્ઠિ-નમસ્કાર (પોતાની અપેક્ષા અન્યને અન્ત કરણથી ઉત્કૃષ્ટ સમજીને મસ્તક આદિ પાચે અગોને નમાવવુ), આત્માને મલિન કરવાવાળા અથવા નરકાદિ કુગતિમા લઈ જનારા, અથવા આત્મકલ્યાણ નાશ કરવાવાળા સર્વ(આઠ)પાપો(જ્ઞાનાવરણી યાદિ કર્મો)ના નાશ કરનાર તથા દ્રવ્ય-ભાવ-રૂપ સર્વમગલોમા શ્રેષ્ઠ મગલ-સ્વરૂપ છે ॥ ૧ ॥

॥ ઇતિ નમસ્કાર-મત્ર-વ્યાખ્યા ॥

१- पांशुः=धूलिः । 'पांशुर्ना न द्वयोरज' इत्यमरः, सोऽस्यास्तीति पांशुमान्, पांशुमन्त कुर्वन्ति पांशयन्ति, 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचीष्ठवद्भा-वाद्विमन्तोर्लुगिति मतुपो लुक् ततष्टिलोपः ।

२- पापशब्दस्य तज्जनके लक्षणयाऽत्र कर्माष्टकपरत्वम् ।

३- 'नाशन' नन्द्यादित्वात्कर्त्तरि ल्यु ।

अत्राभिधीयते–योऽयमुपदेशक्रमोऽपेक्षितस्तत्र सर्वप्राथम्यमर्हतामेव, गण धरेभ्यो ह्यर्हतामेव प्रथममुपदेश', तदितरे गुर्वाचार्यादयस्तु केवलमर्हदुपदिष्टस्यैवानुवदन्त इति यद्यपि तदुपदेशेन सिद्धादयो ज्ञायन्ते तथापि तस्मदुपदेशे ते न स्वतन्त्रा अपि त्वर्हदुपदेशाधीना एवेति भोक्तोऽर्हदादिक्रम इत्यास्ता विस्तरः॥ इत्थ नमस्कृत्य तत्फलमाह—

॥ मूलम् ॥

एसो पचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मगलाण च सव्वेसिं, पढम हवइ मगल ॥१॥

॥ छाया ॥

एप पञ्चनमस्कार , सर्वपापप्रणाशन' ।
मङ्गलाना च सर्वेपा, प्रथम भवति मङ्गलम् ॥१॥

(टीका)

'एसो'–एप=प्रागुक्तस्वरूप. 'पचनमुक्कारो' पञ्चनमस्कार', पञ्चा नाम्=अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुरूपाणा परमेष्ठिना [1]नमस्कारः=स्वनिष्ठा-

उत्तर—आचार्य आदि का उपदेश गणधरों के प्रति अरिहन्त भगवानसे किये गये प्रथम उपदेश का ही अनुवाद है स्वतन्त्र नहीं, इसलिये आचार्य आदि के उपदेशसे जो अरिहन्तका ज्ञान होता है उसमें भी कारण अरिहन्त ही हैं, अत एव अरिहन्तको नमस्कार पहले किया गया है।

अब नमस्कारका फल कहते हैं—

'एसो' इत्यादि। यह पचपरमेष्ठियोंका नमस्कार (अपनी

ઉત્તર–આચાર્ય આદિનો ઉપદેશ ગણધરો પ્રતિ અરિહન્ત ભગવાને કરેલા પ્રથમ ઉપદેશનો જ અનુવાદ છે, સ્વતત્ર નથી એ કારણથી આચાર્ય આદિના ઉપદેશથી જે અરિહન્તનું જ્ઞાન થાય છે તેમા પણ અરિહન્ત જ કારણ રૂપ છે એટલે અરિહન્તને પ્રથમ નમસ્કાર કરવામા આવ્યા છે

હવે નમસ્કારનું ફળ કહે છે

१– नम.पूर्वकात् कृधातोर्भावे घञ्, 'साक्षात्प्रभृतीनि च' (१।४।७४) इति नम.शब्दस्य गतिसञ्ज्ञाया 'कुगतिप्रादय' (२।२।१८) इति समासे 'नमस्पुरसोर्गत्यो' (८।३।४०) इति नम शब्दस्य विसर्गस्य सत्वम्।

॥ टीका ॥

भन्दते=कल्याण सुख वा प्रापयतीति [1]भदन्तः, यद्वा भव=ससार-मन्तयति=दूरीकरोतीति,[2] अथवा भवस्य=ससारस्याऽन्तो = ऽवसान येनेति [3]भवान्तः। यद्वा भयस्य=जन्मजरामरणरूपस्यान्तो=नाशो येनेन्त भयान्तः स एव [4]भदन्त इति वा, अपि वा भय ददतीति भयदा भोगास्तानन्तयतीति [5]भदन्तः, यद्वा दान्त=दमित भय येन स भयदान्त स एव [6]भदन्तः। किंवा भान्ति=दीप्यन्ते-समुल्लसन्तीत्यर्थात् स्वस्वविषयेष्विति भानि=इन्द्रियाणि तानि दान्तानि येन स भदान्तः स एव [7]भदन्त., अथ च भाति=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रैर्दीप्यते इति

'करेमि भंते' इत्यादि। हे भदन्त=कल्याण तथा सुखको देने-वाले, अथवा हे भवान्त=ससार का अन्त करनेवाले, अथवा हे भयान्त=जन्मजरामरणरूप भय तथा इहलोकादि सात भयों का अन्त करनेवाले, अथवा हे भयदान्त=अर्थात् कामभोगों का नाश करनेवाले, या भयद=भयका दमन करनेवाले, अथवा हे भदान्त=भ-इन्द्रियगण, उसका दमन करनेवाले, अथवा हे भान्त=सम्यग्-

---

करेमि भंते ઇત્યાદિ हे भदन्त=કલ્યાણ તથા સુખને દેવાવાળા, અથવા हे भवान्त=સંસારનો અંત કરવાવાળા, અથવા हे भयान्त=જન્મ જરા મરણ રૂપ ભય તથા ઇહલોકાદિ સાત ભયનો અંત કરવાવાળા, हे भयदान्त=અર્થાત કામ ભોગોનો નાશ કરવાવાળા, અથવા हे भदन्त=भ- એટલે ઇંદ્રિયગણનું દમન

१-'भदन्त.'-अन्तर्भावितण्यर्थात् 'भदि कल्याणे सुखे च' अस्मादौणादि-केऽन्तप्रत्यये पृषोदरादिपाठाद्धातुनकारलोप.।

२-भवान्तः (भदन्त') 'कर्मण्यण्' (पा० ३।२।१) इत्यण्, शकन्ध्वा-देराकृतिगणत्वात्पररूपे पृषोदरादिपाठाद्वस्य द.।

३-'भवान्त'— व्यधिकरणपदो बहुव्रीहि पररूपादेशौ प्राग्वत्।

४-'भयान्त.'— पृषोदरादित्वात्सिद्ध।

५-'भयदान्त'—कर्मण्यणन्तभयदान्तशब्दस्य पृषोदरादित्वाद् भदन्त इति।

६-'यद्वा-'भयदान्त' निष्ठान्तस्य परनिपात आहिताग्न्यादिपाठाद्, यलोपो ह्रस्वश्च पृषोदरादिकृत.।

७-'भदान्त.'— निष्ठान्तपरनिपात. प्राग्वत्, पृषोदरादित्वादाकारस्य ह्रस्वः।

। अथ प्रथमाध्ययनम् ।

नह्यकृष्टाया भूमौ निपुणेन केनापि कृषीवलेन वीजमुप्यते इति हेतोः प्रोक्तेभ्यश्च हेतुभ्योऽर्हदादिपञ्चक नमस्कृत्य शिष्यः सामायिक चिकीर्षन्नाह—

॥ मूलम् ॥

करेमि [1]भंते! सामाइय, सव्वं सावज्ज जोग पच्चक्खामि जावज्जीवाए, तिविह तिविहेण मणेणं वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि, तस्स भते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥सू० १॥

॥ छाया ॥

करोमि भदन्त! सामायिक, सर्वं सावद्य योग प्रत्याख्यामि यावज्जीवया, त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि, तस्य भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हामि आत्मान व्युत्सृजामि ॥ १ ॥

जैसे कोई भी चतुर किसान परत (विन-जोती) जमीनमे बीज नही बोता, और कोई यदि बोये भी तो वह बीज व्यर्थ जाता है, वैसेही पचपरमेष्ठी-नमस्कार से हृदयक्षेत्र को पवित्र किये विना सामायिक सफल नही हो सकती। अतएव शिष्य पहले नमस्कार करके सामायिक करता है—

જેમ કોઇ ચતુર ખેડુત ખેડયા વિનાની જમીનમા બી વાવતો નથી અને વાવે તો તે બીજ નકામુ જાય છે તેમ પચ-પરમેષ્ઠી-નમસ્કારથી હૃદયરૂપી જમીનને પવિત્ર કર્યા વિના સામાયિક સફળ નથી થઇ શકતી! તેટલા માટે શિષ્ય પ્રથમ નમસ્કાર કરે છે

१-प्राकृतशैल्या 'अत एत्सौ पुसि, (८।४।२८७) इति प्राकृतसूत्रेणैकारादेशे 'भते' इति सिद्धम् ।

समाचरामि। एवं प्रतिज्ञाय सामायिकविधिस्वरूपमाह-'सव्वं' इत्यादिना, न वदितु योग्यम्=[1]अवद्यम् अवद्येन=सकलतीर्थंकरगणधरादिविगर्हितेन (पापेन) सह वर्त्तत इति सावद्यो=निन्द्यः, युज्यत इति योजनमिति वा [2]योगः= कायिक – वाचिक-मानसिकव्यापारः, तं सावद्यं योगं [3]प्रत्याख्यामि=

चिन्तामणि कल्पवृक्ष कामधेनु स्पर्शमणि आदि से भी *उत्कृष्ट, संसाररूपी गहन वनमें भटकते हुए जीवों के सारे दुःखोंका नाश करने वाले सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्रसे युक्त आत्मस्वरूप की प्राप्तिरूप सामायिक करता हूँ। अत एव यावज्जीवन (जीवन भर के लिए) मैं सर्व सावद्य व्यापार का तीन करण तीन योग से त्याग

કલ્પતરૂ, કામધેનુ, સ્પર્શમણિ વિગેરેથી પણ ×અતિશ્રેષ્ઠ જગતરૂપી ભયકર અટવીમા ભટકતા પ્રાણીઓના બધા દુખોનો નાશ કરનાર, સમ્યજ્ઞાન દર્શન ચારિત્રથી યુકત આત્મસ્વરૂપની પ્રાપ્તિરૂપ સામાયિક કરૂ છુ એટલા માટે યાવજ્જીવ (જિદગીભર) હુ દરેક સાવદ્ય વ્યાપારનો ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી ત્યાગ કરૂ છુ

*–समताभाव की प्राप्ति हुए विना रागद्वेषका क्षय नही होसकता, रागद्वेष का क्षय हुए विना केवलज्ञान केवलदर्शन की प्राप्ति नहीं होसकती, और केवलज्ञान केवलदर्शन की प्राप्ति हुए विना मुक्ति नहीं मिल सकती, इसलिए मोक्ष का मूल कारण सामायिक ही है, अतएव इसे केवल सासारिक सुख के देनेवाले चिन्तामणि पारसमणि आदि से भी उत्तम कहा है।

× સમતા ભાવની પ્રાપ્તિ વિના રાગદ્વેષનો ક્ષય થતો નથી અને રાગદ્વેષના ક્ષય વિના કેવલજ્ઞાન કેવળદર્શનની પ્રાપ્તિ થતી નથી અને કેવળજ્ઞાન કેવળદર્શનની પ્રાપ્તિ વિના મુકિત મલતી નથી મોક્ષનુ મૂળસાધન સામાયિક જ છે, એથી સામાયિક, કેવલ સાસારિક સુખ આપનાર ચિન્તામણિ પારસમણિ આદિથી પણ ઉત્તમ કહેલ છે

१–'अवद्यम्'–नञुपपदाद्वदेः 'वद सुपि क्यप् च (३।१।१०६) इति प्राप्तौ यत्क्यपौ प्रबाध्य "अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु (३।१।१०१) इतिनिपातनाद्गर्ह्यायां यत्। यत्तु 'वदितुं योग्यं वद्यं, न वद्यमवद्य'–मिति व्याख्यानं तद्व्याकरणतत्त्वानवबोधमूलकमेव, नञुपपदादेव वदधातोर्यत्प्रत्ययनिपातनस्य प्रागुक्तत्वात्।

२– योगः–'युजिर् योगे' अस्माद्घञ्।

३– प्रत्याख्यामि=प्रत्याङ्पूर्वकस्य ख्या 'प्रकथने' इत्यस्य रूपम्।

भान्तः स एव [1]भदन्तः, (एवं यथामति व्युत्पत्त्यन्तरेष्वपि निरुक्तोक्तशाकटायनादिमतिपादितरीत्या साधनप्रक्रिया बोद्धव्या।) तत्सम्बोधने–हे भदन्त != हे भगवन्! अह, समो=रागद्वेषरहितस्तस्याऽऽयो=गमन प्रवृत्तिरिति यावत्, अथ वा समाना=सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयस्य आयो=लाभः, यद्वा समानि=ज्ञानादीनि तेषु तैर्वा आयो=गमनम्, अपि वा समो=रागद्वेषानास्पृष्टान्तःकरण'=स्वत्रनिखिलभूत दर्शी विशुद्ध आत्मा तुच्छितानल्पचिन्तामणिकल्पतरुकामधेनुभिर्गहनभवगहन परिभ्रमणजसलेशक्लेशनाशकैरपूर्वैर्ज्ञानदर्शनादिभिः सङ्गतत्वात् तस्याऽऽयः=प्राप्तिः-स्वात्मविशुद्धीकरणमिति यावत्, समायः [2]स एव [3]सामायिक, तत् करोमि=

ज्ञान दर्शन चारित्रसे देदीप्यमान! भगवन्! (गुरुमहाराज!) मैं सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयकी प्राप्ति, अथवा रागद्वेषसे रहित, समस्त जीवों को अपने समान देखनेवाले तथा

કરવાવાળા, અથવા હે ભાન્ત=સમ્યક્‌જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રથી સુશોભિત હે ભગવન્! (ગુરૂમહારાજ!) હું સમ્યગ્‌જ્ઞાન સમ્યગ્‌દર્શન અને સમ્યક્‌ચારિત્ર રૂપ રત્નત્રયની પ્રાપ્તિ અથવા રાગ અને દ્વેષથી રહિત, દરેક પ્રાણીને મારી જેમ જોવાવાળો તથા ચિંતામણિ,

---

१–'भान्त.'—'भा दीप्तौ' अस्मादौणादिकोऽन्तः प्रत्यय, सिद्धि' पृषोदरादित्वादेव।

२– 'शैत्य हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य' इत्यादिषु यथेच्छमुद्देश्यगत विधेयगत वा लिङ्गमादाय त्यदादिप्रयोगस्य सुप्रसिद्धत्वादत्र समायशब्दगत पुंस्त्वमादाय 'स' इति। तदुक्त–'किं यत्तत्सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाण्यर्थरूप स शब्द.' इति पस्पशाह्निकभाष्यप्रतीकमादाय कैयटे–'उद्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरेकत्वमापादयन्ति सर्वनामानि पर्यायेण तत्तल्लिङ्गमुपाददते इति कामचारत' स शब्द इति पुंल्लिङ्गेन निर्देश.' इति।

३–'विनयादिभ्यष्ठक् (५।४।३४) इत्यत्रत्यगणे समायशब्दस्य पाठात्स्वार्थे ठक्, तस्येकादेश किच्चादादिवृद्धि। यत्तु क्वचिदुक्त–'विनयादिषु 'समय' शब्द एव पठयते न तु समायशब्दस्तस्मादत्रैकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात्समयशब्देन समायशब्दस्यापि ग्रहणम्'। यद्वा 'विनयादेराकृतिगणत्वाट्ठगिति' तदुभयमप्यसारम्, समयशब्दवत्समायशब्दस्यापि विनयादिगणे प्रतिपदोक्तपाठाद्विनयादेराकृतिगणत्वे प्रमाणाभावाच्च।

त्यादिना प्रतिपदमेवोक्तम्, एवं सति त्रिविधेनेत्युपादानं पुनरुक्तं भवति । यद्वा त्रिविधेनेति विशेषणं मनसेत्यादेरेव संभवति, ततश्च त्रिविधेन मनसा, त्रिविधया वाचा, त्रिविधेन कायेनेत्यन्वये मनोवाक्कायानां प्रत्येकं त्रैविध्यं प्राप्नोति, तच्चानिष्टं, नह्यत्र मनआदीनि प्रत्येकं त्रैविध्यमर्हन्ति किं तर्हि? तद्व्यापारा एवेति चेन्न, तदभावे हि मनसा वाचा कर्मणेत्येतावन्मात्रोक्तौ 'न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामी'-त्यनेन सह "यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्" (१।३।१०) इति वचनानुरोधेन "आद्यन्तौ टकितौ" (१।१।४६) इत्यादिवत्, "शत्रुं मित्रं विपत्तिं च जय रञ्जय भञ्जये"-त्यादिवत् 'एचोऽय-

---

'मनसा' (मनसे) 'वाचा' (वचनसे) 'कायेन' (कायसे) कहने से पुनरुक्ति (कहे हुएको पुनः कहना) होती है। या (तीन प्रकारसे) यह विशेषण 'मन, वचन, काय' का ही होसकता है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो इसका अर्थ होगा कि 'तीन प्रकारके काय से' आरम्भ न करें। अर्थात् मन वचन काय के तीन तीन भेद होंगे। ऐसा अर्थ शास्त्रविरुद्ध है, शास्त्रों में भगवानने मन आदि के तीन तीन भेद नही बताये हैं, किन्तु मन आदि के व्यापारो को तीन प्रकार का बताया है।

उत्तर—यह शंका ठीक नहीं है। यदि 'त्रिविधेन' न कहकर केवल 'मनसा वाचा कायेन' कह देते तो अर्थ ठीक नहीं बैठता, क्यों कि जैसे कोई कहे कि 'हेय और उपादेयको त्यागो और

वाचा (वचनथी) कायेन (कायाथी) कहेवाथी पुनरुक्ति (कहेलाने फरी कहेवु) थाय छे आ 'त्रण प्रकारे' ए विशेषण 'मन, वचन, काया'नुं ज होइ शके छे जो एम मानवामा आवे तो एनो अर्थ एवो थशे के 'त्रण प्रकारना मनथी, त्रण प्रकारना वचनथी अने त्रण प्रकारनी कायाथी' आरंभ न करे अर्थात् मन, वचन, कायाना पण त्रण त्रण भेद बनशे, एवो अर्थ शास्त्रविरुद्ध छे शास्त्रमा भगवाने मन आदिना त्रण भेद बताव्या नथी, परंतु मन आदिना व्यापारोने ते त्रण प्रकारना बताव्या छे

ઉત્તર—એ શંકા બરાબર નથી જો त्रिविधेन न કહીને કેવળ मनसा वाचा कायेन કહ્યુ હોત તો અર્થ બરાબર બંધ બેસત નહિ, કારણ કે કોઇ જેમ કહે કે 'હેય અને ઉપાદેયને ત્યાગો અને ગ્રહણ કરો' તો એ વાકયમા ક્રમાનુસાર હેય'ની

सर्वथा परित्यजामीत्यर्थः। यद्वा 'प्रत्याचक्षे' इतिच्छाया, अस्याप्यर्थः प्राग्वदेव, केवल धातुरेवातिरिच्यते-'चक्षिङ् व्यक्तायां वाची'-ति। कियत्कालार्थं प्रत्याख्यामी ? त्याह-'यावज्जीवये'-ति, अत्र यावच्छब्दः परिमाणार्थको मर्यादार्थकोऽवधारणार्थकश्चाऽव्ययः। जीवनं=जीवा,[1] तया जीवया[2] जीवामित्यर्थः, यावन्मम जीवनपरिमाण तावत्प्रत्याख्यामीति जीवन मर्यादीकृत्यार्थान्न केवल मरणकाल एवाऽपि तु ततः प्रागपि प्रत्याख्यामीति, जीवन एव न तु तदुत्तरार्थमपि प्रत्याख्यामीत्यर्थः। कीदृश त योग प्रत्याख्यामी ? त्याह 'त्रिविध'-मिति-तिस्रो विधाः=प्रकारा यस्य त कृतकारितानुमतरूप मनोवाक्कायव्यापारम्। तत्र कृत=स्वतन्त्रेणाऽऽत्मना सम्पादित, कारितम्=अन्यद्वारा सम्पादितम्, अनुमत=सावद्यव्यापारमारभमाणस्य 'त्वया सम्यक् क्रियते, एवमेव क्रियता'-मित्यादिना, यद्वा चक्षुषा दृष्टस्यापि तूष्णीमवस्थानेन निषेधाकरणात्प्रोत्साहितम्। त्रिविधेन=प्रकारत्रयविशिष्टेन कारणभूतेन, केन तेने ?-त्याह-'मनसा' वाचा कायेनेति। ननु त्रिविधेनेत्यनेन यत्प्रकारत्रय गृह्यते तत् मनसे-

करता हूँ। तीन करण ये हैं- कृत कारित-अनुमोदित। कृत अपनी इच्छासे स्वय करना, कारित दूसरे व्यक्ति से कराना, अनुमोदित-जो सावद्य व्यापार कर रहा हो उसे अच्छा समझना। तीन योग ये हैं—(१) मन, (२) वचन, (३) काय।

प्रश्न-सूत्रमें 'त्रिविधेन' (तीन प्रकार से) कहा ही है फिर

ત્રણ કરણ આ છે- (૧) કૃત, (૨) કારિત, (૩) અનુમોદિત
કૃત-પોતાની ઈચ્છાથી પોતે કરવુ
કારિત-બીજી વ્યક્તિ પાસે કરાવવુ
અનુમોદિત-જે સાવદ્ય વ્યાપાર કરી રહ્યો હોય, તેને સારૂ જાણવુ
ત્રણ યોગ આ છે (૧) મન, (૨) વચન, (૩) કાયા
પ્રશ્ન—સૂત્રમા ત્રિવિધેન (ત્રણ પ્રકારે) કહેલુ જ છે, પછી मनसा=(મનથી),

१- जीवा-'जीव प्राणधारणे' अस्मात् 'गुरोश्च हल' (३। ३। १०३) इति वचनेन स्त्रियामकारप्रत्यये स्त्रीत्वाट्टाप्, 'ईहा, ऊहा' इत्यादिवत्।

२-'जीवया'-'ततोऽन्यत्रापि दृश्यते' इति वचनबलाद्यावच्छब्दयोगे द्वितीयाया प्राप्तावप्यार्षत्वात्तृतीया।

तत्प्रकारान् दर्शयितुं विशेषत आह–मनसेत्यादीति नास्ति पौनरुक्त्यम्। केचित्–'मनसा वा वाचा वा कायेन वे'–ति विकल्पसंग्रहार्थं त्रिविधेनेत्युक्तमित्यूचिरे। न कारयामीत्यत्राऽन्येनेति शेषः पूरणीयः। न समनुजानामि=नानुमन्ये। 'तस्येति तस्मात् सावद्ययोगादित्यर्थः। 'भंते' इति भदन्तेति सम्बोधनं प्रागुक्तवदेव, पूर्वानुवृत्त्यैवार्थसिद्धौ पुनः 'भंते' इत्युक्तिः प्रारम्भवत् पर्यवसानमपि गुर्वामन्त्रण-पूर्वकमेव कर्तव्यमिति सूचनाय। यद्वा पुनरुच्चारणयत्नेनाऽनुवृत्तिरेव लभ्यते,

---

करूँ, परन्तु वे तीन प्रकार कौन-कौनसे हैं? ऐसी जिज्ञासा होने पर विशेषरूपसे बता दिया कि "मनसा वाचा कायेन" ये तीन प्रकार हैं, इसलिए पुनरुक्ति आदि कोई दोष नहीं है।

अथवा मन, वचन और कायके निमित्तसे होनेवाले तीन भेदों का संग्रह करने के लिए 'त्रिविधेन' पद रखा है।

व्याकरण में 'भंते' शब्द अनेक प्रकार से सिद्ध होता है, इसलिए उसके अर्थ भी बहुतसे हैं। जैसे (१) कल्याण और सुखको देनेवाले, (२) संसार का अन्त करनेवाले, (३) जिनकी सेवा-भक्ति करने से संसारका अन्त हो जाता है वे, (४) जन्म-जरा मरणके भयका नाश करनेवाले-निर्भय, (५) भोगों को त्याग देनेवाले, (६) भय को दमन करनेवाले, (७) इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, (८) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, और सम्यक्चारित्र से

પ્રકાર કયા કયા છે? એવી જિજ્ઞાસા થતાં વિશેષરૂપે બતાવી આપ્યું કે मनसा वाचा कायेन એ ત્રણ પ્રકાર છે એથી કરીને પુનરૂક્તિ આદિ કોઈ દોષ થતો નથી

અથવા મન વચન અને કાયાના નિમિત્તે થનારા ત્રણ ભેદોનો સંગ્રહ કરવાને માટે त्रिविधेन શબ્દ રાખ્યો છે

વ્યાકરણમાં भंते શબ્દ અનેક પ્રકારે સિદ્ધ થાય છે તેથી એના અર્થ ઘણા છે, જેવા કે (૧) કલ્યાણ અને સુખને આપનાર, (૨) સંસારનો અંત કરનાર, (૩) જેની સેવાભક્તિ કરવાથી સંસારનો અંત આવી જાય છે તે, (૪) જન્મ જરા મરણના ભયનો નાશ કરનાર, (૫) ભોગોને ત્યાગ કરનાર, ભયનું દમન કરનાર–નિર્ભય, (૭) ઈંદ્રિયોનું દમન કરનાર, (૮) સમ્યગ્જ્ઞાન સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યક્

१– 'तस्येति तस्मात्' अत्राऽपादानस्य शेषत्वविवक्षया षष्ठी।

गायात्रः' (६।१।७८) इत्यादिवद्वा क्रमिकान्वये 'मनसा न करोमि, वाचा न कारयामि, कायेन कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामी'-त्यनभीष्टोऽर्थ आपद्येत, तद्वारणार्थं त्रिविधेनेत्युक्त., तेन मनसा न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि, वाचा न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि, एव कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामीत्यर्थो भवति। यद्वा पूर्वं सामान्यतस्त्रिविधेनेत्युक्त्वा केन त्रिविधेनेति जिज्ञासाया

ग्रहण करो।' तो इस वाक्य में क्रमसे 'हेय' के साथ 'त्यागो' का सम्बन्ध हो जाता है और 'उपादेय' के साथ 'ग्रहण करो' का। इसी प्रकार 'चोलपट्टा चद्दर पहनो, ओढो' कहने से यह अर्थ होता है कि 'चोलपट्टा पहनो और चद्दर ओढो', इसी प्रकार 'त्रिविधेन' (तीन प्रकार से) पद न रखते तो ऐसा अनिष्ट अर्थ हो जाता कि मनसे न करे, वचनसे न करावे और कायसे अनुमोदना न करे। इस अनिष्ट अर्थ का परिहार करने के लिए 'त्रिविधेन' पद रखने से यह अर्थ हुआ कि-(१) मनसे न करूँ, (२) न कराऊँ (३) न करते हुए को भला जानूँ। (४) वचन से न करूँ, (५) न कराऊँ, (६) न करते हुए को भला जानूँ। (७) काय से न करूँ, (८) न कराऊं, (९) न करनेवाले को भला जानूँ।

अथवा पहले सामान्यरूप से कहा है कि तीन प्रकार से न

સાથે 'ત્યાગો'નો સબંધ થઇ જાય છે અને 'ઉપાદેયની' સાથે 'ગ્રહણ કરો'નો એજ રીતે 'ચોલપટ્ટો ચાદર પહેરો ઓઢો' કહેવાથી એ અર્થ થાય છે કે ચોલપટ્ટો પહેરો અને ચાદર ઓઢો એ રીતે त्रिविधेन (ત્રણ પ્રકારે) શબ્દ ન રાખ્યો હોત તો એવો અનિષ્ટ અર્થ થઇ જાત કે મનથી ન કરો, વચનથી ન કરાવો અને કાયાથી ન અનુમોદના કરો અનિષ્ટ અર્થનો પરિહાર કરવાને માટે त्रिविधेन શબ્દ આપ્યો છે, એમ त्रिविधेन શબ્દ આપવાથી એવો અર્થ થયો કે-(૧) મનથી ન કરૂ, (૨) ન કરાવુ, (૩) ન કરનારને ભલો જાણુ, (૪) વચનથી ન કરૂ, (૫) ન કરાવુ, (૬) ન કરનારને ભલો જાણુ, (૭) કાયાથી ન કરૂ, (૮) ન કરાવુ (૯) ન કરનારને ભલો જાણુ

અથવા પહેલા સામાન્ય રૂપે કહ્યુ છે કે 'ત્રણ પ્રકારે ન કરૂ' પરન્તુ તે ત્રણ

स्तदर्थत्वाभावेन न तद्योग इदम्, कुप्यति कस्मै चिदित्यात्रसाध्वेवे'-ति। 'निन्दामि, गर्हामि' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धस्तेन सावद्ययोगसम्बन्धिनीं स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकी च निन्दा करोमीति निर्गलितोऽर्थः, तस्येत्यत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठ्याः प्रागुक्तत्वात्। यद्वा 'आत्मान'-मित्यस्यैव मध्यमणिन्यायाद्देहलीदीपन्यायाद्वा व्युत्सृजामीत्यनेन निन्दामि, गर्हामि' इत्याभ्या च सम्बन्धस्तेन सावद्ययोगकारिणमात्मान जुगुप्से, व्युत्सृजामि=विविधभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थ. ॥सू० १॥

साक्षी से होती है। अथवा निन्दा साधारण कुत्साको कहते हैं और गर्हा अत्यन्त निन्दा को कहते हैं।

इसका अर्थ यह होता है कि-हे भगवन्! अतीत काल में सावद्य व्यापार करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जैसे घर की देहलीपर दीपक रखने से भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है, इसीको 'देहली दीपक' न्याय कहते हैं, कहा भी है-'परे एक पद बीच मे, दुहु दिस लागे सोय। सो है दीपक-देहरी, जानत है सब कोय ॥१॥ बीच में मणि जड देने से दोनों ओर मणिका प्रकाश होता है, यह 'मध्यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण' का दोनो के साथ सम्बन्ध होता है। अर्थात् सावद्य व्यापारवाली आत्मा को त्यागता हूँ और उसकी निन्दा करता हूँ तथा गर्हा करता हूँ ॥सू० १॥

ગર્હા ગુરૂસાક્ષીએ થાય છે, અથવા નિંદા સાધારણ કુત્સાને કહે છે અને ગર્હા અત્યંત નિંદાને કહે છે

આનો અર્થ એ થાય છે કે હે ભગવન્! અતીત કાળમા દંડ (સાવદ્ય વ્યાપાર) કરનાર આત્મા (આત્મપરિણતિ) ને અનિત્ય આદિ ભાવના ભાવીને ત્યાગુ છુ, નિંદુ છુ, ગર્હુ છુ, જેમ ઘરની દેહલી (ઉંબર) પર દીવો રાખવાથી અંદર પણ પ્રકાશ થાય છે અને બહાર પણ પ્રકાશ થાય છે તેને 'દેહલી-દીપક ન્યાય' કહે છે કહ્યુ છે કે-'પરે એક પદ બીચમે, દુહુ દિસ લાગે સોય સો હે 'દીપક-દેહરી,' જાનત હે સબ કોય (૧)' વચમા મણિ જડી દેવાથી બેઉ બાજુ મણિનો પ્રકાશ થાય છે તેને 'મધ્યમણિ-ન્યાય' કહે છે એજ રીતે

यतः केवलमनुवृत्तिमात्रेण न किमपि कार्यं भवति किन्तूच्चारणादिप्रयत्नेनैव, तदुक्तं वैयाकरणैः-"अनुवर्त्तन्ते च नाम विधयो न चानुवर्त्तनादेव भवन्ति, किं तर्हि? यत्नाद्भवन्ति, स चायं यत्नः पुनरुच्चारणम्" इति। अथवा स्वस्यापि भदन्तत्वादात्मन एवेदमामन्त्रणं सावधानीकरणाय। यद्वा भूयः सम्बोधनेन गुरुं प्रति भक्त्युद्रेकोऽभिव्यज्यते। प्रतिक्रमामि=प्रतिनिवर्त्ते, पृथग्भवामीति यावत्। यत्र क्वचिट्टीकासु 'पडिक्कमामि' इत्यस्य 'प्रतिक्रमामि' इतिच्छायोपलभ्यते सा प्रमादिक्येव "क्रमः परस्मैपदेषु" (७।३।७६) इति वचनबलेन क्रमेरुपधादीर्घस्य दुर्निवारत्वात्। निन्दामि=जुगुप्से। गर्हे=जुगुप्से इत्येवार्थः। ननु तर्हि निन्दागर्हयोः 'कुत्सा निन्दा च गर्हणा' इति कोषरीत्या पर्यायत्वेन पौनरुक्त्यं वज्रलेपायितमेवेति चेन्न, यतः स्वसाक्षिकी निन्दा, गुरुसाक्षिकी च गर्हेति परस्परं भवति भूयान् भेदः। यद्वा 'निन्दा=साधारणी कुत्सा, गर्हा=सैवातिभूयसी'-ति परस्परमर्थभेदान्नास्ति पर्यायता, यथा-प्रवृद्ध एव कोपः क्रोधो न साधारण इति कोपक्रोधयोः पर्यायत्वाभावेन क्रुध्यर्थत्वाभावात्क्रुधधातुयोगे चतुर्थी नेष्यते, तदुक्तं-'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यम्प्रति कोपः (१।४।३७) इत्यत्र शब्देन्दुशेखरे नागेशेन-'नह्यकुपितः क्रुध्यतीति भाष्येण प्ररूढकोप एव क्रोध इति कुपे

दीपनेवाले। इन सब को 'भंते' कहते हैं। इसी प्रकार और अर्थ भी समझने चाहिए। 'भदन्त'! इस सम्बोधनसे यह प्रगट होता है कि समस्त क्रियाएँ गुरुमहाराज की साक्षीसे ही करनी चाहिए।

हे भगवन्! मैं सावद्ययोगसे निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ और गर्हा करता हूँ। कोशों में निन्दा और गर्हा शब्द का एक ही अर्थ है, इसलिए पुनरुक्ति होती है, ऐसा नही समझना चाहिए, क्यो कि निन्दा आत्मसाक्षी से होती है और गर्हा गुरु

ચારિત્રથી દીપ્તિમાન એ બધાને ભંતે કહે છે, એજ રીતે બીજા અર્થો પણ સમજી લેવા 'ભદન્ત' એ સંબોધનથી એમ પ્રગટ થાય છે કે બધી ક્રિયાઓ ગુરૂ મહારાજની સાક્ષીએ જ કરવી જોઈએ

હે ભગવાન્! હું દડથી નિવૃત્ત થાઉં છુ, નિંદા કરૂ છુ અને ગર્હા કરૂ છુ શબ્દકોશોમા 'નિન્દા અને ગર્હા' શબ્દનો એક જ અર્થ છે, તેથી પુનરુકિત થાય છે, એમ ન સમજવુ, કારણ કે નિંદા આત્મસાક્ષીએ થય છે અને

स्तदर्थत्वाभावेन न तद्योग इदम्, कुप्यति कस्मै चिदित्यादावसाध्वेवे'-ति। 'निन्दामि, गर्हामि' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धस्तेन सावद्ययोगसम्बन्धिनीं स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकी च निन्दां करोमीति निर्गलितोऽर्थः, तस्येत्यत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठ्याः प्रागुक्तत्वात्। यद्वा 'आत्मान'-मित्यस्यैव मध्यमणिन्यायाद्देहलीदीपन्यायाद्वा व्युत्सृजामीत्यनेन निन्दामि, गर्हामि' इत्याभ्यां च सम्बन्धस्तेन सावद्ययोगकारिणमात्मानं जुगुप्से, व्युत्सृजामि=विविधभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थ' ॥सू० १॥

साक्षी से होती है। अथवा निन्दा साधारण कुत्साको कहते हैं और गर्हा अत्यन्त निन्दा को कहते हैं।

इसका अर्थ यह होता है कि-हे भगवन्! अतीत काल में सावद्य व्यापार करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जैसे घर की देहलीपर दीपक रखने से भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है, इसीको 'देहली दीपक' न्याय कहते हैं, कहा भी है-'परे एक पद बीच मे, दुहु दिस लागे सोय। सो है दीपक-देहरी, जानत है सब कोय ॥१॥ बीच में मणि जड देने से दोनों ओर मणिका प्रकाश होता है, यह 'मध्यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण' का दोनों के साथ सम्बन्ध होता है। अर्थात् सावद्य व्यापारवाली आत्मा को त्यागता हूँ और उसकी निन्दा करता हूँ तथा गर्हा करता हूँ ॥सू० १॥

ગર્હા ગુરૂસાક્ષીએ થાય છે, અથવા નિંદા સાધારણ કુત્સાને કહે છે અને ગર્હા અત્યંત નિંદાને કહે છે

આનો અર્થ એ થાય છે કે હે ભગવન્! અતીત કાળમાં દંડ (સાવદ્ય વ્યાપાર) કરનાર આત્મા (આત્મપરિણતિ) ને અનિત્ય આદિ ભાવના ભાવીને ત્યાગુ છુ, નિંદુ છુ, ગર્હુ છુ, જેમ ઘરની દેહલી (ઉંબર) પર દીવો રાખવાથી અંદર પણ પ્રકાશ થાય છે અને બહાર પણ પ્રકાશ થાય છે તેને 'દેહલી-દીપક ન્યાય' કહે છે કહ્યુ છે કે-'પરે એક પદ બીચમે, દુહુ દિસ લાગે સોય સો હૈ 'દીપક-દેહરી,' જાનત હૈ સબ કોય (૧)' વચમાં મણિ જડી દેવાથી બેઉ બાજુ મણિનો પ્રકાશ થાય છે તેને 'મધ્યમણિ-ન્યાય' કહે છે એજ રીતે

यत' केवलमनुवृत्तिमात्रेण न किमपि कार्यं भवति किन्तूच्चारणादिप्रयत्नेनैव, तदुक्तं वैयाकरणैः—"अनुवर्त्तन्ते च नाम विधयो न चानुवर्त्तनादेव भवन्ति, किं तर्हि? यत्नाद्भवन्ति, स चायं यत्नः पुनरुच्चारणम्" इति। अथवा स्वस्यापि भदन्तत्वादात्मन एवेदमामन्त्रणं सावधानीकरणाय। यद्वा भूयः सम्बोधनेन गुरु प्रति भक्त्युद्रेकोऽभिव्यज्यते। प्रतिक्रमामि=प्रतिनिवर्त्ते, पृथग्भवामीति यावत्। यत्र क्वचिट्टीकासु 'पडिक्कमामि' इत्यस्य 'प्रतिक्रमामि' इतिच्छायोपलभ्यते सा प्रामादिक्येव "क्रमः परस्मैपदेषु" (७।३।७६) इति वचनबलेन क्रमेरुपधादीर्घस्य दुर्निवारत्वात्। निन्दामि=जुगुप्से। गर्हे=जुगुप्स इत्येवार्थः। ननु तर्हि निन्दागर्हयो 'कुत्सा निन्दा च गर्हणा' इति कोषरीत्या पर्यायत्वेन पौनरुक्त्य वज्रलेपायितमेवेति चेन्न, यत॰ स्वसाक्षिकी निन्दा, गुरुसाक्षिकी च गर्हेति परस्पर भवति भूयान् भेदः। यद्वा 'निन्दा=साधारणी कुत्सा, गर्हा=सैवातिभूयसी'–ति परस्परमर्थभेदान्नास्ति पर्यायता, यथा–प्रवृद्ध एव कोपः क्रोधो न साधारण इति कोपक्रोधयोः पर्यायत्वाभावेन क्रुध्यर्थत्वाभावात्कुध्धातुयोगे चतुर्थी नेष्यते, तदुक्त–'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यम्प्रति कोप (१।४।३७) इत्यत्र शब्देन्दुशेखरे नागेशेन–'नह्यकुपित॰ क्रुध्यतीति भाष्येण प्ररूढकोप एव क्रोध इति कुपे

दीपनेवाले। इन सब को 'भंते' कहते हैं। इसी प्रकार और अर्थ भी समझने चाहिए। 'भदन्त'! इस सम्बोधनसे यह प्रगट होता है कि समस्त क्रियाएँ गुरुमहाराज की साक्षीसे ही करनी चाहिए।

हे भगवन्! मैं सावद्ययोगसे निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ और गर्हा करता हूँ। कोशों मे निन्दा और गर्हा शब्द का एक ही अर्थ है, इसलिए पुनरुक्ति होती है, ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्यो कि निन्दा आत्मसाक्षी से होती है और गर्हा गुरु-

ચારિત્રથી દીપ્તિમાન એ બધાને ભંતે કહે છે, એજ રીતે બીજા અર્થો પણ સમજી લેવા 'ભદન્ત' એ સંબોધનથી એમ પ્રગટ થાય છે કે બધી ક્રિયાઓ ગુરૂ મહારાજની સાક્ષીએ જ કરવી જોઇએ

હે ભગવાન્! હુ દંડથી નિવૃત્ત થાઉ છુ, નિંદા કરૂ છુ અને ગર્હા કરૂ છુ શબ્દકોશોમા 'નિન્દા અને ગર્હા' શબ્દનો એક જ અર્થ છે, તેથી પુનરુકિત થાય છે, એમ ન સમજવુ, કારણ કે નિંદા આત્મસાક્ષીએ થાય છે અને

गुप्तीना, चतुर्णां कषायाणा, पञ्चाना महाव्रताना, षण्णा जीवनिकायाना, सप्ताना पिण्डैषणाना,-मष्टाना प्रवचनमातॄणा, नवाना ब्रह्मचर्यगुप्तीना, दशविधे श्रमणधर्मे श्रमणाना योगाना यत्खण्डित यद्विराधित तस्य मिथ्या मे दुष्कृतम् ॥ सू० २ ॥

॥ टीका ॥

'ठामि' स्थातु चित्तैकाग्रतयेति शेषः, कर्तुमित्यर्थः[1]। 'काउस्सग्ग' कायोत्सर्ग, कायस्य=शरीरस्य उत्सर्गः=तदेकतानतापूर्वकैकदेशावस्थितिध्यानमौन-व्यतिरिक्तयावत्क्रियाकलापसम्बन्धमधिकृत्य सर्वविच्छेदेन परित्यागम्-अतिचार-सशुद्धये व्युत्सर्जन, ममत्वापवर्जन वा 'इच्छामि=वाञ्छामि। तत्रादौ वक्ष्यमाण-रीत्या दोषान् पर्यालोचयति-'जो' इति। यः=कायोत्सर्गः मया=कर्तृभूतेन 'देवसिओ'=दिवसेन निर्वृत्तो दैवसिक[2]', दिवसपद रात्रेरप्युपलक्षक तेन

हे भदन्त! मै चित्तकी स्थिरता के साथ एक स्थान पर स्थिर रहकर ध्यान मौन के सिवाय अन्य सभी व्यापारों का परित्यागरूप कायोत्सर्ग करता हूँ, परन्तु इसके पहले शिष्य अपने दोषो की आलोचना करता है-'जो मे' इत्यादि। जो मुझसे प्रमादवश दिवससम्बन्धी तथा रात्रिसम्बन्धी सयममर्यादा का उल्लङ्घनरूप

હે ભદન્ત! હુ ચિત્તની સ્થિરતાની સાથે એક સ્થાન ઉપર સ્થિર થઈને ધ્યાન મૌન સિવાય અન્ય બધા કામોનો ત્યાગરૂપ કાયોત્સર્ગ કરૂ છુ પરતુ એના પહેલા શિષ્ય પોતાના દોષોની આલોચના કરે છે "जो मे ઇત્યાદિ" જે મારાથી આળસવશ દિવસસબધી તથા રાત્રિસબધી સમયમર્યાદાને

१- 'ठामि' कर्तुमित्यर्थ । धातूनामनेकार्थत्वात् 'स्था'धातुः करोत्यर्थः, आर्षत्वाद् 'मिप्' प्रत्यय. तुमुन्नर्थ, आर्षेषु हि प्रयोगेषु बाहुलकेन सर्वे विधयो विकल्प्यन्ते, यदुक्तम्-'क्वचित्प्रवृत्ति क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव। विधेर्विधान बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विध बाहुलक वदन्ति" ॥१॥ इति, किञ्च- "सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणा, कालहलच्स्वरकर्तृयङा च। व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषा, सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥२॥"इति, तत्र उपग्रह.= परस्मैपदाऽऽत्मनेपदे, नरः=प्रथमादिपुरुषत्रयम्। काल.= कालवाचक. प्रत्यय। कर्तृशब्दः कारकत्वाव-च्छिन्नोपलक्षकस्तेन कारकवाचिना कृत्तद्धिताना विपर्ययः। यङिति यङो यशब्दादारभ्य लिङ्याशिष्यङिङति ङकारेण प्रत्याहार। स्पष्ट शिष्टम्।

२ "तेन निर्वृत्तम्" (५। १। ७८) इति ठक्।

साधोः सर्वविरतिरूप सामायिकं यावज्जीवन भवत्यवश्यकर्तव्य¹ ,तस्मिश्च सति प्रमादादिनाऽतिचाराः सम्भवन्तीति सामायिकनिरूपणोत्तरमग्रे कायोत्सर्गप्रतिज्ञापूर्वकं शिष्यः प्रथम दोषान् पर्यालोचयति—

॥ मूलम् ॥

इच्छामि ठामि काउस्सग्ग जो मे देवसिओ अईआरो कओ काइओ वाइओ माणसिओ उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुव्विचितिओ अणायारो अणिच्छियव्वो असमणपाउग्गो नाणे तह दसणे चरित्ते सुए सामाइए, तिण्ह गुत्तीण, चउण्ह कसायाण, पचण्ह महव्वयाण, छण्ह जीवनिकायाणं, सत्तण्ह पिंडेसणाण, अट्ठण्ह पवयणमाऊण, नवण्ह बभचेरगुत्तीण, दसविहे समणधम्मे समणाण जोगाण ज खडिय जं विराहिय तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥सू० २॥

॥ छाया ॥

इच्छामि स्थातु कायोत्सर्गं यो मया दैवसिकोऽतीचार' कृत' कायिको वाचिको मानसिक उत्सूत्र उन्मार्गोऽकल्पोऽकरणीयो दुर्ध्यातो दुर्विचिन्तितोऽनाचारोऽनेष्टव्योऽश्रमणप्रायोग्यो ज्ञाने तथा दर्शने चारित्रे श्रुते सामायिके, तिसृणा

मुनियों की सर्वविरतिरूप सामायिक यावज्जीवन होती है, उसमें प्रमाद आदि से अतिचार की सभावना रहती है, अतएव सामायिक का निरूपण करके अब इसके आगे शिष्य कायोत्सर्गपूर्वक अतिचार की आलोचना करने के लिये प्रथम कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करके दोषों की आलोचना करता है—'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग' इत्यादि ।

अप्पाण ने। એઉની સાથે સબધ થાય છે અર્થાત્ સાવદ્યવ્યાપારવાળા આત્માને ત્યાગુ છુ અને તેની નિંદા કરૂ છુ, તથા ગર્હા કરૂ છુ (સૂ૦ ૧)

મુનિયોની સર્વવિરતિરૂપ સામાયિક યાવજ્જીવ હોય છે એમા પ્રમાદ આદિથી અતિચારની સભાવના રહે છે, એટલા માટે સામાયિક નિરૂપણ કરીને તે પછી શિષ્ય કાયોત્સર્ગપૂર્વક અતિચારની આલોચના કરવા માટે પ્રથમ કાયોત્સર્ગની પ્રતિજ્ઞા કરીને દોષોની આલોચના કરે છે इच्छामि ठामि काउस्सग्ग વિગેરે

१– 'लुम्पेरवश्यम॰ कृत्ये' इति मकारलोप ।

'दुज्झाओ'–इत्यादिना, 'दुज्झाओ' दुर्ध्यातः, दुष्टो दुःस्थो वा ध्यातो दुर्ध्यातः=विरुद्धध्यानसंपन्नः कषायकलुषितान्तःकरणैकाग्रताऽऽर्त्तरौद्ररूपः, यद्वा आर्षत्वादत्र भावे क्तः पुंस्त्वं च, तेन दुर्ध्यानरूप इत्यर्थः, अत एव 'दुव्विचिंतिओ' दुःखेन दुष्टो वा विचिन्तितो=दुर्विचिन्तितः=अनवस्थितचित्ततया तत्त्वपरिभ्रंशनपूर्वकाऽशुभचिन्तनोपेतः, अतएव 'अणायारो' अनाचारः= संयममार्गेण प्रचलता संयमिनामनाचरितव्यः। यतोऽनाचरितव्योऽतएव 'अणिच्छियव्वो' अनेष्टव्यः=चेतसाऽपि लेशतोऽप्यनभिलषणीयः, यतश्चैवमतः 'असमणपाउग्गो' न योग्योऽयोग्यः प्रकर्षेणाऽयोग्यः प्रायोग्यः श्रमणानां श्रमणैर्वा प्रायोग्यः=श्रमणप्रायोग्यः न श्रमणप्रायोग्योऽश्रमणप्रायोग्यः–श्रमणानामयोग्य इत्यर्थः, मुनिभिरननुष्ठेय इति यावत्। अत्र व्युत्क्रमव्याख्यानं तु सूत्रक्रमविरोधादनुभवविरोधाच्चोपेक्षितव्यमेव। किंकिंविषयकोऽतिचारः? इत्याह– 'नाणे' इत्यादिना, 'नाणे' ज्ञाने=पदार्थपरिबोधलक्षणे, 'दंसणे' दर्शने= प्रवचनाभिरोचनस्वरूपे, 'चरित्ते' चारित्रे=आश्रवनिरोधरूपे 'नाणे' इत्यादिषु वैषयिकाधारे सप्तमी, मोक्षे इच्छाऽस्तीत्यादिवत्, तेन ज्ञानविषयको दर्शनविषयकश्चारित्रविषयकश्चेति फलति। विशेषेणोच्यते–'सुए' इति, 'सुए' श्रुते=मत्यादिज्ञानस्वरूपे, श्रुतग्रहणस्य मत्यादिज्ञानोपलक्षकत्वात् मत्यादिज्ञानविषयक इत्यर्थः, यद्वा 'सुए' इत्यस्य श्रुते=धर्मेऽर्थाच्छास्त्रपठनादिरूपे इत्येवार्थो न तु मत्यादिज्ञाने इति, अतिचारश्चात्राऽकाले सूत्रपठनादिरूपः। अधुना चारित्रातिचार-

---

कहते हैं–'दुज्झाओ'–दुर्ध्यानकषाययुक्त अन्तःकरण की एकाग्रतासे आर्त्तरौद्रध्यानरूप, 'दुव्विचिंतिओ'-दुर्विचिन्तित-चित्त की असावधानता से वस्तु के अयथार्थ स्वरूपका चिन्तनरूप, 'अणायारो'–अनाचार– संयमियो को अनाचरणीय, 'अणिच्छियव्वो'-अनेष्टव्य सर्वथा अवांछनीय तथा 'असमणपाउग्गो'-अश्रमणप्रायोग्य–साधुओं के आचरणके अयोग्य

दुज्झाओ–दुर्ध्यान–કષાયયુક્ત અંતઃકરણની એકાગ્રતાથી આર્ત્તરૌદ્રધ્યાનરૂપ દુવ્વિચિંતિઓ–દુર્વિચિન્તિત–ચિત્તની અસાવધાનતાથી વસ્તુના અયથાર્થસ્વરૂપમાં ચિંતનરૂપ અણાયારો–અનાચરણીય સંયમિયોને અનાચરણીય અણિચ્છિયવ્વો અનેષ્ટવ્ય– હમેશાં નહિ ઇચ્છવાયોગ્ય તથા અસમણપાઉગ્ગો – અશ્રમણપ્રાયોગ્ય–સાધુઓના આચરણને અયોગ્ય હોય તેમજ જ્ઞાનમાં, દર્શનમાં, ચારિત્રમાં તથા વિશેષરૂપથી શ્રુત

दिवसकृतो रात्रिकृतश्चेत्यर्थः। 'अईआरो' अतिक्रम्य चारः=चरणमतीचारः=सयममर्यादातो बहिःप्रवर्त्तन-सयममर्यादामुल्लङ्घ्य गमनमिति यावत्, 'कओ' कृतो विहित इत्यर्थः। कीदृशः स दैवसिकोऽतीचारः? इत्यत आह-'काइओ वाइओ माणसिओ' इति, काये भवः, काये जातः, कायेन निर्वृत्तो वा कायिकः। एव वाचिको मानसिक इत्युभयत्रापि बोध्यम्, कायजातो वाग्जातो मनोजात इति निष्कर्षः। 'उस्सुत्तो' सूत्रमुत्क्रम्योत्क्रम्य वा सूत्रादूर्ध्वं वा सजात उत्सूत्रः सूत्रोल्लङ्घनेन निष्पन्नोऽर्थात्तीर्थकरगणधराद्याप्तोपदिष्टप्रवचनपरित्यागेनोद्भूतः। अतएव 'उम्मग्गो' मार्गादुद्गत उन्मार्गः क्षायोपशमिकभावमहाणपूर्वकौदयिकभावपोसक्रमः (क्रान्तः)। 'अकप्पो' कल्पः=करणचरणव्यापाररूप आचारः, न कल्पोऽकल्पः करणचरणव्यापाररहित इत्यर्थः। यद्वा 'अकल्प्यः' इतिच्छाया तस्य कल्पयितुं योग्यः=कल्प्यो मुनिधर्मः न कल्प्योऽकल्प्यो=मुन्याचारविशृङ्खलित अतएव 'अकरणिज्जो' अकरणीयः=मुनिभिरनाचरणीयः॥ उक्तौ कायिक-वाचिक-योरतीचारयोर्भेदाः, सम्प्रति मानसिकस्याऽतिचारस्य तानाह-

अतिचार किया गया हो, चाहे वह कायसम्बन्धी, वचनसम्बन्धी, मनसम्बन्धी, 'उस्सुत्तो' उत्सूत्ररूप अर्थात् तीर्थङ्कर गणधर आदिके उपदिष्ट प्रवचनके विरुद्ध प्ररूपणादिरूप, 'उम्मग्गो'-उन्मार्गरूप अर्थात् क्षायोपशमिक भावका उल्लङ्घन करके औदयिक भावमे प्रवृत्तिरूप, 'अकप्पो'-अकल्प(ल्प्य)=करणचरणरूप आचार रहित, 'अकरणिज्जो'-अकरणीय अर्थात् मुनियोंके नहीं करने योग्य हो। ये सब ऊपर कहे हुए कायिक तथा वाचिक अतिचार हैं, अब मानसिक अतिचार

ઉલ્લઘનરૂપ અતિચાર કરાયો હોય, ચાહે તો એ શરીરસબધી વચનસબધી-મનસબધી, उस्सुत्तो-उत्सूत्ररूप અર્થાત્ તીર્થંકર ગણધર વિગેરે ઉપદિષ્ટ પ્રવચનની વિરૂદ્ધ પ્રરૂપણાદિ, उम्मग्गो ઉન્માર્ગરૂપ અર્થાત્ ક્ષાયોપશમિક ભાવનુ ઉલ્લઘન કરીને ઔદયિક ભાવમા પ્રવૃત્તિરૂપ, अकप्पो અકલ્પ્ય, કરણચરણરૂપ આચારરહિત અને अकरणिज्जो અકરણીય અર્થાત્ મુનિઓને નહિ કરવા લાયક હોય ઉપર કહેલ એ બધા કાયિક તથા વાચિક અતિચાર છે હવે માનસિક અતિચાર કહે છે-

१ 'कायिकः।' "तत्रभवः (४।३।५३) इति, "तत्रजातः" (४।३।२५) इति, "तेन निर्वृत्तम्" (५।१।७८) इति वा ठक्।

'दुज्झाओ'-इत्यादिना, 'दुज्झाओ' दुर्ध्यातः, दुष्टो दुःस्थो वा ध्यातो दुर्ध्यातः=निरुद्धध्यानसंपन्नः कषायकलुषितान्तःकरणैकाग्रताऽऽर्त्तरौद्ररूपः, यद्वा आर्षत्वादत्र भावे क्तः पुंस्त्वं च, तेन दुष्टध्यानरूप इत्यर्थः, अत एव 'दुव्विचिंतिओ' दुःखेन दुष्टो वा विचिन्तितो=दुर्विचिन्तितः=अनवस्थितचित्ततया तत्त्वपरिभ्रंशनपूर्वकाऽशुभचिन्तनोपेतः, अतएव 'अणायारो' अनाचारः=संयममार्गेण प्रचलता संयमिनामनाचरितव्यः। यतोऽनाचरितव्योऽतएव 'अणिच्छियव्वो' अनेष्टव्यः=चेतसाऽपि लेशतोऽप्यनभिलषणीयः, यतश्चैवमतः 'असमणपाउग्गो' न योग्योऽयोग्यः प्रकर्षेणाऽयोग्यः प्रायोग्यः श्रमणानां श्रमणैर्वा प्रायोग्यः=श्रमणप्रायोग्यः न श्रमणप्रायोग्योऽश्रमणप्रायोग्यः-श्रमणानामयोग्य इत्यर्थः, मुनिभिरननुष्ठेय इति यावत्। अत्र व्युत्क्रमव्याख्यानं तु सूत्रक्रमविरोधादनुभवविरोधाच्चोपेक्षितव्यमेव। किंकिंविषयकोऽतिचारः? इत्याह-'नाणे' इत्यादिना, 'नाणे' ज्ञाने=पदार्थपरिबोधलक्षणे, 'दंसणे' दर्शने=प्रवचनाभिरोचनस्वरूपे, 'चरित्ते' चारित्रे=आश्रवनिरोधरूपे 'नाणे' इत्यादिषु वैषयिकाधारे सप्तमी, मोक्षे इच्छाऽस्तीत्यादिवत्, तेन ज्ञानविषयको दर्शनविषयकश्चारित्रविषयकश्चेति फलति। विशेषेणोच्यते-'सुए' इति, 'सुए' श्रुते=मत्यादिज्ञानस्वरूपे, श्रुतग्रहणस्य मत्यादिज्ञानोपलक्षकत्वात् मत्यादिज्ञानविषयक इत्यर्थः, यद्वा 'सुए' इत्यस्य श्रुते=धर्मेऽर्थाच्छास्त्रपठनादिरूप इत्येवार्थो न तु मत्यादिज्ञान इति, अतिचारश्चात्राऽकाले सूत्रपठनादिरूपः। अधुना चारित्रातिचार-

---

कहते हैं—'दुज्झाओ'-दुर्ध्यानकषाययुक्त अन्तःकरण की एकाग्रतासे आर्त्तरौद्रध्यानरूप, 'दुव्विचिंतिओ'-दुर्विचिन्तित-चित्त की असावधानता से वस्तु के अयथार्थ स्वरूपका चिन्तनरूप, 'अणायारो'-अनाचार-संयमियों को अनाचरणीय, 'अणिच्छियव्वो' अनेष्टव्य-सर्वथा अवाछनीय तथा 'असमणपाउग्गो'-अश्रमणप्रायोग्य-साधुओं के आचरणके अयोग्य

दुज्झाओ-दुर्ध्यान-કષાયયુક્ત અંતઃકરણની એકાગ્રતાથી આર્ત્તરૌદ્રધ્યાનરૂપ दुव्विचिंतिओ-दुर्विचिन्तित-ચિત્તની અસાવધાનતાથી વસ્તુના અયથાર્થસ્વરૂપમાં ચિંતનરૂપ अणायारो-अनाचरणीय સંયમિયોને અનાચરણીય अणिच्छियव्वो-अनेष्टव्य-હમેશાં નહિ ઇચ્છવાયોગ્ય તથા असमणपाउग्गो-अश्रमणप्रायोग्य-સાધુઓના આચરણને અયોગ્ય હોય તેમજ જ્ઞાનમાં, દર્શનમાં, ચારિત્રમાં તથા વિશેષરૂપથી શ્રુત

माह–' सामाइए ' इति, सामायिके=सामायिकविषयकः, प्रागुक्तव्याख्यातः सामायिकपदार्थः, अत्र सामायिकपदेन सम्यक्त्वसामायिक–चारित्रसामयिकयोर्ग्रहणं, तत्र वक्ष्यमाणरूपः शङ्कादिः सम्यक्त्वसामायिकातिचारविषयः, चारित्रसामायिकातिचारो भेदत्रयात्मक इति बोधयितुमाह–' तिण्ह गुत्तीण ' इति, तिसृणा गुप्तीना, निर्द्धारणे षष्ठी, तेन तिसृणा गुप्तीना मध्य इत्यर्थः, एवमग्रेऽपि, गुप्तिश्च मोक्षाभिलाषुकयोगनिरोधरूपा ' चउण्ह कसायाण ' चतुर्णां कषायाणा=भवमहीरुहसेचकाना क्रोधमानादीनाम्, ' पचण्ह महव्वयाण ' पञ्चाना महाव्रताना=प्राणातिपातमृषावादाऽदत्ताऽऽदानानुपरतिस्वरूपाणा, ' छण्ह जीवनिकायाण ' षण्णा जीवनिकायाना=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकानाम् , ' सत्तण्ह पिंडेसणाण ' सप्ताना पिण्डैषणानामससृष्टाप्रभृतीनाम्, ताश्च यथा–१ अससृष्टा २ ससृष्टा, ३ ससृष्टाऽससृष्टा, ४ अल्पलेपा, ५ अवगृहीता, ६ प्रगृहीता, ७ उज्झितधर्मिका चेति, आसा प्रत्येक स्वरूपाण्याचाराङ्गसूत्रतो ज्ञेयानि। 'अट्ठण्ह पवयणमाऊण ' अष्टाना प्रवचनमातॄणा=समितिपञ्चक–गुप्तित्रयरूपाणाम्। ' नवण्हं बभचेरगुत्तीण ' नवाना ब्रह्मचर्यगुप्तीना=वसतिकथादिरूपाणाम्। एतदन्ताना सर्वेषा ' योऽतिचार' कृतः ' इति पूर्वेणान्वयः। ' दसविहे ' दशविधे ' समणधम्मे ' श्रमणधर्मे क्षान्त्यादिरूपे ' समणाण ' श्रमणाना=श्रमणसम्बन्धिना

हो, एव ज्ञानमे, दर्शनमें, चारित्रमें तथा विशेषरूप से श्रुतधर्म में, सम्यक्त्वरूप तथा चारित्ररूप सामायिकमें, तथा उसके भेदरूप योगनिरोधात्मक तीन गुप्तियों में, चार कषायो में, पाच महाव्रतों में, छह जीवनिकायों में, (१) असस्रृष्टा, (२) सस्रृष्टा, (३) सस्रृष्टाऽससृष्टा, (४) अल्पलेपा, (५) अवगृहीता, (६) प्रगृहीता, तथा (७) उज्झित धर्मिका रूप सात पिंडैषणाओ मे, पाचसमिति तीन गुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताओं में, ब्रह्मचर्य की नौ वाडो मे, दश प्रकार के श्रमणधर्म

ધર્મમા, સમ્યક્ત્વરૂપ તથા ચારિત્રરૂપ સામાયિકમા તથા એના ભેદરૂપ યોગનિરોધાત્મક ત્રણ ગુપ્તિઓમા, ચાર કષાયોમા, પાચ મહાવ્રતોમા, ▪ જીવનિકાયોમા, (૧) અસસૃષ્ટા (૨) સસૃષ્ટા (૩) સસૃષ્ટાઽસસૃષ્ટા (૪) અલ્પલેપા (૫) અવગૃહીતા (૬) પ્રગૃહીતા (૭) ઉજ્ઝિતધર્મિકારૂપ સાત પિંડૈષણાઓમા, પાચસમિતિ ત્રણગુપ્તિરૂપ આઠ પ્રવચનમાતાઓમા, બ્રહ્મચર્યની નવ વાડોમા, દશ પ્રકારના શ્રમણધર્મની અ૬૨

'जोगाण' योगाना व्यापाराणा श्रद्धान-प्ररूपण-स्पर्शनस्वरूपाणा=श्रमणसम्बन्धिव्यापारमध्ये इत्यर्थः, 'ज' यत् 'विराहिय' विराधित=सर्वतोभावेन खण्डित=स्वलित, 'तस्स' तस्य=वाचिकादिरूपस्य दैवसिकस्यातिचारस्य खण्डनस्य विराधनस्य च-तत्सम्बन्धीत्यर्थ', (यत्तदोर्नित्यसम्बन्धेन 'तस्स' इति तच्छब्देन प्रागुक्ताना यच्छब्दनिर्दिष्टाना सर्वेषा सग्रहात्, बहुषु पुस्तकेषु दृश्यमान विपरीतव्याख्यान सूत्राक्षराननुगुणत्वादुपेक्ष्यमेव, ननैकेन तच्छब्देन 'जो मे देवसिओ' 'ज खडिय' 'ज विराहिय' इति यच्छब्दत्रयस्याऽऽकाङ्क्षा कथ पूर्येत ? प्रतियच्छब्द तच्छब्दोपादानस्याऽऽवश्यकत्वात्, अतएव 'य य कामयते काम त तमाप्नोति लीलया' इत्यादौ तच्छब्दद्वयोपादान सगच्छत इति वाच्यम्, बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मावच्छिन्ने तच्छब्दशक्तेः, प्रकृते च सर्वेषामेव यच्छब्दोपात्ताना तादृशधर्मावच्छिन्न (बुद्धिविषय) त्वात्, अतएव 'यत्त्वत्पाप प्रतिजहि जगन्नाथ ? नम्रस्य तन्मे' इत्यादौ यत्तदित्याभ्या यच्छब्दाभ्या येन केन चिद्रूपेण स्थित सर्वात्मक पापरूप वस्तु विवक्षित तथाभूतस्य तस्य तच्छब्देन परामर्शस्तस्मान्नात्र साकाङ्क्षत्व दोष इत्युक्त काव्यप्रकाश-रसगङ्गाधरसाहित्यदर्पणादिष्विति तत्रैव कणेहत्याऽवलोकनीयम् ।) 'दुक्कड' दुष्कृत=पापम् 'मि' मयि विषयसप्तमीय तेन मद्विषय इत्यर्थ. । 'मिच्छा' मिथ्या=निष्फलम् अभावरूपमिति यावत्, भवत्विति शेष । यत्तु 'मि' इत्यस्य 'मे' इतिच्छायया व्याख्यान तद्व्याकरणविरोधात्सूत्रतात्पर्यविरोधाच्च हेयमेव ।

के अन्दर श्रद्धाप्ररूपणा-स्पर्शनारूप श्रमणयोगों में से, जिस किसी की देशसे खण्डना या सर्वथा विराधना हुई हो उन सब पूर्वोक्त अतिचारों से मुझे लगा हुआ पाप निष्फल हो ॥

'मि' इसकी 'मे' ऐसी छाया करके जो व्याख्यान किया गया है वह व्याकरण तथा सूत्रतात्पर्य से विरुद्ध होने के कारण सर्वथा त्याज्य है ।

શ્રદ્ધા-પ્રરૂપણા-સ્પર્શનારૂપ શ્રમણયોગોમાંથી જેની કોઇની દેશથી ખડના અથવા સર્વથા વિરાધના થઇ હોય તે સર્વ પૂર્વે કહેલા અતિચારોથી મને લાગેલા પાપ નિષ્ફળ થાય

મિ-એની મે એવી છાયા કરીને જે વ્યાખ્યાન કરેલુ છે તે વ્યાકરણ

माह-' सामाइए ' इति, सामायिके=सामायिकविषयकः, प्रागुच्चारयात' सामायिकपदार्थः, अत्र सामायिकपदेन सम्यक्त्वसामायिक-चारित्रसामयिकयोर्ग्रहण, तत्र वक्ष्यमाणरूपः शङ्कादिः सम्यक्त्वसामायिकातिचारविषयः, चारित्रसामायिकातिचारो भेदत्रयात्मक इति बोधयितुमाह-' तिण्ह गुत्तीण ' इति, तिसृणा गुप्तीना, निर्द्धारणे षष्ठी, तेन तिसृणा गुप्तीना मध्य इत्यर्थः, एवमग्रेऽपि, गुप्तिश्च मोक्षाभिलाषुकयोगनिरोधरूपा ' चउण्ह कसायाण ' चतुर्णां कषायाणा=भवमहीरुहसेचकाना क्रोधमानादीनाम्, ' पचण्ह महव्वयाण ' पञ्चाना महाव्रताना=प्राणातिपातमृषावादाऽदत्ताऽऽदानानुपरतिस्वरूपाणा, ' छण्ह जीवनिकायाण ' षण्णा जीवनिकायाना=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकानाम् , ' सत्तण्ह पिंडेसणाण ' सप्ताना पिण्डैषणानामससृष्टाप्रभृतीनाम्, ताश्च यथा-१ असंसृष्टा २ ससृष्टा, ३ ससृष्टाऽससृष्टा, ४ अल्पलेपा, ५ अवगृहीता, ६ प्रगृहीता, ७ उज्झितधर्मिका चेति, आसा प्रत्येक स्वरूपाण्याचाराङ्गसूत्रतो ज्ञेयानि। 'अट्ठण्ह पवयणमाऊण ' अष्टाना प्रवचनमातॄणा=समितिपञ्चक-गुप्तित्रयरूपाणाम्। ' नवण्ह बभचेरगुत्तीण ' नवाना ब्रह्मचर्यगुप्तीना=वसतिकथादिरूपाणाम्। एतदन्ताना सर्वेषा ' योऽतिचार' कृतः ' इति पूर्वेणान्वय'। ' दसविहे ' दशविधे ' समणधम्मे ' श्रमणधर्मे क्षान्त्यादिरूपे ' समणाण ' श्रमणाना=श्रमणसम्बन्धिना

हो, एव ज्ञानमे, दर्शनमें, चारित्रमें तथा विशेषरूप से श्रुतधर्म में, सम्यक्त्वरूप तथा चारित्ररूप सामायिकमे, तथा उसके भेदरूप योगनिरोधात्मक तीन गुप्तियों में, चार कषायो मे, पाच महाव्रतों मे, छह जीवनिकायों में, (१) असंसृष्टा, (२) संसृष्टा, (३) ससृष्टाऽससृष्टा, (४) अल्पलेपा, (५) अवगृहीता, (६) प्रगृहीता, तथा (७) उज्झित धर्मिका रूप सात पिंडैषणाओं में, पाचसमिति तीन गुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताओं में, ब्रह्मचर्य की नौ वाडो मे, दश प्रकार के श्रमणधर्म

धर्ममा, सम्यकत्वरूप तथा चारित्ररूप सामायिकमा तथा ओना भेदरूप योगनिरोधात्मक त्रण गुप्तिओमा, चार कषायोमा, पाच महाव्रतोमा, छ जीवनिकायोमा, (१) अससृष्टा (२) ससृष्टा (३) ससृष्टाऽससृष्टा (४) अल्पलेपा (५) अवगृहीता (६) प्रगृहीता (७) उज्झितधर्मिकारूप सात पिंडैषणाओमा, पाचसमिति त्रणगुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताओमा, ब्रह्मचर्यनी नव वाडोमा, दश प्रकारना श्रमणधर्मनी अंदर

'जोगाण' योगाना व्यापाराणा श्रद्धान-प्ररूपण-स्पर्शनस्वरूपाणा=श्रमण-सम्बन्धिव्यापारमध्ये इत्यर्थः, 'ज' यत् 'विराहिय' विराधित=सर्वतोभावेन खण्डित=स्खलित, 'तस्स' तस्य=वाचिकादिरूपस्य दैवसिकस्यातिचारस्य खण्डनस्य विराधनस्य च-तत्सम्बन्धीत्यर्थः, (यत्तदोर्नित्यसम्बन्धेन 'तस्स' इति तच्छब्देन प्रागुक्ताना यच्छब्दनिर्दिष्टाना सर्वेषा सग्रहात्, बहुषु पुस्तकेषु दृश्यमान विपरीतव्याख्यान सूत्राक्षरानुगुणत्वादुपेक्ष्यमेव, नचैकेन तच्छब्देन 'जो मे देवसिओ' 'ज खडिय' 'ज विराहिय' इति यच्छब्दत्रयस्याऽऽकाङ्क्षा कथ पूर्येत ? प्रतियच्छब्द तच्छब्दोपादानस्याऽऽवश्यकत्वात्, अतएव 'य य कामयते काम त तमाप्नोति लीलया' इत्यादौ तच्छब्दद्वयोपादान सगच्छत इति वाच्यम्, बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मावच्छिन्ने तच्छब्दशक्तेः, प्रकृते च सर्वेषामेव यच्छब्दोपात्ताना तादृशधर्मावच्छिन्न (बुद्धिविषय) त्वात्, अतएव 'यद्यत्पाप प्रतिजहि जगन्नाथ ? नम्रस्य तन्मे' इत्यादौ यद्यदित्याभ्या यच्छब्दाभ्या येन केन चिद्रूपेण स्थित सर्वात्मक पापरूप वस्तु विवक्षित तथाभूतस्य तस्य तच्छब्देन परामर्शस्तस्मान्नात्र साकाङ्क्षत्व दोष इत्युक्त काव्यप्रकाश-रसगङ्गाधरसाहित्यदर्पणादिष्विति तत्रैव कणेहत्याऽवलोकनीयम् ।) 'दुक्कड' दुष्कृत=पापम्, 'मि' मयि विषयसप्तमीय तेन मद्विषय इत्यर्थः । 'मिच्छा' मिथ्या=निष्फलम् अभावरूपमिति यावत्, भवत्विति शेष । यत्तु 'मि' इत्यस्य 'मे' इतिच्छायया व्याख्यान तद्व्याकरणविरोधात्सूत्रतात्पर्यविरोधाच्च हेयमेव ।

के अन्दर श्रद्धाप्ररूपणा स्पर्शनारूप श्रमणयोगो में से, जिस किसी की देशसे खण्डना या सर्वथा विराधना हुई हो उन सब पूर्वोक्त अतिचारो से मुझे लगा हुआ पाप निष्फल हो ॥

'मि' इसकी 'मे' ऐसी छाया करके जो व्याख्यान किया गया है वह व्याकरण तथा सूत्रतात्पर्य से विरुद्ध होने के कारण सर्वथा त्याज्य है ।

શ્રદ્ધા-પ્રરૂપણા-સ્પર્શનારૂપ શ્રમણયોગોમાથી જેની કોઇની દેશથી ખડના અથવા સર્વથા વિરાધના થઇ હોય તે સર્વ પૂર્વે કહેલા અતિચારોથી મને લાગેલા પાપ નિષ્ફળ થાય

મિ-એની મે એવી છાયા કરીને જે વ્યાખ્યાન કરેલુ છે તે વ્યાકરણ

केचित् 'मिच्छामि' इति पद 'मि' 'छा' 'मि' इत्येव विभज्य प्रथमेन 'मि' इत्यनेन कायनम्रत्व च, 'छा' इत्यनेनासयमयोगरूपदोषच्छादन, चरमेण 'मि' इत्यनेन 'चारित्ररूपमर्यादास्थितोऽह'-मित्येवरूप, तथा 'दुक्कड' इत्यत्र 'दु' इत्यनेन दुगुछामि='दुष्कृतकर्मकारिणमात्मान निन्दामि' इत्येवरूप 'क' इति वर्णेन 'कृत'-मिति, 'ड' इति वर्णेन 'उपशमेनातिक्रामामि' अर्थात् द्रव्यभावनम्रश्चारित्रमर्यादास्थितोऽह दुष्कृतकर्मकारिणमात्मान निन्दामि, कृत च दुष्कृत कर्म उपशमेन परित्यजामीत्येवमर्थं व्याचक्षते 'प्रत्येकानतिरिक्तः समुदायः' इति न्यायेन पदस्यार्थवत्त्वे वर्णानामप्यर्थवत्ताऽङ्गीकारादितरथा पद-

---

कई एक 'मिच्छामि' इस पदका 'मि' 'छा' 'मि' ऐसा पदच्छेद करके "-'मि'=कायिक और मानसिक अभिमानको छोडकर 'छा'=असयमरूप दोष को ढक कर 'मि'=चारित्र की मर्यादा में रहा हुआ मै, 'दु' 'क' 'ड, - 'दु'=सावद्यकारी आत्माकी निन्दा करता हूँ, 'क'=किये हुए सावद्यकर्म को 'ड'=उपशमद्वारा त्यागता हूँ, अर्थात् द्रव्य-भावसे नम्र तथा चारित्रमर्यादा में स्थित होकर मैं सावद्य क्रियाकारी आत्मा की निन्दा करता हूँ और किये हुए दुष्कृत (पाप) को उपशमभावसे हटाता हूँ" इस प्रकार अर्थ करते हैं। ऐसा अर्थ करना कोई असगत नहीं है, प्रत्युत सर्वथा उचित ही है, क्योंकि-'समुदाय प्रत्येक से भिन्न नहीं होता' इस न्याय से जब पद की सार्थकता स्वीकार की जाय तो प्रत्येक वर्ण की भी

तथा सूत्रना तात्पर्यथी विरुद्ध होवाने कारणे एकदम त्याज्य छे केटलाक "मिच्छामि" ए पदमा " मि 'छा' मि " ए प्रमाणे पदच्छेद करीने 'मि' कायिक अने मानसिक अभिमानने छोडी "छा"=असयमरूप दोषने ढाकीने "मि" चारित्रनी मर्यादामा रहेलो हु 'दु' 'क' 'ड' "दु'=सावद्यकारी आत्मानी निन्दा करु छु "क" करेला पापकर्मनो "ड" उपशमद्वारा त्याग करु छु, अर्थात् द्रव्यभावथी नम्र तथा चारित्रमर्यादामा स्थित थईने हु सावद्यक्रियावान आत्मानी निन्दा करु छु अने करेला पापने उपशमभावथी हठावु छु-ए प्रमाणे अर्थ करे छे आ प्रमाणे अर्थ करवो ते कोई प्रकारे असगत नथी परन्तु सर्वथा उचित ज छे, कारण के समुदाय प्रत्येकथी भिन्न नथी-आ न्याय प्रमाणे

स्यापि वर्णसमुदायात्मकत्वेनाऽऽनर्थक्याऽऽपत्तेः, तदुक्तम्–'अर्थवन्तो वर्णा०' इति प्रतिज्ञाय 'सघातार्थवत्त्वाच' इति हेतुप्रदर्शकवार्त्तिकव्याख्यायां पतञ्जलिना–'येषा समुदाया अर्थवन्तोऽवयवा अपि तेषामर्थवन्तः तद्यथा–एकश्चक्षुष्मान् दर्शने समर्थस्तत्समुदायश्च शतमपि समर्थम्, एकश्च तिलस्तैलदाने समर्थस्तत्समुदायश्च शतमपि समर्थम्, येषा पुनरवयवा अनर्थकाः समुदाया अपि तेषामनर्थका', एका च सिकता तैलदानेऽसमर्था तत्समुदायश्च खारीशतमप्यसमर्थ'–मिति'।

सार्थकता स्वीकार करनी होती है, अन्यथा वर्णों के समुदायरूप पद और पदों के समुदायरूप वाक्य में यदि वर्णों को अनर्थक कहें तो उनके समुदायरूप शब्द तथा वाक्य भी अनर्थक हो जायँ, जैसा कि पतञ्जलिने अपने ग्रन्थ व्याकरण–महाभाष्य में कहा है–"जिनके समुदाय अर्थवान् होते हैं उनके अवयव भी अर्थवान् ही रहा करते हैं, जैसे–नेत्रवाला एक व्यक्ति देख सकता है तो उसी तरह नेत्रवाला हजारों का समुदाय भी देख सकता है, तिलके एक दाने में तैल है तो अनेक दानो में भी है, और जिनके अवयव अनर्थक होते हैं उनके समुदाय भी अनर्थक ही हुआ करते हैं, बालूके एक कणसे तेल नही निकल सकता तो बालूकी ढेरीसे भी नही निकलता" इत्यादि।

સ્વીકાર કરવામા આવે તો પ્રત્યેક વર્ણની પણ સાર્થકતા સ્વીકારવી જોઇએ અન્ય વર્ણોના સમુદાયરૂપ પદ અને પદોના સમુદાયરૂપ વાક્યમા જો વર્ણોને અનર્થક કહીએ તો તેના સમુદાયરૂપ શબ્દ તથા વાકય પણ અનર્થક થઇ જાય જેવી રીતે કે પતજલિએ પોતાના ગ્રથ વ્યાકરણ–મહાભાષ્યમા કહ્યુ છે "જેનો સમુદાય અર્થવાન હોય છે તેનું અવયવ પણ અર્થવાન જ રહે છે જેમ નેત્રવાળો એક માણુસ દેખી શકે છે તો તે રીતે નેત્રવાળા હજારો માણુસોનો સમુદાય પણ દેખી શકે છે તલના એક દાણામા તેલ છે તો તેના અનેક દાણાઓમા પણ છે અને જેનું અવયવ અનર્થક હોય છે તો તેના સમુદાય પણ અનર્થક હોય છે રેતીના એક કણુમાથી તેલ નીકળતુ નથી તો રેતીના ઢગલામાથી પણ તેલ નીકળી શકતુ નથી ઇત્યાદિ'

केचित् 'मिच्छामि' इति पद 'मि' 'छा' 'मि' इत्येव विभज्य प्रथमेन 'मि' इत्यनेन कायनम्रत्व च, 'छा' इत्यनेनासयमयोगरूपदोषच्छादन, चरमेण 'मि' इत्यनेन 'चारित्ररूपमर्यादास्थितोऽह'-मित्येवरूप, तथा 'दुक्कड' इत्यत्र 'दु' इत्यनेन दुगुछामि='दुष्कृतकर्मकारिणमात्मान निन्दामि' इत्येवरूप 'क' इति वर्णेन 'कृत'-मिति, 'ड' इति वर्णेन 'उपशमेनातिक्रामामि' अर्थात् द्रव्यभावनम्रश्चारित्रमर्यादास्थितोऽह दुष्कृतकर्मकारिणमात्मान निन्दामि, कृत च दुष्कृत कर्म उपशमेन परित्यजामीत्येनमर्थं व्याचक्षते 'प्रत्येकानतिरिक्तः समुदायः' इति न्यायेन पदस्यार्थवत्त्वे वर्णानामप्यर्थवत्ताऽङ्गीकारादितरथा पद-

कई एक 'मिच्छामि' इस पदका 'मि' 'छा' 'मि' ऐसा पदच्छेद करके "-'मि'=कायिक और मानसिक अभिमानको छोडकर 'छा'=असयमरूप दोष को ढक कर 'मि'=चारित्र की मर्यादा में रहा हुआ मै, 'दु' 'क' 'ड - 'दु'=सावद्यकारी आत्माकी निन्दा करता हूँ, 'क'=किये हुए सावद्यकर्म को 'ड'=उपशमद्वारा त्यागता हूँ, अर्थात् द्रव्य-भावसे नम्र तथा चारित्रमर्यादा में स्थित होकर मै सावद्य क्रियाकारी आत्मा की निन्दा करता हूँ और किये हुए दुष्कृत (पाप) को उपशमभावसे हटाता हूँ" इस प्रकार अर्थ करते हैं। ऐसा अर्थ करना कोई असगत नही है, प्रत्युत सर्वथा उचित ही है, क्योंकि-'समुदाय प्रत्येक से भिन्न नही होता' इस न्याय से जब पद की सार्थकता स्वीकार की जाय तो प्रत्येक वर्ण की भी

તથા સૂત્રના તાત્પર્યથી વિરુદ્ધ હોવાને કારણે એકદમ ત્યાજ્ય છે કેટલાક "मिच्छामि" એ પદમા " मि 'छा' मि " એ પ્રમાણે પદચ્છેદ કરીને 'मि' કાયિક અને માનસિક અભિમાનને છોડી "छा"=અસયમરૂપ દોષને ઢાકીને "मि" ચારિત્રની મર્યાદામા રહેલો હુ 'दु' 'क' 'ड' "दु'=સાવદ્યકારી આત્માની નિન્દા કરૂ છુ "क" કરેલા પાપકર્મનો "ड" ઉપશમદ્વારા ત્યાગ કરૂ છુ, અર્થાત્ દ્રવ્યભાવથી નમ્ર તથા ચારિત્રમર્યાદામા સ્થિત થઇને હુ સાવદ્યક્રિયાવાન આત્માની નિન્દા કરૂ છુ અને કરેલા પાપને ઉપશમભાવથી હઠાવુ છુ—એ પ્રમાણે અર્થ કરે છે આ પ્રમાણે અર્થ કરવો તે કોઈ પ્રકારે અસગત નથી પરન્તુ સર્વથા ઉચિત જ છે, કારણ કે સમુદાય પ્રત્યેકથી ભિન્ન નથી—આ ન્યાય પ્રમાણે જ્યારે પદની સાર્થકતા

यथामत्यूहनीयानि। एतच्च मिथ्यादुष्कृतप्रायश्चित्तं समितिगुप्तिरूपसंयममार्गप्रवृत्तस्य साधोः प्रमादादिवशात्स्खलनायां सत्यामनुष्ठितं सत् प्रदीपस्तम इव दोषमपनयति, अकृत्यवासनावासितान्तरात्मना साधुना मिथ्यादुष्कृतदानं पुनरकृत्यसेवनाद्गुर्वादेरनुरञ्जनमात्रफलकं भवति, तस्मात्तदर्थं नेदं प्रायश्चित्तं, नहि ज्ञात्वा भृशमपराध्यतोऽप्यज्ञानकृतापराधप्रायश्चित्तेनाऽऽत्ममोचनं जातु दृष्टचरम्, 'बुद्ध्वा चेद् द्विगुणो दमः'–'मत्या तु द्विगुणं चरेत्' इत्यादिनीतेर्यथाऽपराधं राजादिशासनवद्धर्म-

आत्मा की अतिचार प्रवृत्तिरूप अप्रशस्त सत्ता (अशुद्ध अवस्था) को हटाता हूँ ॥

ऊपर कहा हुआ मिथ्यादुष्कृत प्रायश्चित्त समिति – गुप्तिरूप संयम मार्ग में प्रवृत्त साधु के प्रमाद आदि कारणसे लगे हुए दोषको उसी तरह हटा देता है जैसे दीपक अन्धेरे को, किन्तु जो साधु जान-बूझकर दोष सेवन किया करता हो उसका मिथ्यादुष्कृत केवल गुरु आदि के मनोरञ्जन के लिए ही है पापसे छुटकारे के लिए नहीं, क्यों कि भूल से होनेवाले अपराधों के लिए जो प्रायश्चित्त नियत है उससे जान-बूझकर अपराध करनेवाले का दोष दूर नहीं होसकता। जैसे अनजानमें किसीसे राजशासनके विरुद्ध कोई अपराध किया जाता है तो उसको जितनी साधारण सजा दीजाती है, तो जान-बूझकर अपराध करनेवाले को अपराध के

મારામાં રહેલી આત્માના અતિચારપ્રવૃત્તિ રૂપ અપ્રશસ્ત સત્તા (અશુદ્ધ અવસ્થા) ને ત્યજું છું

ઉપર કહેલા મિથ્યાદુષ્કૃત પ્રાયશ્ચિત્ત સમિતિ—ગુપ્તિરૂપ સંયમ માર્ગમાં પ્રવર્તેલા સાધુના પ્રમાદ આદિ કારણથી લાગેલા દોષને એવી રીતે હટાવી દે છે કે જેવી રીતે દીવો અંધારાને હટાવી દે છે પણ જે સાધુ જાણી જોઈને દોષનું સેવન કર્યા કરે છે તેના મિથ્યાદુષ્કૃત કેવળ ગુરૂ વિગેરેના મનોરંજન માટે જ છે પાપમાંથી છુટવાને માટે નહિ કારણ કે ભૂલથી થયેલા અપરાધોને માટે જે પ્રાયશ્ચિત્ત નક્કી છે, તેથી જાણી જોઈને અપરાધ કરવાવાળાના દોષ દૂર થઈ શકતા નથી જેવી રીતે અજાણતા કોઈથી રાજ્યશાસન—વિરુદ્ધ કોઈ અપરાધ થઈ જાય તો તેને જેટલી સજા દેવાય છે, તે કરતા જાણી જોઈને અપરાધ કરવાવાળાને તે અપરાધથી

अथवा निरुक्तरीत्या 'मिच्छामि, दुक्कड' इत्यस्य 'मि' मयि विषयसप्तम्याश्रयणान्मद्विषयक छयति=छिनत्ति शिवसुखमिति छाः[1]=मिथ्यात्वादिस्तेन[2] नो पलक्षित, 'मि[3]' मिनोमि=प्रक्षिपामि, किम् ?,इत्याह-'दुक्कड[4]'= दुष्कृत=पापम् । एवञ्च मद्विषयक मिथ्यात्वाद्युपलक्षित दुष्कृत (पाप) प्रक्षिपामि= दूरतः परिहारामीत्यर्थः । यद्वा 'मिच्छामि' इति पदत्रयव्याख्या पूर्ववत्, 'दुक्कड' इत्यत्र च 'दु'-रिति दुष्ट 'क'-स्यात्मनि 'ड' ति सत्ताया, दुष्टत्व च सत्ताया विवक्षित, तथाच-'मि' मयि 'छा'=मिथ्यात्वादिना हेतुभूतेन दुष्टा=निन्दितामात्मन॰ सत्तामतिचारप्रवृत्तिलक्षणा 'मि'=प्रक्षिपामीत्यर्थ । व्याख्यानान्तराणि

अथवा निरुक्त रीतिसे 'मिच्छामि दुक्कड' का अर्थ इस प्रकार भी होता हैं-'मि' 'छा' 'मि' 'दुक्कड' ऐसा पदच्छेद करने से 'मि' मुझ में रहे हुए 'छा'=मिथ्यात्व अविरति कषाय प्रमाद अशुभ-योगरूप 'दुक्कड'=पाप को 'मि'=दूर करता हूँ।

अथवा 'मि' 'छा' 'मि' का व्याख्यान पहले की तरह जानना, 'दुक्कड' शब्द में 'दु' 'क' 'ड' इस प्रकार पदच्छेद करने से 'दु'= दुष्ट (अप्रशस्त) 'क'=आत्मा की 'ड'=सत्ता को, अतएव समुदाय का यह अर्थ हुआ कि-उक्त मिथ्यात्वादिके कारण मुझमें रही हुई

અથવા નિરુકત-રીતિ-પ્રમાણે " मिच्छामि दुक्कडम् " નો અર્થ એવી રીતે પણ થાય છે "मि छा मि दुक्कड" એવો પદચ્છેદ કરવાથી 'मि' મારામા રહેલા 'छा' મિથ્યાત્વ અવિરતિ કષાય પ્રમાદ અશુભ-યોગરૂપ 'दुक्कड' પાપને 'मि' દૂર કરૂ છુ, અથવા 'मि' 'छा' 'मि' નુ વ્યાખ્યાન પહેલાની માફક જાણવુ 'दुक्कड' શબ્દમા "दु क ड" એવી રીતે પદચ્છેદ કરવાથી 'दु'=દુષ્ટ (અપ્રશસ્ત) 'क' આત્માની 'ड'= સત્તાને, અતએવ સમુદાયનો આ અર્થ થાય છે કે ઉકત મિથ્યાત્વાદિના કારણે

१- 'छा' 'छो छेदने' अस्मात्कर्त्तरि 'क्विप्'। 'आदेच उपदेश॰' इत्याकार' ।

२- 'तेन' इत्यत्र- 'जटाभिस्तापस' इतिवत्तृतीया ।

३- 'मिनोमि' 'डुमिञ् प्रक्षेपणे' अस्मात्कर्त्तरि क्विप् । 'मि' इत्यत्रार्षत्वा-दीर्घाभाव ।

४- 'दुक्कड' इत्यत्र कृद्योगे षष्ठीप्राप्तावपि आर्षत्वाद्द्वितीया ।

एवमादिकैराकारैरभग्नोऽविराधितो भवतु मे कायोत्सर्गो यावदर्हतां भगवतां नमस्कारेण न पारयामि तावत्कायं स्थानेन मौनेन ध्यानेनाऽऽत्मानं व्युत्सृजामि ॥सू० ३॥

॥ टीका ॥

'तस्स' तस्य=प्रमादकृताऽशुभयोगसम्बन्धेन देशतः सर्वतो वा खण्डितस्य श्रमणयोगस्य सातिचारस्याऽऽत्मनो वा, तच्छब्देनात्रौचित्यात्तयोरेव ग्रहणात्, अतिचारस्य तु सम्भवेऽपि 'उत्तरीकरण-त्रिशल्यीकरणाऽसम्भवादग्रहणम्, न च प्रागतिचारस्य 'जो मे देवसिओ अइयारो' इत्यादौ यच्छब्दनिर्दिष्टतया यत्तदोश्च नित्यसम्बन्धेनाऽत्र 'तस्स' इत्यनेन ग्रहणमिति वाच्यम्, तत्र यच्छब्दनिर्दिष्टस्याऽतिचारस्य तत्रत्येनैव 'तस्स मिच्छा मि' इत्यनेन गतार्थसम्बन्धत्वात्, अत्रोक्तेन च 'तस्स' इति तच्छब्देन बुद्धिविषयतावच्छेदकलोपलक्षितधर्म्मावच्छिन्नस्यैव श्रमणयोगस्याऽऽत्मनो वा ग्रहणं न त्वतिचारस्येति सुधीभिर्विवेक्तव्यम्। 'उत्तरीकरणेण'=उत्तरीकरणेन=अनुत्तरस्योत्तरस्य कर-

यहां पर 'तस्स' पदसे देशखण्डित सर्वविराधितरूप श्रमणयोग अथवा सातिचार आत्मा का ग्रहण है। कोई कोई 'तस्स' इस पदसे अतिचार का ग्रहण करते हैं-वह उचित नहीं है, इसलिए उसका सम्बन्ध 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' इस पदमें रहे हुए 'तस्स' शब्द के साथ पूर्ण हो चुका है। दूसरा कारण यह भी है कि यद्यपि प्रायश्चित्तकरण तथा 'पापविशुद्धि' कण्टकशुद्धि-पैर आदि में लगे हुए काटे को निकालने-की तरह अतिचारों का विशुद्धीकरण

અહિંયા 'तस्स' પદથી દેશખંડિત અને સર્વવિરાધિત રૂપ શ્રમણુ યોગ અથવા સાતિચાર આત્માનું ગ્રહણુ છે કોઈ કોઈ 'तस्स' આ પદથી અતિચારનો ગ્રહણુ કરે છે પરતુ તે યોગ્ય નથી તેથી તેનો સબંધ "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" આ પદમાં રહેલા तस्स શબ્દની સાથે પૂરો થયો છે બીજુ કારણુ એ પણુ છે કે 'પ્રાયશ્ચિત્તકરણુ' તથા "પાપવિશુદ્ધિ" કંટકશુદ્ધિ-પગ આદિમાં લાગેલા કાંટાને નિકાલવાની રીતે અતિચારોનું વિશુદ્ધીકરણુ

१-'राजा गौडेन्द्रं कण्टकं शोधयति' इत्यादिषु कण्टकविशुद्धिवदतिचारविशुद्धिकरणं सम्भवति तस्मादुक्तम्-'उत्तरीकरणे'-ति, नहि-शल्य=मायादिरूपमतिचारस्य समस्ति; अपि त्वात्मनस्तत्प्राधान्याच्छ्रामण्ययोगस्य च'।

शास्त्रप्रायश्चित्तस्याऽप्युत्तममध्यमाधमसाहसरूपत्वस्य सर्वजनीनत्वात्। अन्यथा कदाचित् कुम्भकारक्षुल्लकमिथ्यादुष्कृतत्वापत्तेः ॥ सू० २ ॥

सम्प्रत्यतिचाराणां विशेषशुद्ध्यर्थं कायोत्सर्गः कर्त्तव्य इति सविधि कायोत्सर्गस्वरूपमाह–'तस्सुत्तरी'–त्यादि।

॥ मूलम् ॥

तस्सुत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं विसोहीकरणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वायनिसग्गेणं भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ॥ सू० ३॥

॥ छाया ॥

तस्योत्तरीकरणेन प्रायश्चित्तकरणेन विशुद्धि (विशोधी) करणेन विशल्यीकरणेन पापानां कर्मणां निर्घातनार्थं तिष्ठामि कायोत्सर्गम्, अन्यत्रोच्छ्वसितेन निःश्वसितेन कासितेन क्षुतेन जृम्भितेन उद्गारितेन वातनिसर्गेण भ्रमल्या पित्तमूर्च्छया सूक्ष्मैरङ्गसञ्चारैः सूक्ष्मैः श्लेष्मसञ्चारैः सूक्ष्मैर्दृष्टिसञ्चारैः,

---

अनुसार उससे अधिक ही सजा दीजाती है। मिथ्यादुष्कृत के भरोसे पर जान बूझकर पाप करते रहनेवाले साधु की प्रायः वैसी ही दुर्दशा होती है जैसी कुम्भार के हाथसे मिथ्यादुष्कृत देनेवाले क्षुल्लक साधु की हुई थी ॥ सू० २ ॥

अब अतिचारों की विशेष शुद्धि के लिए विधिपूर्वक कायोत्सर्ग का स्वरूप दिखलाते है—'तस्सुत्तरीकरणेणं' इत्यादि।

અધિક સજા દેવાય છે, મિથ્યાદુષ્કૃતના ભરોસા ઉપર જાણી જોઈને પાપ કરતા રહેનારા સાધુની ખાસ કરીને એવી દુર્દશા થાય છે કે જેવી રીતે કુંભારના હાથથી મિથ્યાદુષ્કૃત દેવાવાળા ક્ષુલ્લક સાધુની થઈ હતી સૂ૦ ૨

હવે અતિચારોની વિશેષ શુદ્ધિ માટે વિધિપૂર્વક કાયોત્સર્ગનું સ્વરૂપ બતાવે છે 'तस्सुत्तरीकरणेणं' इत्यादि

एवमादिकैराकारैरभग्नोऽविराधितो भवतु मे कायोत्सर्गो यावदर्हतां भगवतां नमस्कारेण न पारयामि तावत्कायं स्थानेन मौनेन ध्यानेनाऽऽत्मानं व्युत्सृजामि ॥सू० ३॥

॥ टीका ॥

'तस्स' तस्य=प्रमादकृताऽशुभयोगसम्बन्धेन देशतः सर्वतो वा खण्डितस्य श्रमणयोगस्य सातिचारस्याऽऽत्मनो वा, तच्छब्देनात्रौचित्यात्तयोरेव ग्रहणात्, अतिचारस्य तु सम्भवेऽपि 'उत्तरीकरण-विशल्यीकरणाऽसम्भवाद्ग्रहणम्, न च प्रागतिचारस्य 'जो मे देवसिओ अइयारो' इत्यादौ यच्छब्दनिर्दिष्टतया यत्तदोश्च नित्यसम्बन्धेनाऽत्र 'तस्स' इत्यनेन ग्रहणमिति वाच्यम्, तत्र यच्छब्दनिर्दिष्टस्याऽतिचारस्य तत्रत्येनैव 'तस्स मिच्छा मि' इत्यनेन गतार्थसम्बन्धत्वात्, अत्रोक्तेन च 'तस्स' इति तच्छब्देन बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मावच्छिन्नस्यैव श्रमणयोगस्याऽऽत्मनो वा ग्रहणं न त्वतिचारस्येति सुधीभिर्विवेक्तव्यम्। 'उत्तरीकरणेणं'=उत्तरीकरणेन=अनुत्तरस्योत्तरस्य कर-

यहां पर 'तस्स' पदसे देशखण्डित सर्वविराधितरूप श्रमणयोग अथवा सातिचार आत्मा का ग्रहण है। कोई-कोई 'तस्स' इस पदसे अतिचार का ग्रहण करते हैं-वह उचित नहीं है, इसलिए उसका सम्बन्ध 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' इस पदमें रहे हुए 'तस्स' शब्द के साथ पूर्ण हो चुका है। दूसरा कारण यह भी है कि यद्यपि प्रायश्चित्तकरण तथा 'पापविशुद्धि' कण्टकशुद्धि-पैर आदि में लगे हुए काटे को निकालने-की तरह अतिचारों का विशुद्धीकरण

અહિંયા 'तस्स' પદથી દેશખંડિત અને સર્વવિરાધિત રૂપ શ્રમણ યોગ અથવા સાતિચાર આત્માનું ગ્રહણ છે કોઈ કોઈ 'तस्स' આ પદથી અતિચારનો ગ્રહણ કરે છે પરંતુ તે યોગ્ય નથી તેથી તેનો સંબંધ "तस्स मिच्छा मि दुक्कडं" આ પદમાં રહેલા तस्स શબ્દની સાથે પૂરો થયો છે બીજુ કારણ એ પણ છે કે 'પ્રાયશ્ચિત્તકરણ' તથા "પાપવિશુદ્ધિ" કંટક-શુદ્ધિ-પગ આદિમાં લાગેલા કાંટાને નિકાલવાની રીતે અતિચારોનું વિશુદ્ધીકરણ

१-'राजा गौडेन्द्रं कण्टकं शोधयति' इत्यादिषु कण्टकविशुद्धिवदतिचारविशुद्धिकरणं सम्भवति तस्मादुक्तम्-'उत्तरीकरणे'-ति, नहि-शल्य=मायादिरूपमतिचारस्य समस्ति; अपि त्वात्मनस्तत्प्राधान्याच्छ्रामण्ययोगस्य च'।

शास्त्रप्रायश्चित्तस्याऽप्युत्तममध्यमाधमसाहसरूपत्वस्य सर्वजनीनत्वात्। अन्यथा कदाचित् कुम्भकारक्षुल्लकमिथ्यादुष्कृतत्वापत्तेः ॥ सू० २ ॥

सम्प्रत्यतिचाराणां विशेषशुद्ध्यर्थं कायोत्सर्गः कर्त्तव्य इति सविधि कायोत्सर्गस्वरूपमाह–'तस्सुत्तरी'–त्यादि।

॥ मूलम् ॥

तस्सुत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं विसोहीकरणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए काउस्सग्गं अनत्थ ऊससिएणं नीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वायनिसग्गेणं भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ॥ सू० ३॥

॥ छाया ॥

तस्योत्तरीकरणेन प्रायश्चित्तकरणेन विशुद्धि (विशोधी) करणेन विशल्यीकरणेन पापानां कर्मणां निर्घातनार्थं तिष्ठामि कायोत्सर्गम्, अन्यत्रोच्छ्वसितेन निःश्वसितेन कासितेन क्षुतेन जृम्भितेन उद्गारितेन वातनिसर्गेण भ्रमलया पित्तमूर्च्छया सूक्ष्मैरङ्गसञ्चारैः सूक्ष्मैः श्लेष्मसञ्चारैः सूक्ष्मैर्दृष्टिसञ्चारैः,

---

अनुसार उससे अधिक ही सजा दीजाती है। मिथ्यादुष्कृत के भरोसे पर जान बूझकर पाप करते रहनेवाले साधु की प्राय वैसी ही दुर्दशा होती है जैसी कुम्भार के हाथसे मिथ्यादुष्कृत देनेवाले क्षुल्लक साधु की हुई थी ॥ सू० २ ॥

अब अतिचारों की विशेष शुद्धि के लिए विधिपूर्वक कायोत्सर्ग का स्वरूप दिखलाते हैं—'तस्सुत्तरीकरणेणं' इत्यादि।

અધિક સજા દેવાય છે, મિથ્યાદુષ્કૃતના ભરોસા ઉપર જાણી જોઈને પાપ કરતા રહેનાર સાધુની ખાસ કરીને એવી દુર્દશા થાય છે કે જેવી રીતે કુંભારના હાથથી મિથ્યાદુષ્કૃત દેવાવાળા ક્ષુલ્લક સાધુની થઈ હતી સૂ૦ ૨

હવે અતિચારોની વિશેષ શુદ્ધિ માટે વિધિપૂર્વક કાયોત્સર્ગનું સ્વરૂપ બતાવે છે 'તસ્સુત્તરીકરણેણં' ઇત્યાદિ

निश्चयसंयुक्तं, प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥ १ ॥' इत्युक्तविधं, तस्य [1]करणम्=अनुष्ठानं, तेन। प्रायश्चित्ताऽऽचरणं च परिणामविशुद्धिमन्तरेण न सम्भवतीत्यत आह-'विसोहीकरणेणं' इति, विशोधनं (विशिष्य शोधनं) विशोधिः[2]=सम्यक्शुद्धिः, तस्याः करणं=सम्पादनम्, यद्वा शोधनं शोधः[3] विशिष्टः शोधो यस्य खण्डित-विराधितरूपस्य श्रामण्ययोगस्य तत्सम्बद्धस्यात्मनो वेत्यर्थात्, स विशोधः, अविशोधस्य विशोधस्य करणं [4]विशोधीकरणं तेन। विशोधीकरणं प्रति भावशल्योद्धरणस्य कारणत्वात्तदाह-'विसल्लीकरणेणं' इति, विनष्टं मायानिदानादित्रिकरूपं शल्यं यस्योक्तरूपस्य (श्रामण्ययोगस्य) स विशल्यः खण्डनाविराधनादितोऽविशल्यस्य विशल्यस्य करणं विशल्यीकरणं तेन। आह-कः शल्यशब्दार्थः? कतिविधश्च सः? उच्यते-शल्यते=धातूनामनेकार्थत्वाद् बाध्यते, यद्वा सन्त्रियते सुखमनेनेति शल्यं, तच्च द्रव्यभावभेदाद्विविधं, तत्र द्रव्यशल्यं लोकप्रतीतं कण्टक-सूची-शूल-भल्लादिकम्। भावशल्यं मायाप्रभृति, जीवता कठोरतमतीक्ष्णदशनैः श्वापदैरङ्गं स्फोटयित्वा स्वयं वा निजां त्वचं निःसार्य स्वशरीरस्य लवणसर्जिका-

भी परिणामों की शुद्धता के विना नहीं हो सकता इस कारण अतिचार हटाकर आत्मपरिणामों को निर्मल करने के लिये, विशोधीकरण (आत्मपरिणामो का निर्मल करना) भी शल्य के दूर किये विना नही हो सकता, क्योंकि सिंह व्याघ्र आदि भयानक जीवजन्तुओं के तीखे नाखून दाँत आदिसे शरीर के अंग अंग को फडवा लेना, अपने आप सारे शरीर की खाल खींचकर उस पर

માટે અતિચારોને દૂર કરી આત્મપરિણામોને શુદ્ધ કરવાને માટે વિશોધીકરણ (આત્મપરિણામોને શુદ્ધ કરવા) પણ શલ્યને દૂર કર્યા વિના નથી થઈ શકતો, કેમ કે સિંહ વાઘ વિગેરે ભયંકર પ્રાણીઓના તીક્ષ્ણ નખ દાંત વિગેરેથી શરીરના અંગે અંગને ફડાવવું, પોતાના જ હાથે આખા શરીરની ચામડી ખેંચીને તેના ઉપર મીઠું છાંટી લેવું, રાજીખુશીથી પોતાનું માથું કાપીને ફેંકી દેવું,

१- 'प्रायश्चित्तकरणम्'=सिद्धिर्निरुक्तोक्तरीत्या पृषोदरादित्वात्।

२- विशोधिः-'वि'+पूर्वकात् शुधू धातोर्ण्यन्तादौणादिकः स्त्रियां भावे 'इ' प्रत्ययः।

३- शोधः-भावे घञ्

४- विशोधीकरणम्-अभूततद्भावे च्विरीकारादेशश्च।

णम् 'उत्तरीकरणम्, उत्तरशब्द उच्चतरार्थकः करणशब्दो भावसाधनस्तेन-अनु च्चतरस्य पुनः संस्कारद्वारोच्चतरस्य (उत्कृष्टस्य) करणं=सम्पादनं तेनेत्यर्थः। 'अध्ययनेन वसति' इतिवद्धेतौ तृतीया, यद्वाऽऽर्षत्वाचादर्थ्यचतुर्थ्यर्थे तृतीया; तदा चोत्तरीकरणार्थमित्यर्थः। एवमग्रेऽपि तृतीयान्तार्थो बोद्धव्यः। यथा कुपथ्याहारविहारादिना समुत्पन्नस्य व्याधेरुपशमाय वैद्यकोक्तः प्रतीकारः क्रियते तद्वदिदमुत्तरीकरणम्। उत्तरीक्रिया च प्रायश्चित्ताचरणेनैव संभवतीत्यत आह-'पायच्छित्तकरणेण' प्रायश्चित्तकरणेन-प्रायो=बाहुल्येन प्रयतत्वाद्वा चितम्=उपचितमशुभं तनूकरोतीति, अशुभयोगाद्वा स्खलितं चित्तम्=आत्मानं प्राति=तत्तदशुभयोगापनयनेन पूरयतीति, प्रापयति चित्तम्=आत्मानं मनो वा शुद्धिमिति, प्रायः=बाहुल्येन चेतयति='पुनरेव न कर्तव्य'-मिति प्रतिबोधयत्यात्मानमिति वा प्रायश्चित्तम्, यद्वा-'प्राय' प्रोक्तं तपस्यादि, चित्तं निश्चय उच्यते। तत्र

हो सकता है तो भी यहा कहे गये 'उत्तरीकरणेण' और 'विसल्लीकरणेण' के साथ उसका सम्बन्ध नहीं बैठता, कारण यह है कि न तो अतिचारों को उत्कृष्ट बनाने के लिये कायोत्सर्ग किया जाता है और न उनमें मायादिशल्यों का संभव है, मायादिशल्य तो आत्मा के विभाव परिणाम हैं, अतएव सिद्ध हुआ कि उस खण्डित अथवा विराधित श्रमणयोग या उस योगसे युक्त आत्मा को उत्कृष्ट बनाने के लिये, और विना प्रायश्चित्तके आत्मा उत्कृष्ट नहीं बन सकती-इसलिये लगे हुए पापोंका प्रायश्चित्त करने के लिये, तथा प्रायश्चित्त

थई शके छे तो पण अहिं कहेल 'उत्तरीकरणेण' अथवा 'विसल्लीकरणेण' नी साथे तेनो संबंध नथी बेसतो कारण ए छे के न तो अतिचारोने उत्कृष्ट बनाववा माटे कायोत्सर्ग करवामां आवे छे अने नथी तेमां मायादि शल्योनो संभव मायादिशल्य तो आत्मानो विभावपरिणाम छे एथी सिद्ध थयुं के-ए खंडित अथवा विराधित श्रमणयोग अथवा ए योगथी युक्त आत्माने उत्कृष्ट बनाववा माटे अथवा प्रायश्चित्त विना आत्मा उत्कृष्ट थई शकतो नथी तेथी लागेला पापोना प्रायश्चित्त करवा माटे, तथा प्रायश्चित्त पण परिणामोनी शुद्धता विना थई शकता नथी ते

१-उत्तरीकरणम्-'अभूततद्भावेऽर्थे 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्वि' (५।४।५०) इति च्वि, 'अस्य च्वौ' (७।४।३२) इतीकार।

'काउस्सग्ग' कायस्य=शरीरस्य उत्सर्गम्=अतिचारविशुद्धये त्याग 'ठामि' [1]तिष्ठामि [2]स्थापयामीत्यर्थः यद्वा [3]करोमीत्यर्थः। अथवा 'काउस्सग्ग' इत्यत्राऽऽर्षत्वात्तृतीयार्थे द्वितीया, तेन कायोत्सर्गेणाऽर्थात् कायोत्सर्गं कृत्वा तिष्ठामीत्यर्थः। ननु कथमेतावन्मामर्थ्यं कायोत्सर्गस्य वर्णित ? मिति चेदुच्यते यत साक्षात्तीर्थङ्करैरेवाय मोक्षमार्ग' मोक्त इति, एव च सति सातिचारस्य श्रामण्ययोगस्याऽऽत्मनो ऽ्चत्तरीकरण–प्रायश्चित्तकरण–विशोधीकरण–विशल्यीकरण–पापकर्मनिर्घातनान्यतिचारनिवृत्तिस्वरूपाण्येवेत्यतिचारनिवृत्त्यर्थं कायोत्सर्गं करोमीति पर्यवसन्नोऽर्थ'। न च सर्वथा, किं तर्हि ? तदाह–'अन्नत्थ' अन्यत्र=विना 'ऊससिएण' ऊर्ध्वं श्वसनम्=उच्छ्वसित, नपुंसके भावे क्तस्तेन उच्छ्वास विनेत्यर्थ, एवमग्रिमेष्वपि तृतीयान्ते॰ सहाऽन्यत्रेत्यस्य सम्बन्धो योज्यः। 'नीससिएण' नि श्वसितेन–नि'श्वसित=श्वासमोक्षण तेन, 'कासिएण'-कासितेन=कासेन। 'छीएण' क्षुतेन क्षुतं=नासिकाऽभिघातजन्याऽऽकस्मिकसशब्दाऽनिलनिस्सरण 'हच्छि' रिति, 'छिके'ति च प्रसिद्ध ('हाँ छी' इति भाषायाम्) तेन। 'जभाइएण' जृम्भितेन=जृम्भा आलस्यजनितो मुखव्यादानपूर्वकतद्द्वाराऽऽन्तरपवनविनिर्गमस्तेन। 'उड्डुएण' उद्गारितेन'उड्डुअ' इत्यस्य देशिशब्दत्वादुद्गारितमर्थ ,उद्गारित चोद्गारः=कण्ठगर्जनाऽपरपर्यायः, उद्वमनप्रभेदस्तेन। 'वायनिसग्गेण' वातनिसर्गेण–वातस्य=

करने के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ, किन्तु इसमे श्वास का लेना तथा निकालना, खाँसना, छीकना, जभाई लेना, डकारना, अपानवायु का निकलना, पित्तप्रकोप आदिसे चक्करका आना, मूर्च्छाका आना,

वगेरे पाप (आठ) कर्मोनो नाश करवा माटे हु कायोत्सर्ग करु छु पण एमा श्वास लेवो तथा मूकवो, खासी खावी, छीक खावी, बगासु खावु ओडकार आवो, अपानवायुना स्राव थवो, पित्तप्रकोपथी अधारा आववा मूर्छा

१– दृष्ट हि सकर्मकस्यापि धातो' कचिदकर्मकत्व यथा, काव्यप्रकाशे द्वितीयोल्लासे–'विपयविभागो न माप्नोती'–ति। अकर्म्मकस्यापि च सकर्मकत्व यथा–'यथा शत्रु जयति भार वहती'–त्यादि च।

२– अन्तर्भावितण्यर्थत् स्था–धातोः स्थापयामीत्यर्थः।

३– 'कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेव' इत्यत्रैवग्रहणेन 'परा भुवोऽवज्ञाने, इत्यत्राऽवज्ञानग्रहणेन च धातूनामनेकार्थत्वकल्पनात् करोमीत्यर्थः॥

क्षारादिना सेचन, लीलयो छित्त्वा स्वमस्तकस्यापि प्रक्षेपण, प्रज्वलदनलकराल कुण्डे निर्भयपतनमुत्तापोद्गलद्ग्सीसकादिपान, भृगुमपातः, कालखण्डादिमर्मस्था नाना कुन्तादिना वेधन च कर्तुं सुशक, किन्तु ऋद्ध्यादिगौरवत्रयभङ्गभयाज्ज्ञा त्या यष्टविधमदाद्वा पामरैरप्रकाशित घोरतपःप्रभृतिमुनिक्रियाकलापकोमल कल्पलताकर्त्तनकर्त्तरीकल्पमनल्पदोषराशिनिदानमनन्तचतुर्गतिससृतिभ्रामकमिद भावशल्य सर्वथा दुःसहमिति शल्यशब्देन प्रकृते मायादिभावशल्यमेव गृह्यते प्रकरण स्याऽभिधानियामकत्वात्, 'पावाण कम्माण' पापाना कर्मणा पाशयन्ति=मलि नयन्ति नरकादौ पातयन्ति, आनन्दरस शोपयन्ति क्षपयन्ति वेति पापानि तद्रूपाणा कर्मणा ज्ञानावरणीयादीना' निग्घायणट्ठाए' निर्घातनार्थ=समूलमुन्मूलनार्थम्

नमक छिडकना, खुशीसे अपना मस्तक काटकर फेंक देना, उकलते सीसेको पी जाना, धधकते हुए अग्निकुण्डमें कूद पडना, पर्वत की चोटी पर चढकर धडाम से नीचे गिर पडना, कलेजेमे भाला भोंकना आदि द्रव्यशल्य सहन करना सहज है, परन्तु ऋद्ध्यादि तीन गौरवों (गारव) के नाश होने के डरसे, अथवा जाति आदि आठ प्रकार के मद के कारण अपने अन्दर ही छिपाये हुए—मुनियों के मुक्ति- साधन घोर तप आदि क्रियारूप कोमल कल्पलता के कतरने मे कतरनी के समान तथा अनन्त दुर्गुणो से युक्त और चारगतिरूप अनन्त ससार में परिभ्रमण करानेवाले—माया आदि भावशल्यों का पामरोंसे सहन होना अत्यन्त कठिन है, अत. भावशल्यों को दूर करने के लिये, तथा ज्ञानावरणीय आदि पाप (आठ) कर्मों का नाश

ગરમ કરેલુ સીસુ પી જવુ ધગધગતા અગ્નિકુડમા કુદી પડવુ પર્વતની ટોચ ઉપર ચઢીને ધડામથી ઝપલાવવુ, કલેજામા ભાલા ભોકવા આદિ દ્રવ્યશલ્ય સહન કરવા સહજ છે પરતુ ઋદ્ધયાદિ ત્રણ ગૌરવો (ગારવ)નો નાશ થવાના ડરથી અથવા જાતિ વિગેરે આઠ પ્રકારના મદને લીધે પોતાની અદરજ છુપાએલ—મુનિઓના મુકિતસાધન ઉત્કૃષ્ટ તપ વિગેરે ક્રિયારૂપ કોમલ-કલ્પલતાને કાતરવામા કાતર સમાન, તથા અનત દુર્ગુણોથી યુકત અને ચાર ગતિરૂપ અનત સસારમા પરિભ્રમણ કરાવનાર—માયા આદિ ભાવશલ્યોનુ પામરોથી સહન થવુ ઘણુજ કઠણ છે તે માટે ભાવશલ્યોને દૂર કરવા, તથા જ્ઞાનાવરણીય

'काउस्सग्ग' कायस्य=शरीरस्य उत्सर्गम्=अतिचारविशुद्धये त्याग 'ठामि' [1]तिष्ठामि [2]स्थापयामीत्यर्थः यद्वा [3]करोमीत्यर्थः। अथवा 'काउस्सग्ग' इत्यत्राऽऽर्षत्वात्तृतीयार्थे द्वितीया, तेन कायोत्सर्गेणाऽर्थात् कायोत्सर्गं कृत्वा तिष्ठामीत्यर्थः। ननु कथमेतावत्सामर्थ्यं कायोत्सर्गस्य वर्णितं ? मिति चेदुच्यते यत साक्षात्तीर्थङ्करैरेवाय मोक्षमार्गः प्रोक्त इति, एव च सति सातिचारस्य श्रामण्ययोगस्याऽऽत्मनो व्योच्चतरीकरण–प्रायश्चित्तकरण–विशोधीकरण–विशल्यीकरण–पापकर्म्मनिर्घातनान्यतिचारनिवृत्तिस्वरूपाण्येवेत्यतिचारनिवृत्त्यर्थं कायोत्सर्गं करोमीति पर्यवसन्नोऽर्थः। न च सर्वथा, किं तर्हि ? तदाह–' अन्नत्थ ' अन्यत्र=विना ' ऊससिएण ' ऊ र्ध्वं श्वसनम्=उच्छ्वसित, नपुंसके भावे क्तस्तेन उच्छ्वास विनेत्यर्थः, एवमग्रिमरपि तृतीयान्तै सहाऽन्यत्रेत्यस्य सम्बन्धो योज्यः। 'नीससिएण' नि श्वसितेन–नि श्वसित=श्वासमोक्षण तेन, 'कासिएण'-कासितेन=कासेन। 'छीएण' क्षुतेन क्षुतं=नासिकाऽभिघातजन्याऽऽकस्मिकसशब्दाऽनिलनिस्सरण 'हच्छि' रिति, 'छिक्के'ति च प्रसिद्ध ('हैं छी' इति भाषायाम्) तेन। 'जभाइएण' जृम्भितेन=जृम्भा आलस्यजनितो मुखव्यादानपूर्वकतद्द्वाराऽऽन्तरपवनविनिर्गमस्तेन। 'उड्डुएण' उद्गारितेन 'उड्डुअ' इत्यस्य देशिशब्दत्वादुद्गारितमर्थ', उद्गारित चोद्गारः= कण्ठगर्जनाऽपरपर्यायः, उद्वमनप्रभेदस्तेन। 'वायनिसग्गेण' वातनिसर्गेण–वातस्य=

करने के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ, किन्तु इसमे श्वास का लेना तथा निकालना, खाँसना, छीकना, जभाई लेना, डकारना, अपानवायु का निकलना, पित्तप्रकोप आदिसे चक्करका आना, मूर्च्छाका आना,

---

विगेरे पाप (आठ) कर्मोनो नाश करवा माटे हु कायोत्सर्ग करु छु पण एमा श्वास लेवो तथा मूकवो, खासी खावी, छीक खावी, बगासु खावु ओडकार खावो, अपानवायुनो स्राव थवो, पित्तप्रकोपथी अधारा आववा मूर्च्छा

१– दृष्ट हि सकर्मकस्यापि धातो' क्वचिदकर्मकत्व यथा, काव्यप्रकाशे द्वितीयोल्लासे–' विषयविभागो न प्राप्नोती'–ति। अकर्म्मकस्यापि च सकर्मकत्व यथा–' यथा शत्रु जयति भार वहती '-त्यादि च।

२– अन्तर्भावितण्यर्थत् स्था–धातो. स्थापयामीत्यर्थः।

३– 'कुर्द खुर्द गुर्द गुद-क्रीडायामेव' इत्यत्रैवग्रहणेन 'परो भुवोऽवज्ञाने, इत्यत्राऽवज्ञानग्रहणेन च धातूनामनेकार्थत्वकल्पनात् करोमीत्यर्थः॥

पायुवायोर्निसर्गः=निस्सरण वातनिसर्गस्तेन । 'भमलीए' भ्रमल्या–भ्रमली= आकस्मिकशरीरभ्रमण=पित्तोदयेन यच्चाभ्यन्महीदर्शन पूर्वादिदिग्भ्रान्तिश्च (चक्कर, घुम्मी, इत्यादि भाषायाम्) तया । 'पित्तमुच्छाए' पित्तमूर्च्छया– पित्तमूर्च्छा= पित्तजन्या नष्टचेष्टता तया । 'सुहुमेहिं अगसचालेहिं' सूक्ष्मै- रङ्गसञ्चालैः- रोमोद्गमादिरूपैरलक्षितप्रायैः, सूक्ष्मैः शरीरसञ्चालैः=स्वभाविकैरङ्गस्फुरणादिभिर्वा, 'सुहुमेहिं खेलसचालेहिं'–सूक्ष्मै श्लेष्मसंचालैः–खेलेति देशभाषाया श्लेष्मणो नाम, श्लेष्मणा=कफाना सञ्चालैः गलनिलास्स्वभावतः श्लेष्मणामधो बहिर्वाऽवत रणैः । 'सुहुमेहिं दिट्ठिसचालेहिं'–सूक्ष्मैर्दृष्टिसचालैः सूक्ष्मैः=स्वाभाविकैर्दृष्टिसञ्चालैः= पक्ष्मनिकोचनादिभिः ।'एवमाइएहिं आगारेहिं' एवमादिकैराकारैः– एवमादिभि- रुक्तस्वरूपैरुच्छ्वसितादिभिराकारै कायोत्सर्गप्रतिरोधकैः, अत्राऽऽदिशब्देनाऽग्न्युपद्रव- जलोपद्रव- महासाहसिकोपद्रव राजोपद्रवेभ्य', भित्तिच्छत्रादिपातसिंहसर्पाद्युपद्रवेभ्यो मार्जारादिकृतभृशोपद्रव सङ्कटापन्नमूषिकादिप्राणिपरिरक्षणार्थं वा स्थानपरिवर्त्तन ग्राह्यम्, एषामुच्छ्वसितादीनामागाराणा कायोत्सर्गप्रसङ्गे निरूपणमेतदधिकारिसहन नसामर्थ्यतात्पर्येण, 'अभग्गो' अभग्न.=देशतोऽखण्डितः, 'अविराहिओ' अविराधित.- सर्वतोऽखण्डित', 'हुज्ज' भवेत् 'मे' मम 'काउस्सग्गो' कायोत्सर्गः अर्थादुच्छ्वसि- तैरागारै. सद्भिरपि मम कायोत्सर्गोऽखण्डितोऽविराधितोऽस्तु। अत्रावधिमाह–'जाव'

सूक्ष्मरूपसे अगों का हलना–चलना अथवा फडकना, कफ, थूंक आदि का सचार होना, तथा दृष्टिका सचलन होना आदि आगार हैं, यहां आदि शब्द से अग्नि जल डाकू राजा सिंह सर्प भींत (दीवार) तथा छत का गिरना आदि उपद्रवों से या बिल्ली आदि हिंसक प्राणियों से घिरे हुए चूहे आदि जीवों को दया भावसे छुडाने के लिये स्थानपरिवर्त्तन करना आदि आगारों का ग्रहण करना चाहिये । ये उच्छ्वसितादि आगार अधिकारियों (ध्यानस्थ

આવવી, સૂક્ષ્મ પણે અંગોનું હલન ચલન થવું તથા ફરકવું, કફ થુંક વિગેરેનો સંચાર થવો, તેમજ દૃષ્ટિનું સંચલન થવું વિગેરે આગાર છે અહિં આદિ શબ્દથી અગ્નિ જલ ડાકુ રાજા સિંહ સર્પ દીવાલ તથા છતનું પડી જવું વિગેરે ઉપદ્રવોથી અથવા બિલાડી વિગેરે હિંસક પ્રાણિઓથી ઘેરાએલ ઉંદર વિગેરે જીવોને દયા ભાવથી છોડાવવા માટે સ્થાનફેર કરવો વિગેરે આગારોનું ગ્રહણ કરવું જોઇએ

इत्यादि, 'जाव' यावत् 'अरहताण भगवताण' अर्हता भगवता तत्कर्मकेणेत्यर्थात् । 'नमोक्कारेण' नमस्कारेण 'न पारेमि' न पारयामि, कायोत्सर्गपरिसमाप्तौ हि 'नमोऽरहताण' इत्युच्चार्यैव विरमणीयमिति सम्प्रदायस्तस्मात् 'नमोऽरहताण' इत्युच्चार्य यावत्पार न यास्यामीति भावः, वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवत्प्रत्ययः 'अयमागच्छामी'-ति यथा । 'ताव' तावत् 'काय' देह 'ठाणेण' स्थानेन=गतिनिवृत्त्या=कायव्यापारनिरोधेन 'मोणेण' मौनेन तूष्णीम्भावेन=वाग्व्यापारनिरोधेन 'झाणेण' ध्यानेन= चित्तैकाग्रतया=मनोव्यापारनिरोधेन कायिक-वाचिक मानसिकव्यापारपरित्यागपूर्वकमिति यावत्, 'अप्पाण' आत्मानम्' अत्राऽऽत्मशब्द आत्मीयार्थकः, स च 'काय' इत्यस्य विशेषण तेनाऽऽत्मीय कायमिति सम्बन्ध इति केचित्, वस्तुतस्तु कायमात्मान चेत्यर्थः । चशब्दाऽभावेऽपि समुच्चयार्थस्य 'अहरहर्नयमानो गामश्व पुरुष पशु' मित्यादौ दर्शनात्, अतएव सूत्रे 'काय' इत्युक्त्वाऽनन्तर 'ठाणेण' इति कायव्यापारनिरोधः, 'अप्पाण' इत्यत्र च 'झाणेण' इति मनोव्यापारनिरोधः प्रोक्त इति सूक्ष्मेक्षिकयाऽवधार्यम् । कायोत्सर्गस्य प्रसिद्धिरप्येतत्तात्पर्यपरिकैव, नह्यात्मत्यागव्यतिरेकेण कायत्यागमात्राद्यथोक्त प्रायश्चित्त सभवति । किञ्च रूढे, प्रयोजनस्य तात्पर्याऽनुपपत्तेश्च हेतोरभावेन लक्षणाया असम्भवात्, आत्मीयार्थत्वकल्पनमप्यमूलकमेवेत्यास्ता विस्तरः । 'वोसिरामि' व्युत्सृजामि=परित्यजामीत्यर्थ, ॥सू० ३॥

व्यक्तियों)की न्यूनाधिक शक्तिकी अपेक्षासे कहे गये हैं। इन आगारों से मेरा कायोत्सर्ग खण्डित तथा विराधित नहीं हो, कबतक? जबतक कि अरिहन्त भगवान को नमस्कार करके ध्यानको समाप्त न करदूँ तब तक, एक स्थिति से काय को, मौनसे वचनको और चित्तकी एकाग्रतासे आत्मा को वोसराता हूँ ॥ सू० ३ ॥

ઉચ્છ્વસિતાદિ આગાર અધિકારિયો (ધ્યાનસ્થ વ્યક્તિઓ)ની ઓછી વધુ શક્તિની અપેક્ષાથી કહ્યુ છે આ આગારોથી મારા કાયોત્સર્ગ ખડિત તથા વિરાધિત નહિં થાય, કયા સુધી ? કે જ્યા સુધી અરિહત ભગવાનને નમસ્કાર કરીને ધ્યાન પૂરો ન કરી લઉ ત્યા સુધી, એક સ્થિતિથી કાયાને, મૌનથી વચનને અને ચિત્તની એકાગ્રતાથી આત્માને વોસરાઉ છુ (સૂ૦ ૩)

एवं कायोत्सर्गमास्थाय तत्र भेदेन प्रकृताऽतिचारांश्चिन्तयति-

॥ मूलम् ॥

आगमे तिविहे पण्णत्ते तंजहा–सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे। जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं,अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिन्नं सुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए सज्झाइयं, सज्झाए न सज्झाइयं, [1]तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥सू०४॥

॥ छाया ॥

आगमस्त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–सूत्रागमः अर्थागमः तदुभयागमः। (तत्र) यद् व्याविद्धं, व्यत्याम्रेडितं, हीनाक्षरम्, अत्यक्षरं, पदहीनं, योगहीनं, घोषहीनं, सुष्ठुदत्तं, दुष्ठुप्रतीष्टम्, अकाले कृतः स्वाध्यायः, काले न कृतः स्वाध्यायः, अस्वाध्याये स्वाध्यायितं, स्वाध्याये न स्वाध्यायितं, तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

'आगमे' आ=समन्तात् गम्यन्ते=ज्ञायन्ते जीवाजीवादिपदार्था येनेति, आ=विनयादिमर्यादया गम्यते=प्राप्यते तीर्थकरगणधरादिभ्य इति, आ=स्मरणार्थमात्मस्वरूपस्येत्यर्थात्, गम्यते=[2]गृह्यते इति, आ=आभिमुख्यमर्था

इस प्रकार कायोत्सर्ग का अवलम्बन करके उसमें अतिचारों का विशेषरूपसे चिन्तन करते हैं—'आगमे तिविहे' इत्यादि।

जिससे 'जीव, अजीव' आदि नौ तत्त्व अच्छी तरह जाने जाएँ या जो विनय आदि के आचरणद्वारा तीर्थङ्कर और गणधरों

એવી રીતે કાયોત્સર્ગનું અવલંબન કરીને તેમાં અતિચારોનું વિશેષરૂપથી ચિંતન કરે છે 'आगमे तिविहे' इत्यादि

જેનાથી 'जीव' 'अजीव' વિગેરે નવ તત્ત્વ બરાબર જાણી લેવાય અથવા જે વિનય આદિ આચરણદ્વારા તીર્થંકર અથવા ગણધરોથી

[1]– भणता गुणता विचारता ज्ञान और ज्ञानवंत की आशातना की होतो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं'।

[2]–धातूनामनेकार्थत्वादिति प्रागुक्तमेव। यद्वा 'ये गत्यर्थास्ते प्राप्त्यर्थाः' इति गतिः प्राप्तिर्ग्रहणं च मिथोऽनर्थान्तरमेव।

न्मोक्षस्य साम्मुख्य गम्यते=ज्ञायते येनेति, आगमयति=साकल्येन बोधयति जीवाजीवादितत्त्वसार्थमिति, आ=सम्यग्ज्ञानादित्रयमोक्षमार्गरूपा मर्यादा गम्यते= ज्ञायते येनेति, आ=तीर्थंकरप्ररूपितत्वेन सर्वथा निःशङ्कितत्वाद्विस्मयजनको गमो=ज्ञान यस्मिन्निति वा आगमः । यद्वा 'नामैकदेशे नामग्रहणात्' 'आ' 'ग' 'म' इति पदत्रय परिकल्प्य 'आ'=आगतस्तीर्थंकरात्, 'ग'=गतो गणधरमुखे, 'म'=मतो भव्याना सर्वेषामित्यागमः, तथाच–' आगतो वीतरागात्तु, गतो गणधराऽऽनने । मतः समस्तभव्याना, तस्मादागम उच्यते ॥ १ ॥' इति निर्गलितम् । व्याख्यानान्तर यथामत्यूहनीयम् । आगमः सिद्धान्तः प्रवचनमिति पर्यायाः । कतिविधः सः ? इत्याह–' तिविहे पण्णत्ते ' इति। तिस्रो विधाः= प्रकारा यस्य स त्रिविधः प्रज्ञप्तः=प्रकर्षेण सदेवमनुजासुरसभाया समवसरणस्थैस्तीर्थनाथैर्ज्ञप्तः=ज्ञापित उक्त इति यावत्। 'त जहा'–तद्यथा–(अत्र 'स यथे'–ति वक्तव्ये तदिति निर्देश आगमस्वरूपविशेषणापेक्षयाऽऽर्षत्वाद्वा, यद्वाऽव्यय तच्छब्दमादाय तदेवाऽऽगमस्वरूप दर्शयामीत्यर्थः) 'सुत्तागमे' सूत्रागमः=सूत्ररूप आगमः । 'अत्थागमे' अर्थागमः=अर्थरूप आगमः । 'तदुभयागमे' तदुभया-

से प्राप्त हो, अथवा जो आत्मस्वरूपके स्मरण के लिये प्राप्त किया जाय, या जिस से मोक्षमार्गका ज्ञान हो, अथवा जो तीर्थङ्कर भगवान के द्वारा उपदिष्ट होने के कारण शकारहित और अलौकिक होने से भव्य जीवों को चकित करदेने वाले ज्ञान को देने वाला हो, या जो अर्हन्त भगवान के मुख से निकल कर गणधर देवको प्राप्त हुआ और भव्य जीवोंने सम्यक् भावसे जिसको माना उसे 'आगम' कहते हैं। वह तीन प्रकारका है—(१) सुत्तागम, (२) अत्थागम (३) तदुभयागम ।

પ્રાપ્ત થાય અથવા જે આત્મસ્વરૂપના સ્મરણને માટે પ્રાપ્ત કરવામા આવે, અથવા જેનાથી મોક્ષમાર્ગનું જ્ઞાન થાય અથવા જે તીર્થંકર ભગવાન દ્વારા ઉપદિષ્ટ હોવાને કારણે શંકારહિત અને અલૌકિક હોવાથી ભવ્ય જીવોને ચકિત કરવાવાળા જ્ઞાનને આપવાવાળા હોય, અથવા જે અરિહંત ભગવાનના મુખથી નીકળીને ગણધર દેવને મળ્યા તથા જેને ભવ્ય જીવોએ સમ્યક ભાવથી માન્યા તેને 'આગમ' કહે છે તે ત્રણ પ્રકારના છે (૧) સુત્તાગમ, (૨) અત્થાગમ, (૩) તદુભયાગમ.

गमः=सूत्रार्थद्वयरूप आगमः। तत्र सूत्रपदं व्याचष्टे-'सुत्त' इति प्राकृतशैल्या सूत्र सूक्त सुप्तमिति पदत्रयस्य 'सुत्त' इति भवति, तस्मात् सूत्र्यन्ते=सगृह्यन्ते बहवोऽर्था यस्मिन्निति, सूत्रयति=गुम्फयति विविधानर्थान् सक्षेपेणेति, सूत्रयति= सूचयत्यल्पाक्षरैर्द्रव्यपर्यायनयादिस्वरूप भृशमर्थमिति, दोषराहित्येन 'सुष्ठूक्त= प्रतिपादितमिति, अर्थज्ञानमन्तरेण सर्वे पदार्थाः 'सुप्तत्वमतिभान्त्यत्रेति वार्थः। यद्वा सूत्र=तन्तुस्तत्सादृश्याद्गौण्या लक्षणया सूत्रम्, यथा तन्तौ बहूनि वस्तून्ये- कत्र सग्रथ्यन्ते तथेहापि बहवोऽर्था इति। आहोस्वित् यथा तन्त्वपरपर्याय सूत्रमेव सुचतुरैः पटकारैः पटरूपता नीत सद् गोप्याङ्गान्यावृत्य शैत्यादिभ्यो रक्षन् धार कस्य शोभा मङ्गल च तनोति तथेदमपि सूत्रमाचार्यादिव्याख्यात सत् पटस्था-

जिसमें सक्षेप रूपसे बहुत अर्थों का सग्रह किया जाय, अथवा जो दोषरहित कहा हुआ हो, या जैसे सोये हुए ७२ कला के ज्ञाता पुरुष को जगाने पर कला का भेद-प्रभेद का ज्ञान होता है उसी प्रकार अर्थ द्वारा सर्वतत्त्व जिससे जानें जाय अथवा जैसे सूत्र (सूत) मे मणि मोती आदि तरह तरह के पदार्थ गूँथे हुए रहते है, या जैसे सूत बहुत से इकट्ठे किये जाकर चतुर पुरुषों से तरह२ के (अपनी इच्छा के अनुसार) कपडे बनाये जाते हैं और जो गुप्त अगों को ढाकते हैं, सर्दी गर्मी से बचाते हैं तथा धारण करने वाले की शोभा को बढाते हैं, वैसे ही जो जीवादि नाना पदार्थों के स्वरूप से गुम्फित (ग्रथित) तथा आचार्य आदि से

જેમા સક્ષેપ રૂપે ઘણા અર્થોનો સગ્રહ કરવામા આવે અથવા જે દોષ રહિત કહેલ હોય, અથવા જેમ સુતેલ ૭૨ કળાના જ્ઞાતા પુરુષને જગાડયા પછી કળાના ભેદ પ્રભેદ જાણી શકાય તેવી રીતે અર્થ દ્વારા સઘળા તત્ત્વ જેનાથી જાણી શકાય, અથવા જેમ દોરામા મણિ-મોતી વિગેરે ભાતભાતના પદાર્થ ગુથાએલ રહે છે અથવા જેવી રીતે ઘણા સૂતરને ભેગા કરીને ડાહ્યા માણસો પોતાની ઈચ્છારૂપ ભાતભાતનુ કાપડ બનાવે છે તે કાપડ ગુપ્ત અગોને ઢાંકે છે, સર્દી અને તાપથી બચાવે છે અને પહેરનારની શોભાને વધારે છે તેવી જ રીતે જે જીવાદિ નાના પદાર્થોના સ્વરૂપથી ગુમ્ફિત (ગ્રથિત)

१- 'सुष्ठूक्त' सूक्तमिति च्छायापक्षे।

२- 'सुप्त'-मिति च्छायापक्षे।

नीयतामासाद्य पिधानीय कुमार्गमाहृत्य शैत्यादिस्थानीयाऽष्टविधकर्म्मभ्यो रक्षन् धारकाणा भव्याना मुखशोभा परममङ्गल च तनोतीति । अथवा सूचयति=सीव्यति स्रवति वाऽर्थानिति निरुक्तपरिपाट्या सूत्रम्, 'स्वल्पाक्षरमसन्दिग्ध, सारवद्विश्वतोमुखम् । अस्तोभमनवद्य च, सूत्र सूत्रविदो विदुः ॥ १ ॥' इत्युक्तमन्यत्र । सूत्रस्यार्थापेक्षितयैवोपयोगित्वादाह–'अत्थागमे' इति, अर्थ्यते=याच्यते, अथवा

व्याख्यान आदि के द्वारा विस्तृत हो कर आस्रवों को ढकता है, अष्टविध कर्मों से बचाता है, धारण करने वाले की शोभा बढाता है, या जैसे सूई के द्वारा वस्त्रों के टुकडे सीये जाने पर तरह-तरह के सुन्दर वस्त्र बनकर लोगों के उपकारक होते हैं, वैसे ही जो बहुत से फुटकर अर्थों से जोडा जाकर भव्यों के लिये अपूर्व लाभदायक होता है, अथवा जैसे किसी झरने से पानी झरता है उसी प्रकार जिसमें से उत्तम२ अर्थ निकलता है उसे 'सूत्र' कहते हैं। कहा भी है—

"जिसमें अक्षर थोडे पर अर्थ सर्वव्यापक, सारगर्भित, सन्देहरहित, निर्दोष तथा विस्तृत हो उसे विद्वान लोग 'सूत्र' कहते हैं" ॥ १ ॥

तद्रूप (सूत्ररूप) आगम सूत्रागम कहलाता है।

जो मुमुक्षुओं से प्रार्थित हो उसे अर्थागम कहते हैं। केवल सूत्रागम या अर्थागम से प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिये सूत्र और अर्थरूप 'तदुभयागम' कहा है। इनमें जो कुछ क्रमको

તથા આચાર્ય વિગેરેના વ્યાખ્યાનાદિ-દ્વારા વિસ્તૃત થઇને આસ્રવોને ઢાંકે છે, અષ્ટ પ્રકારના કર્મોથી બચાવે છે, ધારણા કરવાવાળાની શોભા વધારે છે, અથવા જેવી રીતે સોય-દ્વારા કાપડના ટુકડા સીવાઈ ગયા પછી તરેહ તરેહના સુદર વસ્ત્ર બનીને લોકો માટે ઉપકારી બને છે તેવી રીતે જે ઘણા પ્રકારના અર્થો થી સગૃહીત થઈને ભવ્યોને અપૂર્વ લાભદાયક થાય છે, અથવા જેવી રીતે કોઈ ઝરણામાથી પાણી ઝરે છે એવી રીતે જેમાથી ઉત્તમ અર્થ નિકળે છે, તેને સૂત્ર કહે છે

કહ્યુ પણ છે—

જેમા અક્ષર થોડા છતા પણ અર્થ સર્વવ્યાપક, સારગર્ભિત, સદેહરહિત નિર્દોષ તથા વિસ્તૃત હોય તેને વિદ્વાન માણસો સૂત્ર કહે છે

તદ્રૂપ (સૂત્રરૂપ) આગમ-સૂત્રાગમ કહેવાય છે

જે મુમુક્ષુઓથી પ્રાર્થિત હોય તેને અર્થાગમ કહે છે કેવળ સૂત્રાગમ અગર અર્થાગમથી પ્રયોજન સિદ્ધ નથી થઈ શકતુ, એટલા માટે સૂત્ર અને અર્થરૂપ તદુભયાગમ કહેલ છે એમા જો થોડુક ક્રમને છોડીને અર્થાત્ ક્રમપૂર્વક

गमः=सूत्रार्थद्वयरूप आगमः। तत्र सूत्रपदं व्याचष्टे–'सुत्त' इति प्राकृतशैल्या सूत्र सूक्त सुप्तमिति पदत्रयस्य 'सुत्त' इति भवति, तस्मात् सूत्र्यन्ते=संगृह्यन्ते बहवोऽर्था यस्मिन्निति, सूत्रयति=गुम्फयति विविधानर्थान् संक्षेपेणेति, सूत्रयति= सूचयत्यल्पाक्षरैर्द्रव्यपर्यायनयादिस्वरूपं भृशमर्थमिति, दोषराहित्येन [1]सुष्ठूक्त= प्रतिपादितमिति, अर्थज्ञानमन्तरेण सर्वे पदार्थाः [2]सुप्तवत्प्रतिभान्त्यत्रेति वार्थः। यद्वा सूत्र=तन्तुस्तत्सादृश्याद्गौण्या लक्षणया सूत्रम्, यथा तन्तौ बहूनि वस्तून्ये- कत्र संग्रथ्यन्ते तथेहापि बहवोऽर्था इति। आहोस्वित् यथा तन्त्वपरपर्याय सूत्रमेव सुचतुरैः पटकरैः पटरूपता नीत सद् गोप्याङ्गान्याहृत्य शैत्यादिभ्यो रक्षन् धार- कस्य शोभा मङ्गल च तनोति तथेदमपि सूत्रमाचार्यादिव्याख्यात सत् पटस्था-

जिसमें संक्षेप रूपसे बहुत अर्थों का संग्रह किया जाय, अथवा जो दोषरहित कहा हुआ हो, या जैसे सोये हुए ७२ कला के ज्ञाता पुरुष को जगाने पर कला का भेद-प्रभेद का ज्ञान होता है उसी प्रकार अर्थ द्वारा सर्वतत्त्व जिससे जानें जाय अथवा जैसे सूत्र (सूत) मे मणि मोती आदि तरह तरह के पदार्थ गूँथे हुए रहते हैं, या जैसे सूत बहुत से इकट्ठे किये जाकर चतुर पुरुषों से तरह२ के (अपनी इच्छा के अनुसार) कपडे बनाये जाते हैं और जो गुप्त अंगों को ढाकते हैं, सर्दी गर्मी से बचाते है तथा धारण करने वाले की शोभा को बढाते हैं, वैसे ही जो जीवादि नाना पदार्थों के स्वरूप से गुम्फित (ग्रथित) तथा आचार्य आदि से

જેમા સક્ષેપ રૂપે ઘણા અર્થોનો સગ્રહ કરવામા આવે અથવા જે દોષ રહિત કહેલ હોય,-અથવા જેમ સુતેલ ૭૨ કળાના જ્ઞાતા પુરૂષને જગાડયા પછી કળાના ભેદ પ્રભેદ જાણી શકાય તેવી રીતે અર્થ દ્વારા સઘળા તત્ત્વ જેનાથી જાણી શકાય, અથવા જેમ દોરામા મણિ-મોતી વિગેરે ભાતભાતના પદાર્થ ગુથાએલ રહે છે અથવા જેવી રીતે ઘણા સૂતરને ભેગા કરીને ડાહ્યા માણસો પોતાની ઈચ્છારૂપ ભાતભાતનું કાપડ બનાવે છે તે કાપડ ગુપ્ત અગોને ઢાકે છે, સર્દી અને તાપથી બચાવે છે અને પહેરનારની શોભાને વધારે છે તેવી જ રીતે જે જીવાદિ નાના પદાર્થોના સ્વરૂપથી ગુમ્ફિત (ગ્રથિત)

१– 'सुष्ठूक्त' सूक्तमिति च्छायापक्षे।

२– 'सुप्त'–मिति च्छायापक्षे।

नलः, अनुस्वारमात्रलोपे सत्यसारः ससारोऽपि ससार. सजायते । अत्र वृद्धा इत्थमाभणन्ति—राजगृहे समवसृतस्य भगवतो महावीरस्य धर्मदेशनाश्रवणानन्तर भगवन्त वन्दित्वा परिषत् प्रतिगता, तदा किञ्चिदुत्पत्यावपतित पुनरुत्पत्यावपतित विद्याधरविमानमालोक्य सन्दिहानेन सपुत्रेण राज्ञा श्रेणिकेन पृष्टो भगवानाह—'विमानवाहोऽय विमानचारणमन्त्रस्यैकमक्षर विस्मृतवांस्तेनेद विमान हतपक्षः पक्षीव मुहुर्मुहुरुत्पत्योत्पत्य निपततीति'ति । तच्छुत्वा श्रेणिकपुत्रोऽभयकुमारो निजया पदमात्रोपलब्धिपूर्वकाऽनेकपदानुसन्धानशक्त्या त विमानचारणमन्त्र न्यूनाक्षरा-

(सारसहित) बन जाता है, तथा 'कमल' शब्दके 'क' को कम करदेने से 'मल' बन जाता है, इत्यादि, इस विषयमें विद्याधर और अभयकुमार का दृष्टान्त है—

एक समय राजगृह नगरीमे पधारे हुए भगवान महावीर स्वामी की धर्मदेशना सुनकर तथा उनको वन्दना करके परिषद् के चले जाने पर बार बार उडते–गिरते किसी विद्याधरके विमान को देख कर अपने पुत्र अभयकुमार के साथ राजा श्रेणिकने भगवान से पूछा, प्रभो ! यह विमान इस प्रकार उड कर क्यों गिरता है? तब भगवानने फरमाया कि यह विद्याधर अपनी विद्या का एक अक्षर भूल गया है जिससे यह विमान बिगर पाख के पक्षी की तरह बार-बार उड-उड कर गिरता है। ऐसा सुन कर राजा

'ससार' (सारसहित) બને છે તથા જેમ 'કમળ' શબ્દના 'ક' ને કાઢી નાખવાથી 'મળ' શબ્દ બની જાય છે

આ વિષયમા એક વિદ્યાધર અને અભયકુમારનું દૃષ્ટાત છે

એક વખત રાજગૃહ નગરીમા પધારેલા ભગવાન મહાવીર સ્વામીની ધર્મદેશના સાભળી તથા ભગવાનને વન્દન કરી પરિષદ ચાલી ગયા પછી એક વિદ્યાધરના વિમાનને ઉડતા–પડતા જોઈને પોતાના પુત્ર અભયકુમારની સાથે શ્રેણિક રાજાએ ભગવાનને પૂછયુ પ્રભો ! આ વિમાન આવી રીતે ઉડીને પાછુ કેમ પડે છે ? ત્યારે ભગવાને જણાવ્યુ કે આ વિદ્યાધર પોતાની વિદ્યામાથી એક અક્ષર ભૂલી ગયો છે જેથી આ વિમાન પાખ વિનાના પક્ષીની જેમ વારવાર ઉડી ઉડીને પડી જાય છે એવુ સાભળીને રાજા શ્રેણિકના પુત્ર અભયકુમારે

अर्यते=गम्यतेऽर्थात्प्राप्यते मुमुक्षुभिरित्यर्थः[1]। पृथक् पृथक् सूत्ररूपेणार्थरूपेण चाऽऽगमेन यथोचितोपयोगाभावादुभयमाह-'तदुभयागमे[2]' इति, तच्च स च ते तयोरुभयं तदुभयं तच्चासावागमश्च तदुभयागमः=सूत्रार्थो-भयरूप आगम इत्यर्थः। तत्र 'ज' यत् 'वाइद्ध' व्याविद्ध=विपर्यस्तमणिमालावत्तदेव विपरीतोच्चारितम्, 'वच्चामेलिय'-व्यत्याम्रेडित=व्यत्ययेन सूत्रान्तरस्याऽऽलापकं सूत्रान्तरेण संयोज्याऽस्थाने विरामं कृत्वा स्वकपोलकल्पितानि सूत्राभासानि विरचय्य वा आम्रेडित=समुद्‌घुष्टमर्थादुच्चारितम्। 'हीणक्खर' हीनाक्षर-हीनमक्षरं यस्मिंस्तत्, हीनाक्षरदोषो हि महान्तमनर्थं जनयति, अकारमात्रलोपे सत्यनलोऽपि

छोडकर अर्थात् क्रमपूर्वक न पढा गया हो, जैसे 'नमो अरिहंताणं' इत्यादि की जगह 'अरिहंताणं नमो' इत्यादि पढा गया हो (१)। एक सूत्र का पाठ दूसरे सूत्रमें मिलाकर या जहा विराम न लेना चाहिये वहा विराम लेकर, अथवा अपनी तरफ से कुछ शब्द जोडकर पढा गया हो (२)। अक्षरहीन पढा गया हो, जैसे 'अनल' शब्द का अकार कम कर दिया जाय तो 'नल' बन जाता है, 'संसार' शब्दका सिर्फ अनुस्वार निकाल दिया जाय तो 'ससार'

न वंचायुं होय, જેવી રીતે 'नमो अरिहंताणं' વિગેરેની જગ્યાએ 'अरिहंताणं नमो' વિગેરે વંચાયું હોય (૧) એક સૂત્રના પાઠ બીજા સૂત્રમાં મેળવીને અગર જ્યાં રોકાવું ન જોઈએ ત્યાં રોકાઈને, અથવા પોતાના તરફથી થોડા શબ્દ જોડીને વાંચ્યું હોય, (૨) અક્ષરહીન વંચાયું હોય-જેવી રીતે 'અનલ' શબ્દનો અકાર કાઢી નાખીએ તો 'નલ' બની જાય છે, 'સંસાર' શબ્દમાં ખાલી અનુસ્વાર કાઢી નાખીએ તો

१- अर्थ'-अर्थ उपयाच्ञायाम्' अस्माद् बाहुलकेन कर्मण्यच्, पक्षे 'ऋ गतौ' अस्मादौणादिकः कर्मणि थन्।

२- 'आगमे तिविहे' इत्यत आरभ्य 'तदुभयागमे,' इत्यन्तं यावत् एतत् मागधीशैल्या॥

नलः, अनुस्वारमात्रलोपे सत्यसारः ससारोऽपि ससारः सजायते । अत्र वहव इत्थमाभणन्ति–राजगृहे समवसृतस्य भगवतो महावीरस्य धर्मदेशनाश्रवणानन्तर भगवन्त वन्दित्वा परिषत् प्रतिगता, तदा किञ्चिदुत्पत्यावपतित पुनरुत्पत्यावपतित विद्याधरविमानमालोक्य सन्दिहानेन सपुत्रेण राज्ञा श्रेणिकेन पृष्टो भगवानाह–'विमानवाहोऽय विमानचारणमन्त्रस्यैकमक्षर विस्मृतवास्तेनेद विमान हतपक्षः पक्षीव मुहुर्मुहुरुत्पत्योत्पत्य निपतती'ति । तच्छ्रुत्वा श्रेणिकपुत्रोऽभयकुमारो निजया पदमात्रोपलब्धिपूर्वकऽनेकपदानुसन्धानशक्त्या त विमानचारणमन्त्र न्यूनाक्षरा-

(सारसहित) वन जाता है, तथा 'कमल' शब्दके 'क' को कम करदेने से 'मल' वन जाता है, इत्यादि, इस विषयमे विद्याधर और अभयकुमार का दृष्टान्त है—

एक समय राजगृह नगरीमे पधारे हुए भगवान महावीर स्वामी की धर्मदेशना सुनकर तथा उनको वन्दना करके परिषद के चले जाने पर बार बार उडते–गिरते किसी विद्याधरके विमान को देख कर अपने पुत्र अभयकुमार के साथ राजा श्रेणिकने भगवान से पूछा, प्रभो ! यह विमान इस प्रकार उड कर क्यों गिरता है? तब भगवानने फरमाया कि यह विद्याधर अपनी विद्या का एक अक्षर भूल गया है जिससे यह विमान विगर पाख के पक्षी की तरह बार-बार उड-उड कर गिरता है। ऐसा सुन कर राजा

'સસાર' (સારસહિત) બને છે તથા જેમ 'કમળ' શબ્દના 'ક' ને કાઢી નાખવાથી 'મળ' શબ્દ બની જાય છે

આ વિષયમા એક વિદ્યાધર અને અભયકુમારનું દૃષ્ટાંત છે

એક વખત રાજગૃહ નગરીમા પધારેલા ભગવાન મહાવીર સ્વામીની ધર્મદેશના સાભળી તથા ભગવાનને વન્દન કરી પરિષદ ચાલી ગયા પછી એક વિદ્યાધરના વિમાનને ઉડતા–પડતા જોઈને પોતાના પુત્ર અભયકુમારની સાથે શ્રેણિક રાજાએ ભગવાનને પૂછ્યુ પ્રભો ! આ વિમાન આવી રીતે ઉડીને પાછુ કેમ પડે છે ? ત્યારે ભગવાને જણાવ્યુ કે આ વિદ્યાધર પોતાની વિદ્યામાથી એક અક્ષર ભૂલી ગયો છે જેથી આ વિમાન પાખ વિનાના પક્ષીની જેમ વાર વાર ઉડી ઉડીને પડી જાય છે એવુ સાભળીને રાજા શ્રેણિકના પુત્ર અભયકુમારે

नुसन्धानेनाऽविकलीकृत्य फलितमनोरथात्तस्माच्चस्माद्विद्याधराद्विद्यासिद्ध्युपाय मुपलब्धवानिति । 'अच्चक्खर' अत्यक्षरम्-अति=आगमगाथामात्रापेक्षयाऽधिकमक्षर यस्मिंस्तत्तथाभूतमर्थादेकद्व्यादिक्रमेणाक्षरमधिकीकृत्योच्चारितम् । 'पयहीण' पदहीन= पद न्यूनीकृत्योच्चारितम्, एतच्चोपलक्षणमधिकपदत्वस्यापि अधिकाक्षरत्वस्येवाधिक पदत्वस्याप्युपन्यासार्हत्वात् । 'विणयहीण' विनयहीन=विनय विनोच्चारितम् । जोगहीण' योगहीन-योगो=मनोयोगस्तेन हीन मनोयोग दत्त्वा पठितमित्यर्थः ।

श्रेणिकका पुत्र अभयकुमारने अपनी पदानुसारिणी लब्धि-द्वारा उसके विमानचारण मन्त्र को पूरा करके उसके मनोरथ को सिद्ध किया और उस विद्याधर से आकाशगामिनी विद्याकी सिद्धि का उपाय सीख लिया। (३)

अधिक अक्षर जोडकर पढा गया हो, जैसे एक राजा के वाचक 'नल' शब्द के पहले 'अ' जोड कर पढा जाय तो 'अनल' बन जाता है, जिसका अर्थ अग्नि हो जाता है (४)। पद को न्यून या अधिक करके बोला गया हो, जैसे "सप्त व्यसन सेवनीय नहीं है" यहा पर 'नहीं' पदको न्यून कर देने से तथा "हार" के साथ "प्र" आदि अधिक शब्द लगा देने से बहुत अर्थभेद हो जाता है (५)। विनयरहित पढा गया हो (६)। मनोयोग दिये विना पढा गया हो, अथवा आयम्बिल आदि

પોતાની પદાનુસારિણી લબ્ધિ દ્વારા એના વિમાનચારણ (વિમાન ચલાવનાર) મંત્રને પૂરો કરી તેના મનોરથને સિદ્ધ કર્યું, અને તે વિદ્યાધર પાસેથી આકાશ ગામિની વિદ્યાની સિદ્ધિનો ઉપાય શીખી લીધો (૩)

વધારે અક્ષર જોડીને વાચ્યુ હોય – જેવી રીતે એક રાજાનો વાચક 'નલ શબ્દ પહેલા 'અ' જોડી દેવાય તો 'અનલ' બની જાય છે અને જેનો અર્થ અગ્નિ થઇ જાય છે (૪) પદને થોડુ અગર વધારે કરીને બોલાયુ હોય જેવી રીતે સાત વ્યસન સેવવા યોગ્ય નથી અહીં નથી પદને છોડી દેવાથી, તથા 'હાર' ની સાથે 'પ્ર' વિગેરે વધારે શબ્દ ઉમેરવાથી ઘણો અર્થભેદ થઇ જાય છે (૫) વિનયરહિત વચાયું હોય (૬) મનોયોગ આપ્યા વિના વાચ્યુ હોય અથવા આયમ્બિલ વિગેરે શાસ્ત્રોક્ત તપ કર્યા વિના વાચ્યુ હોય

यद्वा–आचामाम्लाद्यनुष्ठानरूपयोगोद्वहनमन्तरेण पठितम् । 'घोसहीणं' घोषहीन-घोषः=उदात्तानुदात्तस्वरितरूपस्वरत्रयं तद्धीनमर्थादुदात्तादिस्वराणां यथोचित-मुच्चारणमकृत्वैव पठितम् । 'सुण्डुदिन्नं' सुष्ठुदत्त–सुष्ठु=शोभनं यथास्यात्तथा मरहस्यमित्यर्थः, दत्त=पाठितम् , पात्रापात्रविवेकमकृत्वैव निकटोपस्थिताय यस्मै कस्मैचित्सम्यक्तया सूत्रार्थदानमित्यर्थः । पात्रविवेकमन्तरेण हि कदाचित्कु-पात्रायाऽध्यापितं महान्तमनर्थं जनयति, यथा भुजङ्गस्य क्षीरपायनं तद्विषवर्द्धनायैव, यथा वा ज्वरार्तस्य घृतपायनं शीतलजलस्नपनं वा तज्ज्वरवर्द्धनायैव, यद्वा यथा बहुमूल्यां सुविशालां मालां सग्रथ्य वानरगले समर्पणं तन्मालायाः समुच्छेदायैव, अथवा यथोपरभूमावुप्तबीजं न फलति प्रत्युत तत्रैव (भूमौ) विलीयते तथैवाऽ-पात्राय विद्यादानं, यतोऽसौ काकतालीयन्यायेन कदाचिल्लब्धविद्योऽपि स्वस्व-

शास्त्रोक्त तप किये विना पढा गया हो (७)। उदात्त आदि स्वरों के उचित उच्चारण किये विना पढा गया हो (८)। पात्र कुपात्र का विचार किये विना रहस्य खोल कर पढाया गया हो, क्यों कि शिष्य की परीक्षा किये विना कदाचित् कुपात्र को पढाया जाय तो वह साप को दूध पिलाने–तथा ज्वर वाले को घी पिलाने या ठण्डे जल से नहलाने के बराबर अनर्थकारी होता है। अथवा जैसे सुन्दर रत्नों की माला बन्दर के गलेमे डाल दी जाय, या ऊसर भूमिमें बीज बोया जाय तो लाभ के बदले हानि ही होती है उसी प्रकार कुपात्र शिष्यको शास्त्र का ज्ञान पढाना अलाभकारी है। यदि किसी सयोग से वह विद्या प्राप्त भी कर

(૭) ઉદાત્ત વિગેરેનો શુદ્ધ ઉચ્ચાર કર્યા વિના વાચ્યુ હોય (૮) પાત્ર–કુપાત્રના વિચાર કર્યા વિના રહસ્ય સમજાવીને ભણુાવ્યુ હોય કારણુ કે શિષ્યની પરીક્ષા કર્યા વિના કોઇ વખત કુપાત્રને ભણુાવાય તો તે સાપને દૂધ પીવરાવવા જેવું તથા તાવવાળાને ઘી ખવરાવવા જેવુ અથવા તો ઠડા પાણીથી સ્નાન કરાવવા જેવુ અનર્થકારી થાય છે, અથવા તો સુન્દર રત્નોની માળા વાદરાના ગળે પહેરાવવી અગર ખારા વાળી જમીનમા બીજ વાવી દેવામા આવે તો લાભ થવાના બદલે હાનિ જ થાય છે એ પ્રમાણે કુપાત્ર શિષ્યને શાસ્ત્રનું જ્ઞાન આપવુ અલાભકારી છે કદાચ કોઇ સયોગવશાત્ તે વિદ્યા પ્રાપ્ત પણુ કરી લે તો પણુ પોતાના કુટિલ

नुसन्धानेनाऽविकलीकृत्य फलितमनोरथात्मसञ्जातसमाद्विद्याधरात्तद्विद्यासिद्ध्युपाय मुपलब्धवानिति । 'अच्चक्खर ' अत्यक्षरम्–अति=आगमगाथासूत्रापेक्षयाऽधिकमक्षर यस्मिंस्तत्तथाभूतमर्थादेकद्वयादिक्रमेणाक्षरमधिकीकृत्योच्चारितम् । 'पयहीण' पदहीन= पद न्यूनीकृत्योच्चारितम्, एतच्चोपलक्षणमधिकपदत्वस्यापि अधिकाक्षरत्वस्येवाधिक-पदत्वस्याप्युपन्यासार्हत्वात् । ' विणयहीण ' विनयहीन=विनय विनोच्चारितम् । जोगहीण ' योगहीन–योगो=मनोयोगस्तेन हीन मनोयोग दत्त्वा पठितमित्यर्थः ।

श्रेणिकका पुत्र अभयकुमारने अपनी पदानुसारिणी लब्धि-द्वारा उसके विमानचारण मन्त्र को पूरा करके उसके मनोरथ को सिद्ध किया और उस विद्याधर से आकाशगामिनी विद्याकी सिद्धि का उपाय सीख लिया। (३)

अधिक अक्षर जोडकर पढा गया हो, जैसे एक राजा के वाचक 'नल' शब्द के पहले 'अ' जोड कर पढा जाय तो 'अनल' बन जाता है, जिसका अर्थ अग्नि हो जाता है (४)। पद को न्यून या अधिक करके बोला गया हो, जैसे "सप्त व्यसन सेवनीय नहीं है" यहा पर 'नहीं' पदको न्यून कर देने से तथा "हार" के साथ "प्र" आदि अधिक शब्द लगा देने से बहुत अर्थभेद हो जाता है (५)। विनयरहित पढा गया हो (६)। मनोयोग दिये विना पढा गया हो, अथवा आयम्बिल आदि

પોતાની પદાનુસારિણી લબ્ધિ દ્વારા એના વિમાનચારણ (વિમાન ચલાવનાર) મંત્રને પૂરો કરી તેના મનોરથને સિદ્ધ કર્યું, અને તે વિદ્યાધર પાસેથી આકાશ ગામિની વિદ્યાની સિદ્ધિનો ઉપાય શીખી લીધો (૩)

વધારે અક્ષર જોડીને વાચ્યુ હોય – જેવી રીતે એક રાજાનો વાચક ' નલ શબ્દ પહેલા ' અ ' જોડી દેવાય તો ' અનલ ' બની જાય છે અને જેનો અર્થ અગ્નિ થઇ જાય છે (૪) પદને થોડુ અગર વધારે કરીને બોલાયુ હોય જેવી રીતે સાત વ્યસન સેવવા યોગ્ય નથી અહીં નથી પદને છોડી દેવાથી, તથા ' હાર ' ની સાથે ' પ્ર ' વિગેરે વધારે શબ્દ ઉમેરવાથી ઘણો અર્થભેદ થઇ જાય છે (૫) વિનયરહિત વચાર્યું હોય (૬) મનોયોગ આપ્યા વિના વાચ્યુ હોય અથવા આયમ્બિલ વિગેરે શાસ્ત્રોક્ત તપ કર્યા વિના વાચ્યુ હોય

" [1]दसगमसगसमाणा, जलूगवेच्छुगसमा य जे होंति ।
ते किर होंति खलुका, तिक्खमिऊ चंडमद्दविया ॥ १ ॥ "
जे किर गुरुपडिणीया, सबला असमाहिकारगा पावा ।
कलहकरणस्स भावा, जिणवयणे ते किर खलुका ॥ २ ॥
पिसुणा परोवयावी, भिन्नरहस्सा पर परिभवंति ।
निव्विअणिज्जा य सढा, जिणवयणे ते किर खलुका ॥ ३ ॥ " इति ।

स्थानाङ्गे भगवताऽपि निर्दर्शितम्—

" जो डॅास, मच्छर, जोंक विच्छू के समान आचरण करने वाला, असहिष्णु, आलसी, क्रोधी, वार वार कहने पर भी गुरुकी आज्ञा को नहीं मानने वाला, गुरुका विरोधी, चारित्रमें शबल-दोषयुक्त, गुरुको असमाधि पैदा करने वाला, झगडालू, चुगलखोर, पर को पीडा देने वाला, दूसरे को दबाने वाला, रहस्यभेद करने वाला, विरुद्ध आचरण करने वाला तथा शठ, पापात्मा, जिन-वचनमें खलुङ्क—कुशिष्य कहलाता है ॥ ३ ॥

स्थानाङ्ग सूत्रमें भगवान ने फरमाया है कि—'अविनीत, रस-

" જોક, ડાંસ, મચ્છર, વિંછીના સમાન આચરણ કરવાવાળા, અસહિષ્ણુ આળસુ, ક્રોધી, વારવાર કહેવા છતાંય ગુરુની આજ્ઞાનું પાલન નહિ કરનાર, ગુરુના વિરોધી, ચારિત્રમાં શબલ દોષયુક્ત, ગુરુને અસમાધિ ઉત્પન્ન કરનાર, કજીયાખોર, ચાડીયાપણું, પરને પીડા કરનાર, બીજાને દબાવનાર, ખાનગી વાતને જાહેર કરનાર, વિરુદ્ધ આચરણ કરનાર તથા શઠ પાપાત્મા જિનવચનમાં શંકા કંખા કરનાર કુશિષ્ય કહેવાય છે

સ્થાનાઙ્ગ સૂત્રમાં ભગવાને કહ્યું છે કે—અવિનીત, રસલોલુપ, મહાક્રોધી,

१—दशकमशकसमाना जलूकावृश्चिकसमाश्च ये भवन्ति । ते किल भवन्ति खलुङ्कास्तीक्ष्णमृदुचण्डमार्दविका ॥ १ ॥ ये किल गुरुप्रत्यनीकाः, शबला असमाधिकारकाः पापाः । कलहकरणस्वभावा जिनवचने ते किल खलुङ्काः ॥२॥ पिशुनाः परोपतापिनो, भिन्नरहस्याः पर परिभवन्ति । निर्वेदनीयाश्च शठा जिनवचने ते किल खलुङ्काः ॥ ३ ॥ इति संस्कृतच्छाया ।

भावमपरित्यजन् [1]दृष्टीदृष्टि पात्रभूतानपि शिष्यानपात्रत्वं नयति, स्वल्पीयसाऽपि कारणेन महान्तं क्रोधमादाय गर्वितोऽनाचरणीयमाचर्य निजया दुर्भावनया कुठारधारया धर्म्मकल्पवृक्षमेव चिच्छित्सति। ननु कोऽपात्रपदभाक्? इति=चेदुच्यते-यः परापवादशीलो, योऽसयतेन्द्रियो, योऽनृजुर्यः क्रोधी, यः पिशुनो, यः क्रूरवाक्, यो बहुभोजनप्रियः, यो मनोवाग्देहेष्वसमवृत्तिर्यश्चाविनयः। प्रोक्तमिदमुत्तराध्ययननिर्युक्तौ—

लेवे तो अपने कुटिल स्वभाव को न छोडता हुआ सुपात्र शिष्यों को भी अपने समान बना डालता है। और जरा २ सी बातमें क्रुद्ध होकर घमण्डपूर्वक दुर्भावनारूप कुल्हाडी से धर्म्मरूप कल्पवृक्ष को काटने के लिये उतारू होजाता है।

कुपात्र उसको कहते हैं- जो पराई निन्दा करे, इन्द्रियों का लोलुपी, हृदय का कुटिल, क्रोधी, चुगलखोर, कठोरभाषी, खाने-पीनेमें अधिक लोलुपी, मन वचन और कायामें विषम वृत्ति रखने वाला (मनमें कुछ, बोले कुछ, करे कुछ ऐसा) तथा उद्दण्ड हो। जैसा कि उत्तराध्ययननिर्युक्तिमें कहा है—

स्वभावने ते छोडतो नथी अने सुपात्र शिष्यने पण पोताना जेवो बनावे छे, अने सामान्य जेवी वातमा पण क्रोधायमान थईने घमंड साथे दुर्भावना रूप कुहाडी वडे धर्मरूप कल्पवृक्षने कापी नाखवा तैयार थई जाय छे

कुपात्र तेने कहे छे के जे पारकी निन्दा करे इंद्रियोमा लोलुपी, कुटिल-अन्तःकरण होय क्रोधी, चाडीयापणु, कडवी वाणी बोलनार, खान-पानमा लोलुपी, मन वचन अने कायामा विषमवृत्ति (मनमा बीजु, बोलवामा बीजु अने करवामा बीजु) राखनार, तथा उद्धत होय जेमके उत्तराध्ययन-निर्युक्तिमा कह्यु छे के —

[1]–'दृष्टीदृष्टि' 'देखादेखी' इति भाषा, 'कर्णाकर्णि मथितमयशो बन्धुवर्गैरभाणि' इत्यादाविव ग्रहणविषयस्य कर्मव्यतिहारस्य चाभावेऽपि बहुव्रीहिसमासस्येच्प्रत्ययस्य चेष्टत्वात्॥

दुष्ठोर्वा प्रतीष्टं=प्रतिगृहीतम्, 'प्रतीप्सित'- मितिच्छायायामप्ययमेवार्थः[1] ॥ केचिदनयोर्द्वयोरेकत्वं व्याचक्षते, तदयुक्तम्; परस्परमनपेक्षत्वात्, अत एवात्राऽतिचाराणामागोपालबालाबालिकप्रसिद्ध चतुर्दशत्वमप्युपपद्यतेऽन्यथा त्रयोदशत्वापत्तेः, एतेन 'सुष्ठु दत्त गुरुणा, दुष्ठु प्रतीच्छित कलुषितान्तरात्मने–' ति व्याख्यानमसदिति बुद्धिमद्भिरनुभाव्यम् । सुष्ठु–दुष्ठु–शब्दावव्ययौ त्रिलिङ्गौ च ।

'अकाले कओ सज्झाओ' न कालोऽकालस्तस्मिन्नकाले–असमये, अर्थाद् यस्य कालिकादिश्रुतस्य योऽध्ययनसमयः प्रथमप्रहरादिस्तमतिक्रम्य कृतो=विहितः स्वाध्यायः । 'काले न कओ सज्झाओ' काले=स्वाध्यायसमये प्रथमप्रहरादौ न कृतः स्वाध्याय इति निगदव्याख्यातमिदम् । 'असज्झाये सज्झाइय' न स्वाध्यायो यस्मिन् सोऽस्वाध्यायस्तस्मिन् = स्वसमुत्थपरसमुत्थभेदभिन्ने रुधिरस्रावोल्कापात–दिग्दाहाऽकालवर्षणादिरूपे स्वाध्यायित=स्वाध्यायः कृतः[2]।

है, अर्थात् 'सुट्ठुदिन्न दुट्ठुपडिच्छिय' इन दोनो को मिलाकर एक अतिचार माना है सो उचित नही है, क्योंकि इन दोनो का ऐसी कोई अपेक्षा नही है जिससे एक साथ सम्बन्ध किया जाय । दोनों को जुदा २ मानने से ही चौदह अतिचार होते हैं नही तो तेरह ही रह जायँगे (१०) । अकाल मे स्वाध्याय किया गया हो (११), काल

दुट्ठुपडिच्छिय" આ બન્નેને ભેલવી એક અતિચાર માનેલ છે તે ઉચિત નથી, કેમકે આ બન્નેની કોઇ એવી અપેક્ષા નથી કે જેથી એક સાથે સબંધ કરવામા આવે બન્નેને જૂદા જૂદા માનવાથી ચૌદ અતિચાર થાય છે નહિ તો તેર જ થઇ જશે (૧૦) અકાલમા

१–'पडिच्छिय' इत्यस्य 'प्रतीच्छित'–मितिच्छायया प्रतिगृहीतार्थकल्पनं तु व्याकरणाननुसन्धानेन गजनिमीलिकैव 'इषुगमियमां छः' (७ । ३ । ७७) इति शित्येव छादेशविधानात् । न च प्रतीच्छा सजाताऽस्येत्यर्थे तारकादित्वादितचि प्रतीच्छितमिति युक्तमेवेति सन्देग्धव्यम्, तथा सति प्रतीच्छात एव बोधसम्भवेन 'प्रतिगृहीत'–मिति कर्मवाचकत्वानुपपत्तेरिति कृतमसारग्रन्थपर्यालोचनेन ॥

२–'स्वाध्यायितम्'–'तत्करोति तदाचष्टे'–इति णिजन्तात् स्वाध्यायशब्दात् क्तप्रत्यये 'निष्ठायां सेटि' (६।४।५२) इति णिलोपः । 'स्वाध्यायिकम्'-इतिच्छायां कल्पयित्वा स्वाध्याय एव स्वाध्यायिकम् इति व्याख्यानं तु न रुचिरं, स्वाध्यायशब्दात् स्वार्थठकोऽसम्भवात्, विनयादेराकृतिगणत्वे प्रमाणाभावस्य प्रागुक्तत्वात् ।

"[1]चत्तारि अवायणिज्जा पन्नत्ता, तंजहा-अविणीए विगइपडिबद्धे अवि ओसवियपाहुडे माई" इति। यद्वा 'सुट्ठुदिन्न' इत्यत्र प्राकृतत्वादकारलोप स्तेन 'सुष्ठ्वदत्त'-मितिच्छाया, तेन सुष्ठवे=विनीताय अदत्त=न दत्तमित्यर्थः। विनीताय शिष्याय दत्त शास्त्रमनन्तगुणफलकं भवति, यत इदमेव धर्मदानमिती त्युक्तमन्यत्र—

"पात्रेभ्यो दीयता विद्या, नित्य चैवाऽनपेक्षया।
केवल धर्मबुद्ध्या य,-द्धर्मदान मचक्षते" ॥ १ ॥ इति।

'दुट्ठुपडिच्छिय' दुष्ठु=अशोभनं यथा स्यात्तथा दुर्भावनया वा

लोलुप, महाक्रोधी तथा मायाचारी शिष्य, ये चार वाचना देने योग्य नहीं है।'

अथवा 'सुट्ठुदिन्न' यहा पर प्राकृत के कारण अकार का लोप है इसलिये सुष्ठु-विनीत को अदत्त-न पढाया गया हो, क्योंकि विनीत शिष्य को पढानेसे अनन्त ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति होती है, इसको अन्यत्र धर्मदान भी कहा है-जैसे-

'सुपात्र शिष्य को निर्लोभ होकर केवल परमार्थ बुद्धि से ज्ञान देने को 'धर्मदान' कहते हैं ॥ १ ॥

(९) दुष्ट भावसे ग्रहण किया हो, अथवा दुष्ट पुरुष से लिया गया हो। इस अतिचारको किसीने 'सुट्ठुदिन्न' से अलग नही माना

તથા માયાચારી શિષ્ય, આ ચારને વાચના આપવી ચોગ્ય નથી

અથવા 'સુટ્ઠુદિન્ન' અહિંઆ પ્રાકૃત ભાષાના કારણે અકારનો લોપ છે એટલા માટે સુષ્ઠુ-વિનીતને અદત્ત-નહિ ભણાવ્યો હોય કારણ કે વિનીત શિષ્યને અભ્યાસ કરાવવાથી અનન્ત જ્ઞાનાદિ ગુણોની પ્રાપ્તિ થાય છે એને બીજે ઠેકાણે ધર્મદાન પણ કહેલ છે જેવી રીતે "સુપાત્ર શિષ્યને નિર્લોભ થઈને કેવલ પરમાર્થ-બુદ્ધિથી જ્ઞાન આપવુ તેને "ધર્મદાન" કહે છે" ॥ ૧ ॥

(૯) દુષ્ટભાવથી ગ્રહણ કર્યું હોય અથવા દુષ્ટ પુરૂષ પાસેથી લીધુ હોય આ અતિચારને કોઈએ "સુટ્ઠુદિન્ન" થી અલગ માન્યો નથી, અર્થાત્ "સુટ્ઠુદિન્ન

१- 'चत्वारोऽवाचनीयाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा-अविनीतो विकृतिप्रतिबद्धोऽव्य-वशमितप्राभृतो मायी" इतिच्छाया ॥

दुष्ठोर्वा मतीष्टं=प्रतिगृहीतम्, 'प्रतीप्सित'- मितिच्छायायामप्ययमेवार्थः[१]।
केचिदनयोर्द्वयोरेकत्व व्याचक्षते, तदयुक्तम्; परस्परमनपेक्षत्वात्, अत एवा-
त्राऽतिचाराणामागोपालगालहालिकप्रसिद्ध चतुर्दशत्वमप्युपपद्यतेऽन्यथा त्रयोदश-
त्वापत्तेः, एतेन 'सुष्ठु दत्त गुरुणा, दुष्ठु प्रतीच्छित कलुषितान्तरात्मने-' ति
व्याख्यानमसदिति बुद्धिमद्भिरनुभाव्यम्। सुष्ठु-दुष्ठु-शब्दावव्ययौ त्रिलिङ्गौ च।

'अकाले कओ सज्झाओ' न कालोऽकालस्तस्मिन्नकाले-असमये, अर्थाद्
यस्य कालिकादिश्रुतस्य योऽध्ययनसमयः प्रथमप्रहरादिस्तमतिक्रम्य कृतो=विहितः
स्वाध्याय.। 'काले न कओ सज्झाओ' काले=स्वाध्यायसमये प्रथमप्रहरादौ
न कृत' स्वाध्याय इति निगदव्याख्यातमिदम्। 'असज्झाये सज्झाइय' न
स्वाध्यायो यस्मिन् सोऽस्वाध्यायस्तस्मिन् = स्वसमुत्थपरसमुत्थभेदभिन्ने
रुधिरस्रावोल्कापात-दिग्दाहाऽकालवर्षणादिरूपे [२]स्वाध्यायित=स्वाध्यायः कृतः।

है, अर्थात् 'सुट्ठुदिन्न दुट्ठुपडिच्छिय' इन दोनो को मिलाकर एक
अतिचार माना है सो उचित नही है, क्योंकि इन दोनों का ऐसी
कोई अपेक्षा नही है जिससे एक साथ सम्बन्ध किया जाय। दोनों को
जुदा २ मानने से ही चौदह अतिचार होते हैं नही तो तेरह ही
रह जायँगे (१०)। अकाल मे स्वाध्याय किया गया हो (११), काल

दुट्ठुपडिच्छिय" આ બન્નેને ભેળવી એક અતિચાર માનેલ છે તે ઉચિત નથી, કેમકે
આ બન્નેની કોઇ એવી અપેક્ષા નથી કે જેથી એક સાથે સબંધ કરવામા આવે બન્નેને જૂદા
જૂદા માનવાથી ચૌદ અતિચાર થાય છે નહિ તો તેર જ થઇ જશે (૧૦) અકાલમા

१-'पडिच्छिय' इत्यस्य 'प्रतीच्छित'-मितिच्छायया प्रतिगृहीतार्थकल्पन
तु व्याकरणाननुसन्धानेन गजनिमीलिकेव 'इषुगमियमा छः' (७।३।७७)
इति शित्येव छादेशविधानात्। न च प्रतीच्छा सजाताऽस्येत्यर्थे तारकादित्वादितचि
प्रतीच्छितमिति युक्तमेवेति सन्देग्धव्यम्, तथा सति प्रतीच्छावत एव बोधसम्भ-
वेन 'प्रतिगृहीत'-मिति कर्मबोधकत्वानुपपत्तेरिति कृतमसारग्रन्थपर्यालोचनेन॥

२-'स्वाध्यायितम्'-'तत्करोति तदाचष्टे'-इति णिजन्तात् स्वाध्याय-
शब्दात् क्तप्रत्यये 'निष्ठायां सेटि' (६।४।५२) इति णिलोपः। 'स्वाध्यायिकम्'-
इतिच्छायां कल्पयित्वा स्वाध्याय एव स्वाध्यायिकम्-इति व्याख्यान तु न रुचिर,
स्वाध्यायशब्दात् स्वार्थठकोऽसम्भवात्, विनयादेराकृतिगणत्वे प्रमाणाभावस्य
प्रागुक्तत्वात्।

'सज्झाए न सज्झाइय' स्वाध्याये न स्वाध्यायः कृतः। 'तस्स' तस्योक्तप्रकारातिचारस्य 'मि' मयि=मद्विषये 'दुक्कड' दुष्कृत=पापम् 'मिच्छा' मिथ्या=निष्फल भवत्विति भावः ॥

अत्र दर्शनसम्यक्त्व–समितिपञ्चक–गुप्तित्रय–स्थावरपञ्चक–विकलेन्द्रियत्रय पञ्चेन्द्रिय–पञ्चमहाव्रत–रात्रिभोजन–पापस्थानाष्टादशकपट्टीसमुच्चारणपूर्वकं 'मूलोत्तरगुणानां त्रयस्त्रिंशतो गुर्वाशातनानां च यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतमस्तु' इति 'इच्छामि ठामि०' इति संपूर्णां पट्टीं च परिचिन्तयेत् किन्तु ध्यानवेलायां 'तस्स मिच्छामि दुक्कड' इत्यस्य स्थाने 'तस्स आलोएमि' इति चिन्तनीयम्। पर्यवसाने च नमस्कारपूर्वकं कायोत्सर्गः समापनीयः। एताः सर्वाः पट्टिका हिन्दीभाषायामधस्ताद् विलोकनीयाः।

इति श्रीविश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित-कलापाऽऽलापक–प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहू-छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित कोल्हापुर-राजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्यश्री-घासीलाल–व्रतिविरचितायां श्रीश्रमणसूत्रस्य, मुनि-तोषण्याख्यायां व्याख्यायां प्रथमं सामायिका-ख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ १ ॥

में स्वाध्याय न किया गया हो (१२), अस्वाध्यायमे स्वाध्याय किया गया हो (१३)। स्वाध्यायसमय में स्वाध्याय नहीं किया गया हो (१४)। 'तस्स मिच्छामि दुक्कड' वह पाप मेरा निष्फल हो ॥

अस्वाध्याय के विषयमे आगे कोष्ठक दिया जाता है–

સ્વાધ્યાય કર્યો હોય (૧૧) કાલમા સ્વાધ્યાય કર્યો ન હોય (૧૨) અસ્વાધ્યાયમા સ્વાધ્યાય કર્યો હોય (૧૩) સ્વાધ્યાયના સમયમા સ્વાધ્યાય ન કર્યો હોય (૧૪) "तस्स मिच्छामि दुक्कड" તે મારૂ પાપ નિષ્ફલ થાઓ.

અસ્વાધ્યાયના વિષયમા આગળ કોષ્ઠક આપેલુ છે

॥ अस्वाध्याययन्त्रम् ॥

संख्या	अस्वाध्याय	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
१	उक्कावाय (उल्कापात)	तारा टूटे	जिस मण्डलमें	एक पहर	सूत्र न पढे
२	दिसिदाह (दिग्दाह)	दिशा की लालिमा	„	जब तक रहे	„
३	गज्जिय (गर्जित)	मेघ की गर्जना	„	एक पहर	„
४	विज्जुय (विद्युत्)	बिजली चमके	„	एक पहर	„
५	निग्घाय (निर्घात)	बादल कडके या भूकम्प होवे	„	८-१२-१६ पहर	„
६	जूवय (यूपक)	बालचन्द्र १।२।३ शुक्ल तिथि	सर्वत्र	एक पहर	„
७	जक्खदित्ते (यक्षदीप्त)	आकाशमें यक्षादिका चिह्न।	जिस मण्डलमें	जब तक दिखाई दे	„
८	धूमिया (धूमिका)	लाल या काली धूँवर	„	जब तक रहे	„
९	महिया (महिका)	सफेद धूँवर	„	„	„

'सज्झाए न सज्झाइय' स्वाध्याये न स्वाध्यायः कृतः। 'तस्स' तस्योक्तप्रकारातिचारस्य 'मि' मयि=मद्विषये 'दुक्कड' दुष्कृत=पापम् 'मिच्छा' मिथ्या=निष्फल भवत्विति भावत् ॥

अत्र दर्शनसम्यक्त्व–समितिपञ्चक–गुप्तित्रय–स्थावरपञ्चक–विकलेन्द्रियत्रय पञ्चेन्द्रिय–पञ्चमहाव्रत–रात्रिभोजन–पापस्थानाष्टादशकपट्टीसमुच्चारणपूर्वक 'मूलोत्तरगुणाना त्रयस्त्रिंशतो गुर्वाशातनाना च यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतमस्तु' इति 'इच्छामि ठामि०' इति सपूर्णां पट्टीं च परिचिन्तयेत् किन्तु ध्यानवेलाया 'तस्स मिच्छामि दुक्कड' इत्यस्य स्थाने 'तस्स आलोएमि' इति चिन्तनीयम्। पर्यवसाने च नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्गः समापनीयः। एताः सर्वा पट्टिका हिन्दीभाषायामधस्ताद् विलोकनीयाः।

इति श्रीविश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित कलापाऽऽलापक–प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहूछत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित कोल्हापुर-राजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्यश्री-घासीलाल–व्रतिविरचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनितोषण्याख्याया व्याख्याया प्रथम सामायिकाख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ १ ॥

में स्वाध्याय न किया गया हो (१२), अस्वाध्यायमे स्वाध्याय किया गया हो (१३)। स्वाध्यायसमय में स्वाध्याय नहीं किया गया हो (१४)। 'तस्स मिच्छामि दुक्कड' वह पाप मेरा निष्फल हो ॥

अस्वाध्याय के विषयमे आगे कोष्ठक दिया जाता है–

સ્વાધ્યાય કર્યો હોય (૧૧) કાલમા સ્વાધ્યાય ન કર્યો ન હોય (૧૨) અસ્વાધ્યાયમા સ્વાધ્યાય કર્યો હોય (૧૩) સ્વાધ્યાયના સમયમા સ્વાધ્યાય ન કર્યો હોય (૧૪) "तस्स मिच्छामि दुक्कड" તે મારૂ પાપ નિષ્ફલ થાઓ.

અસ્વાધ્યાયના વિષયમા આગળ કોષ્ઠક આપેલ છે

२०	उवस्सयस्सअतोओरालियशरीरे (उपाश्रयस्यान्तरौदारिकशरीरम्)	स्थानक के अदर पचेन्द्रियका कलेवर पडा हो	जिस स्थानक में	जव तक पडा रहे	,,
२९	महापुण्णिमा ५ (महापूर्णिमा)	१ अपाढी २ भाद्रपदी ३ आश्विनी ४ कार्त्तिकी ५ चैत्री	सव जगह	८ पहर	,,
३०	महापडिकए ५ (महाप्रतिपदः)	श्रावण वदि १, आश्विन वदि १ कार्त्तिक वदि १, मार्गशीर्ष वदि १, वैशाख वदि १ (५ महा पूर्णिमा के दूसरे रोज)	सव जगह	८ पहर	,,
३४	सझा (सध्या) ४	प्रभात १ दुपहर २ साझ ३ अर्धरात्रि ४	सव जगह	१ मुहूर्त्त (आधा मुहूर्त्त पहले का आधा मुहूर्त्त पीछे का)	दशवैकालिकादि न पढे

॥ इति अस्वाध्याययन्त्रम् ॥



१०	रयउग्घाय (रजउद्घात)	सब दिशाओंमें धूलका छा जाना	”	”	सूत्र न पढे
११	अट्ठी (अस्थि)	हाड मनुष्य तिर्यंच का	१०० हाथ मनुष्य का ६० हाथ तिर्यंचका हाड हो तो।	मनुष्य के हाड की अवधि १२ वर्ष	”
१२	मस (मास)	मास मनुष्य-तिर्यंच का	मनुष्य का १०० हाथ तिर्यंच का ६० हाथ	३ पहर	”
१३	सोणिय (शोणित)	लोही मनुष्य[1] तिर्यंच[2] का तथा प्रसव[3] का	[1]१०० हाथ [2]६० हाथ [3]सातघरों के अदर यदि बीचमें रस्ता न पडता हो	[1][2]ऽ३ पहर [3] कन्या प्रसव ८ अहोरात्र पुत्र प्रसव ७ अहोरात्र	”
१४	असुइ सामन्त (अशुचि सामन्त)	अशुचि	जहा दीखे, गध आवे.	जब तक रहे	”
१५	सुसाणसामन्त (श्मशानसामन्त)	श्मशान	चारों तरफ सौ सो (१००) हाथ	सर्व काल	”
१६	रायपडण (राजपतन)	राजाका अवसान	जहा तक उसका राज्य हो।	नया राजा बैठे तबतक	”
१७	रायवुग्गह (राजविग्रह)	राजाओं की लडाई	उपनगर नगर के समीप	जब तक होवे	”
१८	चदोवराग (चद्रोपराग)	चन्द्रमा का ग्रहण	सब जगहमें	४।८।१२ पहर	”
१९	सूरोवराग (सूर्योपराग)	सूर्य का ग्रहण	सब जगहमें	४।८।१६ पहर	”

बोल्यो होऊ, काल थकी पहर रात्रि गयां पीछे गाढे गाढे शब्द बोल्यो होऊ, भाव थकी रागद्वेष से बोल्यो होऊ, गुण थकी सवर गुण, दूसरी भाषासमिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सबधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीसरी एषणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य थकी सोले उदगमणका दोष, सोले उत्पातका दोष, दश एषणाका दोष इन बयालीश दोष सहित आहार पाणि लायो होऊ, क्षेत्र थकी दो कोश उपरात लेजाईने भोगव्यो होय काल थकी पहेला पहर को छेला पहर में भोगव्यो होऊ, भाव थकी पाच माडलाका दोष न टाल्या होय गुण थकी सवरगुण, तीसरी एषणा समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होऊ तो देवसिय सबन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

चोथी आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य थकी भाण्डोपकरण अजयणा से लीधा होय अजयणा से रख्या होय, क्षेत्र थकी गृहस्थके घर आगणे रख्या होय, काल थकी कालोकाल पडिलेहणा न की होय, भाव थकी ममता मूर्छा सहित भोगव्या होय, गुण थकी सवर गुण, चोथी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ४ ॥

पाचवी उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल- सिंघाण-परिट्ठावाणिया समिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय ते आलोऊ, द्रव्य थकी ऊची नीची जगह परठव्यो होय, क्षेत्र थकी गृहस्थ के घर आंगणे परठव्यो होय, काल थकी दिनको विना देखे रातको विना पूजे परठव्यो होय, भावथकी जाता आवसही आवसही, न करी होय, परिठवते पहले शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा नहीं ली होय, थोडो पूजी ने घणो परिठव्यो होय, परठनेके बाद तीनवार वोसिरे वोसिरे न किन्हो होय, आवता नि.सही निस्सही न करी होय, ठिकाणे आईने काउसग्ग न कर्यो होय, गुणथकी सवरगुण,

दर्शनसम्यक्त्वादिपट्टिका-

दसणसमत्त परमत्थसथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवण वावि वावन्नकुदसण-वज्जणा इयसमत्तसद्दहणा सम्मत्तस्स पच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-सका कखा वितिगिच्छा परपासडपससा परपासडसथवो वा (ते म्हरा समकितरूप रत्नपदार्थ के विषय मिथ्यात्वरूप रजोमल लागो होय, तो) तस्स मिच्छामि दुक्कड।

(टिप्पणी—दर्शनसम्यक्त्वम् ; तत्र दर्शन जिनमताभिरोचनम्, तदेव सम्यक्त्वम्, परमार्थसस्तवो वा=परमार्थः जीवादिस्वरूपम्, तस्य सस्तवः परिचयो बोध इत्यर्थः, सुदृष्टपरमार्थसेवना वापि, तत्र सुदृष्टैः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिः सर्वज्ञैरुपदिष्टः परमार्थ'=जीवादिस्वरूप तस्य सेवना आसेवनम् ; व्यापन्नकुदर्शनवर्जना-तत्र व्यापन्न=विनष्ट दर्शन=सम्यक्त्व येषा ते व्यापन्नदर्शनाः, कुदर्शनाः=कुत्सित दर्शनमसद्भावनिरूपणादिरूप येषा ते कुदर्शना, तेषा वर्जना व्यापन्नकुदर्शनवर्जना, वान्तसम्यक्त्वाना मिथ्यादृष्टीना च ससर्गवर्जनमित्यर्थः। इति सम्यक्त्वश्रद्धानम्। सम्यक्त्वस्य पञ्च अतिचाराः पेयालाः=प्रधानानि ज्ञातव्या न समाचरितव्याः। 'पेयाल' इति प्रधानार्थको देशीय शब्दः। तद्यथा-शङ्का=जिनवचनेषु सदेहकरणम्। काङ्क्षा=परदर्शनाभिलापरूपा। विचिकित्सा=तपःसयमाराधनफल प्रति सशय.। परपाषण्डप्रशसा=परधर्मप्रशसाकरणम्, परपाषण्डसस्तवो वा परधर्मपरिचयकरणम्॥)

पहिली इरियासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य थकी छ काया का जीव जोइने न चाल्यो होऊ, क्षेत्र थकी साढातीन हाथ प्रमाणे जोइने न चाल्यो होऊ, काल थकी दिन को देखे विना रात को पूजे विना चाल्यो होऊ, भाव थकी उपयोग सहित जोईने न चाल्यो होऊ, गुण थकी सवरगुण, पहिली इरियासमिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड।

दूसरी भाषासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य थकी-भाषा कर्कशकारी, कठोरकारी, निश्चयकारी, हिंसाकारी, छेदकारी, भेदकारी, परजीव को पीडाकारी, सावद्य-सव्वपापकारी कूडी मिश्र भाषा बोल्यो होऊ, क्षेत्र थकी रस्ते चालता

बोल्यो होऊ, काल थकी पहर रात्रि गयां पीछे गाढे गाढे शब्द बोल्यो होऊ, भाव थकी रागद्वेष से बोल्यो होऊ, गुण थकी सवर गुण, दूसरी भाषासमिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सबधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीसरी एषणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य थकी सोले उदगमणका दोष, सोले उत्पातका दोष, दश एषणाका दोष इन बयालीश दोष सहित आहार पाणि लायो होऊ, क्षेत्र थकी दो कोश उपरात लेजाईने भोगव्यो होय काल थकी पहेला पहर को छेला पहर में भोगव्यो होऊ, भाव थकी पांच माडलाका दोष न टाल्या होय गुण थकी सवरगुण, तीसरी एषणा समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होऊ तो देवसिय सबन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

चोथी आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य थकी भाण्डोपकरण अजयणा से लीधा होय अजयणा से रख्या होय, क्षेत्र थकी गृहस्थके घर आगणे रख्या होय, काल थकी कालोकाल पडिलेहणा न की होय, भाव थकी ममता मूर्छा सहित भोगव्या होय, गुण थकी सवर गुण, चोथी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ४ ॥

पाचवी उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल- सिंघाण-परिट्ठावणिया समिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय ते आलोऊ, द्रव्य थकी ऊची नीची जगह परठव्यो होय, क्षेत्र थकी गृहस्थ के घर आगणे परठव्यो होय, काल थकी दिनको विना देखे रातको विना पूजे परठव्यो होय, भावथकी जाता आवसही आवसही, न करी होय, परिठवते पहले शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा नहीं ली होय, थोडो पूजी ने घणो परिठव्यो होय, परठनेके बाद तीनवार वोसिरे वोसिरे न किन्हो होय, आवता नि.सही निस्सही न करी होय, ठिकाणे आईने काउसग्ग न कर्यो होय, गुणथकी सवरगुण,

पाचवी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसीय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ५ ॥

मनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, वचन आरभ, सारभ, समारभ, विषय, कषाय के विषय खोटो मन प्रवर्ताव्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । १ ।

वचनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, वचन आरभ, सारभ, समारभ, राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा इन चार कथा में से कोई कथा की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

कायागुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, काया आरभ, सारभ, समारभ, विना पूज्या अजयणापणे असावधानपणे हाथपग पसारया होय, सकोच्या होय, विना पूज्या भीतादिक को ओटींगणो (सहारो) लीधो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

पृथ्वीकाय में मिट्टी, मरडो, खडी, गेरु, हिंगलू, हडताल, हडमचि, लूग, भोडल, पत्थर इत्यादि पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड ।१।

अप्काय मे ठार को पाणी, ओस को पाणी, हीम को पाणी, घडा को पाणी, तलाव को पाणी, निवाण को पाणी, सकालको पाणी, मिश्र पाणी, वर्षाद को पाणी इत्यादि अप्पकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

तेउकाय मे खीरा, अगीरा, भोभल, भडसाल, झाल, टूटती झाल, विजली, उल्कापात इत्यादि तेउकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

वाउकाय में उकलियावाय, मडलियावाय, घणवाय, घणगु-जवाय, तणवाय, शुद्धवाय, सपटवाय, वींजणे करी, तालिकरी,

चमटीकरी, इत्यादि वाउकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ४ ।

वनस्पति काय में हरी, तरकारी, बीज, अंकुरा, कण, कपास, गुम्मा, गुच्छा, लत्ता, लीलण, फूलण, इत्यादि वनस्पतिकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ५ ।

बेन्द्रिय में लट, गिंडोला, अलसिया, शख, सखोलिया, कोडी, जलोक, इत्यादि बेन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । १ ।

तेन्द्रिय में कीडी, मकोडी, जू, लींख, चांचण, माकण, गजाई, खजूरीया, उधई, धनेरिया इत्यादि तेन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

चतुरिन्द्रिय में तीड, पतगिया, मक्खी, मच्छर, भवरा, तिगोरी, कसारी, विच्छु इत्यादि चतुरिन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

पचेन्द्रिय में जलचर, थलचर, खेचर, उरपर, भुजपर, सन्नी, असन्नी, गर्भज, समुर्च्छिम, पर्याप्ता, अपर्याप्ता, इत्यादि पचेन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।४।

पहिला महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, (१) इन्दथावरकाय (२) बम्भथावरकाय (३) सिप्पथावरकाय (४) सम्मतीथावरकाय (५) पायावचथावरकाय (६) जगमकाय, द्रव्य से इनकी हिंसा की होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीवतक, भाव से तीन करण तीन योग से पहिला महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ १ ॥

दूसरा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, कोहावा, लोहावा, भयावा, हासावा, कीडा, कुतुहलकारी, द्रव्य से झूठ बोल्यो होऊ, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से

पाचवी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसीय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड ॥ ५ ॥

मनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, वचन आरभ, सारभ, समारभ, विषय, कषाय के विषय खोटो मन प्रवर्तायो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड । १ ।

वचनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, वचन आरभ, सारभ, समारभ, राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा इन चार कथा में से कोई कथा की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

कायागुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, काया आरभ, सारभ, समारभ, विना पूज्या अजयणापणे असावधानपणे हाथपग पसारया होय, सकोच्या होय, विना पूज्या भीतादिक को ओटींगणो (सहारो) लीधो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

पृथ्वीकाय मे मिट्टी, मरडो, खडी, गेरु, हिंगलू, हडताल, हडमचि, लूण, भोडल, पत्थर इत्यादि पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड ।१।

अप्काय में ठार को पाणी, ओस को पाणी, हीम को पाणी, घडा को पाणी, तलाव को पाणी, निवाण को पाणी, सकालको पाणी, मिश्र पाणी, वर्षाद को पाणी इत्यादि अप्पकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

तेउकाय में खीरा, अगीरा, भोभल, भडसाल, झाल, टूटती झाल, विजली, उल्कापात इत्यादि तेउकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

वाउकाय में उक्कलियावाय, मडलियावाय, घणवाय, घणगु-जवाय, तणवाय, शुद्धवाय, सपटवाय, वींजणे करी, तालिकरी,

(९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद (१६) रति अरति (१७) मायामोसो (१८) मिथ्यादर्शनशल्य ये अट्ठारह पाप सेव्या होय, सेवाया होय, सेवता प्रत्ये भलो जाण्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

पाचमूलगुणमहाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड । इस उत्तरगुण पच्चक्खाण के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड । तेतीस आशातना में से गुरु की बडों की कोई भी आशातना हुई हो तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

सूचना-इसके पीछे 'इच्छामि ठामि काउसग्ग' का पाठ बोलना, इस प्रकार ये सभी पाठ मौन रहकर प्रथम अध्ययन (आवश्यक) के ध्यान में बोलने का है, एव तीसरा अध्ययन (आवश्यक) के बाद श्रमणसूत्र के पहले चौथे अध्ययन के आदि में खडे होकर स्पष्ट उच्चारणपूर्वक बोला जाता है। (इसी प्रकार प्रथम आवश्यक के ध्यान मे और तीसरे आवश्यक के बाद चौथे आवश्यक के आदि में जो निन्यानवें अतिचार गृहस्थ बोलते हैं उन्हें आवश्यकसूत्र के अन्त के परिशिष्ट में देखें)

इति प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण

जावजीव तक, भाव से तीन करण तीन योग से दूसरा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ २ ॥

तीसरा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, देव अदत्त, गुरु अदत्त, राजा अदत्त, गाथापति अदत्त, साधर्मि अदत्त, द्रव्य से इनकी चोरी की होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीवतक, भाव से तीन करण तीन योग से तीसरा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ३ ॥

चौथा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग, देवता सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी, तिर्यंच सम्बन्धी, द्रव्य से काम भोग सेव्या होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीवतक, भाव से तीन करण तीन योग से चौथा महाव्रत के विषय कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥४॥

पाचवा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, सचित्त परिग्रह, अचित्त परिग्रह, मिश्र परिग्रह, द्रव्य से छति वस्तु पर मूर्छा की होय, पर वस्तु की इच्छा की होय, सूई कुसग धातु-मात्र परिग्रह राख्यो होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीव तक, भाव से तीन करण तीन योग से पाचवा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ५ ॥

छट्ठा रात्रि-भोजन के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, चार आहार असण, पाण, खाइम, साइम, सीत-मात्र, लेप मात्र, रातवासी राख्यो होय, रखायो होय, राखता प्रत्ये भलो जाण्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥६॥

अठारह पाप (१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया

ऋषभमजितं च वन्दे, सम्भवमभिनन्दनं च सुमतिं च ।
पद्मप्रभं सुपार्श्वं, जिनं च चन्द्रप्रभं वन्दे ॥ २ ॥
सुविधिं च पुष्पदन्तं, शीतल-श्रेयांस-वासुपूज्यांश्च ।
विमलमनन्तं च जिनं, धर्मं शान्तिं च वन्दे ॥ ३ ॥
कुन्थुमरं च मल्लिं, वन्दे मुनिसुव्रतं नमिजिनं च ।
वन्देऽरिष्टनेमिं पार्श्वं तथा वर्द्धमानं च ॥ ४ ॥
एवं मयाऽभिष्टुता, विधूतरजोमलाः प्रहीणजरामरणाः ।
चतुर्विंशतिरपि जिनवरा, -स्तीर्थकरा मे प्रसीदन्तु ॥ ५ ॥
कीर्त्तित-वन्दित-महिता, य एते लोकस्योत्तमाः सिद्धाः ।
आरोग्यबोधिलाभं, समाधिवरमुत्तमं ददतु ॥ ६ ॥
चन्द्रेभ्यो निर्मलतरा, आदित्येभ्योऽधिकं प्रकाशकराः ।
सागरवरगम्भीराः, सिद्धाः सिद्धिं मम दिशन्तु ॥ ७ ॥

॥ टीका ॥

लोकस्योद्द्योतकरानर्हतश्चतुर्विंशतिमपि केवलिनो जिनान् धर्म्मतीर्थकरान् कीर्त्तयिष्यामीति सम्बन्धः । लोक्यते=दृश्यते केवलज्ञानादित्येनेति, लोक्यते=

इस प्रकार पहले अध्ययन में सावद्ययोग की निवृत्तिरूप सामायिक का निरूपण करके अब चतुर्विंशतिस्तव (चउवीसत्थव) रूप इस दूसरे अध्ययनमें समस्त सावद्य योगों की निवृत्ति के उपदेश होनेसे समकित की विशुद्धि तथा जन्मान्तरमें भी बोधिलाभ और सम्पूर्ण कर्मों के नाश के कारण होने से परम उपकारी तीर्थङ्करों का गुण कीर्त्तन करते हैं—' लोगस्स ' इत्यादि ।

जो केवलज्ञानरूपी सूर्य से अथवा प्रमाण (ज्ञान) के द्वारा देखा जाय उसे लोक कहते हैं, उस पञ्चास्तिकायरूप लोक को

એ પ્રમાણે પહેલા અધ્યયનમાં સાવદ્યયોગની નિવૃત્તિ રૂપ સામાયિકનું નિરૂપણ કરીને હવે ચતુર્વિંશતિસ્તવ (ચઉવીસત્થવ) રૂપ આ બીજા અધ્યયનમાં સમસ્ત સાવદ્ય યોગોની નિવૃત્તિનો ઉપદેશ હોવાથી સમકિતની વિશુદ્ધિ તથા જન્માતરોમાં પણ બોધિલાભ અને સંપૂર્ણ કર્મોના નાશક હોવાથી પરમ ઉપકારી તીર્થંકરોના ગુણ-કીર્તન કરે છે " लोगस्स " ઇત્યાદિ

જે કેવળજ્ઞાનરૂપી સૂર્યથી અથવા પ્રમાણ (જ્ઞાન) વડે જોઈ શકાય તેને 'લોક" કહે છે, તે પચાસ્તિકાયરૂપ લોકને પ્રવચનરૂપી દીવા વડે પ્રકાશ

। अथ द्वितीयमध्ययनम् ।

इत्थ प्रथमाध्ययने सावद्ययोगोपरमस्वरूप सामायिकमभिधाय सम्प्रति चतुर्विंशतिस्तुतिरूपेऽस्मिन् द्वितीयेऽध्ययने सर्वसावद्ययोगविरत्युपदेशस्य लब्धबोधिपरिशुद्धेर्भूयो बोध्युपलब्धेः प्रधानकर्मक्षयस्य च हेतुत्वेनाऽत्रसरसङ्गतेस्तीर्थकराणा गुणसङ्कीर्त्तनमधिक्रियते—' लोगस्से ' त्यादि ।

॥ मूलम् ॥

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहते कित्तइस्स, चउवीसपि केवली ॥१॥
उसभमजिअ च वदे, सभवमभिणदण च सुमइं च ।
पउमप्पह सुपास, जिण च चदप्पहं वदे ॥२॥
सुविहि च पुप्फदत, सीयल सिज्जस वासुपुज्ज च ।
विमलमणत च जिण, धम्म सति च वदामि ॥३॥
कुथु अर च मल्लिं, वदे मुणिसुव्वय नमिजिण च ।
वदामि रिट्ठनेमिं, पास तह वद्धमाण च ॥४॥
एव मए अभिथुआ, विहूयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयतु ॥५॥
कित्तिय-वदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्गवोहिलाभ, समाहिवरमुत्तम दिंतु ॥६॥
चदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहिय पयासयरा ।
सागरवरगभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु ॥७॥

॥ छाया ॥

लोकस्योद्द्योतकरान्, धर्मतीर्थकरान् जिनान् ।
अर्हत. कीर्त्तयिष्यामि, चतुर्विंशतिमपि केवलिन ॥ १ ॥

ऋषभमजितं च वन्दे, सम्भवमभिनन्दनं च सुमतिं च ।
पद्मप्रभं सुपार्श्वं, जिनं च चन्द्रप्रभं वन्दे ॥ २ ॥
सुविधिं च पुष्पदन्तं, शीतल-श्रेयांस-वासुपूज्यांश्च ।
विमलमनन्तं च जिनं, धर्मं शान्तिं च वन्दे ॥ ३ ॥
कुन्थुमरं च मल्लिं, वन्दे मुनिसुव्रतं नमिजिनं च ।
वन्देऽरिष्टनेमिं पार्श्वं तथा वर्द्धमानं च ॥ ४ ॥
एवं मयाऽभिष्टुता, विधूतरजोमलाः प्रहीणजरामरणाः ।
चतुर्विंशतिरपि जिनवरा, -स्तीर्थङ्करा मे प्रसीदन्तु ॥ ५ ॥
कीर्त्तित-वन्दित-महिता, य एते लोकस्योत्तमाः सिद्धाः ।
आरोग्यबोधिलाभं, समाधिवरमुत्तमं ददतु ॥ ६ ॥
चन्द्रेभ्यो निर्मलतरा, आदित्येभ्योऽधिकं प्रकाशकराः ।
सागरवरगम्भीराः, सिद्धाः सिद्धिं मम दिशन्तु ॥ ७ ॥

॥ टीका ॥

लोकस्योद्द्योतकरानर्हतश्चतुर्विंशतिमपि केवलिनो जिनान् धर्मतीर्थकरान् कीर्त्तयिष्यामीति सम्बन्धः । लोक्यते=दृश्यते केवलज्ञानादित्येनेति, लोक्यते=

इस प्रकार पहले अध्ययन में सावद्ययोग की निवृत्तिरूप सामायिक का निरूपण करके अब चतुर्विंशतिस्तव (चउवीसत्थव) रूप इस दूसरे अध्ययनमें समस्त सावद्य योगों की निवृत्ति के उपदेश होनेसे समकित की विशुद्धि तथा जन्मान्तरमें भी बोधिलाभ और सम्पूर्ण कर्मों के नाश के कारण होने से परम उपकारी तीर्थङ्करों का गुण कीर्त्तन करते हैं—' लोगस्स ' इत्यादि ।

जो केवलज्ञानरूपी सूर्य से अथवा प्रमाण (ज्ञान) के द्वारा देखा जाय उसे लोक कहते हैं, उस पञ्चास्तिकायरूप लोक को

એ પ્રમાણે પહેલા અધ્યયનમા સાવદ્યયોગની નિવૃત્તિ રૂપ સામાયિકનું નિરૂપણ કરીને હવે ચતુર્વિંશતિસ્તવ (चउवीसत्थव) રૂપ આ બીજા અધ્યયનમા સમસ્ત સાવદ્ય યોગોની નિવૃત્તિનો ઉપદેશ હોવાથી સમકિતની વિશુદ્ધિ તથા જન્માતરોમા પણ બોધિલાભ અને સંપૂર્ણ કર્મોના નાશક હોવાથી પરમ ઉપકારી તીર્થંકરોના ગુણ-કીર્તન કરે છે "लोगस्स" ઇત્યાદિ

જે કેવળજ્ઞાનરૂપી સૂર્યથી અથવા પ્રમાણ (જ્ઞાન) વડે જોઈ શકાય તેને 'લોક" કહે છે, તે પચાસ્તિકાયરૂપ લોકને પ્રવચનરૂપી દીવા વડે પ્રકાશ

प्रतिवीक्ष्यते प्रमाणवलेनेति वा लोकः[1] पञ्चास्तिकायविशिष्ट आकाशविशेषः। यदुक्तं भगवत्याम्—

किमियं भंते ? लोएत्ति पवुच्चइ ? गोयमा ! पंचत्थिकाया एस णं एवंतिए लोएत्ति पवुच्चइ' इत्यादि।

तस्य लोकस्य (कर्मणि षष्ठी) उद्द्योतनमुद्द्योतस्तं कर्तुं शीलं येषां ते [2]उद्योतकरास्तान् केवलाऽऽलोकेन प्रवचनप्रदीपेन वा निखिललोकप्रकाशकानित्यर्थः। 'धर्म' इति-दुर्गतिपतितमात्मानं धारयति=शुभस्थाने प्रापयतीति धर्मः[3] तीर्यते=पारं नीयतेऽनेनेति [4]तीर्थं=प्रवचनम्, धर्मप्रधानं तीर्थं, धर्मतीर्थं, द्रव्यरूपस्य

प्रवचनरूपी दीपक द्वारा उद्द्योत करनेवाले, प्राणियों को संसार के दुःखों से छुडाकर सुगति में धारण करनेवाले, धर्मरूप तीर्थ के स्थापक, रागादि कर्मशत्रुओं को जीतकर केवलज्ञान युक्त होकर विराजमान ऐसे चौवीसों श्री अरिहन्त भगवान की स्तुति करता हूँ।

यहां पर 'लोक' शब्द से पञ्चास्तिकाय का ग्रहण है और आकाश भी पचास्तिकाय का ही भेद है, तथा अलोक भी आकाश स्वरूप है अतएव 'लोक' पद से ही लोक और अलोक दोनों का ग्रहण होने से केवलज्ञान की अनन्ततामें कोई बाधा नहीं आसकती।

કરવાવાળા, અને પ્રાણીઓને સંસારના દુઃખોથી છોડાવીને સુગતિમાં ધારણ કરવાવાળા, ધર્મરૂપી તીર્થના સ્થાપક, રાગ આદિ કર્મશત્રુઓને જીતી લઈને કેવલજ્ઞાનયુક્ત થઈને વિરાજમાન એવા ચોવીસ અરિહન્ત ભગવાનની સ્તુતિ કરૂં છું

અહિં "लोक" શબ્દથી પંચાસ્તિકાયનું ગ્રહણ કરેલું છે અને આકાશ પણ પંચાસ્તિકાયનો જ ભેદ છે તથા અલોક પણ આકાશસ્વરૂપ છે એ કારણે "लोक" પદથી જ લોક અને અલોક બન્નેનું ગ્રહણ થઈ શકે છે, તેથી કેવળજ્ઞાનની અનન્તતામાં કોઈ પ્રકારે હાનિ થઈ શકતી નથી

१– 'लोकृ दर्शने' अस्मात् 'अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् (३।३।१८) इति कर्मणि घञ्।

२– कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु (३।२।२०) इति कर्त्तरि ट।

३– 'धृञ् धारणे' अस्मादौणादिको मन्प्रत्ययस्तेन 'धर्मः' इति सिद्धम्।

४– 'तीर्थम्'–'तॄ प्लवनसन्तरणयोः' अस्मादौणादिकस्थन् 'ऋत इद्धातोः' (७।१।१००) इतीत्वम्, 'हलि च' (८।२।७७) इत्युपधादीर्घः।

नद्यादेः शाक्यादिप्रणीतस्याधर्मप्रधानस्य च तीर्थस्य परिहारार्थं धर्म्मग्रहणम्, धर्मतीर्थं कर्त्तुं शील येषा ते धर्मतीर्थकरास्तान्। जयति=अपनयति रागादिकर्मशत्रू-निति, जयति=केवलज्ञानादियुक्ततया सर्वोत्कर्षेण राजत इति वा [1]जिनः, 'अरिहते' इति व्याख्यातोऽर्हच्छब्दार्थः, 'नमोऽरिहंताण' इत्यत्र, 'चउवीस' इति स ख्यान्तरव्यवच्छेदाय, अपिशब्दोऽवधारणार्थो महाविदेहक्षेत्रस्थकेवलिभग-वद्ग्रहणार्थश्च, लोकशब्देन पञ्चास्तिकायग्रहणादाकाशस्य च पञ्चास्तिकायान्तः-पातित्वादलोकस्याप्याकाशस्वरूपतया लोकपदेनैव लोकालोकयोर्ग्रहणमिति न केवलोद्योतस्यापरिमितत्वहानिः, लोकोद्द्योतकरत्वमवधिविभङ्गज्ञानिषु चन्द्रसूर्या-दिष्वपि चास्त्यत उक्त 'धम्मतित्थयरे' इति, धर्मार्थं निम्नेषु नद्यादिष्वव-तरणाय ये तीर्थं (घट्ट–'घाट' इतिभाषाप्रसिद्ध) कुर्वन्ति तेष्वतिप्रसङ्गवारणाय 'लोगस्स उज्जोयगरे' इति, लोकोद्द्योतकरत्व धर्म्मतीर्थकरत्व च दर्शनान्तरमत कल्पितेष्वपि ज्ञानिषु—

लोक के उद्द्योतकर अवधिज्ञानी, विभङ्गज्ञानी तथा चन्द्रसूर्यादिक भी होते हैं, अतएव उनकी निवृत्ति के लिये 'धम्मतित्थयर' पद दिया है। नदी तालाव आदि जलाशयों मे उतरने के लिये धर्मार्थ तीर्थ–घाट वनानेवाले भी धर्मतीर्थंकर कहला सकते हैं, उनका यहा ग्रहण न हो इसलिये 'लोगस्स उज्जोयगरे' विशेषण दिया है, लोक के उद्द्योतकर तथा धर्मतीर्थंकर अन्यमत के ज्ञानी भी हो सकते हैं, जैसा कि अन्य शास्त्रों में कहा गया है—

લોકમા પ્રકાશ કરનાર અવધિજ્ઞાની, વિભગજ્ઞાની તથા ચદ્રસૂર્યાદિક પણ હોય છે એ માટે તેની નિવૃત્તિ કરવા "धम्मतित्थयरे" પદ આપેલુ છે નદી-તલાવ આદિ જલાશયોમા ઉતરવા માટે ધર્માર્થ તીર્થ–ઘાટ બનાવવાવાળા પણ ધર્મતીર્થંકર કહેવાય છે તેનો સ્વીકાર અહિં નહિ થવા માટે "लोगस्स उज्जोयगरे" વિશેષણ આપ્યુ છે લોકના પ્રકાશક તથા ધર્મતીર્થંકર અન્ય મતના જ્ઞાની પણ હોઇ શકે છે, જેવી રીતે અન્ય શાસ્ત્રોમા કહ્યુ છે કે–

१–'जिनः' 'जि अभिभवे' अस्मात् 'जि जये' अस्माद्वा वाहुलका-दौणादिको न प्रत्ययः।

प्रतिवीक्ष्यते प्रमाणवलेनेति वा लोकः[1] पञ्चास्तिकायविशिष्ट आकाशविशेषः। यदुक्तं भगवत्याम्—

किमियं भंते ? लोएत्ति पवुच्चइ ? गोयमा ? पंचत्थिकाया एस णं एवंतिए लोएत्ति पवुच्चइ' इत्यादि।

तस्य लोकस्य (कर्मणि षष्ठी) उद्योतनमुद्योतस्तं कर्तुं शीलं येषां त[2]उद्योतकरास्तान् केवलाऽऽलोकेन प्रवचनप्रदीपेन वा निखिललोकप्रकाशकानित्यर्थः। 'धर्म' इति-दुर्गतिपतितमात्मानं धारयति=शुभस्थाने प्रापयतीति धर्मः[3] तीर्यते=पारं नीयतेऽनेनेति [4]तीर्थं=प्रवचनम्, धर्मप्रधानं तीर्थं, धर्मतीर्थं, द्रव्यरूपस्य

प्रवचनरूपी दीपक द्वारा उद्योत करनेवाले, प्राणियों को संसार के दुःखों से छुडाकर सुगति में धारण करनेवाले, धर्मरूप तीर्थ के स्थापक, रागादि कर्मशत्रुओं को जीतकर केवलज्ञान युक्त होकर विराजमान ऐसे चौवीसों श्री अरिहन्त भगवान की स्तुति करता हूँ।

यहां पर 'लोक' शब्द से पञ्चास्तिकाय का ग्रहण है और आकाश भी पचास्तिकाय का ही भेद है, तथा अलोक भी आकाश स्वरूप है अतएव 'लोक' पद से ही लोक और अलोक दोनों का ग्रहण होने से केवलज्ञान की अनन्ततामें कोई बाधा नहीं आसकती।

કરવાવાળા, અને પ્રાણીઓને સંસારના દુઃખોથી છોડાવીને સુગતિમાં ધારણ કરવાવાળા, ધર્મરૂપી તીર્થના સ્થાપક, રાગ આદિ કર્મશત્રુઓને જીતી લઈને કેવલજ્ઞાનયુક્ત થઈને વિરાજમાન એવા ચોવીસ અરિહન્ત ભગવાનની સ્તુતિ કરૂં છું

અહિં "लोक" શબ્દથી પંચાસ્તિકાયનું ગ્રહણ કરેલું છે અને આકાશ પણ પંચાસ્તિકાયનો જ ભેદ છે તથા અલોક પણ આકાશસ્વરૂપ છે એ કારણે "लोक" પદથી જ લોક અને અલોક બન્નેનું ગ્રહણ થઈ શકે છે, તેથી કેવલજ્ઞાનની અનંતતામાં કોઈ પ્રકારે હાનિ થઈ શકતી નથી

१– 'लोकृ दर्शने' अस्मात् 'अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्' (३।३।१८) इति कर्मणि घञ्।

२– कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु (३।२।२०) इति कर्त्तरि ट०।

३– 'धृञ् धारणे' अस्मादौणादिको मन्प्रत्ययस्तेन 'धर्म' इति सिद्धम्।

४– 'तीर्थम्'–'तॄ प्लवनसन्तरणयो' अस्मादौणादिकस्थन् 'ॠत इद्धातो' (७।१।१००) इतीत्वम्, 'हलि च' (८।२।७७) इत्युपधादीर्घः।

नद्यादेः शाक्यादिप्रणीतस्याधर्मप्रधानस्य च तीर्थस्य परिहारार्थं धर्म्मग्रहणम्, धर्मतीर्थं कर्त्तुं शील येषा ते धर्मतीर्थकरास्तान्। जयति=अपनयति रागादिकर्मशत्रूनिति, जयति=केवलज्ञानादियुक्ततया सर्वोत्कर्षेण राजत इति वा [1]जिनः, 'अरिहते' इति व्याख्यातोऽर्हच्छब्दार्थः, 'नमोऽरिहंताण' इत्यत्र, 'चउवीस' इति सख्यान्तरव्यवच्छेदाय, अपिशब्दोऽवधारणार्थो महाविदेहक्षेत्रस्थकेवलिभगवद्ग्रहणार्थश्च, लोकशब्देन पञ्चास्तिकायग्रहणादाकाशस्य च पञ्चास्तिकायान्तःपातित्वादलोकस्याप्याकाशस्वरूपतया लोकपदेनैव लोकालोकयोर्ग्रहणमिति न केवलोद्द्योतस्यापरिमितत्वहानिः, लोकोद्द्योतकरत्वमवधिविभङ्गज्ञानिषु चन्द्रसूर्यादिष्वपि चास्त्यत उक्त 'धम्मतित्थयरे' इति, धर्मार्थं निम्नेषु नद्यादिष्ववतरणाय ये तीर्थं (घट्ट–'घाट' इतिभाषाप्रसिद्ध) कुर्वन्ति तेष्वतिप्रसङ्गवारणाय 'लोगस्स उज्जोयगरे' इति, लोकोद्द्योतकरत्व धर्म्मतीर्थकरत्व च दर्शनान्तरमत कल्पितेष्वपि ज्ञानिषु—

लोक के उद्द्योतकर अवधिज्ञानी, विभङ्गज्ञानी तथा चन्द्रसूर्यादिक भी होते हैं, अतएव उनकी निवृत्ति के लिये 'धम्मतित्थयर' पद दिया है। नदी तालाव आदि जलाशयों में उतरने के लिये धर्मार्थ तीर्थ–घाट बनानेवाले भी धर्मतीर्थकर कहला सकते हैं, उनका यहा ग्रहण न हो इसलिये 'लोगस्स उज्जोयगरे' विशेषण दिया है, लोक के उद्द्योतकर तथा धर्मतीर्थकर अन्यमत के ज्ञानी भी हो सकते हैं, जैसा कि अन्य शास्त्रों में कहा गया है—

લોકમા પ્રકાશ કરનાર અવધિજ્ઞાની, વિભગજ્ઞાની તથા ચન્દ્રસૂર્યાદિક પણ હોય છે એ માટે તેની નિવૃત્તિ કરવા "धम्मतित्थयरे" પદ આપેલુ છે નદી-તલાવ આદિ જલાશયોમા ઉતરવા માટે ધર્માર્થ તીર્થ–ઘાટ બનાવવાવાળા પણ ધર્મતીર્થકર કહેવાય છે તેનો સ્વીકાર અહિં નહિ થવા માટે "लोगस्स उज्जोयगरे" વિશેષણ આપ્યુ છે લોકના પ્રકાશક તથા ધર્મતીર્થકર અન્ય મતના જ્ઞાની પણ હોઈ શકે છે, જેવી રીતે અન્ય શાસ્ત્રોમા કહ્યુ છે કે–

१–'जिन.' 'जि अभिभवे' अस्मात् 'जि जये' अस्माद्वा बाहुलकादौणादिको नः प्रत्यय.।

प्रतिवीक्ष्यते प्रमाणबलेनेति वा लोकः[1] पञ्चास्तिकायविशिष्ट आकाशविशेषः। यदुक्तं भगवत्याम्—

किमियं भंते ? लोएत्ति पवुच्चइ ? गोयमा ? पंचत्थिकाया एस णं एवत्तिए लोएत्ति पवुच्चइ' इत्यादि।

तस्य लोकस्य (कर्मणि षष्ठी) उद्द्योतनमुद्द्योतस्तं कर्तुं शीलं येषां त [2]उद्योतकरास्तान् केवलाऽऽलोकेन प्रवचनप्रदीपेन वा निखिललोकप्रकाशकानित्यर्थः। 'धर्म'इति–दुर्गतिपतितमात्मानं धारयति=शुभस्थाने प्रापयतीति धर्मः[3] तीर्यते=पारं नीयतेऽनेनेति [4]तीर्थं=प्रवचनम्, धर्मप्रधानं तीर्थं, धर्मतीर्थं, द्रव्यरूपस्य

प्रवचनरूपी दीपक द्वारा उद्द्योत करनेवाले, प्राणियों को संसार के दुःखों से छुडाकर सुगति में धारण करनेवाले, धर्मरूप तीर्थ के स्थापक, रागादि कर्मशत्रुओं को जीतकर केवलज्ञान युक्त होकर विराजमान ऐसे चौवीसों श्री अरिहन्त भगवान की स्तुति करता हूँ।

यहा पर 'लोक' शब्द से पञ्चास्तिकाय का ग्रहण है और आकाश भी पचास्तिकाय का ही भेद है, तथा अलोक भी आकाशस्वरूप है अतएव 'लोक' पद से ही लोक और अलोक दोनों का ग्रहण होने से केवलज्ञान की अनन्ततामे कोई बाधा नहीं आसकती।

કરવાવાળા, અને પ્રાણીઓને સંસારના દુઃખોથી છોડાવીને સુગતિમાં ધારણ કરવાવાળા, ધર્મરૂપી તીર્થના સ્થાપક, રાગ આદિ કર્મશત્રુઓને જીતી લઈને કેવલજ્ઞાનયુક્ત થઇને વિરાજમાન એવા ચોવીસ અરિહન્ત ભગવાનની સ્તુતિ કરૂં છું.

અહિં "લોક" શબ્દથી પંચાસ્તિકાયનું ગ્રહણ કરેલું છે અને આકાશ પણ પંચાસ્તિકાયનો જ ભેદ છે તથા અલોક પણ આકાશસ્વરૂપ છે એ કારણે "લોક" પદથી જ લોક અને અલોક બન્નેનું ગ્રહણ થઇ શકે છે, તેથી કેવલ જ્ઞાનની અનંતતામાં કોઈ પ્રકારે હાનિ થઇ શકતી નથી

१– 'लोकृ दर्शने' अस्मात् 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' (३।३।१८) इति कर्मणि घञ्।

२– कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु (३।२।२०) इति कर्तरि ट।

३– 'धृञ् धारणे' अस्मादौणादिको मन्प्रत्ययस्तेन 'धर्म' इति सिद्धम्।

४– 'तीर्थम्'–'तॄ प्लवनसंतरणयो' अस्मादौणादिकस्थन् 'ॠत इद्धातोः (७।१।१००) इतीत्वम्, 'हलि च' (८।२।७७) इत्युपधादीर्घः।

जिनमनःपर्ययजिनच्छद्मस्थवीतरागाणा व्यवच्छेदाय। इत्थमुक्तगुणविशिष्टा अर्हन्त एव सम्भवन्ति नेतरे, पुनः 'अरिहते' इत्युक्तिर्विशेष्यत्वाभिप्रायेणेति केचित्, वस्तुतस्त्विह तीर्थंकरगुणोत्कीर्त्तनाध्ययने गुणोत्कीर्त्तनमेव लक्ष्य, तथा च तीर्थङ्कराणा ये ये गुणा येन येन शब्देन लक्ष्यन्ते तेन तेन तेपा गुणाना सकीर्त्तन क्रियते—इत्यष्टविधमहाप्रातिहार्यार्हत्वगुणोत्कीर्त्तनार्थमुक्तम् 'अरिहते' इति एतेनैव 'केवली' इत्यपि व्याख्यात कैवल्यगुणबोधनाय तदुपादानात्, एव च पदान्तरवदर्हत्पदमपि गुणोत्कीर्त्तनायैव नतु विशेष्यत्वाय, विशेष्य तु 'धम्मतित्थयरे' इत्येव प्राप्तावसरत्वात्, तदपि यथोक्तगुणोत्कीर्त्तनपुरस्सरमेव, योगा-(व्युत्पत्य)

'श्रुतजिन, अवधिजिन, मन.पर्ययज्ञानजिन, तथा छद्मस्थ वीतरागो की निवृत्ति की गई है। ऊपर कहे हुए सब विशेषणों से युक्त अर्हन्त ही हो सकते हैं फिर 'अरिहते' पद जो कहा है वह विशेष्यवाचक है। अथवा इस अध्ययन में तीर्थंकरों का गुण वर्णन किया जाता है, इस अवस्था में जिन २ शब्दों से उनके जो जो गुण प्रकट हो सकते हैं उन २ शब्दों से उनका गुण वर्णन करना आवश्यक है अतएव तीर्थङ्कर अष्टमहाप्रातिहार्य के अर्ह—योग्य भी हैं, इस बातको समझाने के लिये 'अरिहते' पद दिया है, अत' 'अर्हत्' पद भी गुण विशेषण-बाचक ही है, विशेष्य-वाचक 'धम्मतित्थयरे' पद है, किन्तु उससे भी उपरोक्त कथन के अनुसार गुण का बोध होता ही है, क्योंकि प्रकृति प्रत्यय के

અવધિજિન, મન પર્યયજ્ઞાનજિન તથા છદ્મસ્થ વીતરાગોની નિવૃત્તિ કહેવામા આવી છે ઉપર કહેલાં સર્વ વિશેષણોથી યુક્ત અર્હન્ત જ હોઈ શકે છે ફરી "अरिहते" પદ જે કહેવામા આવ્યુ છે તે વિશેષ્યવાચક છે અથવા આ અધ્યયનમા તીર્થંકરોના ગુણ વર્ણન કરવામા આવે છે એ અવસ્થામા જે જે શબ્દોથી તેમના જે જે ગુણો પ્રગટ થઈ શકે તે તે શબ્દો વડે તેમનુ વર્ણન કરવુ જરૂરી છે, એ કારણથી તીર્થંકર અષ્ટમહાપ્રતિહાર્યને અર્હ—યોગ્ય પણ છે એ વાતને સમજાવવા માટે "अरिहते" પદ આપેલુ છે અર્થાત્ "અર્હત્" પદ પણ ગુણ—વિશેષણ—વાચક જ છે વિશેષ્યવાચક 'धम्मतित्थयरे' પદ છે પરતુ તેનાથી પણ, ઉપરના કથન અનુસારે ગુણનો બોધ થાય જ છે કારણ કે પ્રકૃતિપ્રત્યયના બલથી થવાવાળા

" ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परम पदम् ।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भव तीर्थनिकारतः ॥ १ ॥ " इति,

तदुक्तरीत्या सम्भवति तद्व्यावृत्तये ' जिणे ' इति, नहि ते जिना'= रागादिशत्रुजेतारस्तदुक्तपुनरागमनादेव, यतो रागादिशत्रुजयमन्तरेण कर्मबीजा ऽदाहादुद्भवत्येव भवाङ्कुर , तदुक्तमितरत्रापि—

" अज्ञानपांशुपिहित, पुरातन कर्मबीजमविनाशि ।
तृष्णाजलाभिषिक्त, मुञ्चति जन्माङ्कुर जन्तो ॥ १ ॥ " इति ।

जिनानित्येव वाच्ये ' लोगस्स उज्जोयगरे ' इत्याद्युक्तिः श्रुतजिनावधि

' धर्म तीर्थ के करने वाले ज्ञानी धर्म की हानि होते देख कर
परम पद पर आरूढ होकर भी पुन ससार में लौट आते हैं ॥१॥ '

उनका ग्रहण न हो इसलिये 'जिणे' विशेषण दिया है, क्यों कि रागादि शत्रु को जीते विना कर्मबीज का नाश नहीं होता, और कर्मबीज का नाश हुए विना भवरूपी अकुर का नाश नहीं होता है, जैसा कि अन्यत्र भी कहा है—

' अज्ञानरूपी मिट्टी के अन्दर पडा हुआ, प्राणी का पुराना कर्मबीज तृष्णारूप जलसे सीचा जाकर जन्मरूप अकुर को पैदा करता है ॥ १ ॥ '

' जिणे ' पद कह कर भी ' लोगस्स उज्जोयगरे ' कहने से

'धर्मतीर्थना करवावाळा ज्ञानी धर्मनी हानि थती होय ते जोइने परम पद पर आरूढ थइने पण फरी ससारमा पाछा आवे छे ॥ १ ॥'

तेमनु ग्रहण न थाय ते माटे "जिणे" विशेषण आपेलु छे कारण के रागादि शत्रुओने जीत्या विना कर्मबीजनो नाश थतो नथी, अने कर्मबीजना नाश थया विना भवससाररूपी अकुरनो नाश थतो नथी, जेवी रीते बीजा स्थळे पण कहेवामा आव्यु छे के—

"अज्ञानरूपी माटीनी अदर पडेला प्राणीना पुराणा कर्मबीज तृष्णा रूप जलथी सिंचन पामीने जन्मरूप अकुरने उत्पन्न करे छे ॥ १ ॥

"जिणे" पद कहीने पण "लोगस्स उज्जोयगरे" कहेवाथी श्रुतजिन,

जिनमनःपर्ययजिनच्छद्मस्थवीतरागाणा व्यवच्छेदाय। इत्थमुक्तगुणविशिष्टा अर्हन्त एव सभवन्ति नेतरे, पुनः 'अरिहते' इत्युक्तिर्विशेष्यत्वाभिप्रायेणेति केचित्, वस्तुतस्त्विह तीर्थकरगुणोत्कीर्त्तनाऽध्ययने गुणोत्कीर्त्तनमेव लक्ष्य, तथा च तीर्थङ्कराणा ये ये गुणा येन येन शब्देन लक्ष्यन्ते तेन तेन तेषा गुणाना सकीर्त्तन क्रियते–इत्यष्टविधमहाप्रातिहार्यार्हत्त्वगुणोत्कीर्त्तनार्थमुक्तम् 'अरिहते' इति एतेनैव 'केवली' इत्यपि व्याख्यात कैवल्यगुणबोधनाय तदुपादानात्, एव च पदान्तरवदर्हत्पदमपि गुणोत्कीर्त्तनायैव नतु विशेष्यत्वाय, विशेष्य तु 'धम्मतित्थयरे' इत्येव प्राप्तावसरत्वात्, तदपि यथोक्तगुणोत्कीर्त्तनपुरस्सरमेव, योगा–(व्युत्पत्य)

'श्रुतजिन, अवधिजिन, मन.पर्ययज्ञानजिन, तथा छद्मस्थ वीतरागों की निवृत्ति की गई है। ऊपर कहे हुए सब विशेषणों से युक्त अर्हन्त ही हो सकते हैं फिर 'अरिहते' पद जो कहा है वह विशेष्यवाचक है। अथवा इस अध्ययन में तीर्थकरों का गुण वर्णन किया जाता है, इस अवस्था में जिन २ शब्दों से उनके जो जो गुण प्रकट हो सकते हैं उन २ शब्दों से उनका गुण वर्णन करना आवश्यक है अतएव तीर्थङ्कर अष्टमहाप्रातिहार्य के अर्ह–योग्य भी हैं, इस बातको समझाने के लिये 'अरिहते' पद दिया है, अत 'अर्हत्' पद भी गुण विशेषण-वाचक ही है, विशेष्य-वाचक 'धम्मतित्थयरे' पद है, किन्तु उससे भी उपरोक्त कथन के अनुसार गुण का बोध होता ही है, क्योंकि प्रकृति प्रत्यय के

અવધિજિન, મન પર્યયજ્ઞાનજિન તથા છદ્મસ્થ વીતરાગોની નિવૃત્તિ કહેવામા આવી છે ઉપર કહેલાં સર્વ વિશેષણોથી યુકત અર્હન્ત જ હોઈ શકે છે ફરી "अरिहते" પદ જે કહેવામા આવ્યુ છે તે વિશેષ્યવાચક છે અથવા આ અધ્યયનમા તીર્થ કરોના ગુણ વર્ણન કરવામા આવે છે એ અવસ્થામા જે જે શબ્દોથી તેમના જે જે ગુણો પ્રગટ થઈ શકે તે તે શબ્દો વડે તેમનું વર્ણન કરવુ જરૂરી છે, એ કારણથી તીર્થ-કર અષ્ટમહાપ્રતિહાર્યને અર્હ–યોગ્ય પણ છે એ વાતને સમજાવવા માટે "अरिहते" પદ આપેલુ છે અર્થાત્ "અર્હત્" પદ પણ ગુણ–વિશેષણ–વાચક જ છે વિશેષ્યવાચક 'धम्मतित्थयरे' પદ છે પરંતુ તેનાથી પણ, ઉપરના કથન અનુસારે ગુણનો બોધ થાય જ છે કારણ કે પ્રકૃતિપ્રત્યયના બલથી થવાવાળા

र्थपरित्यागे प्रमाणाभावात्। अस्तु नाऽर्हत एव विशेष्यत्व तीर्थकरपर्यायत्वात्, न वय तत्राऽऽग्रहिलाः, किन्तु पर्यायत्वेऽप्यर्हत्तीर्थकरकेवलिनामुपादान तत्तच्छब्द-सामर्थ्यगम्यार्थप्रदर्शनार्थमेवेत्येव केवल ब्रूमः।

अत्र केचित्—ननु सम्भवव्यभिचाराभ्या स्याद्विशेषणमर्थवत्—यथा नीलो घटः, कृष्णा गौरित्यादिषु, सम्भवव्यभिचाराभावे विशेषणमनर्थक—यथा शीतोऽनलः, श्यामो भ्रमर इत्यादिषु, ततश्चात्र केवलिन इति धर्मतीर्थकरविशेषण श्यामो

बलसे होनेवाले अर्थका त्याग करना न्यायविरुद्ध है, 'केवली' पदके देनेका भी यही तात्पर्य समझना चाहिये।

यहां पर शका होती है कि—'विशेषण' सभव अथवा व्यभिचार होने पर दिया जाता है, जैसे—'नीले घडे को लाओ' यहा पर घडे का नीला होना सभव भी है, और यदि केवल 'घडेको लाओ' ऐसा कहते हैं तो काले पीले आदि घडों का व्यभिचार भी है, इसलिए यहा 'नीला' विशेषण देना उचित है। और जहा पर सभव तथा व्यभिचार न हो वहा विशेषण का देना व्यर्थ होता है, जैसे 'ठढी अग्नि' यहा अग्नि में ठढापन सभव नहीं है, ऐसे ही 'काला भौरा' यहा पर भौरे में कालेपन के सिवाय दूसरे वर्ण का व्यभिचार नहीं है,

---

અર્થનો ત્યાગ કરવો તે ન્યાયવિરૂદ્ધ છે, "केवली" પદ આપવાનું કારણ પણ ઉપર પ્રમાણે સમજી લેવું જોઈએ

અહિં એક શકા થવા સભવ છે કે વિશેષણ, સભવ અથવા વ્યભિચાર થતો હોય તે સ્થળે આપવામા આવે છે, જેવી રીતે કે—'નીલા ઘડાને લાવો' અહિં ઘડાનુ નીલા હોવા પણ સભવિત છે, અને જો માત્ર 'ઘડાને લાવો' એ પ્રમાણે કહે તો કાળો, પીળો આદિ ઘડાઓનો વ્યભિચાર પણ છે એટલા માટે અહિં 'નીલો' વિશેષણ આપ્યુ તે ઉચિત છે અને જ્યા આગળ સભવ તથા વ્યભિચાર થતો નથી ત્યા વિશેષણ આપવુ તે વ્યર્થ થાય છે જેવી રીતે કે "શીતલ અગ્નિ" અહિં અગ્નિમા શીતલતાનો સભવ નથી, તેવી જ રીતે "કાલા ભમરા" અહિં ભમરામા કાળાપણા વિના બીજા રગનો વ્યભિચાર નથી એટલા માટે એવા વિશેષણો આપવા વ્યર્થ છે તે કારણથી

भ्रमर इतिवदितरव्यावर्त्तकत्वाभावादपार्थम्, धर्मतीर्थकराणां केवलित्वाव्यभिचारादित्याशङ्क्य–'केवलिन एव यथोक्तस्वरूपा धर्मतीर्थकरा नान्ये' इति नियमार्थत्वेन स्वरूपज्ञानायेदं विशेषणमित्याहुः ।

कीर्त्तयिष्यामि=अनुपदं स्तोष्यामि, वस्तुतस्तु आर्षत्वादत्र लट्स्थानिको लट्, स्तौमीत्यर्थः । अपिः पूर्वापरसमुच्चया (सङ्ग्रहा)-र्थः । 'उसभ' इति । ऋषभादीनां सर्वेषां द्वितीयान्तानां वन्दनक्रिययाऽन्वयः, 'उसभ' इति ऋषभ-वृषभशब्दयोरुभयोरपि भवति, ततश्च गत्यर्थधातूनां ज्ञानार्थत्वात्, ऋषति=जानाति लोकालोकस्वरूपमिति, ऋषति=गच्छति परमं पदमिति, शरणैषिभिर्भव्यजनैः ऋष्यते=प्राप्यते इति वा ऋषभः । पक्षे वर्षति=पूरयति भव्यजनमनोरथानिति,

---

इसलिये ऐसे विशेषणों का देना व्यर्थ है, अतएव धर्मतीर्थंकर को 'केवली' विशेषण देना भौंरे के काले विशेषण के समान व्यर्थ है, क्यों कि धर्मतीर्थंकर केवली ही होते हैं'।

इसका उत्तर यह है कि–'केवली होने पर ही तीर्थङ्कर धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक होते है छद्मस्थ अवस्था में नही, इस बात को स्पष्ट करने के लिये 'केवली' विशेषण दिया गया है ॥ १ ॥

इस प्रकार चौवीस तीर्थङ्करों की स्तुति करने की सामान्य रूपसे प्रतिज्ञा करके नामग्रहणपूर्वक विशेषरूप से स्तुति करते हैं, जो लोकालोक के स्वरूप को जाननेवाले, परम पदको प्राप्त होने-वाले भव्य जनों के आधारभूत तथा उनके मनोरथो को पूरा कर-

---

धर्मतीर्थंकरने केवली विशेषण आपवु ते भमराने काळापणानुं विशेषण आपवा प्रमाणे व्यर्थ छे, केम के धर्मतीर्थंकर केवली ज होय छे

आ शंकानो उत्तर ए छे के —"केवली थया पछी ज तीर्थंकर धर्मतीर्थना प्रवर्त्तक होई शके छे, छद्मस्थ-अवस्थामां थई शकता नथी, ए वातने स्पष्ट करवा माटे 'केवली" विशेषण आपेलुं छे ॥ १ ॥

ए प्रमाणे चोवीस तीर्थंकरोनी स्तुति करवानी सामान्यरूपनी प्रतिज्ञा करीने नामग्रहणपूर्वक विशेषरूपथी स्तुति करे छे के जे लोकालोकना स्वरूपने जाणवा वाळा, परम पदने प्राप्त थवावाळा भव्यजीवोने आधारभूत तथा तेमना मनोरथोने पूर्ण करवावाळा, धर्मरूपी बगीचाने प्रवचनरूप जलनुं सींचन

र्थपरित्यागे प्रमाणाभावात् । अस्तु नाऽर्हत एव विशेष्यत्व तीर्थकरपर्यायत्वात्, न वय तत्राऽऽग्रहिलाः, किन्तु पर्यायत्वेऽप्यर्हत्तीर्थकरकेवलिनामुपादान तत्तच्छब्द-सामर्थ्यगम्यार्थप्रदर्शनार्थमेवेत्येव केवल ब्रूमः ।

अत्र केचित्—ननु सम्भवव्यभिचाराभ्या स्याद्विशेषणमर्थवत्-यथा नीलो घटः, कृष्णा गौरित्यादिषु, सम्भवव्यभिचाराभावे विशेषणमनर्थक-यथा शीतो ऽनलः, श्यामो भ्रमर इत्यादिषु, तवश्चात्र केवलिन इति धर्म्मतीर्थकरविशेषण श्यामो

बलसे होनेवाले अर्थका त्याग करना न्यायविरुद्ध है, 'केवली' पदके देनेका भी यही तात्पर्य समझना चाहिये।

यहां पर शका होती है कि-'विशेषण' सभव अथवा व्यभिचार होने पर दिया जाता है, जैसे-'नीले घडे को लाओ' यहा पर घडे का नीला होना सभव भी है, और यदि केवल 'घडेको लाओ' ऐसा कहते हैं तो काले पीले आदि घडों का व्यभिचार भी है, इसलिए यहा 'नीला' विशेषण देना उचित है। और जहा पर सभव तथा व्यभिचार न हो वहा विशेषण का देना व्यर्थ होता है, जैसे 'ठढी अग्नि' यहा अग्नि में ठढापन सभव नही है, ऐसे ही 'काला भौरा' यहा पर भौरे में कालेपन के सिवाय दूसरे वर्ण का व्यभिचार नही है,

અર્થનો ત્યાગ કરવો તે ન્યાયવિરુદ્ધ છે, "केवली" પદ આપવાનું કારણ પણ ઉપર પ્રમાણે સમજી લેવુ જોઇએ

અહિં એક શકા થવા સભવ છે કે વિશેષણ, સભવ અથવા વ્યભિચાર થતો હોય તે સ્થળે આપવામા આવે છે, જેવી રીતે કે—'નીલા ઘડાને લાવો' અહિં ઘડાનુ નીલા હોવા પણ સભવિત છે, અને જો માત્ર 'ઘડાને લાવો' એ પ્રમાણે કહે તો કાળો, પીળો આદિ ઘડાઓનો વ્યભિચાર પણ છે એટલા માટે અહિં 'નીલો' વિશેષણ આપ્યુ તે ઉચિત છે અને જ્યા આગળ સભવ તથા વ્યભિચાર થતો નથી ત્યા વિશેષણ આપવુ તે વ્યર્થ થાય છે જેવી રીતે કે "શીતલ અગ્નિ" અહિં અગ્નિમા શીતલતાનો સભવ નથી, તેવી જ રીતે "કાલા ભમરા" અહિં ભમરામા કાળાપણા વિના બીજા રગનો વ્યભિચાર નથી એટલા માટે એવા વિશેષણો આપવા વ્યર્થ છે તે કારણથી

भ्रमर इतिवदितरव्यावर्त्तकत्वाभावादपार्थम्, धर्मतीर्थंकराणा केवलित्वाव्यभिचारादित्याशङ्क्य-'केवलिन एव यथोक्तस्वरूपा धर्मतीर्थंकरा नान्ये' इति नियमार्थत्वेन स्वरूपज्ञानायेद विशेषणमित्याहुः ।

कीर्तयिष्यामि=अनुपद स्तोष्यामि, वस्तुतस्तु आर्षत्वादत्र लट्स्थानिको लट्, स्तौमीत्यर्थ । अपिः पूर्वापरसमुच्चया (सङ्ग्रहा)-र्थः । 'उसभ' इति । ऋषभादीना सर्वेषा द्वितीयान्ताना वन्दनक्रिययाऽन्वयः, 'उसभ' इति ऋषभ-वृषभशब्दयोरुभयोरपि भवति, ततश्च गत्यर्थधातूना ज्ञानार्थत्वात्, ऋषति=जानाति लोकालोकस्वरूपमिति, ऋषति=गच्छति परम पदमिति, शरणैषिभिर्भव्यजनैर्ऋष्यते=प्राप्यते इति वा ऋषभः । पक्षे वर्षति=पूरयति भव्यजनमनोरथानिति,

---

इसलिये ऐसे विशेषणों का देना व्यर्थ है, अतएव धर्मतीर्थंकर को 'केवली' विशेषण देना भौंरे के काले विशेषण के समान व्यर्थ है, क्यो कि धर्मतीर्थंकर केवली ही होते हैं'।

इसका उत्तर यह है कि-'केवली होने पर ही तीर्थङ्कर धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक होते हैं छद्मस्थ अवस्था मे नही, इस बात को स्पष्ट करने के लिये 'केवली' विशेषण दिया गया है ॥ १ ॥

इस प्रकार चौवीस तीर्थङ्करों की स्तुति करने की सामान्य रूपसे प्रतिज्ञा करके नामग्रहणपूर्वक विशेषरूप से स्तुति करते हैं, जो लोकालोक के स्वरूप को जाननेवाले, परम पदको प्राप्त होनेवाले भव्य जनों के आधारभूत तथा उनके मनोरथो को पूरा कर-

---

ધર્મતીર્થંકરને કેવલી વિશેષણ આપવુ તે ભમરાને કાળાપણાનું વિશેષણ આપવા પ્રમાણે વ્યર્થ છે, કેમ કે ધર્મતીર્થંકર કેવલી જ હોય છે

આ શકાનો ઉત્તર એ છે કે —"કેવલી થયા પછી જ તીર્થંકર ધર્મતીર્થના પ્રવર્ત્તક હોઇ શકે છે, છદ્મસ્થ-અવસ્થામા થઇ શકતા નથી, એ વાતને સ્પષ્ટ કરવા માટે 'કેવલી" વિશેષણ આપેલુ છે ॥ ૧ ॥

એ પ્રમાણે ચોવીસ તીર્થંકરોની સ્તુતિ કરવાની સામાન્યરૂપની પ્રતિજ્ઞા કરીને નામગ્રહણપૂર્વક વિશેષરૂપથી સ્તુતિ કરે છે કે જે લોકાલોકના સ્વરૂપને જાણવાવાળા, પરમ પદને પ્રાપ્ત થવાવાળા ભવ્યજીવોને આધારભૂત તથા તેમના મનોરથોને પૂર્ણ કરવાવાળા, ધર્મરૂપી બગીચાને પ્રવચનરૂપ જલનું સીંચન

लस्य प्रभा पद्मप्रभा, पद्मप्रभेव प्रभा तत्तुल्यकोमलाङ्गत्वात् यस्य स[1], यद्वा पद्मेषु=कमलेषु प्रभा यस्यासौ पद्मप्रभः=सूर्यस्तद्वद्विमलकेवलज्योतिषा भासमानत्वेन गौणलक्षणावलेन रूपककल्पनया, अथवा गर्भस्थस्यास्य मातुः पद्मशय्यादोहदः सञ्जातो यो देवेन पूरितस्तदुत्तरमसौ प्राभवदिति पद्मप्रभस्तम्, एतन्मतव्याख्याने पद्मोत्तर=पद्मशय्यादोहदोत्तर प्रभवतीति[2] व्युत्पत्तिः (६)। 'सुपास' सु=शोभनौ पार्श्वौ यस्य सः, यद्वा गर्भस्थस्यास्य माता सुपार्श्वा=शोभनपार्श्ववती जाता तद्योगात् सुपार्श्वस्तम् (७)। 'जिण' जिनम्। व्याख्यातो जिनपदार्थः।

सुमति के कारण जिनका 'सुमति' नाम रक्खा गया उन श्री सुमतिनाथ भगवान को । ५ ।

पद्म-कमल के समान प्रभा-कान्ति-वाले, अथवा पद्मों-कमलों में प्रभा-किरण है जिसकी वह हुवा पद्मप्रभ अर्थात् सूर्य, उसके समान कान्तिवाले, या जब भगवान गर्भ में थे तो इनकी माता को पद्मशय्या का दोहद (दोहला)हुआ, जिसको देवताने पूरा किया इस कारण पद्मप्रभ नामवाले भगवान को । ६ ।

देखने में सुडौल है पार्श्व (पसवाडे) जिनके,अथवा जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता गर्भ के प्रभावसे सुन्दर पार्श्व (पसवाडे) वाली हुई, इसलिये गुणनिष्पन्न नामवाले श्री सुपार्श्वनाथ को ॥७॥

સુમતિના કારણે જેનું 'સુમતિ' નામ રાખવામા આવ્યુ એવા શ્રી સુમતિનાથ ભગવાનને ॥ ૫ ॥

પદ્મ-કમલ સમાન પ્રભા-કાન્તિવાળા, અથવા પદ્મો-કમલોમા પ્રભા-કિરણ છે જેની તે થયો પદ્મપ્રભ અર્થાત્-સૂર્ય, તેના સમાન કાન્તિવાળા, અથવા જ્યારે, ભગવાન ગર્ભમા હતા ત્યારે તેની માતાને પદ્મશય્યાનો દોહલો થયેલો જે દેવતાએ પૂર્ણ કર્યો તે કારણથી "પદ્મપ્રભ" નામવાળા ભગવાનને ॥ ૬ ॥

જોવામા પાર્શ્વ (પડખાનો ભાગ) સુડોળ- સરખો છે જેનો અથવા જ્યારે તે ગર્ભમા હતા ત્યારે ગર્ભના પ્રભાવથી જેની માતા સુદર પાર્શ્વવાળા થયા એટલા માટે ગુણ-નિષ્પન્ન નામવાળા શ્રી સુપાર્શ્વનાથ ને ॥ ૭ ॥

१– पद्मप्रभ —'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः' इति वचनात्समास उत्तरपदलोपश्च खरमुखोष्ट्रमुखादिवत् ।
२–पद्मप्रभः—'शाकपार्थिवादित्वात् 'उत्तर' शब्दस्य लोपे पृषोदरादित्वात्सिद्धिः'॥

'चंदप्पह' चन्दते=आह्लादते इति चन्द्रस्तस्य प्रभा चन्द्रप्रभा,=चन्द्रप्रभेव प्रभा विशुद्धलेश्यत्वाद् यस्यासौ, यद्वा गर्भावस्थायामस्य जनन्याश्चन्द्रप्रभापानदोहदोऽभवत्तत्सम्बन्धाच्चन्द्रप्रभस्तम् 'वंदामि' वन्दे (८)। 'सुविहिं' सुविधिं= सु=शोभनो विधिरनुष्ठानं यस्य स', यद्वा यद्दर्शनस्मरणादिना लोकाः सुविधयः= सुभाग्या भवन्ति स', अथवा गर्भस्थस्यास्य जननी सर्वेषु अभयदान–सुपात्रदान–म्रियमाणप्राणिपरिमोचनादिविधिषु सातिशया शोभना=कुशला जाताऽतस्तद्योगात्सुविधिस्त, 'पुप्फदंत' सुविधेरेवेदमपरं नाम विशिष्य परिचयार्थमुपनिबद्धम्, स्वच्छत्वान्मनोहरत्वाच्च पुष्पाणीव, यद्वा नामैकदेशेन नामग्रहणात् पुष्पपदेन तत्कुड्मलाग्रस्य ग्रहणात् पुष्पकुड्मलाग्राणीव दन्ता यस्यासौ पुष्पदन्तस्तम् (९)। 'सीयल–

तथा चन्द्रमा के समान कान्तिवाले, या जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता को चन्द्रप्रभापान का दोहद हुआ, इस कारण गुणनिष्पन्न नाम वाले श्रीचन्द्रप्रभ भगवान को ॥ ८ ॥

अच्छे अनुष्ठान वाले, या जिनके दर्शन स्मरण आदि से प्राणी पूर्ण भाग्यवान होते है ऐसे, अथवा जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता अभयदान, सुपात्रदान, मरते हुए प्राणियों को बचाना-आदि धर्म की सभी विधियों में विशेषतया निपुणा हुई, इस कारण सुविधिनाथ और पुष्प के समान स्वच्छ दाँतों की छटावाले होने से पुष्पदन्त भी नाम है जिनका ऐसें भगवान को ॥ ९ ॥

તથા ચન્દ્રસમાન કાન્તિવાળા અથવા જ્યારે તેઓ ગર્ભમાં હતા ત્યારે તેમની માતાને ચન્દ્રપાન કરવાનું દોહલો થયેલું તે કારણથી ગુણ–નિષ્પન્ન નામવાળા શ્રી ચન્દ્રપ્રભ ભગવાનને ॥ ૮ ॥

સારા અનુષ્ઠાનવાળા, અથવા જેના દર્શન સ્મરણ આદિથી પ્રાણી પૂર્ણ ભાગ્યવાન થાય છે એવા, અથવા જ્યારે તેઓ ગર્ભમાં હતા ત્યારે તેમની માતા સર્વવિધિઓ–કર્તવ્યોમાં વિશેષ નિપુણ થયા આ કારણથી "સુવિધિનાથ" અથવા પુષ્પસમાન સ્વચ્છ દાંતની પંક્તિવાળા હોવાથી "પુષ્પદન્ત"- નામ પણ છે જેનું એવા ભગવાનને ॥ ૯ ॥

१– 'वंदामि' अत्र प्राकृतत्वात्परस्मैपदम्।

सिज्जस-वासुपुज्जं[1] च' शीतलश्च श्रेयासश्च वासुपूज्यश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे शीतल-श्रेयास-वासुपूज्यास्तान्। तत्राधिव्याधिजसन्तापकलापनितान्तक्रान्तस्वान्तजन्तुजातकृते चन्द्रचन्दनादितोऽप्यपूर्वशीतलत्वात्, यद्वा शीतलशब्दस्य गुणवाचकत्वात् शीतं=शैत्यं कषायप्रशमनस्वरूपं लाति=आदत्त इति, अथवाऽस्य भगवतः पितुरेकदाऽतितीव्रः पित्तज्वरदाहः सञ्जातः स विविधैरुपचारैः कृतैरपि न शान्तिं प्राप्तः,-गर्भगते त्वस्मिन् भगवति देव्याः करकमलस्पर्शमात्रेणैवोपशान्त इति मातृद्वारा पितृज्वरदाहप्रशमनहेतुत्वात् शीतलस्तम् (१०)। सिज्जस=श्रेयासम्=सकलभुवनहिताधायकत्वादतिशयेन प्रशस्यः=[2]श्रेयान्, यद्वा श्रेयासावसौ=स्कन्धौ यस्य सः, अथवैतत्पितु राज्ञः पितृपरम्परामाम्नाया कस्याश्चिच्छय्याया

-आधि-व्याधि से होने वाले समस्त सन्तापों को मिटाकर प्राणियों को चन्द्रमा चन्दन आदि से भी अधिक शीतल शान्ति को, या कषाय के उपशमरूप शीतलता को देने वाले, अथवा जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता के कर-कमल का स्पर्श होते ही पिता का असाध्य दाहज्वर इनके प्रभाव से उपशान्त हुआ इस कारण 'शीतलनाथ' नाम वाले भगवान को ॥ १० ॥

तीन लोक के हित करने वाले, अथवा इनके पिताके यहाँ पितृपरम्परासे प्राप्त एक शय्या देवाधिष्ठित थी, जिससे उस पर

આધિ-વ્યાધિથી થવાવાળા તમામ સંતાપોને નિવારણ કરીને પ્રાણીઓને ચન્દ્રમા ચંદન વિગેરેથી અધિક શીતલ શાંતિને અથવા તો કષાયની ઉપશમતા રૂપ શીતલતા આપવાવાળા અથવા જ્યારે તેઓશ્રી ગર્ભમાં હતા ત્યારે તેઓના પ્રભાવથી તેમની માતાના કર કમલનો સ્પર્શ થતાજ તેઓના પિતાનો અસાધ્ય દાહ જ્વર ઉપશાંત થયો એ કારણથી "શીતલનાથ" નામવાળા ભગવાનને ॥ ૧૦ ॥

ત્રણ લોકનું હિત કરનારા, અથવા તેમના પિતાને ત્યાં પિતૃપરંપરાથી પ્રાપ્ત એક શય્યા દેવાધિષ્ઠિત હતી, જેથી તે શય્યા ઉપર બેસવાવાળાને ઉપસર્ગ થતો હતો,

१-'सीयल वासुपुज्जं च' अत्र सूत्रे आर्षत्वादेकवचनम्, यद्वा समाहाराभिप्रायेण।

२- प्रशस्यशब्दादतिशयेऽर्थे 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' (५।३।५७) इतीयसुनि 'प्रशस्यस्य श्रः' (५।३।६०) इति प्रशस्यशब्दस्य श्रादेशः, श्रेयासेत्यदन्तत्वं तु पृषोदरादित्वात्।

देवाधिष्ठितत्वेन यः कश्चन पुरोपविशति तमुपसर्गो बाधते स्म, गर्भस्थे त्वस्मिन् भगवति मातुस्तच्छय्योपवेशदोहदे जाते तदुपर्युपवेशमात्रेणैव देवोपद्रवो विनष्ट इतीदृशश्रेयोमूलत्वाच्छ्रेयासस्तम्[1] (११)। 'वासुपुज्ज' [2]वसवः=मुनयः-साग-वस्त एव वासवस्तेषां पूज्यो वासुपूज्यः, यद्वा वसूनि=रत्नानि तानि चात्र सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राणि, तान्येव वासूनि, तत्प्रकाशकत्वात्पूज्यो वासुपूज्यः, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवत्यस्य जननी वासवेन=देवेन्द्रेण भृशं वन्दन-नमस्काराभ्यां पूजिताऽभूत्तेन [3]वासुपूज्यस्तम् (१२)। 'विमल' विगत=सर्वथा नष्ट मल=कर्म्ममलं यस्य, यद्वा विशेषेण मलते=धारयति दुर्गतिगर्त्ते पिपतिषून् भव्यान् यः

बैठनेवाले को उपसर्ग होता था, किन्तु भगवान गर्भ में थे तब उस शय्या पर उनकी माता के बैठते ही देवकृत उपसर्ग नष्ट हो गया, इस प्रकार श्रेय (कुशल) करने वाले श्री श्रेयासनाथ को ॥११॥

मुनियों के पूज्य, या रत्नत्रयरूप वसु-सम्पत्ति के प्रकाशक अथवा जब ये गर्भ मे थे तब इनकी माता इन्द्र के द्वारा वारवार सम्मानित हुई, ऐसे यथार्थ नामवाले श्री वासुपूज्य भगवान को ॥ १२ ॥

जिनका कर्ममल सर्वथा नष्ट हो चुका है, या जो दुर्गति में गिरते हुए प्राणियों को धारण करनेवाले, निर्मल स्वरूप वाले,

પરન્તુ ભગવાન ગર્ભમા હતા ત્યારે તે શય્યા પર તેમની માતા પોતે બેઠા કે તુરતજ દેવકૃત ઉપસર્ગ નાશ થઇ ગયો, એ પ્રમાણે શ્રેય (કુશળ) કરવાવાળા " શ્રી શ્રેયાસનાથ "ને ॥ ૧૧ ॥

મુનિઓના પૂજ્ય, અથવા રત્નત્રય રૂપ વસુ-સંપત્તિના પ્રકાશક, અથવા જ્યારે તેઓ ગર્ભમા હતા ત્યારે તેમની માતા ઇન્દ્ર વડે વારવાર સન્માન પામી એવા યથાર્થ નામવાળા " શ્રી વાસુપૂજ્ય " ભગવાનને ॥ ૧૨ ॥

જેનો કર્મમલ સર્વથા નષ્ટ થઇ ગયો, અથવા જે દુર્ગતિમા પડતા પ્રાણીઓને ધારણ કરવાવાળા, નિર્મલ સ્વરૂપવાળા, અથવા ગર્ભમા આવવા

१- 'श्रेयासः' सिद्धिरुक्तैव निरुक्तवृत्त्या वा नेया।

२- 'वसुः=साधुः' इति शब्दरत्नावलीति शब्दकल्पद्रुम।

३- 'वासुपूज्य,'-अस्मिन् व्युत्पत्तित्रयेऽपि वासुशब्दसिद्धिः पृषोदरादित्वात्॥

स विमलः, अथवा विमलस्वरूपत्वाद्विमलः, अपि वा गर्भस्थस्यास्य जनन्यास्तनुर्मतिश्च विमला सञ्जाता तद्योगाद्विमलस्तम् (१३)। 'अणत' मोक्षाधिकरणकनिरवधिस्थितिकत्वात् अविद्यमानोऽन्तो=नाशो यस्यासावनन्तः, यद्वा अनन्तानि ज्ञानदर्शनादीनि तद्धेतुत्वादनन्तः, कारणे कार्योपचारात्, अपि वाऽनन्तस्वरूपत्वादनन्तः। अथवा गर्भस्थस्यास्य भगवतो माता स्वप्नेऽनन्ताकारा मालामद्राक्षीत्तेनानन्तस्तम् (१४)। 'जिण' जिनम्, प्राग्व्याख्यातो जिनशब्दार्थः। 'धम्म' दुर्गतौ प्रपततो जन्तून् धारयतीति धर्म्मः, यद्वा कारणे कार्योपचाराच्छ्रुतचारित्रादिरूपस्य धर्मस्य प्ररूपकतया धर्मस्वरूपत्वाद्वा, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवति जनन्या दानादिरूपे धर्मे दृढा मतिरुदिता तद्योगाद्धर्मस्तम् (१५)।

अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता की बुद्धि निर्मल हो गई, ऐसे यथानाम तथागुण वाले 'श्री विमलनाथ' को ॥१३॥

अविनाशी पद (मोक्ष) को प्राप्त करनेवाले, अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन आदि आत्मिक गुणो के दाता, अथवा गर्भमें आने पर जिनकी माताने स्वप्नमे अनन्त आकारवाली रत्नमाला को देखा अतएव यथार्थ नामवाले श्री अनन्तनाथ को ॥१४॥

दुर्गति में पडते हुए जीवों के उद्धारक, श्रुत-चारित्ररूप धर्म के उपदेशक, अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता की बुद्धि दानादि धर्म में दृढ हुई, ऐसे सार्थक नाम वाले श्री धर्मनाथ को ॥१५॥

સાર્થક જેની માતાની બુદ્ધિ નિર્મલ થઇ ગઇ એવા યથાનામ તથાગુણવાળા "શ્રી વિમલનાથ"ને ॥ ૧૩ ॥

અવિનાશી પદ (મોક્ષ)ને પ્રાપ્ત કરવાવાળા, અનન્ત જ્ઞાન, અનન્ત દર્શન આદિ આત્મિક ગુણોના દાતા, અથવા ગર્ભમા આવતા જ જેની માતાએ સ્વપ્નમા અનન્ત આકારવાળી રત્નમાળા દેખી એટલા માટે યથાર્થ નામવાળા "શ્રી અનન્તનાથ"ને ॥ ૧૪ ॥

દુર્ગતિમા પડતા જીવોના ઉદ્ધારક, શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મના ઉપદેશક, અથવા ગર્ભમા આવવાથી જેની માતાની બુદ્ધિ દાનાદિ ધર્મને વિષે દૃઢ થઇ, એવા સાર્થક નામવાળા 'શ્રી ધર્મનાથ"ને ॥ ૧૫ ॥

'सर्ति' शमयति=व्यपनयति कपायमिति ¹शान्तिः, यद्वा कर्मसन्ततिसन्ताप-मालाऽऽकुलाना जनाना शान्तिकरणशीलत्वाच्छान्तिः, शान्तिस्वरूपत्वाद्वा शान्तिः, निराबाधमुक्तिरूपशान्तिहेतुत्वाद्वा, स्मरणेन भव्यजनाधिव्याधिशान्तिहेतुत्वाद्वा, अथवा बहोः कालाज्जनपदे वर्तमानस्य दुर्भिक्षरोगोपद्रवादेरस्मिन् भगवति गर्भा-गते सति शान्तिर्जाता तद्योगाच्छान्तिस्तम्, नामैकदेशेन नामग्रहणात्–'शान्ति-नाथ'–मित्यर्थः (१६)। 'वदामि' वन्दे=स्तौमि। 'कुथु' कुन्थति=हिनस्ति कर्मशत्रुमिति, कुथ्नाति=मोक्षश्रियमालिङ्गतीति वा ²'कुन्थु', यद्वा कु=पृथिवीम् उपलक्षणादवादिक च स्तभ्नाति धारयति=रक्षतीति कुन्थुः=पट्कायरक्षकमुनिगणः, त सदोरकमुखवस्त्रिकाधारिण भव्यजीवोपकारक मोक्षमार्गप्रचारक महत्यामनेक-

कपायों के नाश करनेवाले, कर्मरूपी सन्ताप से सतप्त प्राणियों को शान्ति प्रदान करने वाले, शान्तस्वरूपी, जिनके स्मरण मात्रसे आधिव्याधि मिट जाती हैं ऐसे, अथवा गर्भ मे आने पर दुर्भिक्ष तथा महामारी (मरकी) आदि की उपशान्ति हो गई, ऐसे अन्वर्थ नामवाले श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र को मै वन्दना करता हूँ ॥१६॥

कर्म–शत्रुओं का नाश कर मोक्ष को प्राप्त करनेवाले, अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माताने स्वप्न मे कुन्थु अर्थात् सदोरक-मुखवस्त्रिकाधारी, भव्य जीवों के उपकारी, मोक्षमार्ग के प्रचारक

કષાયોનો નાશ કરવાવાળા, કર્મરૂપી સતાપથી તપી રહેલા પ્રાણીઓને શાતિ આપવાવાળા, શાન્તસ્વરૂપી જેના સ્મરણ માત્રથી આધિ–વ્યાધિ મટી જાય છે એવા, અથવા ગર્ભમા આવતા જ દુષ્કાલ તથા મરકી આદિ રોગ–ઉપ દ્રવોની ઉપશાન્તિ થઇ ગઇ એવા યથાર્થ નામવાળા "શ્રી શાન્તિનાથ" જિનેન્દ્રને હુ વદન કરૂ છુ ॥ ૧૬ ॥

કર્મશત્રુઓનો નાશ કરીને મોક્ષને પામવાવાળા, અથવા ગર્ભમા આવતા જ જેમની માતાએ સ્વપ્નમા કુન્થુ એટલે દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકા ધારનાર, મોક્ષ માર્ગના પ્રચારક, અનેક દેવ મનુષ્યની વિશાળ પરિષદમા વિચિત્ર ધર્મોપદેશ દેનાર

१–'शान्तिः अत्र बाहुलकात्कर्त्तरि क्तिन्।

२–'कुन्थु.' भौवादिकाद्धिसार्थकात् कुथि धातो. पक्षे क्रैयादिकात्स-श्लेपणार्थकात् कुन्थधातोरौणादिक उप्रत्ययः।

स विमलः, अथवा विमलस्वरूपत्वाद्विमलः, अपि वा गर्भस्थस्यास्य जनन्यास्तु मतिश्च विमला सञ्जाता तद्योगाद्विमलस्तम् (१३)। 'अणत' मोक्षाधिकरणकनिरवधिस्थितिकत्वात् अविद्यमानोऽन्तो=नाशो यस्यासावनन्तः, यद्वा अनन्तानि ज्ञानदर्शनादीनि तद्धेतुत्वादनन्त', कारणे कार्योपचारात्, अपि वाऽनन्तस्वरूपत्वादनन्तः। अथवा गर्भस्थस्यास्य भगवतो माता स्वप्नेऽनन्ताकारा मालामद्राक्षीत्तेनानन्तस्तम् (१४)। 'जिण' जिनम्, प्रागव्याख्यातो जिनशब्दार्थः। 'धम्म' दुर्गतौ प्रपततो जन्तून् धारयतीति धर्मः, यद्वा कारणे कार्योपचाराच्छ्रुतचारित्रादिरूपस्य धर्मस्य प्ररूपकतया धर्मस्वरूपत्वाद्वा, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवति जनन्या दानादिरूपे धर्मे दृढा मतिरुदिता तद्योगाद्धर्मस्तम् (१५)।

अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता की बुद्धि निर्मल हो गई, ऐसे यथानाम तथागुण वाले 'श्री विमलनाथ' को ॥१३॥

अविनाशी पद (मोक्ष) को प्राप्त करनेवाले, अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन आदि आत्मिक गुणो के दाता, अथवा गर्भमें आने पर जिनकी माताने स्वप्नमे अनन्त आकारवाली रत्नमाला को देखा अतएव यथार्थ नामवाले श्री अनन्तनाथ को ॥१४॥

दुर्गति में पडते हुए जीवों के उद्धारक, श्रुत-चारित्ररूप धर्म के उपदेशक, अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता की बुद्धि दानादि धर्म में दृढ हुई, ऐसे सार्थक नाम वाले श्री धर्मनाथ को ॥१५॥

સાર્થેજ જેની માતાની બુદ્ધિ નિર્મલ થઇ ગઇ એવા યથાનામ તથાગુણુવાળા " શ્રી વિમલનાથ "ને ॥ ૧૩ ॥

અવિનાશી પદ (મોક્ષ)ને પ્રાપ્ત કરવાવાળા, અનન્ત જ્ઞાન, અનન્ત દર્શન આદિ આત્મિક ગુણોના દાતા, અથવા ગર્ભમા આવતા જ જેની માતાએ સ્વપ્નમા અનન્ત આકારવાળી રત્નમાળા દેખી એટલા માટે યથાર્થ નામવાળા "શ્રી અનન્તનાથ"ને ॥ ૧૪ ॥

દુર્ગતિમા પડતા જીવોના ઉદ્ધારક, શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મના ઉપદેશક, અથવા ગર્ભમા આવવાથી જેની માતાની બુદ્ધિ દાનાદિ ધર્મને વિષે દૃઢ થઇ, એવા સાર્થક નામવાળા ' શ્રી ધર્મનાથ "ને ॥ ૧૫ ॥

श्वासौ सुव्रतश्च मुनिसुव्रतः, यद्वाऽस्य शासनकाले मुनयो निरतिचारेण शोभनव्रत-शालिनो जाता इति कालिकादिसम्बन्धेन, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवत्येतज्जननी मुनिवत्सुव्रता जाता तद्योगान्मुनिसुव्रतस्तम् (२०)। 'नमिजिण' नमयति=तिरस्करोति कर्मशत्रूनिति नमिः, यद्वा गर्भमाप्तेऽस्मिन् भगवति, एतत्प्रभावैः सर्वे परनरपतयो नमितास्तद्योगान्नमिः, स चासौ जिनश्च नमिजिनस्तम् (२१)। 'वदामि' वन्दे 'रिट्ठनेमिं' अरिष्टम्=अशुभमुपद्रवं वा नमयति=अधःकरोतीति, जातमात्रः सन्नरिष्ट=सूतीगृह तात्स्थ्यात्सूतीगृहस्थितजनान् अनमयत्=नतशिर-

मे निरतिचार चारित्र पालनेवाले बहुत मुनि हुए, अथवा जब ये गर्भ में आये तब उनकी माता मुनिके समान सुव्रता हुई इस कारण 'मुनिसुव्रतनाथ' नाम वाले भगवान को ॥२०॥

कर्म शत्रुओ को जीतने वाले, या जब ये गर्भमे थे तो अन्य सभी विमुख राजगण नम्र हो गये (झुक गये) अत एव यथार्थ नाम वाले श्री नमिजिन को मैं वन्दना करता हूँ ॥२१॥

अशुभ तथा उपद्रवों को दूर करनेवाले, अथवा जिनके जन्म लेते ही उस समय अरिष्ट-प्रसूतिगृह (सौर-सुवावड का घर) में स्थित समस्त मनुष्यों के सिर झुक गये, या जो सारे ससार

ચારિત્ર પાલન કરનારા ઘણાજ મુનિ થયા, અથવા જ્યારે તે ગર્ભમા આવ્યા ત્યારે તેમની માતા મુનિના સમાન સુવ્રતા થઈ એ કારણથી "મુનિસુવ્રતનાથ" નામ વાળા ભગવાનને ॥ ૨૦ ॥

કર્મ શત્રુઓને જીતવાવાળા, અથવા જ્યારે ગર્ભમા હતા ત્યારે સર્વ અણુનમ રાજાગણો નમ્ર થઈ ગયા (ઝુકી ગયા) એ કારણથી યથાર્થ નામવાળા "શ્રી નમિનાથ" ભગવાનને વદના કરૂ છુ ॥ ૨૧ ॥

અશુભ અથવા ઉપદ્રવોને દૂર કરવાવાળા, અથવા જેનો જન્મ થતા જ એટલે જન્મ સમયે અરિષ્ટ પ્રસૂતિ ગૃહ (સુવાવડનુ ઘર)મા રહેલા તમામ માણુસોના શિર-મસ્તક નમી પડયા (ઝુકી ગયા) અથવા જેઓ સકલ સસારનુ અરિષ્ટ

१-'अरिष्ट सूतिकागृह'-मित्यमरः, 'अरिष्टं सूत्यागारेऽन्तचिह्ने तक्रे शुभेऽशुभे' इति हैम ।

देवमनुष्यपरिषदि विचित्र धर्मम्रुपदिशन्तमेतस्मिन् गर्भस्थेऽस्य जननी स्वप्ने दृष्टवती तद्योगात् कुन्थुस्तम् (१७)। 'अर' अर्यते=प्राप्यते मोक्षो यस्मात्सोऽरः, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भसमागतेऽस्य जननी स्वप्ने रत्नमयमर (चक्राङ्ग) दृष्टवती तद्योगादरस्तम् (१८)। 'मल्लिं' मल्लते=धारयति दुःखकूपे पततः प्राणिन इति मल्लिः, यद्वा गर्भावस्थेऽस्मिन् भगवत्येतज्जनन्याः सञ्जातो मल्लीकुसुमदामशय्यादोहदो देवेन पूरितस्तद्योगान्मल्लिस्तम्, नामैकदेशेन नाम्नो ग्रहणान्मल्लिस्वामिनमित्यर्थः, 'वंदे' वन्दे (१९)। 'मुणिसुव्वय' मन्यते मनुते वा परलोकास्तिकतामिति मुनिः, सु=शोभनानि व्रतानि यस्यासौ सुव्रतः, मुनि-

तथा अनेक देव मनुष्यो की विशाल परिषद में विचित्र धर्मोपदेश करते हुए षट्कायरक्षक मुनिवृन्द को देखा, ऐसे उन सगुण नामवाले श्री कुन्थुनाथ भगवान को ॥१७॥

मोक्ष प्राप्त कराने वाले, अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माताने स्वप्नमें रत्नमय पहिये के आरे देखे, उन गुणयुक्त नाम वाले श्री अरनाथ भगवान को ॥ १८ ॥

दुःखरूप कूएँ मे गिरते हुए प्राणियों की रक्षा करने वाले, अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता के मल्ली–मालती फूलमाला की शय्या के दोहद (दोहले) को देवताने पूरा किया, ऐसे गुणसम्पन्न नाम वाले श्री मल्लीनाथ भगवान को ॥१९॥

श्रेष्ठ चारित्र को पालने वाले, अथवा जिनके शासन काल

એવા છ કાયના રક્ષક મુનિવૃંદને જોયું, એવા સગુણ નામવાળા "શ્રી કુંથુનાથ" ભગવાનને ॥ ૧૭ ॥

મોક્ષ પ્રાપ્ત કરાવવાવાળા અથવા ગર્ભમાં આવતા જ જેની માતાએ સ્વપ્નમાં રત્નમય પૈડાનો આરો જોયો એવા ગુણયુક્ત નામવાળા 'શ્રી અરનાથ' ભગવાનને ॥ ૧૮ ॥

દુખરૂપ કુવામાં પડતા પ્રાણીઓની રક્ષા કરવાવાળા, અથવા ગર્ભમાં આવતા જ જેની માતાને મલ્લી–માલતી ફુલમાળાની શય્યાના દોહદ (દોહલા) ને દેવતાએ પૂર્ણ કર્યો એવા ગુણસંપન્ન નામવાળા "શ્રી મલ્લીનાથ" ભગવાનને ॥૧૯॥

શ્રેષ્ઠ ચારિત્રનું પાલન કરવાવાળા, અથવા જેના શાસન કાલમાં નિરતિચાર

श्चासौ सुव्रतश्च मुनिसुव्रतः, यद्वाऽस्य शासनकाले मुनयो निरतिचारेण शोभनव्रतशालिनो जाता इति कालिकादिसम्बन्धेन, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवत्येतज्जननी मुनिवत्सुव्रता जाता तद्योगान्मुनिसुव्रतस्तम् (२०)। 'नमिजिण' नमयति=तिरस्करोति कर्मशत्रूनिति नमिः, यद्वा गर्भमाप्तेऽस्मिन् भगवति, एतत्प्रभावैः सर्वे परनरपतयो नमितास्तद्योगान्नमिः, स चासौ जिनश्च नमिजिनस्तम् (२१)। 'वदामि' वन्दे 'रिट्ठनेमिं' अरिष्टम्=अशुभमुपद्रवं वा नमयति=अधःकरोतीति, जातमात्रः सन्नरिष्ट=¹सूतीगृह तात्स्थ्यात्सूतीगृहस्थितजनान् अनमयत्=नतशिर-

मे निरतिचार चारित्र पालनेवाले बहुत मुनि हुए, अथवा जब ये गर्भ में आये तब उनकी माता मुनिके समान सुव्रता हुई इस कारण 'मुनिसुव्रतनाथ' नाम वाले भगवान को ॥२०॥

कर्म शत्रुओं को जीतने वाले, या जब ये गर्भमें थे तो, अन्य सभी विमुख राजगण नम्र हो गये (झुक गये) अत एव यथार्थ नाम वाले श्री नमिजिन को मै वन्दना करता हूँ ॥२१॥

अशुभ तथा उपद्रवों को दूर करनेवाले, अथवा जिनके जन्म लेते ही उस समय अरिष्ट-प्रसूतिगृह (सौर-सुवावड का घर) में स्थित समस्त मनुष्यों के सिर झुक गये, या जो सारे ससार

ચારિત્ર પાલન કરનારા ઘણાજ મુનિ થયા, અથવા જ્યારે તે ગર્ભમા આવ્યા ત્યારે તેમની માતા મુનિના સમાન સુવ્રતા થઈ એ કારણથી "મુનિસુવ્રતનાથ" નામ વાળા ભગવાનને ॥ ૨૦ ॥

કર્મ શત્રુઓને જીતવાવાળા, અથવા જ્યારે ગર્ભમા હતા ત્યારે સર્વ અનુનમ્ર રાજગણો નમ્ર થઈ ગયા (ઝુકી ગયા) એ કારણથી યથાર્થ નામવાળા "શ્રી નમિનાથ" ભગવાનને વદના કરૂ છુ ॥ ૨૧ ॥

અશુભ અથવા ઉપદ્રવોને દૂર કરવાવાળા, અથવા જેનો જન્મ થતા જ એટલે જન્મ સમયે અરિષ્ટ પ્રસૂતિ ગૃહ (સુવાવડનુ ઘર)મા રહેલા તમામ માણુસોના શિર-મસ્તક નમી પડયા (ઝુકી ગયા) અથવા જેઓ સકલ સસારનુ અરિષ્ટ

१-'अरिष्ट सूतिकागृह'-मित्यमर०, 'अरिष्ट सूत्यागारेऽन्तचिह्ने तक्रे शुभेऽशुभे' इति हैम ।

स्फानकरोत् स्वतेजसेति, अरिष्ट='शुभ (कल्याणम्) अर्थाज्जगतो नयति=प्रापयतीति निरुक्तवृत्त्या वा अरिष्टनेमिः, यद्वाऽस्य गर्भस्थस्य माता स्वप्नेऽरिष्ट (रत्न) मयीं नेमिं=रथचक्रप्रान्तभागं दृष्टवती तद्योगादरिष्टनेमिस्तम् (२२)। 'पास' पश्यति लोकालोकस्वरूपमिति पार्श्वः, पृषोदरादित्वात्, भविजनविघ्नवल्लीसमुच्छेदार्थं पर्शुसमूहतुल्यत्वात्पार्श्वः, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भस्थे कदाचिद्रात्रौ निर्वाणे प्रदीपेऽस्य जननी राजपार्श्वे समायान्तं सर्पं गर्भज्योतिःप्रभावेणाऽऽलोक्य राजानं सचेतीकृतवती, राजा च प्रज्वाल्य प्रदीपं दृष्ट्वा च पार्श्वे समागतं सर्पं विस्मित्य गर्भप्रभावं निश्चिकायेत्यन्धकारेऽपि निजमातृकर्तृकपितृपार्श्वसमागतसर्पकर्मकदर्शनहेतुत्वात्पार्श्वस्तम् (२३)। 'तहा' 'तथा' वद्धमाणं च' वर्द्धते ज्ञाना

का अरिष्ट–कल्याण करने वाले, अथवा जब ये गर्भमें थे तो माताने स्वप्नमें पहिये की अरिष्ट–रत्नमयी–नेमि (पुठ) को देखा इस कारण जिनका नाम 'अरिष्टनेमि' पड़ा, ऐसे बाईसवें तीर्थङ्कर को ॥२२॥

लोकालोक के यथार्थ स्वरूपको जानने वाले, या भक्त जीवों की विघ्नलता को विनाश करने के लिए कुठार' के समान, अथवा जब ये गर्भ मे थे तब किसी रातमे दीपक के बुझ जाने पर इनकी माताने राजाके पार्श्व–पसवाडे के पास आते हुए सर्प को गर्भ के तेजसे देखकर राजाको सावधान किया, इस प्रकार 'पार्श्व' पद के सम्बधसे 'श्री पार्श्वनाथ' नामवाले भगवान को ॥२३॥ और—

ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढनेवाले) या अनन्त काल से

કલ્યાણ કરવાવાળા અથવા જ્યારે તેઓ ગર્ભમા હતા ત્યારે માતાએ સ્વપ્નમા પૈડાની અરિષ્ટ–રત્નમયી નેમિ (પૂઠને) જોઇ એ કારણથી જેનુ નામ "અરિષ્ટનેમિ, પડ્યુ, એવા બાવીસમા તીર્થંકરને ॥ ૨૨ ॥

લોકાલોકના યથાર્થ સ્વરૂપને જાણુવાવાળા, અથવા ભવ્ય જીવોની વિઘ્ન લતાનો વિનાશ કરવા માટે કુઠાર જેવા, અથવા જ્યારે તેઓ ગર્ભમા હતા ત્યારે કોઇ રાત્રિમા દીપક બુઝાઇ જતા તેમની માતાએ રાજાના પાર્શ્વ–પસવાડાની નજદીક આવતા સર્પને ગર્ભના તેજથી જોઇને રાજાને સાવધાન કરી દીધા એ કારણથી પાર્શ્વ પદના [illegible] "[illegible]ર્શ્વનાથ" નામવાળા ભગવાનને ॥ ૨૩ ॥

૧ વર્દ્ધમાન (વધવાવાળા) અથવા અનત કાલથી સસાર સમુ

[illegible]शुभे' इत्यमर ।

दिनेति, यद्वा, वर्द्धते=अन्तर्भावितण्यर्थत्वाद् वर्द्धयति भव्यानामनन्तकालतः पर्यटता ज्ञानादिगुणमिति, गर्भशय्यास्थितेऽस्मिन् भगवति ज्ञातकुल धनधान्यादिभिरवर्द्धतेति वा वर्द्धमानस्तम् (२४), चः=अप्यर्थकः, वर्द्धमानमपीत्यर्थः, पूर्वोक्तेन 'वदामि' इत्यनेनान्वय इत्युक्तमेव ।

अभिवन्द्योपसहरन्नाह–'एव' इत्यादि,

एवम्=उक्तप्रकारेण, 'मए' मया 'अभियुया' अभि=सर्वतो भावेन स्तुताः=[1]अभिष्टुताः नामनिर्देशपूर्वक यथाविधि स्तुतिविषयीकृता इत्यर्थः, 'विहूयरयमला' विशेषेण धुते विधूते, रजश्च मल च रजोमले, विधूते रजोमले यैस्ते विधूतरजोमला, तत्र रजः=बध्यमान ज्ञानावरणीयादिरूपमीर्यापथरूप वा कर्म, मल=पूर्ववद्धनिकाचित–साम्परायिकरूपम्, यद्वा रज इवाऽऽवारकत्वाद्रज =ज्ञानावरणीयादिकर्म तदेव मल रजोमल, विधूत=क्षालित रजोमल यैस्ते विधूतरजोमलाः । 'पहीणजरमरणा' – जीर्यन्ति=शिथिलीभवन्त्युत्थानादीनि

ससार समुद्रमें गोते खाते हुए प्राणियों के ज्ञानादि आत्मिक गुणों को बढानेवाले, अथवा जब ये गर्भमें आये तब ज्ञातकुल धन धान्य हिरण्य सुवर्णादिसे परिपूर्ण हुआ अतएव गुणनिष्पन्न नामवाले 'श्री वर्द्धमानस्वामी' को मैं वन्दना करता हूँ ॥ २४ ॥

गुणोत्कीर्त्तन करके उपसहार करते हैं—

इस प्रकार मुझसे अलग२ नामनिर्देशपूर्वक स्तुति किये गये, जो ज्ञानावरणीयादि बध्यमान कर्मोंका तथा निकाचित–साम्परायिकरूप पूर्वबद्ध कर्ममल का नाश करने वाले और चेष्टाविशेष रूप उत्थान,

द्रमा गोथा खाता प्राणीओना ज्ञानादिक आत्मिक गुणोने वधारनारा, अथवा ज्यारे तेओ गर्भमा आव्या त्यारे ज्ञातकुल धन धान्य हिरण्य–सुवर्णादिकथी परिपूर्ण थयु ओ कारणथी गुण–निष्पन्न–नामवाळा "श्री वर्द्धमान स्वामी" ने हु वदना करु छु ॥ २४ ॥

गुणोत्कीर्तन करीने उपसहार करे छे

आ प्रमाणे माराथी जूदा जूदा नामनिर्देशपूर्वक स्तुति करवामा आवेल, जेओ ज्ञानावरणीयादि बाधेला कर्मोना तथा निकाचित–साम्परायिक रूप पूर्वबद्ध कर्ममलनो

१–'अभिष्टुता.'–'उपसर्गात्सुनोती'ति षत्वे 'ष्टुना ष्टु'-रिति टुत्वम् ।

स्कानकरोत् स्वतेजसेति, अरिष्ट='शुभ (कल्याणम्) अर्थाज्जगतो नयति=प्रापयतीति निरुक्तवृत्त्या वा अरिष्टनेमि', यद्वाऽस्य गर्भस्थस्य माता स्वप्नेऽरिष्ट (रत्न) मयीं नेमिं=रथचक्रप्रान्तभाग दृष्टवती तद्योगादरिष्टनेमिस्तम् (२२)। 'पास' पश्यति लोकालोकस्वरूपमिति पार्श्वः, पृषोदरादित्वात्, भविजनविघ्नवल्लीसमुच्छेदार्थ पर्शुसमूहतुल्यत्वात्पार्श्व', यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भस्थे कदाचिद्रात्रौ निर्वाणे प्रदीपेऽस्य जननी राजपार्श्वे समायान्त सर्प गर्भज्योतिःप्रभावेणाऽऽलोक्य राजान सचेतीकृतवती, राजा च प्रज्वाल्य प्रदीप दृष्ट्वा च पार्श्वे समागत सर्पं विस्मित्य गर्भप्रभाव निश्चिकायेत्यन्धकारेऽपि निजमातृकर्तृकपितृपार्श्वसमागतसर्पकर्मकदर्शनहेतुत्वात्पार्श्वस्तम् (२३)। 'तहा' 'तथा' वद्धमाण च' वर्द्धते ज्ञाना

का अरिष्ट-कल्याण करने वाले, अथवा जब ये गर्भमें थे तो माताने स्वप्नमें पहिये की अरिष्ट-रत्नमयी-नेमि (पुठ) को देखा इस कारण जिनका नाम 'अरिष्टनेमि' पडा, ऐसे बाईसवें तीर्थङ्कर को ॥२२॥

लोकालोक के यथार्थ स्वरूपको जानने वाले, या भक्त जीवों की विघ्नलता को विनाश करने के लिए कुठार के समान, अथवा जब ये गर्भ मे थे तब किसी रातमे दीपक के बुझ जाने पर इनकी माताने राजाके पार्श्व-पसवाडे के पास आते हुए सर्प को गर्भ के तेजसे देखकर राजाको सावधान किया, इस प्रकार 'पार्श्व' पद के सम्बधसे 'श्री पार्श्वनाथ' नामवाले भगवान को ॥२३॥ और—

ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढनेवाले) या अनन्त काल से

કલ્યાણ કરવાવાળા અથવા જ્યારે તેઓ ગર્ભમા હતા ત્યારે માતાએ સ્વપ્નમા પૈડાની અરિષ્ટ-રત્નમયી નેમિ (પૂઠને) જોઇ એ કારણથી જેનુ નામ "અરિષ્ટનેમિ, પડ્યુ, એવા બાવીસમા તીર્થંકરને ॥ ૨૨ ॥

લોકાલોકના યથાર્થ સ્વરૂપને જાણવાવાળા, અથવા ભવ્ય જીવોની વિઘ્નલતાનો વિનાશ કરવા માટે કુઠાર જેવા, અથવા જ્યારે તેઓ ગર્ભમા હતા ત્યારે કોઇ રાત્રિમા દીપક બુઝાઇ જતા તેમની માતાએ રાજાના પાર્શ્વ-પસવાડાની નજદીક આવતા સર્પને ગર્ભના તેજથી જોઇને રાજાને સાવધાન કરી દીધા એ કારણથી પાર્શ્વ પદના સબધથી "શ્રી પાર્શ્વનાથ" નામવાળા ભગવાનને ॥ ૨૩ ॥

જ્ઞાનાદિ ગુણોથી વર્દ્ધમાન (વધવાવાળા) અથવા અનત કાલથી સસાર સમુ

१– 'अरिष्ट तु शुभाशुभे' इत्यमर ।

दिनेति, यद्वा, वर्द्धते=अन्तर्भावितण्यर्थत्वाद् वर्द्धयति भव्यानामनन्तकालतः पर्यटता ज्ञानादिगुणमिति, गर्भशय्यास्थितेऽस्मिन् भगवति ज्ञातकुल धनधान्यादिभिरवर्द्धतेति वा वर्द्धमानस्तम् (२४), चः=अप्यर्थकः, वर्द्धमानमपीत्यर्थः, पूर्वोक्तेन 'वदामि' इत्यनेनान्वय इत्युक्तमेव ।

अभिवन्द्योपसंहरन्नाह-'एव' इत्यादि,

एवम्=उक्तप्रकारेण, 'मए' मया 'अभिथुया' अभि=सर्वतो भावेन स्तुताः='अभिष्टुताः नामनिर्देशपूर्वक यथाविधि स्तुतिविषयीकृता इत्यर्थः, 'विहूयरयमला' विशेषेण धूते विधूते, रजश्च मल च रजोमले, विधूते रजोमले यैस्ते विधूतरजोमला', तत्र रजः=ब ध्यमान ज्ञानावरणीयादिरूपमीर्यापथरूप वा कर्म, मल=पूर्वबद्धनिकाचित-साम्परायिकरूपम्, यद्वा रज इवाऽऽवारकत्वाद्रज =ज्ञानावरणीयादिकर्म तदेव मल रजोमल, विधूत=क्षालित रजोमल यैस्ते विधूतरजोमलाः । 'पहीणजरमरणा' – जीर्यन्ति=शिथिलीभवन्त्युत्थानादीनि

ससार समुद्रमें गोते खाते हुए प्राणियों के ज्ञानादि आत्मिक गुणो को बढानेवाले, अथवा जब ये गर्भमें आये तब ज्ञातकुल धन धान्य ˜रण्य सुवर्णादिसे परिपूर्ण हुआ अतएव गुणनिष्पन्न नामवाले ' को मै वन्दना करता हूँ ॥ २४ ॥

करके उपसहार करते हैं—

अलग२ नामनिर्देशपूर्वक स्तुति किये गये, जो कर्मोंका तथा निकाचित-साम्परायिकरूप वाले और चेष्टाविशेष रूप उत्थान,

---

આત્મિક ગુણોને વધારનારા, અથવા જ્ઞાતકુલ ધન ધાન્ય હિરણ્ય– કારણથી ગુણ–નિષ્પન્ન–નામવાળા ॥ ૨૪ ॥

નિ કરવામા આવેલ, જેઓ પૂર્વબદ્ધ કર્મમલનો

'ष्टु'-रिति ढुत्वम् ।

स्फानकरोत् स्वतेजसेति, अरिष्ट='शुभ (कल्याणम्) अर्थाज्जगतो नयति=प्रापयतीति निरुक्तवृत्त्या वा अरिष्टनेमिः, यद्वाऽस्य गर्भस्थस्य माता स्वप्नेऽरिष्ट (रत्न) मयीं नेमिं=रथचक्रप्रान्तभागं दृष्टवती तद्योगादरिष्टनेमिस्तम् (२२)। 'पास' पश्यति लोकालोकस्वरूपमिति पार्श्वः, पृषोदरादित्वात्, भविजनविघ्नवल्लीसमुच्छेदार्थं पर्शुसमूहतुल्यत्वात्पार्श्वः, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भस्थे कदाचिद्रात्रौ निर्वाणे प्रदीपेऽस्य जननी राजपार्श्वे समायान्तं सर्पं गर्भज्योतिःप्रभावेणाऽऽलोक्य राजानं सचेतीकृतवती, राजा च प्रज्वाल्य प्रदीपं दृष्ट्वा च पार्श्वे समागतं सर्पं विस्मित्य गर्भप्रभावं निश्चिकायेत्यन्धकारेऽपि निजमातृकर्तृकपितृपार्श्वसमागतसर्पकर्मकदर्शनहेतुत्वात्पार्श्वस्तम् (२३)। 'वद्ध' 'तथा' वद्धमाणं च' वर्द्धते ज्ञाना

का अरिष्ट–कल्याण करने वाले, अथवा जब ये गर्भमें थे तो माताने स्वप्नमें पहिये की अरिष्ट–रत्नमयी–नेमि (पुठ) को देखा इस कारण जिनका नाम 'अरिष्टनेमि' पडा, ऐसे बाईसवें तीर्थङ्कर को ॥२२॥

लोकालोक के यथार्थ स्वरूपको जानने वाले, या भक्त जीवों की विघ्नलता को विनाश करने के लिए कुठार के समान, अथवा जब ये गर्भ मे थे तब किसी रातमे दीपक के बुझ जाने पर इनकी माताने राजाके पार्श्व–पसवाडे के पास आते हुए सर्प को गर्भ के तेजसे देखकर राजाको सावधान किया, इस प्रकार 'पार्श्व' पद के सम्बधसे 'श्री पार्श्वनाथ' नामवाले भगवान को ॥२३॥ और—

ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढनेवाले) या अनन्त काल से

કલ્યાણ કરવાવાળા અથવા જ્યારે તેઓ ગર્ભમા હતા ત્યારે માતાએ સ્વપ્નમા પૈડાની અરિષ્ટ–રત્નમયી નેમિ (પૂઠને) જોઇ એ કારણથી જેનુ નામ "અરિષ્ટનેમિ, પડ્યુ, એવા બાવીસમા તીર્થંકરને ॥ ૨૨ ॥

લોકાલોકના યથાર્થ સ્વરૂપને જાણવાવાળા, અથવા ભવ્ય જીવોની વિઘ્ન લતાનો વિનાશ કરવા માટે કુઠાર જેવા, અથવા જ્યારે તેઓ ગર્ભમા હતા ત્યારે કોઇ રાત્રિમા દીપક બુઝાઇ જતા તેમની માતાએ રાજાના પાર્શ્વ–પસવાડાની નજદીક આવતા સર્પને ગર્ભના તેજથી જોઈને રાજાને સાવધાન કરી દીધા એ કારણથી પાર્શ્વ પદના સબધથી "શ્રી પાર્શ્વનાથ" નામવાળા ભગવાનને ॥ ૨૩ ॥

જ્ઞાનાદિ ગુણોથી વર્દ્ધમાન (વધવાવાળા) અથવા અનત કાલથી સસાર સમુ

१– 'अरिष्टं तु शुभाशुभे' इत्यमरः।

स्तवकरणात्सम्यक्स्तुताः, महिताः=महद्भिर्ज्ञानादिगुणैः कृत्वा सर्वैरादृताः, यद्वा महिताः=पूजिताः-सादर प्रशसिता इन्द्रादिभिरित्यर्थ, कीर्त्तिताः=मनसा गुण-चिन्तनरूपेण, वन्दिताः=वचसा स्तुताः-वदिधातोः स्तुतिपरत्वात्, महिताः=कायेन इन्द्रादिभिः शरीरावनमनकरणेन नमस्कृताः इति हृदयम्,

'पुष्पादिभिः पूजिताः' इति केषाश्चिद्व्याख्यानमशोभनम् सावद्यपूजाया हिंसाप्रधानत्वेन वीतरागाणा तदसभवात्तस्याः सूत्रेऽनभिधानाच्च, 'मह पूजायाम्' इत्यत्र पूजायामित्यविशिष्यैवोक्तमस्ति, ततश्च महितः=पूजित इत्यायाति, नैतावता

प्राणियों से सम्मानित, अथवा इन्द्रादिकों से सादर प्रशसित जो ये रागद्वेष आदि कलङ्क से रहित होने के कारण तीनों लोक में उत्तम सिद्ध अर्थात् कृतकृत्य हैं वे मुझे आरोग्य-सिद्धस्वरूप की प्राप्ति के लिये जिनधर्मकी रुचिरूप बोधिका लाभ और उत्तमोत्तम समाधि देवे।

किसीने यहा 'कित्तिय-वदिय-महिया' इस पदमें रहे हुए 'महित' का अर्थ 'पुष्प आदि से पूजित' किया है किन्तु वह सर्वथा असगत है, क्यों कि पुष्पादि सावद्य द्रव्यों से की हुई पूजा हिंसाप्रधान होने के कारण ऐसी पूजा वीतरागों की नही हो सकती और शास्त्रमे कहीं ऐसा उल्लेख भी नहीं है। 'मह पूजायाम्'-इस धातु से 'महित' बनता है जिसका अर्थ सामान्यत. 'पूजित' यही हो सकता है, उससे 'पुष्पादिपूजित' अर्थ करना केवल

सन्मानित, अथवा ઇन्द्रादिકोથી સાદર પ્રશસા પામેલા જે એ રાગ-દ્વેષ આદિ કલકથી રહિત હોવાના કારણે ત્રણેય લોકમા ઉત્તમ સિદ્ધ અર્થાત્ કૃતકૃત્ય છે તે મને આરોગ્ય - સિદ્ધસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ માટે જિનધર્મની રુચિ-રૂપ બોધિનો લાભ અને ઉત્તમોત્તમ સમાધિ આપો ?

કોઇએ આ સ્થળે 'कित्तिय-वदिय-महिया' આ પદમા રહેલા 'महित' નો અર્થ 'પુષ્પ આદિથી પૂજિત' કરેલો છે, પરતુ એ અથ સર્વથા અસગત છે કારણ કે પુષ્પાદિ સાવદ્ય દ્રવ્યોથી કરેલી પૂજા હિંસાપ્રધાન હોવાથી તે પૂજા વીતરાગોની હોઇ શકે નહિ તેમજ શાસ્ત્રોમા એવો ઉલ્લેખ પણ મળતો નથી, 'मह पूजाया' આ ધાતુથી 'महित' બને છે જેનો અર્થ સામાન્યત 'પૂજિત' થઇ શકે છે, તેનાથી 'પુષ્પાદિપૂજિત' અર્થ કરવો તે કેવલ કલ્પનામાત્ર છે,

(अत्राऽऽदिपदेन कर्म-बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रमा गृह्यन्ते, तत्र उत्थान=चेष्टाविशेषः, कर्म=भ्रमणादिक्रिया, बल=शरीरसामर्थ्यम्, वीर्य=जीवप्रभवं, पुरुषकारः = अभिमानविशेषः, पराक्रमः = स्वामीष्टकर्मसाधनशक्तिविशेषः) यया सा, यद्वा जरण=वयोहानिर्जरा, मरण=प्राणविनिर्गमापरपर्याय आयुष्यनाशः, जरा च मरणं च जरामरणे, प्रहीणे=प्रणष्टे जरामरणे येषां ते तथाभूताः, 'चउवीसंपि' चतुर्विंशतिरपि, अपिशब्दः पूर्ववदवधारणार्थो महाविदेहस्थभगवद्ग्रहणार्थश्च । 'जिणवरा' जिनेषु=अवधिज्ञान्यादिषु वराः=श्रेष्ठाः। सामान्यकेवलिनोऽपि जिनवराः सम्भवन्ति तद्वारणायाह-'तित्थयरा' तीर्थकराः। 'मे' मम उपरीत्यस्याध्याहारः। 'पसीयंतु' प्रसीदन्तु=प्रसन्ना भवन्तु ॥५॥ 'कित्तिय-वंदिय-महिया' कीर्तिताश्च वन्दिताश्च महिताश्चेति द्वन्द्वः, तत्र कीर्तिताः=तत्तन्नामनिर्देशेनैकशः कथिताः, वन्दिताः=वाङ्मनःकाययोगैर्गुणस

भ्रमणादिरूप कर्म, शरीरसामर्थ्यरूप बल, जीव सम्बन्धी वीर्य, 'मैं इस कार्य को सिद्ध करूँगा' इस प्रकार अभिमान विशेषरूप पुरुषाकार, तथा अभीष्ट सिद्ध करने का शक्तिविशेषरूप पराक्रम, इन सबका नाश करनेवाली वृद्धावस्थारूप जरा और मरण का विनाश करनेवाले, केवलियों में श्रेष्ठ उपर्युक्त चौवीस तीर्थंकर हैं वे, तथा अपि शब्द से महाविदेह क्षेत्रमें रहे हुए तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हों।

'कित्तिय' पृथक् २ नाम से कीर्त्तित, 'वंदिय'-मन वचन काय से स्तुत, 'महिय'-ज्ञानातिशय आदि गुणों के कारण सब

નાશ કરવાવાળા અને ચેષ્ટાવિશેષરૂપ ઉત્થાન, ભ્રમણાદિ રૂપ કર્મ, શરીર સામર્થ્યરૂપ બલ, જીવ સમ્બન્ધી વીર્ય, "હુ આ કાર્યને સિદ્ધ કરીશ" એ પ્રમાણે અભિમાન વિશેષરૂપ પુરૂષાકાર, તથા અભીષ્ટ સિદ્ધ કરવાની શકિતવિશેષરૂપ પરાક્રમ, એ સર્વનો નાશ કરવાવાલી વૃદ્ધાવસ્થારૂપ જરા અને મરણનો નાશ કરવાવાળા, કેવલીઓમા શ્રેષ્ઠ ઉપર કહેલા ચોવીસ તીર્થંકર છે તે, તથા 'अपि' શબ્દથી મહાવિદેહ ક્ષેત્રમા રહેલા તીર્થંકરો મારા ઉપર પ્રસન્ન થાઓ ?

'कित्तिय' જૂદા-જૂદા નામથી કીર્ત્તિત, 'वंदिय' મન, વચન અને કાયાથી સ્તુતિ કરાએલા, 'महिय' જ્ઞાનાતિશય આદિ ગુણોના કારણે સર્વ પ્રાણીઓથી

बुद्धा' 'महाणुभावेसु महापरक्कमेसु' (सू. कृ. २ अ. २) 'सविकारात्प्रधानात्तु महत्तत्त्वं प्रजायते। महानिति यतः ख्यातिर्लोकाना जायते सदा ॥१॥ अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्द्धनः॥' (म. पु.)। 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि' (साख्यसूत्र)। 'प्रकृतेर्महाँस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः (साख्यतत्त्वकौमुदी)। 'द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्वं समवायसम्बन्धेन कारणम्' (न्या सि मु.) इति दर्शनान्तराणि। 'शूद्रःस्यात्पादजो दासो ग्रामकूटो महत्तरः।' (त्रि शे.), 'रणपण्डितोऽग्र्यविबुधारिपुरे कलह स राममहित कृतवान्।' (भट्टिका० १० स), 'विशङ्कट पृथु बृहद्विशाल पृथुल महत्' (अ को.), इत्यादीनि च न सङ्गच्छन्ते। '[1]जे ए' ये एते, 'लोगस्स' [2]लोकस्य, निर्द्धारणे षष्ठी तेन लोकत्रयस्य मध्य इत्यर्थः। 'उत्तमा' उत्तमाः= रागद्वेषकर्मपङ्ककलङ्कसवन्धराहित्यात् श्रेष्ठाः। 'सिद्धा' सिद्धाः कृतकृत्यत्वाद्दग्धभवबीजाङ्कुरत्वाच्च। 'आरुग्गबोहिलाभ' रुजति=पीडयतीति रोगो=जन्मजरामरणादिरूपोऽत्र, अविद्यमानो रोगो येषा ते—अरोगाः=सिद्धास्तेषा भाव आरोग्य=सिद्धत्वम् बोधि'=निखिलभवबन्धनप्रतिकूला परमार्थावबोधहेतुभूता जिनप्रणीतप्रवचनरुचिस्तस्या लाभो बोधिलाभः, आरोग्याय=सिद्धस्वरूपाय बोधिलाभः=आरोग्यबोधिलाभस्तम्, यद्वा—आरोग्य=निरुपद्रवम्=उपद्रवाभावस्तेन बोधिलाभस्तम्। 'आरोग्याय' इत्यत्र च फलेभ्यो यातीत्यादिवत् 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन ' (२।३।१४) इति चतुर्थी, तेन सिद्धत्व प्राप्तु बोधिलाभ इति निष्कर्षः। अय च बोधिलाभोऽनिदानात्मक एव मोक्षप्राप्तिहेतुर्न तु

आता है 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कहीं नहीं लिखा है, अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि से सादर प्रशंसित।

'निदान (नियाणा) रहित ही बोधिलाभ मोक्ष का कारण

त्या 'पुष्पादिथी पूजन' રૂપ અર્થ કરેલા નથી એટલા માટે નિર્વિવાદ સિદ્ધ થયુ કે 'महित' અર્થાત્ જ્ઞાનાતિશય આદિ ગુણોથી સન્માનિત અથવા ઇન્દ્રાદિથી સાદર પ્રશંસા પામેલા

'निदान' (નિયાણા) રહિત જ બોધિલાભ મોક્ષનુ કારણ છે એ વાત સમ

१–'जे ए'–(ये एते) अत्राऽऽर्षत्वादेकारलोपः।
२– लोकस्य–आर्षत्वादेकवचनम् 'अचोऽन्त्यादि टी'–त्यादिवत्।

पुष्पादिभिरेव पूजनमिति शक्यते वक्तु, तथा सति महच्छब्दस्यापि तथात्वापत्तेः। न चास्तु का नो हानिरिति वाच्यम्, एव सति 'महाबाहुर्महाशयः' इत्यादावपि 'पुष्पादिपूजितवाहुमान्' 'पुष्पादिपूजिताऽऽशयवान्' इत्यसङ्गतार्थापत्तेः, पूजार्थकमहधातुनिष्पन्नमहच्छब्दस्य तत्र तत्रापि सत्त्वात्, न च [1]विनिगमनाविरहात्पुष्पादिपूजनमप्यर्थः स्यादित्युट्टङ्कनीय, वीतरागाणा सावद्यपूजाऽनौचित्यरूपाया विनिगमनाया अनुपदमुक्तत्वात्, किञ्चैव भवदाग्रहे 'महामोह पकुव्वई' (दशा० स्क) 'महावाए व वायते' (दशवै०) 'महाकुमिण पासित्ताण पडि-

कल्पनामात्र है, क्यों कि ऐसा माननेसे जो जो शब्द मह धातु से बनते है उन सब जगहों में पूर्वपक्षी के कथनानुसार 'पुष्पादि से पूजन' रूप अर्थ मान लेने पर 'महाबाहु, महाशय' आदि शब्दों के भी 'पुष्पादि से पूजित भुजावाले' 'पुष्पादि से पूजित आशयवाले' आदि अनिष्ट अर्थ होने लगेंगे। यदि कहें कि–'किसी अर्थ विशेष का निश्चय न रहने के कारण 'मह धातु' के 'विशाल' 'उदार' आदि अर्थ की तरह' पुष्पादिपूजनरूप' भी अर्थ ले सकते हैं तो इसका उत्तर पहले ही दे चुके हैं कि–'वीतरागों के सावद्य पूजन का न होना ही पुष्पादिपूजनरूप अर्थके न होने मे नियामक है, और ऊपर लिखी हुई संस्कृत टीका में दिखलाये हुए महामोह०' आदि स्थलों में तथा अन्यत्र भी जहा कही 'मह' धातु का प्रयोग

કેમકે એ પ્રમાણે માનવાથી જે શબ્દ मह ધાતુથી બને છે તે સર્વ સ્થળે પૂર્વપક્ષીના કહેવા પ્રમાણે 'પુષ્પાદિથી પૂજન' રૂપ અર્થ માની લેવાથી 'મહાબાહુ, મહાશય' આદિ શબ્દોનો પણ 'પુષ્પાદિથી પૂજિત ભુજાવાળા,' 'પુષ્પાદિથી પૂજિત આશયવાળા' વગેરે અનિષ્ટ અર્થ થવા મડશે જો કહેશો કે 'કોઇ અર્થ વિશેષનો નિશ્ચય નહિ રહેવાના કારણે 'मह' ધાતુનો 'વિશાલ, ઉદાર' આદિ અર્થ પ્રમાણે 'પુષ્પાદિ પૂજનરૂપ' પણ અર્થ લઇ શકાય છે તો તેનો ઉત્તર પ્રથમજ આપી ચૂકયા છીએ કે 'વીતરાગ ને સાવદ્ય પૂજન ના થવુજ પુષ્પાદિપૂજનરૂપ અર્થ નહિ હોઇ શકવા માટે નિયામક છે અને ઉપર લખેલી સસ્કૃત ટીકામા બતવેલ 'महामोह' આદિ સ્થળોમા તથા બીજા સ્થળે પણ જે ઠેકાણે 'मह' ધાતુનો પ્રયોગ આવે છે

[1]–एकतरपक्षपातिनी युक्तिर्विनिगमना तस्या विरहोऽभावस्तस्मात्।

बुद्धा' 'महाणुभावेसु महापरक्कमेसु' (सू. कृ. २ अ. २) 'सत्त्विकारात्मधानात्तु महत्तत्त्व प्रजायते। महानिति यतः ख्यातिर्लोकाना जायते सदा ॥१॥ अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्द्धनः॥' (म. पु.)। 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि' (साख्यसूत्र)। 'प्रकृतेर्महाँस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः (साख्यतत्त्वकौमुदी)। 'द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्व समवायसम्बन्धेन कारणम्' (न्या सि मु) इति दर्शनान्तराणि। 'शूद्रःस्यात्पादजो दासो ग्रामकूटो महत्तरः।' (त्रि शे), 'रणपण्डितोऽग्र्यत्रिबुधारिपुरे कलह स राममहित कृतवान्।' (भट्टिका० १० स), 'विशङ्कट पृथु बृहद्विशाल पृथुल महत्' (अ को), इत्यादीनि च न सङ्गच्छन्ते। '[1]जे ए' ये एते, 'लोगस्स' [2]लोकस्य, निर्द्धारणे षष्ठी तेन लोकत्रयस्य मध्य इत्यर्थः। 'उत्तमा' उत्तमाः=रागद्वेषकर्मपङ्ककलङ्कसवन्धराहित्यात् श्रेष्ठाः। 'सिद्धा' सिद्धा' कृतकृत्यत्वाद्दग्धभवबीजाङ्कुरत्वाच। 'आरुग्गबोहिलाभ' रुजति=पीडयतीति रोगो=जन्मजरामरणादिरूपोऽत्र, अविद्यमानो रोगो येषा ते—अरोगाः=सिद्धास्तेषा भाव आरोग्य=सिद्धत्वम् बोधि=निखिलभवबन्धनप्रतिकूला परमार्थावबोधहेतुभूता जिनप्रणीतप्रवचनरुचिस्तस्या लाभो बोधिलाभः, आरोग्याय=सिद्धस्वरूपाय बोधिलाभः=आरोग्यबोधिलाभस्तम्, यद्वा—आरोग्य=निरुपद्रवम्=उपद्रवाभावस्तेन बोधिलाभस्तम्। 'आरोग्याय' इत्यत्र च फलेभ्यो यातीत्यादिवत् 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' (२।३।१४) इति चतुर्थी, तेन सिद्धत्व प्राप्तु बोधिलाभ इति निष्कर्षः। अय च बोधिलाभोऽनिदानात्मक एव मोक्षप्राप्तिहेतुर्न तु

आता है 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कहीं नहीं लिखा है, अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि से सादर प्रशसित।

'निदान (नियाणा) रहित ही बोधिलाभ मोक्ष का कारण

त्या 'पुष्पादिथी पूजन' रूप अर्थ करेलो नथी એટલા માટે નિર્વિવાદ સિદ્ધ થયુ કે 'महित' અર્થાત્ જ્ઞાનાતિશય આદિ ગુણોથી સન્માનિત અથવા ઇન્દ્રાદિથી સાદર પ્રશસા પામેલા

'निदान' (નિયાણા) રહિત જ બોધિલાભ મોક્ષનુ કારણ છે એ વાત સમ

1–'जे ए'–(ये एते) अत्राऽऽर्षत्वादेकारलोपः।
2– लोकस्य–आर्षत्वादेकवचनम् 'अचोऽन्त्यादि टी'–त्यादिवत्।

पुष्पादिभिरेव पूजनमिति शक्यते वक्तु, तथा सति महच्छब्दस्यापि तथात्वापत्तेः। न चास्तु का नो हानिरिति वाच्यम्, एवं सति 'महाबाहुर्महाशयः' इत्यादावपि 'पुष्पादिपूजितबाहुमान्' 'पुष्पादिपूजिताऽऽशयवान्' इत्यसङ्गतार्थापत्तेः, पूजार्थकमहधातुनिष्पन्नमहच्छब्दस्य तत्र तत्रापि सत्त्वात्, न च [1]विनिगमनाविरहात्पुष्पादिपूजनमप्यर्थः स्यादित्युट्टङ्कनीय, वीतरागाणा सावद्यपूजाऽनौचित्यरूपाया विनिगमनाया अनुपदमुक्तत्वात्, किञ्चैव भवदाग्रहे 'महामोह पकुव्वई' (दशा० स्क) 'महावाए व वायते' (दशवै०) 'महासुमिण पासित्ताण पडि-

कल्पनामात्र है, क्यों कि ऐसा माननेसे जो जो शब्द मह धातु से बनते हैं उन सब जगहों में पूर्वपक्षी के कथनानुसार 'पुष्पादि से पूजन' रूप अर्थ मान लेने पर 'महाबाहु, महाशय' आदि शब्दों के भी 'पुष्पादि से पूजित भुजावाले' 'पुष्पादि से पूजित आशय वाले' आदि अनिष्ट अर्थ होने लगेंगे। यदि कहें कि-'किसी अर्थ विशेष का निश्चय न रहने के कारण 'मह धातु' के 'विशाल' 'उदार' आदि अर्थ की तरह' पुष्पादिपूजनरूप' भी अर्थ ले सकते हैं तो इसका उत्तर पहले ही दे चुके हैं कि-'वीतरागों के सावद्य पूजन का न होना ही पुष्पादिपूजनरूप अर्थके न होने में नियामक है, और ऊपर लिखी हुई सस्कृत टीका में दिखलाये हुए महामोह०' आदि स्थलों में तथा अन्यत्र भी जहा कही 'मह' धातु का प्रयोग

કેમકે એ પ્રમાણે માનવાથી જે શબ્દ मह ધાતુથી બને છે તે સર્વ સ્થળે પૂર્વપક્ષીના કહેવા પ્રમાણે 'પુષ્પાદિથી પૂજન' રૂપ અર્થ માની લેવાથી 'મહાબાહુ, મહાશય' આદિ શબ્દોનો પણ 'પુષ્પાદિથી પૂજિત ભુજાવાળા,' 'પુષ્પાદિથી પૂજિત આશયવાળા' વગેરે અનિષ્ટ અર્થ થવા મડશે જો કહેશો કે 'કોઇ અર્થ વિશેષનો નિશ્ચય નહિ રહેવાના કારણે 'मह' ધાતુનો 'વિશાલ, ઉદાર' આદિ અર્થ પ્રમાણે 'પુષ્પાદિ પૂજનરૂપ' પણ અર્થ લઇ શકાય છે તો તેનો ઉત્તર પ્રથમજ આપી ચૂકયા છીએ કે 'વીતરાગ ને સાવદ્ય પૂજન ના થવુંજ પુષ્પાદિપૂજનરૂપ અર્થ નહિ હોઇ શકવા માટે નિયામક છે અને ઉપર લખેલી સસ્કૃત ટીકામા બતાવેલ 'महामोह' આદિ સ્થળોમા તથા બીજા સ્થળે પણ જે ઠેકાણે 'मह' ધાતુનો પ્રયોગ આવે છે

१-एकतरपक्षपातिनी युक्तिर्विनिगमना तस्या विरहोऽभावस्तस्मात्।

बुद्धा' 'महाणुभावेसु महापरक्कमेसु' (सू. कृ. २ अ. ७) 'सविकारात्प्रधा-नात्तु महत्तत्त्वं प्रजायते । महानिति यतः ख्यातिर्लोकानां जायते सदा ॥१॥ अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्द्धनः॥' (म पु.) । 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्का-रोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि' (सांख्यसूत्र) । 'प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्ग-णश्च षोडशकः (सांख्यतत्त्वकौमुदी) । 'द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्वं समवायसम्बन्धेन कारणम्' (न्या सि मु.) इति दर्शनान्तराणि । 'शूद्रः स्यात्पादजो दासो ग्रामकूटो महत्तरः ।' (त्रि शे.), 'रणपण्डितोऽग्र्यविबुधारिपुरे कलहं स राम-महितं कृतवान् ।' (भट्टिका० १० स), 'विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्' (अ को.), इत्यादीनि च न सङ्गच्छन्ते । '[1]जे ए' ये एते, 'लोगस्स' [2]लोकस्य, निर्द्धारणे षष्ठी तेन लोकत्रयस्य मध्य इत्यर्थः । 'उत्तमा' उत्तमाः= रागद्वेषकर्मपङ्ककलङ्कसम्पर्कराहित्यात् श्रेष्ठाः । 'सिद्धा' सिद्धाः कृतकृत्यत्वाद्दग्ध-भवबीजाङ्कुरत्वाच्च । 'आरुग्गबोहिलाभं' रुजति=पीडयतीति रोगो=जन्मजरा-मरणादिरूपोऽत्र, अविद्यमानो रोगो येषां ते–अरोगाः=सिद्धास्तेषां भाव आरो-ग्यं=सिद्धत्वम् 'बोधि'=निखिलभवबन्धनप्रतिकूला परमार्थावबोधहेतुभूता जिनप्र-णीतप्रवचनरुचिस्तस्या लाभो बोधिलाभः, आरोग्याय=सिद्धत्वाय बोधि-लाभः=आरोग्यबोधिलाभस्तम्, यद्वा–आरोग्यं=निरुपद्रवम्=उपद्रवाभावं तत्र बोधिलाभस्तम् । 'आरोग्याय' इत्यत्र च फलेभ्यो यातीत्यादिवत् 'क्रियार्थो-पपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' (२ । ३ । १४) इति चतुर्थी; तेन सिद्धत्वं प्राप्तुं बोधिलाभ इति निष्कर्षः । अयं च बोधिलाभोऽनिदानात्मक एव [illegible]

आता है 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कहीं नहीं लिया है, अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि से सादर प्रशंसित ।

'निदान (नियाणा) रहित ही बोधिलाभ मोक्ष का कारण

ત્યાં 'પુષ્પાદિથી પૂજન' રૂપ અર્થ કરેલો નથી તેથી એ વાત નિર્વિવાદ સિદ્ધ થયું કે 'મહિત' અર્થાત્ જ્ઞાનાતિશય આદિ ગુણોથી સન્માનિત અથવા ઇન્દ્રાદિથી સાદર પ્રશંસા પામેલા

'निदान' (નિયાણા) રહિત જ બોધિલાભ મોક્ષનું કારણ છે એ વાત સમ

१–'जे ए'–(ये एते) अत्राऽऽर्षत्वादेकारलोप ।
२– लोकस्य–आर्षत्वादेकवचनम् 'अतोऽन्त्यादि टी'–त्यादिवत् ।

पुष्पादिभिरेव पूजनमिति शक्यते वक्तु, तथा सति महच्छब्दस्यापि तथात्वापत्तेः। न चास्तु का नो हानिरिति वाच्यम्, एव सति 'महाबाहुर्महाशयः' इत्यादावपि 'पुष्पादिपूजितबाहुमान्' 'पुष्पादिपूजिताऽऽशयवान्' इत्यसङ्गतार्थापत्तेः, पूजार्थकमहधातुनिष्पन्नमहच्छब्दस्य तत्र तत्रापि सत्त्वात्, न च [1]विनिगमनाविरहात्पुष्पादिपूजनमप्यर्थः स्यादित्युट्टङ्कनीय, वीतरागाणा सावद्यपूजाऽनौचित्यरूपाया विनिगमनाया अनुपदमुक्तत्वात्, किञ्चैव भवदाग्रहे 'महामोह पकुव्वई' (दशा० स्क) 'महावाए व वायते' (दशवै०) 'महामुणिण पासित्ताण पडि-

कल्पनामात्र है, क्यों कि ऐसा माननेसे जो जो शब्द मह धातु से बनते हैं उन सब जगहों में पूर्वपक्षी के कथनानुसार 'पुष्पादि से पूजन' रूप अर्थ मान लेने पर 'महाबाहु, महाशय' आदि शब्दों के भी 'पुष्पादि से पूजित भुजावाले' 'पुष्पादि से पूजित आशय वाले' आदि अनिष्ट अर्थ होने लगेंगे। यदि कहें कि–'किसी अर्थ विशेष का निश्चय न रहने के कारण 'मह धातु' के 'विशाल' 'उदार' आदि अर्थ की तरह' पुष्पादिपूजनरूप' भी अर्थ ले सकते हैं तो इसका उत्तर पहले ही दे चुके हैं कि–'वीतरागों के सावद्य पूजन का न होना ही पुष्पादिपूजनरूप अर्थके न होने मे नियामक है, और ऊपर लिखी हुई संस्कृत टीका में दिखलाये हुए महामोह०' आदि स्थलों में तथा अन्यत्र भी जहा कहीं 'मह' धातु का प्रयोग

કેમકે એ પ્રમાણે માનવાથી જે શબ્દ मह ધાતુથી બને છે તે સર્વ સ્થળે પૂર્વપક્ષીના કહેવા પ્રમાણે 'પુષ્પાદિથી પૂજન' રૂપ અર્થ માની લેવાથી 'મહાબાહુ, મહાશય' આદિ શબ્દોનો પણ 'પુષ્પાદિથી પૂજિત ભુજાવાળા,' 'પુષ્પાદિથી પૂજિત આશયવાળા' વગેરે અનિષ્ટ અર્થ થવા માંડશે જો કહેશો કે 'કોઇ અર્થ વિશેષનો નિશ્ચય નહિ રહેવાના કારણે 'मह' ધાતુનો 'વિશાલ, ઉદાર' આદિ અર્થ પ્રમાણે 'પુષ્પાદિ પૂજનરૂપ' પણ અર્થ લઇ શકાય છે તો તેનો ઉત્તર પ્રથમજ આપી ચૂકયા છીએ કે 'વીતરાગ ને સાવદ્ય પૂજન ન થવુંજ પુષ્પાદિપૂજનરૂપ અર્થ નહિ હોઇ શકવા માટે નિયામક છે અને ઉપર લખેલી સંસ્કૃત ટીકામાં બતાવેલ 'महामोह' આદિ સ્થળોમાં તથા બીજા સ્થળે પણ જે ઠેકાણે 'मह' ધાતુનો પ્રયોગ આવે છે

१–एकतरपक्षपातिनी युक्तिर्विनिगमना तस्या विरहोऽभावस्तस्मात्।

'उत्तम' उत्तम=सर्वोत्कृष्टम्, एतेन जघन्यमध्यमयोर्व्यवच्छेदः। 'दिंतु' ददतु=वितरन्त्वित्यर्थः। '[3]चंदेसु निम्मलयरा' क्षालिताखिलकर्ममलत्वाचन्द्रेभ्यो निर्मलतमाः=चन्द्रापेक्षयाऽप्यतिशयितनैर्मल्यभाज इति भावः। '[3]आइच्चेसु अहिय पयासयरा' मिथ्यात्वादितिमिरविनाशकात्युत्कृष्टकेवलाऽऽलोकेनाखिललोकालोकप्रकाशकत्वेनाऽऽदित्येभ्योऽप्यधिक प्रकाशकरा'। 'सागरवरगभीरा' सागराः=समुद्रास्तेषु वर'=श्रेष्ठ' सागरवरः=स्वयम्भूरमणसमुद्रस्तद्वद्गम्भीराः=परीषहादिसहनशीलत्वात्प्रशान्ततमाः, 'सिद्धा' सिद्धाः=साधिताखिलाभीप्सिताः, 'सिद्धिं' सिद्धिं=निर्वृत्तिपदोपलब्धिं 'मम' मह्य 'दिसतु' दिशन्तु–ददत्वित्यर्थः।

यद्यपि सिद्धाना वीतरागत्वेनाऽऽरोग्यबोधिलाभादिदायकत्व न सघटते तथापि याचन्या भाषया भक्त्युद्रेकादेवमुच्यते इति न काऽपि क्षतिः।

से जघन्य और मध्यम को हटाने के लिये 'उत्तम' पद दिया है॥

सकल कर्ममलों के हट जाने के कारण चन्द्रमासे भी अत्यन्त निर्मल, केवलज्ञानरूपी आलोक (प्रकाश) से सपूर्ण लोकालोक के प्रकाशक होने के कारण सूर्य से भी अधिक तेजवाले, तथा अनेक अनुकूल प्रतिकूल परीषह–उपसर्ग के सहनेवाले होने से स्वयम्भूरमण समुद्र के समान सुगम्भीर सिद्ध भगवान मुझे सिद्धि (मोक्ष) देवें॥ ७॥

सिद्ध भगवान वीतराग हैं अतएव यद्यपि किसीको आरोग्य बोधिलाभ आदि दे नहीं सकते तो भी भव्यों की उत्कृष्ट श्रद्धा

છે, તેમાથી જઘન્ય અને મધ્યમને હઠાવવા માટે 'उत्तम' પદ આપેલુ છે

સકલ કર્મમલ દૂર થઈ જવાના કારણે ચન્દ્રથી પણ અત્યન્ત નિર્મલ, કેવલજ્ઞાનરૂપી આલોક-(પ્રકાશ)થી સપૂર્ણ લોકાલોકના પ્રકાશક હોવાના કારણે સૂર્યથી પણ અધિક તેજવાળા, તથા અનેક અનુકૂળ પ્રતિકૂળ પરીષહો ઉપસર્ગોના સહન કરવાવાળા હોવાથી સ્વયભૂરમણ સમુદ્ર॥ સમાન સુગભીર સિદ્ધ ભગવાન મને સિદ્ધિ (મોક્ષ) આપો ॥૭॥

સિદ્ધ ભગવાન વીતરાગ છે એ કારણથી જો કે કોઈને આરોગ્ય બોધિલાભ આદિ આપી શકતા નથી તો પણ ભવ્ય જીવોની ઉત્કૃષ્ટ શ્રદ્ધાથી આ પ્રકારની

३–'चंदेसु' 'आइच्चेसु' अत्राऽऽर्षत्वात्पञ्चम्यर्थे सप्तमी।

सनिदानात्मकोऽत आह-'समाहिवर' इति, समाधान [1]समाधिः=रत्नत्रयोपलब्धिः। अयं च समाधिर्द्रव्यभावभेदाद्द्विविधस्तत्र द्रव्यसमाधिः=शरीरादिसौख्यावाप्तिः, भावसमाधिस्तु रत्नत्रयोपलब्धिस्तयोर्द्रव्यसमाधिव्यावृत्त्यर्थं वरपदमाह-वरश्चासौ समाधिश्चेति[2] विग्रहः, यद्वा समाध्योर्वर [3]समाधिवरस्तम्, समाधिवरश्च भावसमाधिरेव, स च सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयप्राप्तिस्वरूप इति तदानीमनिदानबोधिलाभस्योदयात् सनिदानबोधिलाभव्यवच्छेदः, सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयप्राप्तिर्हि मोक्षसाक्षात्कारणमतस्तस्या वेलाया सनिदानबोधिलाभोपक्षयादनिदानबोधिलाभो जायते। समाधिवरोऽपि जघन्यादिभेदैरनेकविधस्तस्मादाह

है' इस बात को समझाने के लिए 'समाहिवर' कहा है, समाधि भी द्रव्य-भाव भेदसे दो प्रकारकी है, उनमें से शरीरादि सुख की प्राप्ति रूप द्रव्यसमाधि को हटा कर केवल रत्नत्रय प्राप्तिरूप भावसमाधि का ग्रहण करने के लिए 'वर' पद दिया है अत एव सनिदान बोधिलाभ का निवारण हो गया, क्योंकि ज्ञानादि रत्नत्रय की प्राप्ति मोक्ष का साक्षात् कारण है, इसीलिए इस अवस्था में केवल अनिदान (निधाणारहित) बोधिलाभ रहता है। भावसमाधि भी जघन्य आदि भेदों से अनेक प्रकार की है उनमें

જાવવા માટે 'समाहिवर' કહેલુ છે, સમાધિ પણ દ્રવ્ય-ભાવ ભેદથી બે પ્રકારની છે તેમાથી શરીરાદિ સુખની પ્રાપ્તિ રૂપ દ્રવ્યસમાધિને હઠાવીને કેવલ રત્નત્રયીની પ્રાપ્તિરૂપ ભાવસમાધિનું ગ્રહણ કરવા માટે 'वर' પદ આપેલુ છે એટલા માટે સનિદાન બોધિલાભનુ નિવારણ થઇ ગયુ, કારણ કે જ્ઞાનાદિ-રત્નત્રયીની પ્રાપ્તિ મોક્ષનુ સાક્ષાત્ કારણ છે આ માટે એ અવસ્થામા કેવલ અનિદાન (નિયાણારહિત) બોધિલાભ રહે છે ભાવસમાધિ પણ જઘન્ય આદિ ભેદથી અનેક પ્રકારની

१- समाधि., सम्+आङ्पूर्वकात् धा' धातोः 'उपसर्गे घो कि.' (पा ३।३।८२)' इति भावे कि प्रत्यय', आतो लोप इटी'-त्याकारलोप'।

२- 'वरसमाधि' पूर्वनिपातप्रकरणस्य 'समुद्राभ्राद्ध' (पा ४।४।११८) इत्यादिनिर्देशबलेनाऽनित्यत्वाद्वरशब्दस्य पश्चात्प्रयोग'। अत्रत्यादिना 'लक्षणहेत्वो क्रियाया.' (३।२।१२६) इत्यादीना ग्रहणम्।

३-' समाध्योर्वर ' अत्र सप्तमीतत्पुरुष षष्ठीतत्पुरुषस्तु 'न निर्द्धारणे' (पा २।२।१०) इति प्रतिषेधान्नात्र भवति।

यत्तो भक्त्यादिसिद्धौ तपश्चरणादिक्लेशोऽकिञ्चित्कर इति तु नाशङ्कनीयम्, तपः-संयमाद्यनुष्ठानेन दृढस्य श्रद्धानस्योत्पत्तौ भक्तिदार्ढ्यं तेन कर्मक्षयस्ततो मोक्ष इति भक्तिदार्ढ्यं प्रति तपःसंयमाद्यनुष्ठानस्य हेतुत्वात् ॥१-७॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित कोल्हापुर-राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-व्रतिविरचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-तोषण्याख्याया व्याख्याया चतुर्विंशति-स्तवाख्य द्वितीयमध्ययन समाप्तम् ॥ २ ॥

कोई कहे कि-भगवान की भक्ति से ही मोक्ष प्राप्ति तक की सिद्धि हो तो तप संयम आदि के कष्ट उठाने का क्या प्रयोजन है?

इसके लिये यही उत्तर है कि-तप संयम आदि के आराधन करने से 'श्रद्धान' दृढ हो कर भक्ति प्रबल होती है और भक्ति की दृढता से कर्मों की निर्जरा होकर क्रमसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥१-७॥

॥ इति द्वितीय अध्ययन संपूर्ण ॥

કોઈ કહેશે કે ભગવાનની ભકિતથી જ મોક્ષપ્રાપ્તિ સુધીની સિદ્ધિ થાય છે તો તપ સંયમ આદિ કષ્ટ ઉઠાવવાનું શું પ્રયોજન છે?

ઉત્તર એ છે કે તપ સંયમ આદિની આરાધના કરવાથી શ્રદ્ધા દૃઢ થઈને ભકિત પ્રબલ થાય છે અને ભકિતની દૃઢતાથી કર્મોની નિર્જરા થઈને ક્રમથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે (૧-૭)

॥ ઇતિ દ્વિતીય અધ્યયન સંપૂર્ણ ॥ ૨ ॥

ननु तावताऽपि याच्ञाभङ्ग आपद्येत इति चेन्न; भक्तिमहिम्ना स्वत एव याचितार्थोपलब्धेः, परिपक्वभक्तेस्तथास्वाभाव्यात्। न चैतस्या प्रार्थनायाः सनिदानत्व (सकामत्व) प्रसज्जत इति वाच्य, प्रार्थनाया मोक्षप्राप्तिविषयकत्वात्।

आह–जिनवरैर्यद्दातव्य बोधिलाभादिहेतुभूत तद्दत्तमेव रत्नत्रयोपदेशरूप मिति किमतः परमवशिष्ट दातव्य यत्प्रार्थ्यते? इति, उच्यते–यद्यपि सर्व तैरुपदेशेन दत्तमेवास्ति तथाप्युत्कटभावभक्तिभरितस्येत्थमुक्तौ सञ्चिताना ज्ञानावरणीयादीना कर्मणा प्रक्षयो भवति, तत्प्रक्षयाच्च मोक्षोपलब्धिरिति। जिनभक्त्यैवाऽऽरो-

---

से इस प्रकार की प्रार्थना उचित ही है, क्योंकि सिद्ध भगवान् कुछ भी न देवें पर भक्तिमान् भव्यों की अपनी अटल भक्ति के प्रभाव से प्रार्थना के अनुसार फल हो जाता है। यह प्रार्थना मोक्षप्राप्ति के लिये है अतः इसे निदानसहित नहीं कह सकते।

यहा प्रश्न उठता है कि सिद्ध भगवान् जो कुछ देसकते थे वह मोक्ष मार्ग का उपदेश अरिहन्त अवस्थामें दे ही चुके हैं फिर क्या शेष रह गया जिसके लिये प्रार्थना की जाती है?।

इसका समाधान यह है कि इस प्रकार भक्तिमान् भव्यों की उत्कृष्ट भावना से की हुई प्रार्थना के द्वारा पूर्वसञ्चित ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंका क्षय होकर मोक्षप्राप्ति होती है।

પ્રાર્થના ઉચિત જ છે, કારણ કે સિદ્ધ ભગવાન કાંઇ પણ આપતા નથી તો પણ ભક્તિમાન ભવ્ય જીવોની પોતાની અટલ ભક્તિના પ્રભાવથી પ્રાર્થના અનુસાર ફળ થઇ જાય છે આ પ્રાર્થના મોક્ષ પ્રાપ્તિ માટે છે, માટે તેને નિદાન-સહિત કહી શકાય નહિ

અહિં એક પ્રશ્ન થાય છે કે, સિદ્ધ ભગવાન જે કાંઇ આપી શકે છે તે મોક્ષમાર્ગનો ઉપદેશ અરિહંત અવસ્થામાં આપી ચુકયા છે પછી શું બાકી રહી ગયું છે કે જેના માટે પ્રાર્થના કરવામાં આવે?

આ પ્રશ્નનું સમાધાન એ છે કે આ પ્રમાણે ભક્તિમાન ભવ્ય જીવોની ઉત્કૃષ્ટ ભાવનાથી કરવામાં આવેલી પ્રાર્થના દ્વારા પૂર્વસંચિત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોનો ક્ષય થઇને મોક્ષ પ્રાપ્તિ થાય છે

यथोचितग्रामादिसिद्धौ तपश्चरणादिक्लेशोऽकिञ्चित्कर इति तु नाशङ्कनीयम्, तपःसंयमाद्यनुष्ठानेन दृढस्य श्रद्धानस्योत्पत्तौ भक्तिदाढर्ये तेन कर्मक्षयस्ततो मोक्ष इति भक्तिदाढर्ये प्रति तपःसंयमाद्यनुष्ठानस्य हेतुत्वात् ॥१–७॥

इति श्रीविश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित–कलापाऽऽलापक–प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहू–छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'–पदभूषित कोल्हापुर–राजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्यश्री–घासीलाल–व्रतिविरचितायां श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि–तोषण्याख्यायां व्याख्यायां चतुर्विंशति–स्तवाख्यं द्वितीयमध्ययनं समाप्तम् ॥ २ ॥

कोई कहे कि–भगवान की भक्ति से ही मोक्ष प्राप्ति तक की सिद्धि हो तो तप संयम आदि के कष्ट उठाने का क्या प्रयोजन है ?

इसके लिये यही उत्तर है कि–तप संयम आदि के आराधन करने से 'श्रद्धान' दृढ हो कर भक्ति प्रबल होती है और भक्ति की दृढता से कर्मों की निर्जरा होकर क्रमसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥१–७॥

॥ इति द्वितीय अध्ययन संपूर्ण ॥

કોઈ કહેશે કે ભગવાનની ભક્તિથી જ મોક્ષપ્રાપ્તિ સુધીની સિદ્ધિ થાય છે તો તપ સંયમ આદિ કષ્ટ ઉઠાવવાનું શું પ્રયોજન છે ?

ઉત્તર એ છે કે તપ સંયમ આદિની આરાધના કરવાથી શ્રદ્ધા દૃઢ થઈને ભક્તિ પ્રબલ થાય છે અને ભક્તિની દૃઢતાથી કર્મોની નિર્જરા થઈને ક્રમથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે (૧–૭)

॥ ઇતિ દ્વિતીય અધ્યયન સંપૂર્ણ ॥ ૨ ॥

। अथ तृतीयमध्ययनम् ।

द्वितीयेऽध्ययने प्राणातिपातादिसावद्यव्यापारनिवृत्तिलक्षणसामायिकव्रतोपदेष्टृणामर्हतां गुणोत्कीर्त्तनं कृतम्, अधुनाऽर्हदुपदिष्टस्यापि सामायिकव्रतादेर्गुरुकृपयैवोपलब्धेर्गुरुवन्दनोत्तरमेव प्रतिक्रमणानुष्ठानस्य शिष्टाचारपरिगृहीतत्वाच्चाऽवसरसंगतं गुरुवन्दनं कर्त्तुं वन्दनाख्यं तृतीयमध्ययनमाह—'इच्छामि' इत्यादि,

॥ मूलम् ॥

इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए, अणुजाणह मे मिउग्गहं, निसीहि अहोकायं कायसंफासं, खमणिज्जो मे किलामो, अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो? जत्ता भे? जवणिज्जं च भे? खामेमि खमासमणो! देवसिअं वइक्कमं, आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए तेत्तीसन्नयराए जंकिंचिमिच्छाए मणदुक्कडाए

॥ अथ तीसरा अध्ययन प्रारम्भ ॥

दूसरे अध्ययनमें प्राणातिपात आदि सावद्य योगकी निवृत्तिरूप सामायिक व्रतके उपदेशक तीर्थंकरों का गुणोत्कीर्त्तन किया गया है। तीर्थंकरों से उपदिष्ट वह सामायिक व्रत गुरु महाराज की कृपासे ही प्राप्त हो सकता है इस कारण, तथा गुरुवन्दनापूर्वक ही प्रतिक्रमण करने का शिष्टाचार होने से गुरुवन्दना करना आवश्यक है अतएव अब वन्दनाध्ययन नामक तीसरा अध्ययन प्रारम्भ करते हैं—'इच्छामि' इत्यादि।

અથ ત્રીજુ અધ્યયન પ્રારભ

બીજા અધ્યયનમા પ્રાણાતિપાત વગેરે સાવદ્ય યોગની નિવૃત્તિ-રૂપ સામાયિક વ્રતના ઉપદેશક તીર્થંકરોનું ગુણોત્કીર્ત્તન કરવામા આવ્યુ છે તીર્થંકરોએ ઉપદેશેલુ સામાયિક વ્રત ગુરુ મહારાજની કૃપાથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, એટલા માટે, તથા ગુરુવંદનાપૂર્વક જ પ્રતિક્રમણ કરવાનો શિષ્ટાચાર હોવાથી ગુરુવન્દના કરવી તે આવશ્યક છે, એ માટે હવે વંદનાધ્યયન નામનું ત્રીજુ અધ્યયન પ્રારભ કરે છે—" इच्छामि " ઇત્યાદિ

वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्व-कालियाए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स खमासमणो! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥ सू० १ ॥

॥ छाया ॥

इच्छामि क्षमाश्रमण! वन्दितु यापनीयया नैषेधिक्या, अनुजानीत मे मितावग्रहम्। निषिध्य अध.काय कायसस्पर्शम्। क्षमणीयो भवद्भिः क्लमः। अल्पक्लान्ताना बहुशुभेन भवता दिवसो व्यतिक्रान्तः?, यात्रा भवताम्? यापनीय च भवताम्? क्षमयामि क्षमाश्रमण! दैवसिक व्यतिक्रमम्। आवश्यक्या प्रतिक्रमामि क्षमाश्रमणाना दैवसिक्या आशातनया त्रयस्त्रिंशदन्यतरया यत्किञ्चिन्मिथ्याभूतया मनोदुष्कृतया वचोदुष्कृतया कायदुष्कृतया क्रोधया मानया मायया लोभया सर्वकालिक्या सर्वमिथ्योपचारया सर्वधर्मातिक्रमणया आशातनया यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतस्तस्य क्षमाश्रमण! प्रतिक्रमामि निन्दामि गर्हे, आत्मान व्युत्सृजामि ॥ सू० २ ॥

॥ टीका ॥

'खमासमणो' क्षमण=परीषहादीना सहन क्षमा,[1] 'श्रमणो, शमन., समना, समण.' इत्येषा प्राकृते 'समणो' इति भवति, तत्र श्राम्यति=तपस्यतीति, भवभ्रमणहेतुभूतविषयेषु खिद्यतीति, यद्वाऽन्तर्भावितण्यर्थत्वात् श्राम्यति=दमनेन

'श्रमणः, शमनः, समना, समणः' इन चारो का प्राकृतमें 'समणो' ऐसा रूप बनता है अतः सस्कृत छाया के अनुसार इन चारों का अलग २ अर्थ करते हैं-

बारह प्रकार की तपस्या में श्रम (परिश्रम) करनेवाले,

"श्रमण, शमन', समनाः, समण, આ ચારેય પદોનું પ્રાકૃત ભાષામા "समणो" એવુ રૂપ બને છે, એટલે સસ્કૃત છાયા અનુસાર એ ચારેય પદોના જુદા-જુદા અર્થ કહે છે —

બાર પ્રકારની તપસ્યામા શ્રમ (પરિશ્રમ) કરવાવાળા, અથવા, ઇન્દ્રિય,

---

१-क्षमा-'क्षमूष् सहने' अस्मात् 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' (३।३।१०४) इति सूत्रेण स्त्रियामङ्प्रत्ययस्ततष्टाप्।

श्रमयतीन्द्रियनोइन्द्रियाणीति [1]श्रमणः। शमयति=शान्तिं नयति कषायनोकषायरूपानलमिति, शाम्यति=विशालमनाटवीपर्यटद्भोगानलज्वालामालाकरालतापकलापतः पृथग्भवतीति वा [2]शमनः। समान=स्वपरजनेषु तुल्यं मनो यस्येति, कुशलमयेन मनसा सह वर्त्तते इति वा [3]समनाः। सम्=सम्यक् [4]अणति=प्रवचनं ब्रूते इति, सम्यक् [5]अण्यते=संयमबलेन कषायं जित्वा जीवतीति वा समण'। क्षमाप्रधानः श्रमणः, शमनः, समना', समणो वा क्षमाश्रमणादिस्तत्सम्बुद्धौ।

अथवा इन्द्रिय नोइन्द्रिय (मन) का दमन करनेवाले को 'श्रमण' कहते हैं १। कषाय-नोकषायरूप अग्नि को शान्त करनेवाले, या संसाररूप अटवीमें फैली हुई कामभोगरूप अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के भयङ्कर ताप से आत्मा को अलग करनेवाले को 'शमन' कहते हैं २। शत्रुमित्र मे एकसा मन रखनेवाले, अथवा विशुद्ध मनवाले को 'समना' कहते हैं ३। अच्छी तरह प्रवचन का उपदेश देनेवाले, अथवा संयम के बल से कषाय को जीतकर रहने वाले को 'समण' कहते हैं ४। परन्तु यहा पर प्रसिद्धि के कारण 'श्रमण' शब्द को लेकर ही व्याख्या करते हैं—क्षमा है प्रधान जिनमें

નોઇન્દ્રિય (મન)નું દમન કરવાવાળાને "श्रमण" કહે છે (૧) કષાય, નોકષાયરૂપ અગ્નિને શાંત કરવાવાળા અથવા સંસારરૂપી અટવીમાં ફેલાએલી કામ-ભોગરૂપી અગ્નિની પ્રચંડ જ્વાલાઓના-ભયંકર તાપથી આત્માને અલગ-જુદા કરવાવાળાને 'समन' કહે છે (૨) શત્રુ-મિત્રમાં એકસરખું મન રાખવાવાળા અથવા વિશુદ્ધ મનવાળાને 'समना' કહે છે (૩) બરાબર સારી રીતે પ્રવચનનો ઉપદેશ આપવાવાળા, અથવા સંયમના બળથી કષાયોને જીતીને રહેવાવાળાને 'समण' કહે છે (૪) પરન્તુ અહિં પ્રસિદ્ધિના કારણે 'श्रमण' શબ્દને લઈને જ વ્યાખ્યા કરે છે, જેની અંદર ક્ષમાગુણ મુખ્ય છે તેને ક્ષમાશ્રમણ કહે છે

१– 'श्रमु तपसि खेदे च' अस्मान्नन्द्यादित्वात्कर्त्तरि ल्यु।

२– शमन –'शमु उपशमे' अस्माण्ण्यन्तात्'नन्द्यादि' ल्यु' पूर्ववत्।

३– समना –पूर्वत्र व्युत्पत्तौ 'समानस्यच्छन्दसी'–त्यत्र 'समानस्ये'ति योगविभागात् समानस्य स, उत्तरत्र 'वोपसर्जनस्य' (६।३।८३) इति सहस्य सः।

४– 'अणति' भौवादिकात्परस्मैपदिन 'शब्दार्थकात् 'अण्' धातोरिदम्।

५– 'अण्यते' दैवादिकस्य आत्मनेपदिन 'अण प्राणने' ॥

'जावणिज्जाए' यापनीयया=शक्त्यनुकूलया 'निसीहियाए' निषेधन निषेधः=प्राणातिपातादिसावद्यव्यापारविरतिः सा प्रयोजनं यस्या सा नैषेधिकी[1], तया नैषेधिक्या तन्वेति शेष, शक्त्यनुकूलेन प्राणातिपातादिनिवृत्तरूपेण शरीरेणेत्यर्थः, 'वंदिउं' वन्दितुम्=अभिवादयितुम् 'इच्छामि' अभिलषामीत्यर्थः। अतः 'मे' मम 'मिउग्गहं' अवगृह्यत इत्यवग्रहः=क्षेत्रम्, यद्वा-अवग्रहणमवग्रहः=क्षेत्रपरिग्रहः, मितश्चासाववग्रहश्च मितावग्रहः, अथवा मितायाः अर्थात्परिमित भूमेरवग्रहः=ग्रहणं मितावग्रहः=उपविष्टस्य गुरोरभिमुख वर्त्तमानायाः स्वदेहपरिमिताया भूमेर्ग्रहणं, तम् 'अणुजाणह' अनुजानीत=मितावग्रहप्रवेशायानुज्ञां दत्त, अस्मिन्नवसरे गुरु' 'अनुजानामि' इति भणति, ततोऽनुज्ञातः शिष्यः 'निसीहि' निषिध्य=सावद्यव्यापारान् परित्यज्य 'अहोकाय' कायस्य=शरीरस्याऽधः अधःकाय., यद्वा अधः=अधस्तनः कायः अधःकायस्त चरणस्वरूप प्रतीति शेष.। षष्ठ्यर्थे वा द्वितीयाऽऽर्षत्वात्। 'कायसफासं' कायेन=स्वशिरो-

---

उनको 'क्षमाश्रमण' कहते हैं। यहां शिष्य सम्बोधन करके कहता है कि "हे क्षमाश्रमण! मैं अपनी शक्ति के अनुसार प्राणातिपात आदि सावद्य व्यापारों से रहित काय से वन्दना करना चाहता हूँ, अतएव मुझे आप मितावग्रह (जहां गुरु महाराज विराजित हों उनके चारों ओर की साढे तीन २ हाथ भूमि) में प्रवेश करने की आज्ञा दीजिये"। उस समय गुरु शिष्य को 'अनुजानामि' कह कर प्रवेशकी आज्ञा देवें, तब आज्ञा पाकर शिष्य बोले-'हे गुरु महाराज! मैं सावद्य व्यापारों को रोक कर मस्तक और हस्त से

અહિં શિષ્ય સંબોધન કરીને કહે છે કે-

હે ક્ષમાશ્રમણ! હું મારી શકિત અનુસાર પ્રાણાતિપાત આદિ સાવદ્ય (પાપકારી) વ્યાપારથી રહિત શરીર વડે વંદના કરવા ઇચ્છા કરૂં છું, એટલા માટે મને આપ મિતાવગ્રહ (જ્યાં ગુરૂ મહારાજ બિરાજિત હોય તેમની ચારે બાજુ સાડા ત્રણ સાડા ત્રણ હાથ ભૂમિ)માં પ્રવેશ કરવાની આજ્ઞા આપો તે સમયે ગુરુ શિષ્યને 'अनुजानामि' કહીને પ્રવેશવાની આજ્ઞા આપે ત્યારે આજ્ઞા મેળવીને શિષ્ય કહે કે—હે ગુરુ મહારાજ! હું સાવદ્ય વ્યાપારોને રોકીને શિર તથા

१- 'नैषेधिकी तदस्येत्यधिकारे 'प्रयोजनम्' (५।१।१०८) इति ठक्, ठगन्तलान्ङीप्।

हस्तलक्षणेन सस्पर्शः=सम्यक् स्पर्शस्तम्। 'अणुजाणह' इत्यनेन पूर्वोक्तेन सम्बन्धः, करोमीत्यस्य शेषो वा। 'किलामो' क्लमः=शरीरग्लानिकृत् मत्कृतोऽपराधः निजकठोरकरशिरसा[1] भवदीयकोमलचरणकमलस्पर्शेनेत्यर्थात्, यद्वा मदीयेनाऽनेन नमस्कारव्यापारेण भवतो मानस एव कश्चन श्रमः सञ्जातः स्यात्स 'मे' भवद्भिः, यद्वा भवता[2] 'खमणिज्जो' क्षमणीयः=सोढव्यः, तथा 'अप्पकिलंताण' अल्पशब्दोऽत्राऽभाववाची, [3]क्लान्त=क्लान्तिः, अल्प=विगत क्लान्त=शरीरग्लानिरूपः श्रमो येषा तेऽल्पक्लान्तास्तेषामल्पक्लान्तानाम्-अल्पवेदनावतामित्यर्थः, 'मे' भवता गुरुवर्याणा 'दिवसो' दिवस' 'बहुसुभेण' बहु च तच्छुभ च बहुशुभ तेन प्रभूतशान्तिपूर्वकमित्यर्थः 'वइक्कतो' व्यतिक्रान्त =गत' किम्' 'जत्ता' यात्रा=तपोनियमादिस्वरूपा सयमयात्रा 'भे' भवता निराबाधे? ति शेषः, च=किञ्च 'भे' भवता शरीरमिति गम्यते 'जवणिज्ज' यापनीयम्=इन्द्रियनोइन्द्रियबाधारहित वर्त्तते? इति शेष, एव सयमयात्रादिकुशलमापृच्छ्य शिष्य' पुनरप्याह-'खमासमणो' हे क्षमाश्रमण! 'खामेमि' क्षमापयामि

आपके चरण का स्पर्श करता हूँ' इस तरह वन्दना करनेमें मुझसे जो आपको किसी प्रकार का क्लम (कष्ट) पहुचा हो आप उसकी क्षमा करे। हे गुरु महाराज! आपका दिन बहुत सुखशान्ति से व्यतीत हुआ न?, आपकी सयमयात्रा निराबाध है न?, और आपका शरीर, इन्द्रिय, नोइन्द्रिय की बाधा से रहित है न?। इस प्रकार सयमयात्रा और शरीर के सम्बन्ध में कुशल पूछ कर फिर से शिष्य कहता है-हे क्षमाश्रमण! मुझसे जो दिवस-सम्बन्धी

હાથથી આપના ચરણનો સ્પર્શ કરૂ છુ આ પ્રમાણે વદના કરવાથી મારા વડે આપને જે કોઇ પ્રકારથી કષ્ટ થયુ હોય તો આપ મને ક્ષમા કરો

હે ગુરુ મહારાજ! આપનો દિવસ ખૂબ શાતિથી પસાર થયો છે કે કેમ? આપની સયમયાત્રા નિરાબાધ છે કે કેમ? અને આપનુ શરીર, ઇન્દ્રિય, નોઇન્દ્રિયની ઉપાધિથી રહિત છે કે કેમ? આ પ્રમાણે સયમયાત્રા અને શરીરના સબધમા કુશળતા પૂછીને શિષ્ય ફરીથી કહે છે કે- હે ક્ષમાશ્રમણ! મારાથી

१- 'निजकठोरकरशिरसा' अत्र प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भाव -।

२- 'भवताम्' अत्र 'कृत्याना कर्त्तरि वा' (२।३।७१) इति कर्त्तरि षष्ठी।

३- 'क्लान्त' भावे क्त ।

'देवसिय' दिवसे भवो दैवसिकस्त, दिवसशब्दोऽत्र रात्रेरप्युपलक्षणस्तेनाऽहोरात्रकृतमित्यर्थः, 'वइक्कम' व्यतिक्रमोऽपराधस्तम् 'आवस्सियाए' आवश्यक्या= अवश्य कर्त्तव्यैश्चरणकरणयोगैर्निर्वृत्ता आवश्यकी=अवश्यकर्त्तव्यगुरुशुश्रूषादिरूपा तया हेतुभूतया यत्किञ्चिद्विपरीतमाचरितं स्यात् तत् 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि=परित्यजामि, यद्वा तस्मात् प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते, इत्येवं केचिद्व्याचक्षते, वस्तुतस्तु 'खामेमि खमासमणो देवसिय वइक्कम आवस्सियाए पडिक्कमामि' इत्यस्य हे क्षमाश्रमण ! सञ्जातं दैवसिकमपराधं क्षमापयामि भविष्यन्तं च तमवश्यकर्त्तव्यया भवदीयाऽऽज्ञाराधनया परित्यजामीत्येवार्थ इति वयम् । प्रोक्तमेवार्थं विशेषतः स्फोरयति-'खमा०' इति । 'खमासमणाणं' क्षमाश्रमणानां पूर्वोक्तानां 'देवसियाए' दैवसिक्या, दिवसपदस्य रात्रेरप्युपलक्षणत्वादहोरात्रस-

अपराध हुआ हो उसकी क्षमा चाहता हूँ आप क्षमा करें, आवश्यक क्रिया करते समय भूल से जो कुछ विपरीत आचरण किया गया उससे निवृत्त होता हूँ' इस प्रकार कोई २ व्याख्या करते हैं।

वास्तव में 'खामेमि खमासमणो ! देवसिय वइक्कम आवस्सियाए पडिक्कमामि' का तात्पर्य यह है-'हे क्षमाश्रमण ! दिवस सम्बन्धी जो कुछ अपराध हो चुका हो उसके लिये क्षमा चाहता हूँ और भविष्यमें आपकी आज्ञाकी आराधना रूप आवश्यक क्रिया के द्वारा अपराध से अलग रहूँगा, अर्थात् अपराध नहीं होने देनेका प्रयत्न करूँगा'। इसी बात को शिष्य विस्तारसे कहता है-'हे गुरु महाराज ! आप क्षमाश्रमणों की, दिवस-सम्बन्धी तैंतीस

દિવસ સંબંધી જે કાંઈ અપરાધ થયો હોય તેની ક્ષમા માગું છું આપ ક્ષમા કરો, આવશ્યક ક્રિયા કરવા વખતે ભૂલથી મારા વડે જે કાંઇ વિપરીત આચરણ થયું હોય તેનાથી નિવૃત્ત થાઉં છું -કોઈ કોઈ આવી રીતે વ્યાખ્યા કરે છે

વાસ્તવિક રીતે તો 'खामेमि खमासमणो देवसिय वइक्कम आवस्सियाए पडिक्कमामि' આનો તાત્પર્ય એ છે કે 'હે ક્ષમાશ્રમણ ! દિવસસંબંધી જે કાંઇ અપરાધ થયો હોય તેના માટે ક્ષમા માગું છું, અને ભવિષ્યમાં આપની આજ્ઞાની આરાધનારૂપ આવશ્યક ક્રિયા વડે અપરાધથી દૂર રહીશ અર્થાત્ અપરાધ ન થવા પામે તેવો પ્રયત્ન કરીશ આ વાતને શિષ્ય વિસ્તારથી કહે છે -

હે ગુરૂ મહારાજ ! આપ ક્ષમાશ્રમણની દિવસસંબંધી તેત્રીશ આશા

हस्तलक्षणेन सस्पर्शः=सम्यक् स्पर्शस्तम्। 'अणुजाणह' इत्यनेन पूर्वोक्तेन सम्बन्धः, करोमीत्यस्य शेषो वा। 'किलामो' क्लमः=शरीरग्लानिकृत् मत्कृतोऽपराधः निजकठोरकरशिरसा[1] भवदीयकोमलचरणकमलस्पर्शेनेत्यर्थात्, यद्वा मदीयेनाऽनेन नमस्कारव्यापारेण भवतो मानस एव कश्चन श्रमः सञ्जातः स्यात्स 'भे' भवद्भिः, यद्वा भवता[2] 'खमणिज्जो' क्षमणीयः=सोढव्यः, तथा 'अप्पकिलंताणं' अल्पशब्दोऽत्राऽभाववाची, [3]क्लान्त=क्लान्तिः, अल्प=विगत क्लान्त=शरीरग्लानिरूपः श्रमो येषा तेऽल्पक्लान्तास्तेषामल्पक्लान्तानाम्-अल्पवेदनावतामित्यर्थः, 'भे' भवता गुरुवर्याणा 'दिवसो' दिवसः 'बहुसुभेण' बहु च तच्छुभं च बहुशुभ तेन प्रभूतशान्तिपूर्वकमित्यर्थः 'वइक्कतो' व्यतिक्रान्त'=गत' किम्? 'जत्ता' यात्रा=तपोनियमादिस्वरूपा सयमयात्रा 'भे' भवता निराबाधे? ति शेषः, च=किञ्च 'भे' भवता शरीरमिति गम्यते 'जवणिज्जं' यापनीयम्=इन्द्रियनोइन्द्रियबाधारहित वर्त्तते? इति शेष, एव सयमयात्रादिकुशलमापृच्छ्य शिष्य. पुनरप्याह-'खमासमणो' हे क्षमाश्रमण! 'खामेमि' क्षमापयामि

आपके चरण का स्पर्श करता हूँ' इस तरह वन्दना करनेमें मुझसे जो आपको किसी प्रकार का क्लम (कष्ट) पहुंचा हो आप उसकी क्षमा करें। हे गुरु महाराज! आपका दिन बहुत सुखशान्ति से व्यतीत हुआ न?, आपकी सयमयात्रा निराबाध है न?, और आपका शरीर, इन्द्रिय, नोइन्द्रिय की बाधा से रहित है न?। इस प्रकार सयमयात्रा और शरीर के सम्बन्ध में कुशल पूछ कर फिर से शिष्य कहता है-हे क्षमाश्रमण! मुझसे जो दिवस-सम्बन्धी

હાથથી આપના ચરણનો સ્પર્શ કરૂ છુ આ પ્રમાણે વદના કરવાથી મારા વડે આપને જે કોઈ પ્રકારથી કષ્ટ થયુ હોય તો આપ મને ક્ષમા કરો

હે ગુરુ મહારાજ! આપનો દિવસ ખૂબ શાતિથી પસાર થયો છે કે કેમ? આપની સયમયાત્રા નિરાબાધ છે કે કેમ? અને આપનું શરીર, ઇન્દ્રિય, નોઇન્દ્રિયની ઉપાધિથી રહિત છે કે કેમ? આ પ્રમાણે સયમયાત્રા અને શરીરના સબધમા કુશળતા પૂછીને શિષ્ય ફરીથી કહે છે કે- હે ક્ષમાશ્રમણ! મારાથી

१- 'निजकठोरकरशिरसा' अत्र प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भाव।
२- 'भवताम्' अत्र 'कृत्यानां कर्त्तरि वा' (२।३।७१) इति कर्त्तरि षष्ठी।
३- 'क्लान्त' भावे क्त।

'देवसिय' दिवसे भवो दैवसिकस्त, दिवसशब्दोऽत्र रात्रेरप्युपलक्षणस्तेनाऽहोरात्रकृतमित्यर्थः, 'वइक्कम' व्यतिक्रमोऽपराधस्तम् 'आवस्सियाए' आवश्यक्या= अवश्य कर्त्तव्यैश्चरणकरणयोगैर्निर्वृत्ता आवश्यकी=अवश्यकर्त्तव्यगुरुशुश्रूषादिरूपा तया हेतुभूतया यत्किञ्चिद्विपरीतमाचरितं स्यात् तत् 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि=परित्यजामि, यद्वा तस्मात् प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते, इत्येव केचिद्व्याचक्षते, वस्तुतस्तु 'खामेमि खमासमणो देवसियं वइक्कम आवस्सियाए पडिक्कमामि' इत्यस्य हे क्षमाश्रमण! सञ्जात दैवसिकमपराध क्षमापयामि भविष्यन्त च तमवश्यकर्त्तव्यया भवदीयाऽऽज्ञाराधनया परित्यजामीत्येवार्थ इति वयम्। मोक्तमेवार्थं विशेषतः स्फोरयति-'खमा०' इति। 'खमासमणाण' क्षमाश्रमणाना पूर्वोक्ताना 'देवसियाए' दैवसिक्या, दिवसपदस्य रात्रेरप्युपलक्षणत्वादहोरात्रस-

---

अपराध हुआ हो उसकी क्षमा चाहता हूँ आप क्षमा करे, आवश्यक क्रिया करते समय भूल से जो कुछ विपरीत आचरण किया गया उससे निवृत्त होता हूँ' इस प्रकार कोई २ व्याख्या करते हैं।

वास्तव मे 'खामेमि खमासमणो! देवसिय वइक्कम आवस्सियाए पडिक्कमामि' का तात्पर्य यह है-'हे क्षमाश्रमण! दिवस सम्बन्धी जो कुछ अपराध हो चुका हो उसके लिये क्षमा चाहता हूँ और भविष्यमें आपकी आज्ञाकी आराधना रूप आवश्यक क्रिया के द्वारा अपराध से अलग रहूँगा, अर्थात् अपराध नहीं होने देनेका प्रयत्न करूँगा'। इसी बात को शिष्य विस्तारसे कहता है-'हे गुरु महाराज! आप क्षमाश्रमणों की, दिवस-सम्बन्धी तेतीस

દિવસ સબધી જે કાંઈ અપરાધ થયો હોય તેની ક્ષમા માગુ છુ આપ ક્ષમા કરો, આવશ્યક ક્રિયા કરવા વખતે ભૂલથી મારા વડે જે કાઇ વિપરીત આચરણ થયુ હોય તેનાથી નિવૃત્ત થાઉં છુ -કોઇ કોઇ આવી રીતે વ્યાખ્યા કરે છે

વાસ્તવિક રીતે તો 'खामेमि खमासमणो देवसिय वइक्कम आवस्सियाए पडिक्कमामि' આનો તાત્પર્ય એ છે કે 'હે ક્ષમાશ્રમણ! દિવસસબધી જે કાંઇ અપરાધ થયો હોય તેના માટે ક્ષમા માગુ છુ, અને ભવિષ્યમા આપની આજ્ઞાની આરાધનારૂપ આવશ્યક ક્રિયા વડે અપરાધથી દૂર રહીશ અર્થાત્ અપરાધ ન થવા પામે તેવો પ્રયત્ન કરીશ આ વાતને શિષ્ય વિસ્તારથી કહે છે -

હે ગુરૂ મહારાજ! આપ ક્ષમાશ્રમણની દિવસસબધી તેત્રીશ આશા

मन्यितन्येत्यर्थः, 'तेत्तीसन्नयराए' त्रयस्त्रिंशदन्यतरया त्रयस्त्रिंशदाशातनास्वन्यत रया=कयाचिदेकया 'आसायणाए' आशातनया आ=समन्तात् शात्यन्ते= खण्ड्यन्ते ज्ञानादयो गुणा यया, यद्वा आ=समन्तात् शातयति=अवरुणद्धि मोक्षसुख या सा- आशातना तया, तथा 'जंकिंचिमिच्छाए' यत्किञ्चिन्मि थ्यया=मिथ्याऽस्त्यस्या इति [1]मिथ्या, या काचिन्मिथ्या=यत्किञ्चिन्मिथ्या [2]तया, यया कयाचिन्मिथ्यायुक्तयेत्यर्थः, असम्यग्भावसपन्नयेति यावत्, 'मणदुक्कडाए' मनोदुष्कृतया दुर्भावेन कृता=दुष्कृता, मनसा, ज्ञानपूर्वक मित्यर्थात् दुष्कृता=मनोदुष्कृता तया=अशुभपरिणामरूपयेति भावः। 'वयदुक्कडाए' वचोदुष्कृतया (समास भाग्वत्, एवमग्रेऽपि) त्वङ्कारादिरूपयेत्यर्थः। 'कायदुक्कडाए' कायदुष्कृतया=उपगमनाऽवस्थानादिनिमित्तया 'कोहाए' क्रोधया= क्रोधोऽस्यामस्तीति क्रोधा तया क्रोधयुक्तयेत्यर्थः, एव 'माणाए' मानया=मान-युक्तया, 'मायाए' मायया=मायायुक्तया, 'लोहाए' लोभया=लोभयुक्तया

(३३) आशातनाओंमे से किसी भी आशातना द्वारा, तथा मिथ्या-भाव के कारण अशुभ परिणाम से, तुकारा आदि दुर्वचनों से और अत्यन्त निकट चलना, अभ्युत्थानका न करना आदि शरीर की दुष्ट चेष्टा से, क्रोध, मान, माया और लोभ से की गई, तथा भूत भविष्य वर्त्तमान रूप तीनों कालों मे की गई, सर्वथा मिथ्यो पचारसे की गई, क्षान्त्यादि सकल-धर्मों का उल्लघन करने वाली आशातना के कारण जो मुझसे दिवससम्बन्धी अतिचार किया

तना पैकी कोई पण आशातना वडे तथा मिथ्या भावनाने कारणे अशुभ परिणामथी, तुकारो वगेरे खराब वचनोथी अने अत्यत नजीक चालवु, अभ्युत्थान न करवु वगेरे शरीरनी दुष्ट चेष्टाथी, क्रोध, मान, माया, अने लोभथी करेली तथा भूत, भविष्य, वर्तमान रूपे त्रणे काळमा सर्वथा मिथ्या उपचारथी करेली, क्षान्त्यादि सकल धर्मोनु उलघन करनारावाळी आशातनाना कारणे माराथी दिवस

१-'जंकिंचिमिच्छाए' इत्यारभ्य 'लोहाए' इत्यन्त यावत् सर्वत्र अर्शआदेराकृतिगणत्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्यय । आकृत्या=पठितगणविषयकशास्त्रवि-हिततत्तद्गणान्तर्गतत्वप्रयुक्तकार्यवत्तया गण्यते इत्याकृतिगणस्तस्य भावस्तत्त्व तस्मात्=आकृतिगणत्वादिति ।

२-मयूरव्यसकादित्वात्समास ।

'आसयणाए' इत्यस्य विशेषणानीमानि। एवमहोरात्रसम्बन्धिनीराशातना उक्त्वा सम्प्रत्यैहिकजान्मान्तरिकाऽतीताऽनागतकालिकादिपरिग्रहायोच्यते— 'सव्व०' इत्यादि।

'सव्वकालियाए' सर्वः कालो यस्याः सा सर्वकालिका तया, यद्वा सर्वश्चासौ काल: सर्वकालस्तत्र भवा सर्वकालिकी तया—वर्त्तमानाऽतीतादिकाल-त्रयसञ्जातयेत्यर्थः। 'सव्वमिच्छोवयाराए' सर्वमिथ्योपचारया=सर्वागतो मिथ्योपचारयुक्तया, सर्वो मिथ्योपचारो यस्यामिति बहुव्रीहिः। 'सव्वधम्माइक्कमणाए' सर्वे च ते धर्मा अनुष्ठानरूपाः क्षान्त्यादयः सर्वधर्मास्तेषामतिक्रमणम्=उल्लङ्घन यस्या सा, अथवा सर्वे धर्माः प्रवचनमातरस्तासामतिक्रमण यस्या सा, सर्वधर्मा-तिक्रमणा तया। 'आसायणाए' आशातनया, (व्याख्यात आशातनापदार्थः) 'जो मे' यो मया 'देवसिओ' दैवसिकः 'अइयारो' अतिचारः 'कओ' कृतः 'तस्स' तस्य [1]तमित्यर्थः, 'पडिक्कमामि' विनिवर्त्ते, 'निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि' इति पूर्ववत्। एव क्षमयित्वा 'इच्छामि खमासमणो' इत्यादिपाठ पुनरप्युक्तेन विधिना भणेत्। वन्दनाविधिश्च प्रसङ्गतोऽत्र स्फुटमति-प्रसये निरूप्यते स यथा—

वन्दनावेलायाम् 'इच्छामि खमासमणो वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए' इत्युच्चार्याऽवग्रहप्रवेशायाऽऽज्ञा गृहीतु गुरुसमक्ष कृताञ्जलिः शिरो नमयेत् (इय

गया हो उससे मैं निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा और गर्हा करता हूँ, तथा सावद्यकारी आत्माको वोसरता (त्यागता) हूँ।

इस प्रकार खमाकर फिरभी उक्त विधि से क्षमाश्रमण (पाठ) पढे। यहा पर प्रसग से वन्दना की विधि कहते हैं वह इस तरह—वन्दना के समय 'इच्छामि खमासमणो वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए' इतना बोलकर अवग्रहमे प्रवेश करनेकी आज्ञा के लिये अवग्रह से बाहर

સબંધી જે અતિચાર લાગ્યો હોય તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ અને તેની નિંદા તથા ગર્હા કરૂ છુ તથા સાવદ્યકારી આત્માનો ત્યાગ કરૂ છુ

આ પ્રમાણે ક્ષમા માગીને ફરી પણ કહેલી વિધિથી ક્ષમાશ્રમણ (પાઠ) બોલે અહિં પ્રસગથી વદનાની વિધિ કહે છે તે આ પ્રમાણે છે વદના કરવા વખતે "इच्छामि खमासमणो वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए" આ પ્રમાણે બોલીને અવગ્રહમા પ્રવેશ કરવાની આજ્ઞા માટે અવગ્રહથી બહાર ઉભા રહીને બન્ને

[1]– तस्य–तमित्यर्थ, अत्र द्वितीयार्थे सम्बन्धविवक्षयाऽऽर्षत्वाद्वा षष्ठी।

मन्यिन्यत्यर्थः, 'तेत्तीसन्नयराए' त्रयस्त्रिंशदन्यतरया त्रयस्त्रिंशदाशातनास्वन्यत रया=कयाचिदेकया 'आसायणाए' आशातनया आ=समन्तात् शात्यन्ते= खण्डयन्ते ज्ञानादयो गुणा यया, यद्वा आ=समन्तात् शातयति=अवरुणद्धि मोक्षसुख या सा- आशातना तया, तथा 'जंकिंचिमिच्छाए' यत्किञ्चिन्मि थ्यया=मिथ्याऽस्त्यस्या इति [1]मिथ्या, या काचिन्मिथ्या=यत्किञ्चिन्मिथ्या [2]तया, यया कयाचिन्मिथ्यायुक्तयेत्यर्थः, असम्यग्भावसपन्नयेति यावत्, 'मणदुक्कडाए' मनोदुष्कृतया दुर्भावेन कृता=दुष्कृता, मनसा, ज्ञानपूर्वक मित्यर्थात् दुष्कृता=मनोदुष्कृता तया=अशुभपरिणामरूपयेति भावः। 'वयदुक्कडाए' वचोदुष्कृतया (समासः प्राग्वत्, एवमग्रेऽपि) त्वङ्कारादिरूपयेत्यर्थः। 'कायदुक्कडाए' कायदुष्कृतया=उपगमनाऽवस्थानादिनिमित्तया 'कोहाए' क्रोधया= क्रोधोऽस्यामस्तीति क्रोधा तया क्रोधयुक्तयेत्यर्थः, एव 'माणाए' मानया=मान युक्तया, 'मायाए' मायया=मायायुक्तया, 'लोहाए' लोभया=लोभयुक्तया

(३३) आशातनाओमे से किसी भी आशातना द्वारा, तथा मिथ्या-भाव के कारण अशुभ परिणाम से, तुकारा आदि दुर्वचनों से और अत्यन्त निकट चलना, अभ्युत्थानका न करना आदि शरीर की दुष्ट चेष्टा से, क्रोध, मान, माया और लोभ से की गई, तथा भूत भविष्य वर्त्तमान रूप तीनों कालो मे की गई, सर्वथा मिथ्यो-पचारसे की गई, क्षान्त्यादि सकल-धर्मों का उल्लंघन करने वाली आशातना के कारण जो मुझसे दिवससम्बन्धी अतिचार किया

तना पैकी कोई पण आशातना वडे तथा मिथ्या भावनाने कारणे अशुभ परिणामथी, तुकारो वगेरे खराब वचनोथी अने अत्यत नजीक चालवु, अभ्युत्थान न करवु वगेरे शरीरनी दुष्ट चेष्टाथी, क्रोध, मान, माया, अने लोभथी करेली तथा भूत, भविष्य, वर्तमान रूपे त्रणे काळमा सर्वथा मिथ्या उपचारथी करेली, क्षान्त्यादि सकल धर्मोनु उल्लघन करवावाळी आशातनाना कारणे माराथी दिवस

१—'जंकिंचिमिच्छाए' इत्यारभ्य 'लोहाए' इत्यन्त यावत् सर्वत्र अर्शआदेराकृतिगणत्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्यय। आकृत्या=पठितगणविषयकशास्त्रवि-हिततत्तद्गणान्तर्गतत्वप्रयुक्तकार्यवत्तया गण्यते इत्याकृतिगणस्तस्य भावस्तत्त्व तस्मात्=आकृतिगणत्वादिति।

२—मयूरव्यसकादित्वात्समास।

सुभेण मे दिवसो वइक्कतो?' इति वाक्येनाऽपराधक्षमापणपूर्वकं दैवसिकं सुखशातादिकं पृष्ट्वा 'जत्ता मे' इत्युच्चार्य चतुर्थं 'जवणिज्ज' इत्युच्चार्य पञ्चमं 'च भे' इत्युच्चार्य षष्ठं चाऽऽवर्त्तनं कृत्वा शिरो नमयित्वा 'खामेमि खमासमणो देवसियं वइक्कमं' इति वदेत्, ततः 'आवस्सियाए' इत्युक्त्वा, अवग्रहाद्बहिर्निःसृत्य क्षमाश्रमणस्य पूर्णां पट्टिकामुच्चारयेत्। एवमेकाऽवनतिः, एकं यथाजातं, तिस्रो गुप्तयः, एकः प्रवेशः, एकं निष्क्रमणं, शिरोद्वय-क्षमापणकाले शिष्यस्यावनतं शिरः प्रथमं शिरः, गुरुणा वन्दनस्वीकृतये यच्चालितं स्वशिरस्तद् द्वितीयं शिरः, इति शिरोद्वयम्, षडावर्त्तनानि च सम्पद्यन्ते। ततः 'इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए' इत्युच्चार्य पुनरवग्रहं प्रवेष्टुं गुरुपुरतो नत-

---

भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कतो?' इस वाक्य से अपराध की क्षमाप्रार्थनापूर्वक दिवससम्बन्धी सुखशाता पूछ कर 'जत्ता भे' से चौथा 'जवणिज्ज' से पाचवाँ और 'च भे' से छठा आवर्त्तन समाप्त कर के सिर झुकावे, अनन्तर 'खामेमि खमासमणो! देवसियं वइक्कमं' यह पाठ बोले, फिर 'आवस्सियाए' कह कर अवग्रह से बाहर आकर क्षमाश्रमण की पूरी पाटीको पढे। इस प्रकार एक अवनति १, एक यथाजात २, तीन गुप्तियाँ ५, एक प्रवेश ६, एक निष्क्रमण ७, दो मस्तक ८, (क्षमापण काल में शिष्य गुरु के सामने मस्तक झुकावे, वह एक मस्तक हुआ, गुरु की तरफ से स्वीकृतिसूचक मस्तक का हिलाना दूसरा मस्तक हुआ, इस प्रकार दो मस्तक हुए) और छह आवर्त्तन १५, होते हैं।

બેઠા खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कतो આ વાકયથી અપરાધની પ્રાર્થનાપૂર્વક ક્ષમા માગવી તે પછી દિવસસંબંધી સુખ શાંતિ પૂછીને "जत्ता मे" થી ચોથુ जवणिज्ज થી પાચમુ અને च मे થી છઠુ આવર્ત્તન પૂર્ણ કરી માથુ નમાવવુ પછી "खामेमि खमासमणो देवसियं वइक्कमं" આ પાઠ બોલવો અને ફરીથી आवस्सियाए બોલીને અવગ્રહથી બહાર આવીને ક્ષમાશ્રમણની પૂરી પાટી બોલવી, આ રીતે એક અવનતિ ૧, એક યથાજાત ૨, ત્રણ ગુપ્તિ ૫, એક પ્રવેશ ૬, એક નિષ્ક્રમણ ૭, બે મસ્તક ૮(ક્ષમાપણ સમયે શિષ્ય ગુરુસમીપે મસ્તક નમાવે તે એક મસ્તક કહેવાય અને ગુરુ તરફથી સ્વીકાર સૂચક મસ્તકને હલાવવું તે બીજો મસ્તક કહેવાય એ પ્રમાણે બે મસ્તક થયા) અને છ આવર્ત્તન ૧૫ થાય છે

પછી "इच्छामि खमासमणो वंदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए" બોલીને

गथमाऽवनतिः); आज्ञालब्धयुत्तर दीक्षाग्रहणसमये परिधृतचोलपट्टक-प्रावरण सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणप्रमार्जिको यद्वाञ्जलिपुटश्चासीत्, तामवस्थामाश्रित्य वन्दनकरण यथाजातवन्दनम्, तत्पूर्वकं सन् गुप्तित्रयभूषितोऽवग्रह प्रविश्य 'अ' इत्युच्चार्याञ्जलिपुट दक्षिणभागक्रमेण परिभ्राम्य वामभागमानीय शिरसा सयोज्य 'हो' इति वदेत्, इत्थ प्रथममावर्त्तन समाप्य 'का' 'य' इत्युक्त्वा द्वितीय, 'काय' इत्यभिधाय तृतीय चावर्त्तन पूर्ववत् कृत्वा 'सफास' इति वदन् शिरो नमयित्वा गुरुचरणौ स्पृशेत्, तत्रिशन्नेव 'खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताण बहु

ही खडा हुआ दोनों हाथ ललाट प्रदेश पर रख कर गुरु के सामने शिर झुकावे (यह प्रथम अवनति)। आज्ञा प्राप्त हो जाने पर यथाजातवन्दन (दीक्षा ग्रहण के समय धारण किये हुए चद्दर चोलपट्टक के सहित एव मुह पर मुहपत्ती बान्धे हुए रजोहरण प्रमार्जिका के सहित अजली (दोनों हाथ) जोडे हुए मुनि की वन्दन विधि को यथाजातवन्दन कहते है)-पूर्वक तीन गुप्तियों के सहित अवग्रहमे प्रवेश करके 'अ' ऐसा बोल कर अजलि को दाए हाथकी तर्फसे घुमा कर बायें हाथकी तरफ लावे और बादमे मस्तक पर लगाता हुआ 'हो' ऐसा बोले। इस प्रकार-प्रथम आवर्त्तन समाप्त करके 'का' और 'य' से दूसरा आवर्त्तन पूरा करे। फिर 'काय' से तीसरा आवर्त्तन करके 'सफास' बोलता हुआ सिर झुका कर चरण स्पर्श करे। बादमें वही बैठा हुआ 'खमणिज्जो

હાથ કપાલના ભાગ ઉપર રાખીને ગુરુની સામે માથુ નમાવવુ (આ પ્રથમ અવનતિ) આજ્ઞા પ્રાપ્ત થયા પછી યથાજાતવન્દન-(દીક્ષા ગ્રહણ સમયે ધારણ કરેલ, ચાદર ચોલપટ્ટક સહિત તથા મોઢા ઉપર મુહપત્તિ બાન્ધેન, રજોહરણ ગોચ્છા સહિત અજલિ (બન્ને હાથ) જોડેલ મુનિની વન્દનવિધિને યથાજાતવન્દન કહે છે) પૂર્વક ત્રણ ગુપ્તિ સહિત અવગ્રહમા પ્રવેશ કરીને अ શબ્દનો ઉચ્ચારણ કરીને અજલિ (બે હાથ જોડી) જમણા હાથ તરફથી ઘુમાવીને ડાબા હાથ તરફ લાવવો અને પછીથી માથા ઉપર લગાવીને हो એમ બોલે એ પ્રમાણે પ્રથમ આવર્ત્તન (બે હાથ જોડીને વર્તુલ જમણી બાજુથી ડાબી બાજુ સુધી ફેરવવુ) પૂર્ણ કરીને का અને य શબ્દથી બીજુ આવર્ત્તન પૂરૂ કરીને ફરી काय થી ત્રીજુ આવર્ત્તન કરીને "सफास" બોલતા થકા માથુ નમાવીને ચરણ સ્પર્શ કરવો પછી તે જ સ્થલે બેઠા

सुभेण मे दिवसो वइक्कतो ?' इति वाक्येनाऽपराधक्षमापणपूर्वकं दैवसिकं सुखशातादिकं पृष्ट्वा 'जत्ता मे' इत्युच्चार्य चतुर्थं 'जवणिज्ज' इत्युच्चार्य पञ्चमं 'च मे' इत्युच्चार्य षष्ठं चाऽऽवर्त्तनं कृत्वा शिरो नमयित्वा 'खामेमि खमासमणो देवसियं वइक्कमं' इति वदेत्, ततः 'आवस्सियाए' इत्युक्त्वा, अवग्रहाद्बहिर्निःसृत्य क्षमाश्रमणस्य पूर्णां पट्टिकामुच्चारयेत्। एवमेकाऽवनतिः, एकं यथाजातं, तिस्रो गुप्तयः, एकः प्रवेशः, एकं निष्क्रमणं, शिरोद्वय-क्षमापणकाले शिष्यस्यावनतं शिरः प्रथमं शिरः, गुरुणा वन्दनस्वीकृतये यच्चालितं स्वशिरस्तद् द्वितीयं शिरः, इति शिरोद्वयम्, षडावर्त्तनानि च सम्पद्यन्ते। ततः 'इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए' इत्युच्चार्य पुनरवग्रहं प्रवेष्टुं गुरुपुरतो नत-

मे किलामो अप्पकिलन्ताणं बहुसुभेण मे दिवसो वइक्कतो ?' इस वाक्य से अपराध की क्षमाप्रार्थनापूर्वक दिवससम्बन्धी सुखशाता पूछ कर 'जत्ता मे' से चौथा 'जवणिज्ज' से पाचवाँ और 'च मे' से छठा आवर्त्तन समाप्त कर के सिर झुकावे, अनन्तर 'खामेमि खमासमणो! देवसियं वइक्कमं' यह पाठ बोले, फिर 'आवस्सियाए' कह कर अवग्रह से बाहर आकर क्षमाश्रमण की पूरी पाटीको पढे। इस प्रकार एक अवनति १, एक यथाजात २, तीन गुप्तियाँ ५, एक प्रवेश ६, एक निष्क्रमण ७, दो मस्तक ८, (क्षमापण काल में शिष्य गुरु के सामने मस्तक झुकावे, वह एक मस्तक हुआ, गुरु की तरफ से स्वीकृतिसूचक मस्तक का हिलाना दूसरा मस्तक हुआ, इस प्रकार दो मस्तक हुए) और छह आवर्त्तन १५, होते हैं।

બહુ खमणिज्जो मे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेण मे दिवसो वइक्कतो આ વાકયથી અપરાધની પ્રાર્થનાપૂર્વક ક્ષમા માગવી તે પછી દિવસસંબંધી સુખ શાતિ પૂછીને "जत्ता मे" થી ચોથુ जवणिज्ज થી પાચમુ અને च मे થી છઠ્ઠુ આવર્ત્તન પૂર્ણ કરી માથુ નમાવવુ પછી "खामेमि खमासमणो देवसियं वइक्कमं" આ પાઠ બોલવો અને ફરીથી आवस्सियाए બોલીને અવગ્રહથી બહાર આવીને ક્ષમાશ્રમણની પૂરી પાટી બોલવી, આ રીતે એક અવનતિ ૧, એક યથાજાત ૨, ત્રણ ગુપ્તિ ૫, એક પ્રવેશ ૬, એક નિષ્ક્રમણ ૭, બે મસ્તક ૮(ક્ષમાપણ સમયે શિષ્ય ગુરુસમીપે મસ્તક નમાવે તે એક મસ્તક કહેવાય અને ગુરુ તરફથી સ્વીકાર સૂચક મસ્તકને હલાવવું તે બીજો મસ્તક કહેવાય એ પ્રમાણે બે મસ્તક થયા) અને છ આવર્ત્તન ૧૫ થાય છે

પછી "इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए" બોલીને

मस्तकं प्रार्थयेत्, (इय द्वितीयाऽवनतिः), गुर्वाज्ञया यथाविध्यवग्रहं प्रविश्य पूर्ववद्वन्दमानस्तत्रैवाऽवग्रहे 'खमासमण'–पट्टिका समापयेत्, इह निष्क्रमणं नास्ति, अत्रैकाऽवनतिरेकः प्रवेशः षडावर्त्तनानि शिरोद्वयमिति पूर्वापरसकलनया पञ्चविंशतिर्विधयः । उक्तञ्च भगवता समवायाङ्गे—

'[1]दो ओणयं अहाजायं, किइकम्मं बारसावयं ।
चउस्सिरं तिगुत्तं च, दुपवेसं एगनिक्खमणं ॥ १ ॥' इति ॥सू० १॥

इति श्रीविश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित कलापाऽऽलापक–प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहू–छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'–पदभूषित कोल्हापुर–राजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्यश्री–घासीलाल–व्रतिविरचितायां श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि–तोषण्याख्यायां व्याख्यायां वन्दनाख्यं तृतीयमध्ययनं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अनन्तर 'इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए' बोल कर फिरसे अवग्रहमें प्रवेश करने के लिये गुरु के सामने सिर झुकावे (यह दूसरी अवनति हुई)। गुरु की आज्ञा मिलने पर विधिपूर्वक अवग्रहमें प्रवेश करके पहले की भाँति वन्दना करता हुआ अवग्रहमें ही 'खमासमण' की पाटी पूरी बोले। यहा पर निष्क्रमण नहीं होता है, अतः एक अवनति १६, एक प्रवेश १७, छह आवर्त्तन २३, और दो मस्तक २५ होते हैं। इस प्रकार पूर्वापर की संख्या जोडने से वन्दना की पचीस विधियां होती हैं ॥सू०१॥

इति तृतीय अध्ययन संपूर्ण ॥ ३ ॥

ફરીથી અવગ્રહમાં પ્રવેશ કરવાને માટે ગુરુની સામે માથું નમાવવું (આ બીજી અવનતિ થઈ) ગુરુની આજ્ઞા મેળવી વિધિપૂર્વક અવગ્રહમાં પ્રવેશ કરીને પ્રથમ પ્રમાણે વંદના કરતા થકા અવગ્રહમાં જ "खमासमण" ની પાટી પૂરી બોલવી અહિં નિષ્ક્રમણ થતું નથી એ માટે એક અવનતિ, એક પ્રવેશ, છ આવર્ત્તન, અને બે માથા થાય છે આ રીતે પૂર્વાપરની સંખ્યા જોડવાથી વંદનાની પચ્ચીસ વિધિઓ થાય છે (સૂ૦ ૧)

ઇતિ તૃતીય અધ્યયન સંપૂર્ણ

---

१ छाया–'द्वयवनतं यथाजातं, कृतिकर्म द्वादशावर्त्तम् ।
चतुःशिरस्त्रिगुप्तं च द्विप्रवेशमेकनिष्क्रमणम्' ॥१॥ इति ।

अथ प्रतिक्रमणनामक चतुर्थमध्ययनम्

पूर्वाध्ययने वन्दनापूर्वक गुरुसमीपे 'पडिकमामि' इत्यनेन प्रतिक्रमण-प्रतिज्ञा प्रदर्शिता, सम्प्रति चतुर्थाध्ययने तदेव प्रतिक्रमणमाह-अथवा पूर्वाध्ययनेऽर्हत्प्रणीतसामायिकानुष्ठातभिर्गुरोर्वन्दनादिरूपा प्रतिपत्तिः कर्तव्येत्युक्तम्, अत्र चतुर्थाध्ययने तस्या प्रतिपत्तेरकरणेन प्रस्खलितस्यात्मनो निन्दा प्ररूप्यते, सूत्रे 'खलियस्स निंदणा' इत्युक्तत्वात्, यद्वा वन्दनाध्ययने वन्दनादिरूपया मुनिभक्त्या कर्मक्षयो दर्शित, इह तु मिथ्यात्वाऽविरत्यादिपरित्यागेन कर्ममूल प्रतिपि-

। चौथा अध्ययन ।

तीसरे अध्ययनमे वन्दनापूर्वक गुरु महाराजके समीप प्रतिक्रमण की प्रतिज्ञा करने की विधि दिखलाई गई है। अब इस चौथे अध्ययन में उसी प्रतिक्रमण को दिखलाते हैं। अथवा तीसरे अध्ययनमें 'अर्हन्त भगवान से उपदिष्ट सामायिक करनेवाले भव्यो को गुरुकी वन्दनारूप प्रतिपत्ति (सेवा) करनी चाहिये' ऐसा कहा है, अब इस चौथे अध्ययन मे वन्दना आदि न करने के कारण स्खलित आत्मा की निन्दा की जाती है, अथवा वन्दनाध्ययन में यह दिखलाया गया है कि 'वन्दनादिरूप मुनिभक्ति से कर्मक्षय होता है' और इस अध्ययनमें मिथ्यात्व अविरति आदिका त्याग

ચોથુ અધ્યયન

ત્રીજા અધ્યયનમા વંદનાપૂર્વક ગુરુ મહારાજની સમીપ પ્રતિક્રમણ કરવા માટે પ્રતિજ્ઞા કરવાની વિધિ બતાવવામા આવી છે હવે આ ચોથા અધ્યયનમા તે જ પ્રતિક્રમણને બતાવે છે અથવા ત્રીજા અધ્યયનમા 'અર્હન્ત ભગવાનથી ઉપદેશ કરાએલી, સામાયિક કરનારા ભવ્ય જીવોને ગુરુની વંદનારૂપ પ્રતિપત્તિ (સેવા) કરવી જોઈએ' એમ કહેલ છે, હવે આ ચોથા અધ્યયનમા વંદના વિગેરે ન કરવાના કારણે સ્ખલિત આત્માની નિંદા કરવામા આવે છે, અથવા વંદના અધ્યયનમા આ બતાવવામા આવ્યુ છે કે 'વંદનાદિરૂપ મુનિ-ભક્તિથી કર્મનો ક્ષય થાય છે' અને આ અધ્યયનમા મિથ્યાત્વ અવિરતિ વિગેરેનો

यते । प्रतिशब्दोऽत्र प्रातिकूल्ये तेन प्रतिकूलं क्रमणं=पराहृत्य गमनं–प्रतिक्रमणं[1], पूर्वं शुभयोगेभ्यो विनिष्क्रम्याऽशुभयोगसम्प्राप्तस्यात्मनः पुनस्तेष्वेव शुभयोगेषु सक्रमणमित्यर्थः । तथा चोक्तम्—

" स्वस्थानादपरस्थाने, प्रमादात्संगतस्य यत् ।
तत्रैव क्रमणं भूयः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ " इति,
" गतस्यौदयिकं भावं क्षायोपशमिकात्पुनः ।
क्षायोपशमिकाऽऽवेशः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ " इति च ।

यद्वा प्रतिशब्द आभिमुख्यार्थकः 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इत्यादौ

करने से कर्मनिदान का प्रतिषेध दिखलाया जाता है । शुभ योग से अशुभयोगमें पहुंची हुई आत्माको फिर से शुभयोगमें लेजानेका नाम प्रतिक्रमण है । जैसा कि कहा है—

' प्रमाद वश अपने स्वरूपसे अशुभ योगमें प्रवृत्त आत्माका जो फिरसे अपने स्वरूपमें आना उसे प्रतिक्रमण कहते हैं ॥१॥'
तथा—

'क्षायोपशमिक भावसे औदयिक भाव को प्राप्त आत्मा के फिरसे क्षायोपशमिक भावमें प्रवेश करने को प्रतिक्रमण कहते हैं ॥ १ ॥'

अथवा जिससे मोक्ष के सन्मुख जाया जाय, या शुभ

ત્યાગ કરવાથી કર્મનિદાનનો પ્રતિષેધ બતાવવામા આવે છે શુભયોગથી અશુભયોગમા પહોંચેલ આત્માને ફરીથી શુભયોગમા લઇ જવાનુ નામ પ્રતિક્રમણ છે જેમ કહ્યુ છે કે-

"પ્રમાદવશ પોતાના સ્વરૂપથી અશુભ યોગમા પ્રવૃત્ત આત્માનું ફરીથી પોતાના સ્વરૂપમા આવવુ તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે" ॥ ૧ ॥

તથા ક્ષાયોપશમિક ભાવથી ઔદયિક ભાવને પામેલ આત્માને ફરીથી ક્ષાયોપશમિક ભાવમા પ્રવેશ કરવાને પ્રતિક્રમણ કહે છે (૧)

અથવા જેનાથી મોક્ષની સન્મુખ જવાય અથવા શુભયોગોમા વારવાર

[1] १–प्रतिक्रमणशब्दश्च प्रति+पूर्वकात् 'क्रमु पादविक्षेपे' इत्यस्मात्

तथादर्शनात्, क्रमुधातुश्च गमनार्थकस्तेन प्रति=मोक्षाभिमुख क्रम्यते=गम्यते-ऽनेनेति, अथवा प्रतिशब्दस्य भृशार्थकत्वाच्छुभयोगेषु वार वारं क्रमण प्रतिक्रमणम्। तत्र (प्रतिक्रमणे) ध्यानविषयीकृतम्-'आगमे तिविहे' इति पट्टिकाया आरभ्य 'इच्छामि ठामि' इति पर्यन्त सर्वं प्रस्फुटं वक्तव्य, तदनु 'तिक्खुत्तो' इत्यस्य पाठेन सविधि वन्दना विधाय श्रमणसूत्रस्याज्ञा ग्रहीतव्या, ततो नमस्कारमन्त्रोच्चारणपूर्वक 'करेमि भत्ते' इत्युच्चार्य माङ्गलिकमुच्चारणीयमिति। सम्प्रति माङ्गलिकसूत्रमाह—'चत्तारि' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

चत्तारि मंगल-अरिहता मगल, सिद्धा मगल, साहू मगल, केवलिपन्नत्तो धम्मो मगल। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरण पवज्जामि,-अरिहते सरण पवज्जामि, सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलिपण्णत्त धम्मं सरण पवज्जामि ॥ सू० १ ॥

योगों में वार वार जो सक्रमण (जाना) उसको प्रतिक्रमण कहते हैं। इसमें 'आगमे तिविहे' से लेकर 'इच्छामि ठामि' तक ध्यानमें चिन्तित सब पाटियों (पाठों) को प्रगट रूपसे बोले, बादमें 'तिक्खुत्तो' के पाठसे विधिपूर्वक वन्दना करके श्रमणसूत्र की आज्ञा लेवें तब नमस्कार मन्त्र के उच्चारणपूर्वक 'करेमि भते' की पाटी बोल कर मागलिक बोले, ऐसा नियम है, इस कारण यहा मागलिक कहते हैं—'चत्तारि' इत्यादि।

सक्रमणु (જવુ) તેને પ્રતિક્રમણુ કહે છે, એમા "आगमे तिविहे" થી લઇને 'इच्छामि ठामि' સુધી ધ્યાનમા ચિંતિત બધી પાટિઓ (પાઠ)ને જાહેર રૂપે બોલે પછી 'तिक्खुत्तो' ના પાઠથી વિધિ-પૂર્વક વદના કરીને શ્રમણુ સૂત્રની આજ્ઞા લઇ નમસ્કાર મત્રના ઉચ્ચારણુ પૂર્વક (करेमि भते) ની પાટી બોલીને માગલિક બોલવુ એવો નિયમ છે એટલા માટે અહિંયા માગલિક કહે છે 'चत्तारि' इत्यादि

यते । प्रतिशब्दोऽत्र प्रातिकूल्ये तेन प्रतिकूल क्रमणम्=परावृत्य गमनं-प्रतिक्रमणं[1], पूर्वं शुभयोगेभ्यो विनिष्क्रम्याऽशुभयोगसम्प्राप्तस्यात्मनः पुनस्तेष्वेव शुभयोगेषु सक्रमणमित्यर्थः । तथा चोक्तम्—

" स्वस्थानाद्परस्थानं, प्रमादात्संगतस्य यत् ।
तत्रैव क्रमणं भूयः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ " इति,
" गतस्यौदयिकं भावं क्षायोपशमिकात्पुनः ।
क्षायोपशमिकाऽऽवेशः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ " इति च ।

यद्वा प्रतिशब्द आभिमुख्यार्थकः 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इत्यादौ

करने से कर्मनिदान का प्रतिषेध दिखलाया जाता है । शुभ योग से अशुभयोगमें पहुंची हुई आत्माको फिर से शुभयोगमें लेजानेका नाम प्रतिक्रमण है । जैसा कि कहा है—

'प्रमाद वश अपने स्वरूपसे अशुभ योगमें प्रवृत्त आत्माका जो फिरसे अपने स्वरूपमें आना उसे प्रतिक्रमण कहते हैं ॥१॥'

तथा—

'क्षायोपशमिक भावसे औदयिक भाव को प्राप्त आत्मा के फिरसे क्षायोपशमिक भावमें प्रवेश करने को प्रतिक्रमण कहते हैं ॥ १ ॥'

अथवा जिससे मोक्ष के सन्मुख जाया जाय, या शुभ

त्याग करवाथी कर्मनिदाननो प्रतिषेध बतावयामा आवे छे शुभयोगथी अशुभयोगमा पहोंचेल आत्माने फरीथी शुभयोगमा लई जवानु नाम प्रतिक्रमण छे जेम कह्यु छे के-

"प्रमादवश पोताना स्वरूपथी अशुभ योगमा प्रवृत्त आत्मानु फरीथी पोताना स्वरूपमा आववु तेने प्रतिक्रमण कहे छे" ॥ १ ॥

तथा क्षायोपशमिक भावथी औदयिक भावने पामेल आत्माने फरीथी क्षायोपशमिक भावमा प्रवेश करवाने प्रतिक्रमण कहे छे (१)

अथवा जेनाथी मोक्षनी सन्मुख जवाय अथवा शुभयोगोमा वारवार

१-प्रतिक्रमणशब्दश्च प्रति+पूर्वकात् 'क्रमु पादविक्षेपे' इत्यस्मात् ल्युट् प्रत्यये सिद्ध ।

तथादर्शनात्, क्रमुधातुश्च गमनार्थकस्तेन प्रति=मोक्षाभिमुखं क्रम्यते=गम्यते-ऽनेनेति, अथवा प्रतिशब्दस्य भृशार्थकत्वाच्छुभयोगेषु वारं वारं क्रमणं प्रतिक्रमणम्। तत्र (प्रतिक्रमणे) ध्यानविषयीकृतम्-'आगमे तिविहे' इति पट्टिकाया आरभ्य 'इच्छामि ठामि' इति पर्यन्तं सर्वं प्रस्फुटं वक्तव्यं, तदनु 'तिक्खुत्तो' इत्यस्य पाठेन सविधि वन्दना विधाय श्रमणसूत्रस्याज्ञा ग्रहीतव्या, ततो नमस्कारमन्त्रोच्चारणपूर्वकं 'करेमि भंते' इत्युच्चार्य माङ्गलिकमुच्चारणीयमिति। सम्प्रति माङ्गलिकसूत्रमाह—'चत्तारि' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि,-अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥ सू० १ ॥

योगों में वार वार जो संक्रमण (जाना) उसको प्रतिक्रमण कहते हैं। इसमें 'आगमे तिविहे' से लेकर 'इच्छामि ठामि' तक ध्यानमें चिन्तित सब पाटियों (पाठों) को प्रगट रूपसे बोले, बादमें 'तिक्खुत्तो' के पाठसे विधिपूर्वक वन्दना करके श्रमणसूत्र की आज्ञा लेवें तब नमस्कार मन्त्र के उच्चारणपूर्वक 'करेमि भंते' की पाटी बोल कर मांगलिक बोले, ऐसा नियम है, इस कारण यहां मांगलिक कहते हैं—'चत्तारि' इत्यादि।

સંક્રમણ (જવું) તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે, એમાં "आगमे तिविहे" થી લઈને 'इच्छामि ठामि' સુધી ધ્યાનમાં ચિંતિત બધી પાટિઓ (પાઠ)ને જાહેર રૂપે બોલે પછી 'तिक्खुत्तो' ના પાઠથી વિધિ-પૂર્વક વંદના કરીને શ્રમણ સૂત્રની આજ્ઞા લઈ નમસ્કાર મંત્રના ઉચ્ચારણ પૂર્વક (करेमि भंते) ની પાટી બોલીને માંગલિક બોલવું એવો નિયમ છે એટલા માટે અહિંયા માંગલિક કહે છે 'चत्तारि' इत्यादि

यते । प्रतिशब्दोऽत्र प्रातिकूल्ये तेन प्रतिकूलं क्रमणम्=परावृत्य गमनं–प्रतिक्रमणं¹, पूर्वं शुभयोगेभ्यो विनिष्क्रम्याऽशुभयोगसमाप्तस्यात्मनः पुनस्तेष्वेव शुभयोगेषु सक्रमणमित्यर्थः । तथा चोक्तम्—

" स्वस्थानाद्परस्थाने, प्रमादात्संगतस्य यत् ।
तत्रैव क्रमणं भूयः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ " इति,
" गतस्यौदयिकं भावं क्षायोपशमिकात्पुनः ।
क्षायोपशमिकाऽऽवेशः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ " इति च ।

यद्वा प्रतिशब्द आभिमुख्यार्थकः 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इत्यादी

करने से कर्मनिदान का प्रतिषेध दिखलाया जाता है । शुभ योग से अशुभयोगमें पहुंची हुई आत्माको फिर से शुभयोगमें लेजानेका नाम प्रतिक्रमण है । जैसा कि कहा है—

'प्रमाद वश अपने स्वरूपसे अशुभ योगमें प्रवृत्त आत्माका जो फिरसे अपने स्वरूपमें आना उसे प्रतिक्रमण कहते हैं ॥१॥'

तथा—

'क्षायोपशमिक भावसे औदयिक भाव को प्राप्त आत्मा के फिरसे क्षायोपशमिक भावमें प्रवेश करने को प्रतिक्रमण कहते हैं ॥ १ ॥'

अथवा जिससे मोक्ष के सन्मुख जाया जाय, या शुभ

ત્યાગ કરવાથી કર્મનિદાનનો પ્રતિષેધ બતાવવામા આવે છે શુભયોગથી અશુભયોગમા પહોંચેલ આત્માને ફરીથી શુભયોગમા લઈ જવાનું નામ પ્રતિક્રમણ છે જેમ કહ્યુ છે કે–

"પ્રમાદવશ પોતામા સ્વરૂપથી અશુભ યોગમા પ્રવૃત્ત આત્માનું ફરીથી પોતામા સ્વરૂપમા આવવુ તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે" ॥ ૧ ॥

તથા ક્ષાયોપશમિક ભાવથી ઔદયિક ભાવને પામેલ આત્માને ફરીથી ક્ષાયોપશમિક ભાવમા પ્રવેશ કરવાને પ્રતિક્રમણ કહે છે (૧)

અથવા જેનાથી મોક્ષની સન્મુખ જવાય અથવા શુભયોગોમા વારવાર

१–प्रतिक्रमणशब्दश्च प्रति+पूर्वकात् 'क्रमु पादविक्षेपे' इत्यस्मात् ल्युट् प्रत्यये सिद्धः ।

तथादर्शनात्, क्रमुधातुश्च गमनार्थकस्तेन प्रति=मोक्षाभिमुखं क्रम्यते=गम्यतेऽनेनेति, अथवा प्रतिशब्दस्य भृशार्थकत्वाच्छुभयोगेषु वारं वारं क्रमणं प्रतिक्रमणम्। तत्र (प्रतिक्रमणे) ध्यानविषयीकृतम्-'आगमे तिविहे' इति पट्टिकाया आरभ्य 'इच्छामि ठामि' इति पर्यन्तं सर्वं प्रस्फुटं वक्तव्यं, तदनु 'तिक्खुत्तो' इत्यस्य पाठेन सविधि वन्दनां विधाय श्रमणसूत्रस्याज्ञा ग्रहीतव्या, ततो नमस्कारमन्त्रोच्चारणपूर्वकं 'करेमि भंते' इत्युच्चार्य माङ्गलिकमुच्चारणीयमिति। सम्प्रति माङ्गलिकसूत्रमाह—'चत्तारि' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि,-अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥ सू० १ ॥

योगों में वार वार जो सक्रमण (जाना) उसको प्रतिक्रमण कहते हैं। इसमें 'आगमे तिविहे' से लेकर 'इच्छामि ठामि' तक ध्यानमें चिन्तित सब पाटियों (पाठों) को प्रगट रूपसे बोले, बादमें 'तिक्खुत्तो' के पाठसे विधिपूर्वक वन्दना करके श्रमणसूत्र की आज्ञा लेवें तब नमस्कार मन्त्र के उच्चारणपूर्वक 'करेमि भंते' की पाटी बोल कर मांगलिक बोले, ऐसा नियम है, इस कारण यहां मांगलिक कहते हैं—'चत्तारि' इत्यादि।

સક્રમણ (જવું) તેને પ્રતિક્રમણ કહે છે, એમાં "आगमे तिविहे" થી લઈને 'इच्छामि ठामि' સુધી ધ્યાનમાં ચિંતિત બધી પાટિઓ (પાઠ)ને જાહેર રૂપે બોલે પછી 'तिक्खुत्तो' ના પાઠથી વિધિ-પૂર્વક વંદના કરીને શ્રમણ સૂત્રની આજ્ઞા લઈ નમસ્કાર મંત્રના ઉચ્ચારણ પૂર્વક (करेमि भंते) ની પાટી બોલીને માંગલિક બોલવું એવો નિયમ છે એટલા માટે અહિંયા માંગલિક કહે છે 'चत्तारि' इत्यादि

॥ छाया ॥

चत्वारो मङ्गलम्-अर्हन्तो मङ्गलं, सिद्धा मङ्गलं, साधवो मङ्गलं, केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो मङ्गलम् । चत्वारो लोकोत्तमाः-अर्हन्तो लोकोत्तमाः, सिद्धा लोकोत्तमाः, साधवो लोकोत्तमाः, केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो लोकोत्तमः । चतुरः शरणं प्रपद्ये-अर्हतः शरणं प्रपद्ये, सिद्धान् शरणं प्रपद्ये, साधून् शरणं प्रपद्ये, केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं शरणं प्रपद्ये ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

'चत्तारि' चत्वारः, 'मंगल'-मङ्गलम्-मङ्ग'=श्रुतचारित्रादिरूपो धर्मस्तं लाति=आदत्त इति [1]मङ्गलम्, यद्वा मां गालयति=भवादपनयतीति, मङ्गनं [2]मङ्गः=भूषणं=ज्ञानदर्शनादि तं लाति आदत्त इति वा मङ्गलम्, अथवा मङ्ग्यते=प्राप्यते हितमनेनेति [3]मङ्गलम् । अत्रैकवचनं तु अर्हदादिचतुष्टयनिष्ठस्य मङ्गलत्वस्यैकत्वेन 'सूत्राणि प्रमाणम्' इत्यादिवत्, तत्र हि प्रमितिकरणतावच्छेदकसूत्रत्वावच्छिन्नयावत्सूत्रनिष्ठमेकमेवेत्यवच्छेदकैकत्वमादायैकवचनप्रयोगः, [4]स्पष्टमिदमन्यत्र विस्तरेण । 'चत्तारि' इत्युक्तं, सम्प्रति चतुःपदार्थानाह-'अरिहंता'

चार मंगलस्वरूप हैं, मंगल उसको कहते हैं जो श्रुत चारित्र रूप धर्म को देनेवाला हो, अथवा मुझ (नमस्कार करनेवाले) को संसारसे पार करने वाला हो, या मङ्ग=ज्ञान दर्शन आदि भूषण को धारण करनेवाला हो, अथवा जिसके द्वारा हितकी प्राप्ति हो । इस प्रकार सामान्यतया मंगलका निरूपण करके अब चार शब्दसे जो लिए जाते हैं उन का निरूपण करते हैं-अर्हंत

ચાર મંગળ સ્વરૂપ છે, મંગળ તેને કહે છે કે જે શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મને દેવાવાળો હોય અથવા મને (નમસ્કાર કરવાવાળાને) સંસારથી પાર કરનારા હોય અથવા मङ्ग જ્ઞાન દર્શન વિગેરે ભૂષણને ધારણ કરવાવાળા હોય અથવા જેના દ્વારા હિતની પ્રાપ્તિ થાય, આવી રીતે સામાન્ય પ્રકારે મંગળનું નિરૂપણ કરીને હવે ચારથી જે લેવાય તેનું નિરૂપણ કરે છે અર્હંત-સમસ્ત વિઘ્નોના

१- 'आतोऽनुपसर्गे कः' (३।२।३) इति कप्रत्यये 'आतो लोप इटि' त्यालोपः।
२- मङ्ग.-'मकि मण्डने' भौवादिक आत्मनेपदी, सिद्धिः पृषोदरादिपाठात् ।
३- 'मङ्गलम्'-गत्यर्थकात् 'मगि' धातोरौणादिकोऽलच् प्रत्ययः ।
४- अन्यत्र=व्युत्पत्तिवादादिषु ।

अर्हन्तः 'मंगल' मङ्गलम्-सकलविघ्नविनाशकत्वान्मङ्गलस्वरूपत्वेन सामानाधिकरण्यमुभयोः, मङ्गलत्वस्य जातेः सर्वेष्वर्हत्स्वेकत्वेनैकवचनमिति प्रागुक्तं न विस्मर्तव्यम्। 'सिद्धा मंगलं' निगदस्पष्टमिदम्। 'साहू मंगलं' साधवो मङ्गलम्, साधुपदेनाऽऽचार्योपाध्याया अपि लक्ष्यन्ते तेषामपि साधुताऽवच्छेदकधर्मवत्त्वात्, अर्हदादिपदव्याख्या च नमस्कारमन्त्रे गता। 'केवलिपण्णत्तो धम्मो' केवल=केवलज्ञानमस्त्येषामिति केवलिनस्तैः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः केवलिप्रज्ञप्तः', धर्म =श्रुतचारित्रलक्षणः 'मंगलं'=मङ्गलस्वरूपः। 'चत्तारि' चत्वारः 'लोगुत्तमा' लोकेषु=द्रव्यभावरूपेषु उत्तमाः=श्रेष्ठा लोकोत्तमाः। 'लोकस्योत्तमाः' इति व्याख्यानं तु न सम्यक्, निर्द्धारणषष्ठ्यामेकवचनान्ततस्यासङ्गतेः, 'न निर्द्धारणे' (२।२।१०) इति समासप्रतिषेधाच्च। 'अरिहंता लोगुत्तमा' अर्हन्तो लोकोत्तमाः। 'सिद्धा लोगुत्तमा' सिद्धा लोकोत्तमाः। 'साहू लोकोत्तमा' साधवो लोकोत्तमा' 'केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो' केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो लोकोत्तमः। 'चत्तारि' चतुरः, 'सरणं' शरणम् 'पवज्जामि' प्रपद्ये=प्राप्नोमि चतुर्गतिभ्रमणभयपरित्राणायेत्यर्थात्। 'अरिहंते सरणं पवज्जामि' अर्हतः शरणं प्रपद्ये। 'सिद्धे सरणं पवज्जामि' सिद्धान् शरणं प्रपद्ये। 'केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि' केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं शरणं प्रपद्ये, निगदव्याख्यातमिदं सर्वम् ॥सू० १॥

समस्त विघ्नों के विनाशक होने से मंगलस्वरूप हैं १। वैसे ही सिद्ध मंगलस्वरूप हैं २। साधु पदसे यहाँ पर साधु, आचार्य, उपाध्याय, तीनों का ग्रहण है अत एव अर्थ हुआ कि-साधु, आचार्य तथा उपाध्याय मंगलस्वरूप हैं ३। केवली प्ररूपित धर्म मंगलस्वरूप है ४। ये ही चार लोकमें उत्तम हैं अत एव इन्हीं चारों की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ, क्यों कि चतुर्गति-भ्रमण के भय को हटाने वाले ये ही चार हैं॥ सू० १॥

નાશ કરવાવાળા હોવાથી મંગલસ્વરૂપ છે (૧) તેવી જ રીતે સિદ્ધ મંગલસ્વરૂપ છે (૨) સાધુ પદથી અહિંયા સાધુ, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય, ત્રણેનું ગ્રહણ છે એટલા માટે અર્થ થયો કે સાધુ, આચાર્ય તથા ઉપાધ્યાય મંગલસ્વરૂપ છે (૩) કેવળિપ્રરૂપિત ધર્મ મંગળસ્વરૂપ છે (૪) એ જ ચાર લોકમાં ઉત્તમ છે એટલે એ ચારોના શરણને હું પ્રાપ્ત થાઉં છું કારણ કે ચતુર્ગતિ-ભ્રમણના ભયને હટાવવાવાળા એ જ ચાર છે

॥ छाया ॥

चत्वारो मङ्गलम्-अर्हन्तो मङ्गलं, सिद्धा मङ्गलं, साधवो मङ्गलं, केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो मङ्गलम् । चत्वारो लोकोत्तमाः-अर्हन्तो लोकोत्तमाः, सिद्धा लोकोत्तमाः, साधवो लोकोत्तमाः, केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो लोकोत्तमः । चतुरः शरण मपद्ये-अर्हतः शरण मपद्ये, सिद्धान् शरण मपद्ये, साधून् शरण मपद्ये, केवलिप्रज्ञप्त धर्मं शरण मपद्ये ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

'चत्तारि' चत्वार', 'मंगल'-मङ्गलम्-मङ्ग'=श्रुतचारित्रादिरूपो धर्मस्तं लाति=आदत्त इति [1]मङ्गलम्, यद्वा मां गालयति=भवादपनयतीति, मङ्गन [2]मङ्गः=भूषणं=ज्ञानदर्शनादि त लाति आदत्त इति वा मङ्गलम्, अथवा मङ्ग्यते=प्राप्यते हितमनेनेति [3]मङ्गलम् । अनेकवचनं तु अर्हदादिचतुष्टयनिष्ठस्य मङ्गलत्वस्यैकत्वेन 'सूत्राणि प्रमाणम्' इत्यादिवत्, तत्र हि प्रमितिकरणतावच्छेदक सूत्रत्वावच्छिन्नयावत्सूत्रनिष्ठमेकमेवेत्यवच्छेदकैकत्वमादायैकवचनप्रयोगः, [4]स्पष्टमिदमन्यत्र विस्तरेण । 'चत्तारि' इत्युक्त, सम्प्रति चतुःपदार्थानाह-'अरिहंता'

चार मंगलस्वरूप हैं, मंगल उसको कहते हैं जो श्रुत चारित्र रूप धर्म को देनेवाला हो, अथवा मुझ (नमस्कार करनेवाले) को संसारसे पार करने वाला हो, या मङ्ग=ज्ञान दर्शन आदि भूषण को धारण करनेवाला हो, अथवा जिसके द्वारा हितकी प्राप्ति हो । इस प्रकार सामान्यतया मंगलका निरूपण करके अब चार शब्दसे जो लिए जाते हैं उन का निरूपण करते हैं-अर्हन्त

ચાર મંગળ સ્વરૂપ છે, મંગળ તેને કહે છે કે જે શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મને દેવાવાળો હોય અથવા મને (નમસ્કાર કરવાવાળાને) સંસારથી પાર કરનારા હોય અથવા मङ्ग જ્ઞાન દર્શન વિગેરે ભૂષણને ધારણ કરવાવાળા હોય અથવા જેના દ્વારા હિતની પ્રાપ્તિ થાય, આવી રીતે સામાન્ય પ્રકારે મંગળનું નિરૂપણ કરીને હવે ચારથી જે લેવાય તેનું નિરૂપણ કરે છે અર્હંત-સમસ્ત વિઘ્નોના

१- 'आतोऽनुपसर्गे कः' (३।२।३) इति कप्रत्यये 'आतो लोप इटी'-त्यालोपः।

२- मङ्ग.-'मकि मण्डने' भौवादिक आत्मनेपदी, सिद्धि॰ पृषोदरादिपाठात्।

३- 'मङ्गलम्'-गत्यर्थकात् 'मगि' धातोरौणादिकोऽलच् प्रत्ययः ।

४- अन्यत्र=व्युत्पत्तिवादादिषु ।

अर्हन्तः 'मंगलं' मङ्गलम्-सकलविघ्नविनाशकत्वान्मङ्गलस्वरूपत्वेन सामानाधिकरण्यमुभयोः, मङ्गलत्वस्य जातेः सर्वेष्वर्हत्स्वेकत्वेनैकवचनमिति प्रागुक्तं न विस्मर्तव्यम् । 'सिद्धा मंगलं' निगदस्पष्टमिदम् । 'साहू मंगलं' साधवो मङ्गलम्, साधुपदेनाऽऽचार्योपाध्याया अपि लक्ष्यन्ते तेषामपि साधुताऽवच्छेदकधर्मवत्त्वात्, अर्हदादिपदव्याख्या च नमस्कारमन्त्रे गता । 'केवलिपण्णत्तो धम्मो' केवल=केवलज्ञानमस्त्येषामिति केवलिनस्तैः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः केवलिप्रज्ञप्त', धर्म =श्रुतचारित्रलक्षणः 'मंगलं'=मङ्गलस्वरूपः । 'चत्तारि' चत्वारः 'लोगुत्तमा' लोकेषु=द्रव्यभावरूपेषु उत्तमा'=श्रेष्ठा लोकोत्तमाः । 'लोकस्योत्तमाः' इति व्याख्यानं तु न सम्यक्, निर्द्धारणषष्ठ्यामेकवचनान्ततलस्यासङ्गतेः, 'न निर्द्धारणे' (२।२।१०) इति समासप्रतिषेधाच्च । 'अरिहंता लोगुत्तमा' अर्हन्तो लोकोत्तमाः । 'सिद्धा लोगुत्तमा' सिद्धा लोकोत्तमाः । 'साहू लोकोत्तमा' साधवो लोकोत्तमाः 'केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो' केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो लोकोत्तम. । 'चत्तारि' चतुरः, 'सरणं' शरणम् 'पवज्जामि' प्रपद्ये=प्राप्नोमि चतुर्गतिभ्रमणभयपरित्राणायेत्यर्थात् । 'अरिहंते सरणं पवज्जामि' अर्हतः शरणं प्रपद्ये । 'सिद्धे सरणं पवज्जामि' सिद्धान् शरणं प्रपद्ये । 'केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि' केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं शरणं प्रपद्ये, निगदव्याख्यातमिदं सर्वम् ॥सू० १॥

समस्त विघ्नों के विनाशक होने से मंगलस्वरूप है १। वैसे ही सिद्ध मंगलस्वरूप है २। साधु पदसे यहां पर साधु, आचार्य, उपाध्याय, तीनों का ग्रहण है अत एव अर्थ हुआ कि-साधु, आचार्य तथा उपाध्याय मंगलस्वरूप है ३। केवली प्ररूपित धर्म मंगलस्वरूप है ४। ये ही चार लोकमें उत्तम है अत एव इन्हीं चारों की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ, क्यों कि चतुर्गति-भ्रमण के भय को हटाने वाले ये ही चार हैं ॥ सू० १ ॥

નાશ કરવાવાળા હોવાથી મંગલસ્વરૂપ છે (૧) તેવી જ રીતે સિદ્ધ મંગલસ્વરૂપ છે (૨) સાધુ પદથી અહિંયા સાધુ, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય, ત્રણેનું ગ્રહણ છે એટલા માટે અર્થ થયો કે સાધુ, આચાર્ય તથા ઉપાધ્યાય મંગલસ્વરૂપ છે (૩) કેવળિપ્રરૂપિત ધર્મ મંગળસ્વરૂપ છે (૪) એ જ ચાર લોકમા ઉત્તમ છે એટલે એ ચારોના શરણને હું પ્રાપ્ત થાઉં છુ કારણ કે ચતુર્ગતિ-ભ્રમણના ભયને હટાવવાવાળા એ જ ચાર છે

अथ 'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग' इति सम्पूर्णां पट्टिका पठित्वा 'इच्छामि पडिक्कमिउ' इति सर्वां पट्टीं पठेत्, सैषा—'इच्छामि० इरियावहि याए' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

इच्छामि पडिक्कमिउ इरियावहियाए विराहणाए गमणा गमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा–उत्तिंग–पणग-दग–मट्टी–मक्कडा–संताणा–संकमणे जे मे जीवा विराहिया–एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥सू० २॥

॥ छाया ॥

इच्छामि प्रतिक्रमितुमैर्यापथिक्या (क्याः) विराधनायाः (याः), गमना गमने प्राणातिक्रमणे, बीजाक्रमणे, हरिताक्रमणे, अवश्यायोत्तिङ्गपनकोदकमृत्तिकामर्कटसन्तानसंक्रमणे ये मया जीवा विराधिताः—एकेन्द्रियाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः, अभिहताः, वर्त्तिताः, श्लेषिताः, संघातिताः, संघट्टिताः, परितापिताः, क्लमिताः, अवद्राविताः, स्थानात्स्थानं संक्रामिताः, जीविताद्व्यपरोपितास्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥

॥ टीका ॥

'इरियावहियाए' ऐर्यापथिक्याः ईरणमीर्या=संयमिना गमनम्, पथि भवा पन्थानं गच्छति=प्राप्नोतीति वा [1]पथिकी, ईर्याप्रधाना पथिकी ईर्यापथिकी,

---

इसके बाद 'इच्छामि ठामि काउस्सग' की पाटी पढकर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' की पूरी पाटी पढे, वह इस प्रकार–'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

हे गुरुमहाराज ! मैं ईर्यापथसम्बन्धी विराधना से निवृत्त

તે પછી 'इच्छामि ठामि काउस्सग' ની પાટી બોલીને इच्छामि पडिक्कमिउ' ની પૂરી પાટી બોલવી, તે આ પ્રકારે–'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि હે ગુરુમહારાજ ! હું ઇર્યાપથસબંધી વિરાધનાથી નિવૃત્ત થવા ઇચ્છુ છુ

१–पथिकी–'पथःष्कन्' (५।१।७५) इति ष्कन् प्रत्ययः, षित्वान्ङीष् ।

यद्वा ईर्याप्रधानः पन्था =ईर्यापथस्तत्र भवा=ऐर्यापथिकी=ईर्यापथसम्बन्धिनी विराधनेति यावत्, तस्याः । 'पडिक्कमिउ' प्रतिक्रमितुम्=निवर्त्तितुम् 'इच्छामि' स्पष्टमिदम् । अथ विराधनाविषयान् दर्शयति—

'गमणागमणे' गमनं चाऽऽगमनं च [1]गमनागमनं, तस्मिन् गमनागमने तत्र गमन=स्वाध्यायादिनिमित्तमुपाश्रयाद्बहिः प्रस्थानम्, आगमन=कार्यसमाप्तौ परावृत्य पुनरुपाश्रय एव समागमनम् । अतिचारोत्पत्तौ निदानमाह-'पाणक्कमणे' इत्यादि, प्राणाः सन्त्येषामिति [2]प्राणाः=द्वीन्द्रियादयः प्राणिनस्तेषाम् आक्रमण=पादादिना पीडनं प्राणाक्रमणं तस्मिन् । 'बीयक्कमणे' बीजानि प्रसिद्धानि तेषामाक्रमणं बीजाक्रमणं तस्मिन् । 'हरियक्कमणे' हरितस्य=वनस्पतिमात्रस्याऽऽक्रमणं हरिताक्रमणं तस्मिन् । 'ओसाउत्तिंगपणगदगमट्टीमक्कडासंताणासंक्रमणे' अवश्यायश्चोत्तिङ्गश्च पनकश्च दकं च मृत्तिका च मर्कटकसन्तानश्चेत्येतेषां द्वन्द्वे अवश्यायोत्तिङ्गपनक-दक-मृत्तिका-मर्कटकसन्तानास्तेषां संक्रमण=आक्रमणम् तस्मिन्, तत्राऽवश्यायः=मेघमन्तरेण रात्रौ पतितः सूक्ष्मतुषाररूपोऽप्कायविशेषः 'ओस' इति भाषाप्रसिद्धः, उत्तिङ्गाः=भूमौ वर्तुलविवरकारिणो गर्दभमुखाकृतयः कीटविशेषाः कीटिकानगरादयो वा, पनकः=अङ्कुरितोऽनङ्कुरितो वा पञ्चवर्णोऽनन्तकायविशेषः, जलसम्बन्धेन जायमानः पिच्छिलाकारः 'काई' इति लोकप्रसिद्धः, [3]दकम्=उदकमप्कायः, मृत्तिका=सचित्तपृथ्वीकायः, मर्कटकसन्तानः=लूताजालम् ।

होना चाहता हूँ । स्वाध्याय आदि के लिये उपाश्रय से बाहर जाने में और लौटकर फिर उपाश्रय आने में पैर आदि से प्राणियों के दब जानेमें, बीजों के दब जानेमें, वनस्पति के दब जानेमें, ओस, उत्तिंग (कीट विशेष), पञ्चवर्ण पनक (फूलन), पानी, मिट्टी, मकडेके जाल आदि के कुचल जानेमे, जो एक

સ્વાધ્યાયાદિ નિમિત્તે ઉપાશ્રયમાંથી બહાર જવામાં અને પાછા ફરી ઉપાશ્રયે આવવામાં, પગ વિગેરેથી પ્રાણીઓના દબાઈ જવામાં, બીજ વગેરે દબાઈ જવામાં, વનસ્પતિના દબાઈ જવામાં, ઓસ, ઉત્તિંગ (એક પ્રકારનું જીવડું), પંચવર્ણ પનક (ફૂલણ), પાણી, માટી, મકોડીની જાલ વિગેરેના કચરાઈ જવામાં, જે એક

१–'गमनागमनम्' अत्र द्वन्द्वैकवचनान्तता ।

२–प्राणाः–'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्ययः ।

३–दक=जलम्–'मोक्तं मांसैर्भुवनममृतं जीवनीयं दकं च' इति हलायुधः ।

अथ 'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग' इति सम्पूर्णां पट्टिका पठित्वा 'इच्छामि पडिक्कमिउं' इति सर्वां पट्टीं पठेत्, सैषा—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा–उत्तिंग–पणग-दग–मट्टी–मक्कडा–संताणा–संकमणे जे मे जीवा विराहिया–एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥सू० २॥

॥ छाया ॥

इच्छामि प्रतिक्रमितुमैर्यापथिक्याः (क्या) विराधनायाः (या), गमनागमने प्राणातिक्रमणे, बीजाक्रमणे, हरिताक्रमणे, अवश्यायोत्तिङ्गपनकोदकमृत्तिकामर्कटसन्तानसंक्रमणे ये मया जीवा विराधिताः–एकेन्द्रियाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः, अभिहताः, वर्त्तिताः, श्लेषिताः, संघातिताः, संघट्टिताः, परितापिताः, क्लमिताः, अवद्राविताः, स्थानात्स्थानं संक्रामिताः, जीविताद्व्यपरोपितास्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥

॥ टीका ॥

'इरियावहियाए' ऐर्यापथिक्याः। ईरणमीर्या=संयमिना गमनम्, पथि-भवा पन्थानं गच्छति=प्राप्नोतीति वा [1]पथिकी, ईर्याप्रधाना पथिकी ईर्यापथिकी,

---

इसके बाद 'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग' की पाटी पढकर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' की पूरी पाटी पढे, वह इस प्रकार–'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

हे गुरुमहाराज ! मैं ईर्यापथसम्बन्धी विराधना से निवृत्त

ते पछी 'इच्छामि ठामि काउस्सग' नी पाटी बोलीने इच्छामि पडिक्कमिउं' नी पूरी पाटी बोलवी, ते आ प्रकारे–'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि

હે ગુરુમહારાજ ! હું ઈર્યાપથસંબંધી વિરાધનાથી નિવૃત્ત થવા ઇચ્છુ છુ

१–पथिकी–'पथःष्कन्' (५।१।७५) इति ष्कन् प्रत्ययः षित्त्वान्ङीष् ।

प्रतिक्रमणमुच्यते-'इच्छामि० पगामसिज्जाए' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

इच्छामि पडिक्कमिउ पगामसिज्जाए निगामसिज्जाए सथाराउव्वट्टणाए परियट्टणाए आउटणाए पसारणाए छप्पईसघट्टणाए कूइए कक्कराइए छिइए जभाइए आमोसे ससरक्खामोसे आउलमाउलाए सोत्रणवत्तिआए इत्थीविप्परिआसिआए दिट्ठिविप्परिआसिआए मणविप्परिआसिआए पाणभोयणविप्परिआसिआए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

इच्छामि प्रतिक्रमितु प्रकामशय्यया निकामशय्यया सस्तारकोद्वर्त्तनया परिवर्त्तनया आकुञ्चनया प्रसारणया षट्पदीसङ्घट्टनया कूजिते कर्करायिते क्षुते जृम्भिते आमर्शे सरजस्कामर्शे आकुलाकुलया स्वप्नप्रत्ययया स्त्रीवैपर्यासिक्या दृष्टिवैपर्यासिक्या मनोवैपर्यासिक्या पानभोजनवैपर्यासिक्या यो मया दैवसिकोऽतिचार कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥

॥ टीका ॥

'पडिक्कमिउ' प्रतिक्रमितु=निवर्त्तितुम्, 'इच्छामि' अभिलषामि, 'पगामसिज्जाए' शयन=शय्या[1], प्रकाम शय्या=[2]प्रकामशय्या तया, रात्रि-

---

आदि में करवट बदलने आदि से होनेवाले अतिचारो की निवृत्ति कहते है-'इच्छामि पगामसिज्जाए' इत्यादि । हे भगवन् ! मैं दिन-रात सम्बन्धी शयन आदि अतिचारों से निवृत्त होना

આદિ ફેરવવાથી થનાર અતિચારોની નિવૃત્તિ કહે છે इच्छामि पगामसिज्जाए' इत्यादि। હે ભગવાન ! હું દિવસ-રાત્રિ સંબંધી શયન વિગેરે અતિચારોથી નિવૃત્ત થવાને ચાહું છું તે અતિચાર અગર અધિક સુવાથી અથવા વિના કારણ સુવાથી અથવા

---

१ 'शय्या'-शीङ् स्वप्ने' अस्मात् 'सज्ञाया समज-निषद्-निपत-मन-विद्-षुञ्-शीङ्-भृञिण' (३ । ३ । ९८) इति भावे क्यप् । किन्तु—

'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति वचनाद् 'य' प्रत्ययः 'इत्युक्तिस्तु व्याकरणानवबोधमूलैवेत्यलमितराक्षेपेण ।

२ 'प्रकामशय्या'-अत्र सुप्सुपेति समास ।

एवमन्येऽपि 'जे' ये 'एगिंदिया' एकं स्पर्शरूपमिन्द्रियं येषां त एकेन्द्रियाः=पृथिव्यादयः, 'बेइंदिया' द्वीन्द्रियाः=कृमिप्रभृतयः, 'तेइंदिया' त्रीन्द्रियाः=पिपीलिकाद्याः, 'चउरिंदिया' चतुरिन्द्रियाः=दंशमशकभ्रमराद्याः, 'पचिंदिया' पञ्चेन्द्रियाः=गृहगोधिकाद्याः 'मे' मया 'विराहिया' विराधिताः=दुःखीकृताः, 'अभिहया' अभि=साम्मुख्येन हताः=चरणादिस्पर्शेन परिपीडिताः, 'वत्तिया' वर्त्तिताः=धूल्यादिषु विलोठिताः धूल्यादिभिराच्छादिता वा, यद्वा परिवर्त्तिताः=यथावस्थानाद्वैपरीत्यं नीता इत्यर्थः, 'लेसिया' श्लेषिताः=सम्मर्दिताः, 'संघाइया' संघातिताः=मिथः संयोजिताः, 'संघट्टिया' संघट्टिताः=ईषत्स्पृष्टाः, 'परियाविया' परि=सर्वतोभावेन तापिताः=पीडिताः, 'किलामिया' क्लामिताः=ग्लानिमानीताः, 'उद्दविया' अपद्राविताः उपद्राविता वा त्रासिता इत्यर्थः, 'ठाणाओ ठाणं संकामिया' स्थानात्=एकस्मात् स्थानात् स्थानं=स्थानान्तरं संक्रामिताः=प्रापिताः, 'जीवियाओ ववरोविया' जीवितं=जीवनं तस्माद् व्यपरोपिताः=मोचिताः, 'तस्स' तस्य-तत्सम्बन्धिनोऽतिचारस्य 'मि' मयि स्थितमिति शेषः, 'दुक्कडं' 'दुष्कृतं=पापं 'मिच्छा' मिथ्या=निष्फलमस्त्वितिशेषः ॥सू० २॥

एवं गमनागमनातिचारमुक्त्वा सम्प्रति स्वग्वर्त्तनस्थानातिचार-

इन्द्रियवाले, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले, चार इन्द्रियवाले, पांच इन्द्रियवाले जीव मुझसे विराधित (दुखी) हुए हों, कुचले गये हों, धूल आदिमें लुढकाये या ढके गये हों, किसी प्रकार मसले गये हों, इकट्ठे किये हों, छूये गये हों, सताये गये हों, थकाये गये हों, अथवा जीवसे रहित किये गये हों तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं'

इस प्रकार गमन-आगमन सम्बन्धी अतिचार कहकर शयन

ઇંદ્રિયવાળા, બે ઇંદ્રિયવાળા, ત્રણ ઇંદ્રિયવાળા, ચાર ઇંદ્રિયવાળા, પાંચ ઇંદ્રિયવાળા જીવ મારાથી વિરાધિત (દુઃખી) થયા હોય, કચરાઈ ગયા હોય, ધૂળ વિગેરેમાં ઢંકાઈ ગયા હોય, કોઈ પ્રકારે મરડાઈ ગયા હોય, ભેગા કરાયા હોય, સ્પર્શ થઈ ગયો હોય, સતાવ્યા હોય, થકાવ્યા હોય અથવા જીવથી રહિત કર્યા હોય તો 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं'

આવી રીતે ગમન આગમન સંબંધી અતિચાર કહીને શયન આદિમાં પડખું

रायिते=कर्करायित=हा विषमेय परुषेय शय्या, तदुपरि कथ मया शयितव्यमित्यादि शय्यादोषकथन तस्मिन् सति, 'छिइए' क्षुते=छिकादौ 'जभाइए' जृम्भित=जृम्भा तस्मिन्; एतद्वय चाविधिपूर्वकमेव कृत सदतिचारोत्पादकमित्यवगन्तव्यम् 'आमोसे' आमर्शः=स्पर्शस्तस्मिन्-अप्रमार्ज्य हस्तादिना कण्डूयनस्वरूपे। 'ससरक्खामोसे' सह रजसा वर्त्तते सरजस्कः स चासावामर्शश्च सरजस्कामर्शस्तस्मिन् सचित्तरजोयुक्तवस्तुस्पर्शे इत्यर्थः। इत्थ जाग्रतोऽतिचारमुक्त्वा सम्प्रति सुप्तस्य तमाह-'आउलमाउलाए' इति, आकुलाकुला=निद्रा प्रमादाद्यभिभूतस्य मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविविधोपरोधक्रियास्वरूपा, युद्ध-विवाह-राज्य-प्राप्तिप्रभृतिसावद्यक्रियास्वरूपा वा तया। 'सोअणवत्तिआए' स्वप्नः=शयन प्रत्ययः=हेतुर्यस्याः सा स्वप्नप्रत्यया[1] तया स्वप्नवशात्सञ्जातयेत्यर्थः, विराधनयेत्यर्थाद्गम्यते, स्वप्नवशात्सञ्जातया मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविविधोपरोधक्रियास्वरूपया, युद्ध-विवाह-राज्यप्राप्तिप्रमुखसावद्यक्रियास्वरूपया वा विराधनयेत्यर्थः। इमामेव प्रविभज्य प्रदर्शयति—'इत्थीविप्परिआसिआए' स्त्रिया स्त्रीभिर्वा सह विपर्यासः=स्वप्ने ब्रह्मचर्यस्खलनरूपो व्यत्यासस्तत्र भवेति, यद्वा विपर्यासे भवा=वैपर्यासिकी स्त्रिया वैपर्यासिकी स्त्रीवैपर्यासिकी तया, 'दिट्ठिविप्परिआसिआए' स्वप्ने अनुरागवशात्स्त्र्यवलोकन दृष्टिविपर्यासस्तत्र भवा दृष्टिवैपर्यासिकी तया, 'मणविप्परिआसिआए' स्वप्ने मनसा

जभाई लेने से, विना पूँजे खुजलाने से या सचित्त रजयुक्त वस्त्रादिके स्पर्श से जो अतिचार किया गया हो,-ये सब जाग्रत अतिचार हुए, अब सुप्त अतिचार कहते हैं-एव स्वप्न-अवस्था-सम्बन्धी, मूलोत्तर गुणको दूषित करनेवाली, अथवा युद्ध, विवाह, राज्यप्राप्ति आदि सावद्य क्रिया अर्थात् स्वप्नमें स्त्री के साथ कुशील सेवन, अनुराग पूर्वक स्त्री का अवलोकन, मनके विकार, तथा

ખાવાથી, પૂજ્યા વિના ખજ્ઞેલવાથી અથવા સચિત્ત રજયુક્ત વસ્ત્રાદિકના સ્પર્શથી જે અતિચાર થયા હોય એ બધા જાગ્રત અતિચાર થયા, હવે સુપ્ત અતિચાર કહે છે — એવ સ્વપ્ન અવસ્થા સબધી, મૂલોત્તર ગુણને દૂષિત કરવાવાળી અથવા યુદ્ધ, વિવાહ, રાજ્યપ્રાપ્તિ વિગેરે સાવદ્ય ક્રિયા અર્થાત્ સ્વપ્નમા સ્ત્રીની

१-प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु ॥ इत्यमरः ॥

मध्ययामद्वयाधिकशयनेन निष्कारण दिवाशयनेन वा, यद्वा—बहालस्यादिजनिफया मृदुतमया स्थूलशय्ययेत्यर्थः। मध्ययामद्वयाधिकशयनस्य स्वाध्यायप्रतिरोधकत्वेन प्रतिषेधात्। 'निगामसिज्जाए' प्रकामशय्यैव नित्यमासेव्यमाना 'निकामशय्ये'—त्युच्यते। 'सथारा' इति लुप्तसप्तम्यन्तं पृथक्पद, समासे तु सति 'सथारा' इत्यस्य 'परियट्टणाए' इत्यनेन विवक्षितः सम्बन्धो न स्यात् 'पदार्थः पदार्थेनान्वेति नतु पदार्थैकदेशेन' इतिसिद्धान्तात्, समासे च विशिष्ट एव शक्तिस्वीकारेण तदेकदेशस्य पदार्थत्वाभावादिति [1]प्रपञ्चितमन्यत्र, सस्तीर्यतेऽस्मिन्निति सस्तरण वा सस्तारः=आस्तरण तस्मिन्, 'उव्वट्टणाए' उद्वर्त्तनमुद्वर्त्तना=प्रमार्जनमन्तरेण दक्षिणपार्श्वाऽऽवर्त्तन तया, 'परियट्टणाए' परिवर्त्तन परिवर्तना=वामपार्श्वावर्त्तन तया, 'आउटणाए' आकुञ्चनमाकुञ्चना=शरीरसङ्कोचस्तया, 'पसारणाए' प्रसारण प्रसारणा=शरीरसञ्चारण तया, एतत्पर्यन्त 'प्रमार्जनमन्तरेणे'—त्यस्य शेषो बोद्धव्य। 'छप्पईसघट्टणाए' षट्पद्यो यूकास्तासा सघट्टनम्=अयथावत्स्पर्शः षट्पदीसघट्टना तया, 'कूइए' कूजित[2] कूजन=श्लेष्मादिवशेनाऽयथावत्कासन, तस्मिन् [3]सतीत्यर्थः। 'ककराइए' कर्क-

---

चाहता हूँ। वे अतिचार चाहे अधिक सोनेसे या विना कारण सोने से, अथवा अत्यन्त कोमल मोटी (जाडी) शय्या पर सोने से तथा ऐसी शय्या का नित्य सेवन करने से, बिछौने (सथारे) पर शरीर के विन पूजे करवट लेने से, विन पूजे अंगोपाग के सकोचन और पसारने से, जूँ आदि के अविधिपूर्वक स्पर्श से, अविधि से खासी आदि के करने से, अयतना पूर्वक छींकने तथा

અત્યત કોમલ મોટી શય્યા ઉપર સુવાથી તથા એવી પથારીનો નિત્ય ઉપયોગ કરવાથી, પથારી (સથારા) ઉપર શરીરને પૂજ્યા વિના કરવટ લેવાથી, પૂજ્યા વિના અગ–ઉપાગને સકોચવા–પસારવાથી, જૂ આદિના અવિધિપૂર્વક સ્પર્શથી, અવિધિએ ઉધરસ વિગેરે ખાવાથી, અયતનાપૂર્વક છીકવાથી તથા બગાસુ

---

१ अन्यत्र–'वैयाकरणभूषण–लघुमञ्जूषादिषु'।

२ भावे क्त'।

३ 'यस्य च भावेने'ति सप्तमी, एवमग्रेऽपि।

रायिते=कर्करायित=हा विषमेय परुषेय शय्या, तदुपरि कथ मया शयितव्यमित्यादि शय्यादोषकथन तस्मिन् सति, 'छिइए' क्षुते=छिकादौ 'जभाइए' जृम्भित=जृम्भा तस्मिन्; एतद्द्वय चाविधिपूर्वकमेव कृत सदतिचारोत्पादकमित्यवगन्तव्यम् 'आमोसे' आमर्शः=स्पर्शस्तस्मिन्-अप्रमार्ज्य हस्तादिना कण्डूयनस्वरूपे। 'ससरक्खामोसे' सह रजसा वर्त्तते सरजस्कः स चासावामर्शश्च सरजस्कामर्शस्तस्मिन् सचित्तरजोयुक्तवस्तुस्पर्शे इत्यर्थः। इत्थ जाग्रतोऽतिचारमुक्त्वा सम्प्रति सुप्तस्य तमाह-'आउलमाउलाए' इति, आकुलाकुला=निद्रा प्रमादाद्यभिभूतस्य मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविविधोपरोधक्रियास्वरूपा, युद्ध-विवाह-राज्यप्राप्तिप्रभृतिसावद्यक्रियास्वरूपा वा तया। 'सोअणवत्तिआए' स्वप्नः=शयन प्रत्ययः=हेतुर्यस्याः सा स्वप्नप्रत्यया[1] तया स्वप्नवशात्सञ्जातयेत्यर्थः, विराधनयेत्यर्थाद्गम्यते, स्वप्नवशात्सञ्जातया मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविविधोपरोधक्रियास्वरूपया, युद्ध-विवाह-राज्यप्राप्तिप्रमुखसावद्यक्रियास्वरूपया वा विराधनयेत्यर्थः। इमामेव प्रविभज्य प्रदर्शयति—'इत्थीविप्परिआसिआए' स्त्रिया स्त्रीभिर्वा सह विपर्यासः=स्वप्ने ब्रह्मचर्यस्खलनरूपो व्यत्यासस्तत्र भवेति, यद्वा विपर्यासे भवा=वैपर्यासिकी स्त्रिया वैपर्यासिकी स्त्रीवैपर्यासिकी तया, 'दिट्ठिविप्परिआसिआए' स्वप्ने अनुरागवशात्स्त्र्यवलोकन दृष्टिविपर्यासस्तत्र भवा दृष्टिवैपर्यासिकी तया, 'मणविप्परिआसिआए' स्वप्ने मनसा

जभाई लेने से, विना पूँजे खुजलाने से या सचित्त रजयुक्त वस्त्रादिके स्पर्श से जो अतिचार किया गया हो,-ये सब जाग्रत अतिचार हुए, अब सुप्त अतिचार कहते हैं-एव स्वप्न-अवस्था-सम्बन्धी, मूलोत्तर गुणको दूषित करनेवाली, अथवा युद्ध, विवाह, राज्यप्राप्ति आदि सावद्य क्रिया अर्थात् स्वप्नमें स्त्री के साथ कुशील सेवन, अनुराग पूर्वक स्त्री का अवलोकन, मनके विकार, तथा

ખાવાથી, પૂજ્યા વિના ખંજોળવાથી અથવા સચિત્ત રજયુક્ત વસ્ત્રાદિકના સ્પર્શથી જે અતિચાર થયા હોય એ બધા જાગ્રત અતિચાર થયા, હવે સુપ્ત અતિચાર કહે છે — એવ સ્વપ્ન અવસ્થા સબધી, મૂલોત્તર ગુણને દૂષિત કરવાવાળી અથવા યુદ્ધ, વિવાહ, રાજ્યપ્રાપ્તિ વિગેરે સાવદ્ય ક્રિયા અર્થાત્ સ્વપ્નમા સ્ત્રીની

१-प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु ॥ इत्यमरः ॥

विपर्यासो मनोविपर्यासस्तत्र भवा मनोवैपर्यासिकी तया, 'पाणभोअणविप्परिआसिआए' स्वप्ने पानञ्च भोजनञ्च पानभोजने तयोर्विपर्य्यासः=पान-भोजनादिसेवनं तत्र भवा पानभोजनवैपर्यासिकी तया हेतुभूतया विराधनया, 'जो' य' 'मे' मया, 'देवसिओ' दैवसिकः 'अइयारो' अतिचारः, 'कओ' कृतः=सम्पादितः 'तस्स' इत्यादि प्राग्वत् ।

नन्वयमतिचारो न प्राप्नोति प्रतिपिद्धत्वाद्दिवास्वापस्येति ? अत्रोच्यते यद्यपि प्रतिपिद्धो दिवास्वापस्तथाप्येतद्वचनसामर्थ्यादध्वश्रान्तादीनां नासौ प्रतिपिद्ध इति गम्यते ॥ इतित्वग्वर्तनातिचारप्रतिक्रमणम् ॥ सू० ३ ॥

गतं त्वग्वर्तनाऽतिचारप्रतिक्रमणं सम्प्रति गोचरातिचारप्रतिक्रमणमभिधीयते—'पडिक्कमामि गोयर०' इत्यादि ।

आहार पानीके सेवन रूप विराधना के कारण मुझ से जो अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ।

यद्यपि साधुओं के लिये दिनमें शयन का निषेध है तो भी यहां पर शयन सम्बन्धी दैवसिक अतिचार बताने से यह सिद्ध होता है कि विहार आदि से अधिक थकावट आजाने पर या अन्य अनिवार्य कारणों से यदि दिन में सोया जाय तो ऐसी अवस्था के लिये उक्त दैवसिक अतिचार बताये हैं ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार शयन सम्बन्धी अतिचारों का प्रतिक्रमण कह कर अब गोचरी के अतिचार सम्बन्धी प्रतिक्रमण कहते हैं— 'पडिक्कमामि गोयर० इत्यादि ।

સાથે સમાગમ, પ્રેમપૂર્વક સ્ત્રીનુ જોવુ, મનનો વિકાર, તથા આહાર-પાણીના સેવનરૂપી વિરાધનાના કારણે મારાથી જે અતિચાર થયા હોય 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड'

યદ્યપિ સાધુઓને માટે દિવસમા સુવાનુ નિષેધ છે તો પણ શયન સબધી દૈવસિક અતિચાર બતાવવાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે વિહાર આદિથી ખૂબ થાકી જવાના કારણે અથવા બીજા અનિવાર્ય કારણોથી દિવસે સુવુ પડે તો આવી અવસ્થાને માટે ઉપર કહેલુ દૈવસિક અતિચાર બતાવેલ છે (સૂ० ૩)

આવી રીતે શયન સબધી અતિચારોના પ્રતિક્રમણ કહીને હવે ગોચરીના અતિચાર સબધી પ્રતિક્રમણ કહે છે— 'पडिक्कमामि गोयर० 'इत्यादि'

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि गोयरचरियाए भिक्खायरियाए उग्घाडकवाडउग्घाडणाए साणावच्छदारासंघट्टणाए मंडीपाहुडिआए वलिपाहुडिआए ठवणापाहुडिआए संकिए सहसागारिए अणेसणाए पाणेसणाए पाणभोयणाए बीयभोयणाए हरियभोयणाए पच्छाकम्मियाए पुरेकम्मियाए अदिट्ठहडाए दगससट्ठहडाए रयससट्ठहडाए पारिसाडणियाए पारिठावणियाए ओहासणभिक्खाए जं उग्गमेणं उप्पायणेसणाए अपरिसुद्धं पडिगाहियं परिभुत्तं वा जं न परिठविअं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ सू० ४ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि गोचरचर्यायां भिक्षाचर्यायामुद्घाटकपाटोद्घाटनया श्ववत्सदारकसंघट्टनया मण्डीप्राभृतिकया बलिप्राभृतिकया स्थापनाप्राभृतिकया शङ्किते सहसाकारिकेऽनेषणया पानैषणया प्राणभोजनया बीजभोजनया हरितभोजनया पश्चात्कर्मिकया पुरःकर्मिकयाऽदृष्टाहृतया उदकसंसृष्टाऽऽहृतया रजःसंसृष्टाहृतया पारिशाटनिक्या (पारिशातनिक्या) परिष्ठापनिक्या ओहासनभिक्षया यद् उद्गमेन उत्पादनैषणयाऽपरिशुद्धं प्रतिगृहीतं परिभुक्तं वा यन्न परिष्ठापितं तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ' ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

'गोयरचरियाए' चरणं चरः गाश्चरो गोचरः, चर्या चरणमित्यपर्यायान्तरम्, गोचर इव चर्या=वृत्तिर्गोचरचर्या तस्यां तद्रूपायामिति भावः। 'भिक्खायरिआए' भिक्षायै चर्या भिक्षाचर्या तस्यां कुलेषूत्तममध्यमाधमेषु वस्तुषु चेष्टानिष्टेषु रागादिराहित्येन लाभादिनैरपेक्ष्येण च समचेतसा मुनिना भिक्षार्थमटनीयं[1] तादृश्यां भिक्षाचर्याया-

---

गायके समान जगह जगह से थोडा थोडा आहार लेने के लिये भ्रमण करने का नाम गोचरचर्या है, तत्स्वरूप जो भिक्षाचर्या (अर्थात् उत्तम मध्यम और नीच (साधारण) कुलों में तथा इष्ट-

---

ગાયની જેમ ઠેકાણે ઠેકાણેથી થોડા થોડા આહાર લેવા માટે ફરવુ તે કામને ગોચરચર્યા કહે છે તત્સ્વરૂપ જે ભિક્ષાચર્યા (અર્થાત ઉત્તમ મધ્યમ અને નીચ

१–भिक्षायामीदृग्विधत्वमुपदर्शयितुमेवोक्तं मूले–गोचरचर्ययेति ।

विपर्यासो मनोविपर्यासस्तत्र भवा मनोवैपर्यासिकी तया, 'पाणभोअणविप्परिआसिआए' इत्यत्र पानञ्च भोजनञ्च पानभोजने तयोर्विपर्यासः=पानभोजनादिसेवनं तत्र भवा पानभोजनवैपर्यासिकी तया हेतुभूतया विराधनया, 'जो' यः 'मे' मया, 'देवसिओ' दैवसिकः 'अइयारो' अतिचारः, 'कओ' कृतः=सम्पादितः 'तस्स' इत्यादि भाव्यम् ।

नन्वयमतिचारो न प्राप्नोति प्रतिषिद्धत्वाद्दिवास्वापस्येति ? अत्रोच्यते यद्यपि प्रतिषिद्धो दिवास्वापस्तथाप्येतद्वचनसामर्थ्याद्ध्वश्रान्तादीनां नासौ प्रतिषिद्ध इति गम्यते ॥ इतित्वग्वर्तनातिचारप्रतिक्रमणम् ॥ सू० ३ ॥

गतं त्वग्वर्तनाऽतिचारप्रतिक्रमणं सम्प्रति गोचरातिचारप्रतिक्रमणमभिधीयते—'पडिक्कमामि गोयर०' इत्यादि ।

आहार पानीके सेवन रूप विराधना के कारण मुझ से जो अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' ।

यद्यपि साधुओं के लिये दिनमें शयन का निषेध है तो भी यहा पर शयन सम्बन्धी दैवसिक अतिचार बताने से यह सिद्ध होता है कि विहार आदि से अधिक थकावट आजाने पर या अन्य अनिवार्य कारणों से यदि दिन में सोया जाय तो ऐसी अवस्था के लिये उक्त दैवसिक अतिचार बताये हैं ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार शयन सम्बन्धी अतिचारों का प्रतिक्रमण कह कर अब गोचरी के अतिचार सम्बन्धी प्रतिक्रमण कहते हैं— 'पडिक्कमामि गोयर०' इत्यादि ।

સાથે સમાગમ, પ્રેમપૂર્વક સ્ત્રીનું જોવું, મનનો વિકાર, તથા આહાર-પાણીના સેવનરૂપી વિરાધનાના કારણે મારાથી જે અતિચાર થયા હોય 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं'

યદ્યપિ સાધુઓને માટે દિવસમાં સુવાનું નિષેધ છે તો પણ શયન સંબંધી દૈવસિક અતિચાર બતાવવાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે વિહાર આદિથી ખૂબ થાકી જવાના કારણે અથવા બીજા અનિવાર્ય કારણોથી દિવસે સુવું પડે તો આવી અવસ્થાને માટે ઉપર કહેલ દૈવસિક અતિચાર બતાવેલ છે (સૂ૦ ૩)

આવી રીતે શયન સંબંધી અતિચારોના પ્રતિક્રમણ કહીને હવે ગોચરીના અતિચાર સંબંધી પ્રતિક્રમણ કહે છે— 'पडिक्कमामि गोयर०' 'इत्यादि'

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि गोयरचरियाए भिक्खायरियाए उग्घाडकवाडउग्घाडणाए साणावच्छदारासंघट्टणाए मंडीपाहुडिआए बलिपाहुडिआए ठवणापाहुडिआए संकिए सहसागारिए अणेसणाए पाणेसणाए पाणभोयणाए बीयभोयणाए हरियभोयणाए पच्छाकम्मियाए पुरेकम्मियाए अदिट्ठहडाए दगससट्ठहडाए रयससट्ठहडाए पारिसाडणियाए पारिठावणियाए ओहासणभिक्खाए जं उग्गमेणं उप्पायणेसणाए अपरिसुद्धं पडिगाहियं परिभुत्तं वा जं न परिठविअं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ सू० ४ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि गोचरचर्यायां भिक्षाचर्यायामुद्घाटकपाटोद्घाटनया श्ववत्सदारकसंघट्टनया मण्डीप्राभृतिकया बलिप्राभृतिकया स्थापनाप्राभृतिकया शङ्किते सहसाकारिकेऽनेषणया पानैषणया प्राणभोजनया बीजभोजनया हरितभोजनया पश्चात्कर्मिकया पुरःकर्मिकयाऽदृष्टाहृतया उदकसंसृष्टाऽऽहृतया रजःसंसृष्टाहृतया पारिशाटनिक्या (पारिशातनिक्या) परिष्ठापनिक्या ओहासनभिक्षया यद् उद्गमेन उत्पादनैषणयाऽपरिशुद्धं प्रतिगृहीतं परिभुक्तं वा यन्न परिष्ठापितं तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम्' ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

'गोयरचरियाए' चरणं चरः गोश्चरो गोचरः, चर्या चरणमित्यपर्यायान्तरम्, गोचर इव चर्या=वृत्तिर्गोचरचर्या तस्यां तद्रूपायामिति भावः। 'भिक्खायरिआए' भिक्षायै चर्या भिक्षाचर्या तस्यां कुलेषूत्तममध्यमाधमेषु वस्तुषु चेष्टानिष्टेषु रागादिराहित्येन लाभादिनैरपेक्ष्येण च समचेतसा मुनिना भिक्षार्थमटनीयं[1] तादृश्यां भिक्षाचर्याया-

---

गायके समान जगह जगह से थोडा थोडा आहार लेने के लिये भ्रमण करने का नाम गोचरचर्या है, तत्स्वरूप जो भिक्षाचर्या (अर्थात् उत्तम मध्यम और नीच (साधारण) कुलों में तथा इष्ट-

---

ગાયની જેમ ઠેકાણે ઠેકાણેથી થોડા થોડા આહાર લેવા માટે ફરવું તે કામને ગોચરચર્યા કહે છે તત્સ્વરૂપ જે ભિક્ષાચર્યા (અર્થાત્ ઉત્તમ મધ્યમ અને નીચ

१-भिक्षायामीदृग्विधत्वमुपदर्शयितुमेवोक्तं मूले-गोचरचर्ययेति ।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्त सप्रभेदमाह–'उग्घाडकवाड उग्घाडणाए' उद्घाट्यत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदत्तविष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्यो द्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तया। 'साणावच्छदारासघट्टणाए' श्वा=कुक्कुर , वत्स =गवापत्यरूपो वत्सतरः, दारक= बालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषा सघट्टना=गात्रैः सहतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तया, उपलक्षणमिद गवादीनामपि। 'मडीपाहुडियाए' मण्डी=अग्रकूर. (अग्रभक्त[1]) तस्या' प्राभृतिका=प्राभृत मुपढौकन[2]मिति यावत्, यद्वा प्र=प्रकर्षेण आ=मर्यादया भृता सा[3]र्थे सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तया। 'वलिपाहुडिआए' बलिः=देवभूताद्युद्देशेन देयमन्नादि तस्य प्राभृतिका तया। 'ठवणापाहुडिआए' स्थाप्यत इति 'स्थापना= कृपणवनीपकादिभ्य स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, 'सङ्किए'

अनिष्ट वस्तुओंमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमे समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना साकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाडों को विना पूँजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछडे, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक–कृपण आदिके

(સાધારણ) કુળોમાં તથા ઇષ્ટ અનિષ્ટ વસ્તુઓમાં રાગાદિ રહિત થઇને લાભાલાભમાં સમાન ભાવથી આહાર આદિ ગ્રહણ કરવું) તેમા સાકળ વિના બંધ કરેલ અગર અર્ધા વાસેલા કમાડને પૂંજ્યા વિના અથવા ધણીની આજ્ઞા વિના ખોલવાથી, કુતરા, વાછરડા, બાલક આદિને ધકેલીને અથવા ઓળગીને જવાથી, કુતરા વિગેરે માટે કાઢેલા અગ્રપિંડ લેવાથી, દેવતા, ભૂત વિગેરેના બલિના માટે તથા યાચક–કૃપણ

१–हन्तकारादिस्वरूप 'हन्दा' इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, 'मण्डूकडी' इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२–इद हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमान देयमिष्ट वस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देय भिक्षान्नपि।

३–बाहुलकात्कर्मणि 'ण्यासश्रन्थो युच्' (३।३।१०७) इति युच्।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छङ्कितं तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादावित्यर्थात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्परं निरपेक्षतया 'न उग्गमेण' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिए' सहसा करणं सहसाकार-स्तत्र भवः सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेसणाए' न एषणा= ग्राह्यमिदमग्राह्यं चेत्याद्यन्वेषणाभावो यस्यां भिक्षाचर्यायां सा अनेषणा तया, 'अण्णेसणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादेः एषणा=परीक्षणं यस्यां सा अन्नैषणा तयेति योज्यम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेसणाए' पीयत इति पानं=जलादि तस्यैषणा= अन्वेषणं यस्यां सा पानैषणा तया, पानैषणाया वैषम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः[1] द्वीन्द्रियाद्यास्तन्मिश्रिता भोजना[2] प्राणभोजना तया, भवति हि कदाचिद्भक्त्यादिप्रदानवेलायां दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीनां जीवानां सम्मिश्रणेन सघट्टनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'बीय-भोयणाए' बीजानां भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्यां क्रियायां सा=बीज-भोजना तया, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पच्छाकम्मियाए' पश्चात्= भिक्षाप्रदानोत्तरं कर्म=भाजनपात्रनादि यस्यां सा=पश्चात्कर्मिका तया, 'पुरेकम्मियाए'

लिये स्थापित (रक्खे हुए), एवं आधाकर्म आदिकी शंकासे युक्त, तथा बिना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेषणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एषणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ बरतन आदि धोया जाय)

આદિને અર્થે રાખવામાં આવેલ, અથવા આધાકર્મી આદિની શંકાથી યુક્ત, તથા જાણ્યા વિચાર્યા વિના આહાર વિગેરે લેવાથી, અનેષણીય કોઈપણ વસ્તુને લેવાથી, પાણી વિગેરે પીવા યોગ્ય વસ્તુની એષણામાં કોઈ પણ પ્રકારની ખામી હોવાથી, દ્વીન્દ્રિયાદિ-પ્રાણિ-મિશ્રિત, બીજયુક્ત, તથા હરિતકાયયુક્ત આહાર આદિ લેવાથી, પશ્ચાત્કર્મિક (જેમાં આહાર આદિ ગ્રહણ કરી લીધા પછી હાથ-વાસણ વિગેરે

१ 'प्राणा'-अत्र-अर्श आदित्वादच्।

२-प्राणभोजना-शाकपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः।

मित्यर्थः, अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्य सप्रभेदमाह–'उग्घाडकवाड उग्घाडणाए' उद्घाटयत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदत्तविष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तया। 'साणावच्छदारासघट्टणाए' श्वा=कुक्कुर., वत्स =गवापत्यरूपो वत्सतरः, दारक = बालक', श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषा सघट्टना=गात्रैः सहलीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तया, उपलक्षणमिद गवादीनामपि। 'मडीपाहुडियाए' मण्डी=अग्रकूर. (अग्रभक्त[1]) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृत मुपढौकन[2]मिति यावत्, यद्वा प्र=प्रकर्षेण आ=मर्यादया भृता सा[3]र्थं सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तया। 'वलिपाहुडिआए' बलि'=देवभूताद्युद्देशेन देयमन्नादि तस्य प्राभृतिका तया। 'ठवणापाहुडिआए' स्थाप्यत इति 'स्थापना= कृपणवनीपकादिभ्य स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, 'सकिए'

अनिष्ट वस्तुओंमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमे समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना साकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाडों को विना पूँजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछडे, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक–कृपण आदिके

(સાધારણ) કુળે મા તથા ઇષ્ટ અનિષ્ટ વસ્તુઓમા રાગાદિ રહિત થઇને લાભાલાભમા સમાન ભાવથી આહાર આદિ ગ્રહણ કરવુ) તેમા સાકળ વિના બધ કરેલ અગર અર્ધા વાસેલા કમાડને પૂજ્યા વિના અથવા ધણીની આજ્ઞા વિના ખોલવાથી, કુતરા, વાછરડા, બાલક આદિને ધકેલીને અથવા ઓળગીને જવાથી, કુતરા વિગેરે માટે કાઢેલા અગ્રપિંડ લેવાથી, દેવતા, ભૂત વિગેરેના બલિના માટે તથા યાચક–કૃપણ

१–हन्तकारादिस्वरूप 'हन्दा' इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, 'मण्डूकडी' इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२–इद हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमान देयमिष्टवस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देय भिक्षान्नपि।

३–बाहुलकात्कर्मणि 'ण्यासश्रन्थो युच्' (३।३।१०७) इति युच्।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छङ्कितं तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादावित्यर्थात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्परं निरपेक्षतया 'उग्गमेणं' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिए' सहसा करणं सहसाकारस्तत्र भवः सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेसणाए' न एषणा=ग्राह्यमिदमग्राह्यं चेत्यान्वेषणाभावो यस्यां भिक्षाचर्यायां सा अनेषणा तया, 'अण्णेसणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादेः एषणा=परीक्षणं यस्यां सा अन्नैषणा तयेति बोध्यम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेसणाए' पीयत इति पानं=जलादि तस्यैषणा=अन्वेषणं यस्यां सा पानैषणा तया, पानैषणायां वैषम्येणेति भावः, पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः[१] द्वीन्द्रियाद्यास्तन्मिश्रितं भोजनं[२] प्राणभोजनं तया, भवति हि कदाचिद्भिक्षादिप्रदानवेलायां दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीनां जीवानां सम्मिश्रणेन संघट्टनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'बीयभोयणाए' बीजानां भोजनं, यद्वा बीजानि भोजने यस्यां क्रियायां सा=बीजभोजनं तया, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पच्छाकम्मियाए' पश्चात्=भिक्षाप्रदानोत्तरं कर्म=भाजनधावनादि यस्यां सा=पश्चात्कर्मिका तया, 'पुरेकम्मियाए'

लिये स्थापित (रक्खे हुए), एवं आधाकर्म आदिकी शंकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेषणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एषणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ बरतन आदि धोया जाय)

આદિને અર્થે રાખવામાં આવેલ, અથવા આધાકર્મી આદિની શંકાથી યુક્ત, તથા જાણ્યા વિચાર્યા વિના આહાર વિગેરે લેવાથી, અનેષણીય કોઈપણ વસ્તુને લેવાથી, પાણી વિગેરે પીવા યોગ્ય વસ્તુનાં એષણામાં કોઈ પણ પ્રકારની ખામી હોવાથી, દ્વીન્દ્રિયાદિ-પ્રાણિ-મિશ્રિત, બીજયુક્ત, તથા હરિતકાયયુક્ત આહાર આદિ લેવાથી, પશ્ચાત્કર્મિક (જેમાં આહાર આદિ ગ્રહણ કરી લીધા પછી હાથ-વાસણ વિગેરે

१ 'प्राणा'-अत्र-अर्श आदित्वादच् ।

२-प्राणभोजनं-शाकपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः ।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्त्र सप्रभेदमाह–'उग्घाडकवाड उग्घाडणाए' उद्घाट्यत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदत्तनिष्कम्भकं वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्यो द्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिर्देशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तया। 'साणावच्छदारासघट्टणाए' श्वा=कुकुर , वत्स =गवापत्यरूपो वत्सतरः, दारकः= बालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेपामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषा सघट्टना=गात्रैः सहतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तया, उपलक्षणमिद गवादीनामपि। 'मडीपाहुडियाए' मण्डी=अग्रकूरः (अग्रभक्त[1]) तस्या प्राभृतिका=प्राभृत मुपढौकन[2]मिति यावत्, यद्वा प्र=प्रकर्पेण आ=मर्यादया भृता सामर्थ्ये सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तया। 'वलिपाहुडिआए' बलिः=देवभूताद्युद्देशेन देयमन्नादि तस्य प्राभृतिका तया। 'ठवणापाहुडिआए' स्थाप्यत इति [3]स्थापना= कृपणवनीपकादिभ्य स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, 'सक्रिए'

अनिष्ट वस्तुओंमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमे समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना सांकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाडों को विना पूँजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछडे, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक–कृपण आदिके

(સાધારણ) કુળે મા તથા ઇષ્ટ અનિષ્ટ વસ્તુઓમા રાગાદિ રહિત થઇને લાભાલાભમા સમાન ભાવથી આહાર આદિ ગ્રહણ કરવુ) તેમા સાકળ વિના બધ કરેલ અગર અર્ધા વાસેલા કમાડને પૂજ્યા વિના અથવા ધણીની આજ્ઞા વિના ખોલવાથી, કુતરા, વાછરડા, બાલક આદિને ધકેલીને અથવા ઓળગીને જવાથી, કુતરા વિગેરે માટે કાઢેલ અગ્રપિંડ લેવાથી, દેવતા, ભૂત વિગેરેના બલિના માટે તથા યાચક–કૃપણ

१–हन्तकारादिस्वरूप 'हन्दा' इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, 'मण्डूकडी' इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२–इद हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमान देयमिष्ट वस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देय भिक्षान्नपि।

३–बाहुलकात्कर्मणि 'ण्यासश्रन्थो युच्' (३।३।१०७) इति युच्।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छङ्कितं तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादावित्यर्थात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्परं निरपेक्षतया 'जं उग्गमेणं' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिए' सहसा करणं सहसाकारस्तत्र भवः सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेसणाए' न एषणा= ग्राह्यमिदमग्राह्यं वेत्याद्यन्वेषणाभावो यस्यां भिक्षाचर्यायां सा अनेषणा तया, 'अण्णेसणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादेः एषणा=परीक्षणं यस्यां सा अन्नैषणा तयेति बोध्यम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेसणाए' पीयत इति पानं=जलादि तस्यैषणा= अन्वेषणं यस्यां सा पानैषणा तया, पानैषणाया वैषम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः[1] द्वीन्द्रियाद्यास्तन्मिश्रिता भोजना[2] प्राणभोजना तया, भवति हि कदाचिद्दध्यादिप्रदानवेलायां दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीनां जीवानां सम्मिश्रणेन सङ्घट्टनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'बीय-भोयणाए' बीजानां भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्यां क्रियायां सा=बीज-भोजना तया, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पच्छाकम्मियाए' पश्चात्= भिक्षाप्रदानोत्तरं कर्म=भाजनधावनादि यस्यां सा=पश्चात्कर्मिका तया, 'पुरेकम्मियाए'

लिये स्थापित (रक्खे हुए), एवं आधाकर्म आदिकी शंकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेषणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एषणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ बरतन आदि धोया जाय)

આદિને અર્થે રાખવામાં આવેલ, અથવા આધાકર્મી આદિની શંકાથી યુક્ત, તથા જાણ્યા વિચાર્યા વિના આહાર વિગેરે લેવાથી, અનેષણીય કોઈપણ વસ્તુને લેવાથી, પાણી વિગેરે પીવા યોગ્ય વસ્તુની એષણામાં કોઈ પણ પ્રકારની ખામી હોવાથી, દ્વીન્દ્રિયાદિ-પ્રાણિ-મિશ્રિત, બીજયુક્ત, તથા હરિતકાયયુક્ત આહાર આદિ લેવાથી, પશ્ચાત્કર્મિક (જેમાં આહાર આદિ ગ્રહણ કરી લીધા પછી હાથ-વાસણ વિગેરે

१ 'प्राणा'-अन्न-अर्श आदित्वादच्।

२-प्राणभोजना-शाकपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्त सप्रभेदमाह–'उग्घाडकवाड उग्घाडणाए' उद्घाट्यत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदत्तविष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तया। 'साणावच्छदारासघट्टणाए' श्वा=कुक्कुर', वत्स =गवापत्यरूपो वत्सतरः, दारकः= बालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेपामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषा सघट्टना=गात्रैः सहतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तया, उपलक्षणमिद गवादीनामपि। 'मडीपाहुडियाए' मण्डी=अग्रकूर. (अग्रभक्त[१]) तस्या प्राभृतिका=प्राभृत मुपढौकन[२]मिति यावत्, यद्वा प्र=प्रकर्षेण आ=मर्यादया भृता सामर्थ्ये सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तया। 'बलिपाहुडिआए' बलिः=देवभूताद्युद्देशेन देयमन्नादि तस्य प्राभृतिका तया। 'ठवणापाहुडिआए' स्थाप्यत इति [३]स्थापना= कृपणवनीपकादिभ्य' स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, 'सविए'

अनिष्ट वस्तुओंमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमें समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना सांकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाडों को विना पूँजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछडे, बालक आदिको ढकेलकर या लांघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक–कृपण आदिके

(સાધારણ) કુળોમા તથા ઇષ્ટ અનિષ્ટ વસ્તુઓમા રાગાદિ રહિત થઇને લાભાલાભમા સમાન ભાવથી આહાર આદિ ગ્રહણ કરવુ) તેમા સાકળ વિના બધ કરેલ અગર અર્ધા વાસેલા કમાડને પૂજ્યા વિના અથવા ધણીની આજ્ઞા વિના ખોલવાથી, કુતરા, વાછરડા, બાલક આદિને ધકેલીને અથવા ઓળગીને જવાથી, કુતરા વિગેરે માટે કાઢેલ અગ્રપિંડ લેવાથી, દેવતા, ભૂત વિગેરેના બલિના માટે તથા યાચક-કૃપણ

१–हन्तकारादिस्वरूप 'हन्दा' इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा 'कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, 'मण्डूकडी' इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२–इद हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमान देयमिष्ट वस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देय भिक्षान्नपि।

३–बाहुलकात्कर्मणि 'ण्यासश्रन्थो युच्' (३।३।१०७) इति युच्।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छङ्कितं तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादावित्यर्थात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्परं निरपेक्षतया 'जं उग्गमेणं' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिए' सहसा करणं सहसाकारस्तत्र भवः सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेसणाए' न एषणा= ग्राह्यमिदमग्राह्यं वेत्याद्यन्वेषणाभावो यस्यां भिक्षाचर्यायां सा अनेषणा तया, 'अण्णेसणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादेः एषणा=परीक्षणं यस्यां सा अन्नैषणा तयेति बोध्यम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेसणाए' पीयत इति पानं=जलादि तस्यैषणा= अन्वेषणं यस्यां सा पानैषणा तया, पानैषणाया वैषम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः[1] द्वीन्द्रियाद्यास्तन्मिश्रिता भोजना[2] प्राणभोजना तया, भवति हि कदाचिद्भक्त्यादिप्रदानवेलायां दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीनां जीवानां सम्मिश्रणेन सङ्घट्टनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'बीयभोयणाए' बीजानां भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्यां क्रियायां सा=बीजभोजना तया, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पच्छाकम्मियाए' पश्चात्= भिक्षाप्रदानोत्तरं कर्म=भाजनधावनादि यस्यां सा=पश्चात्कर्मिका तया, 'पुरेकम्मियाए'

लिये स्थापित (रक्खे हुए), एवं आधाकर्म आदिकी शंकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेषणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एषणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ बरतन आदि धोया जाय)

આદિને અર્થે રાખવામાં આવેલ, અથવા આધાકર્મી આદિની શંકાથી યુક્ત, તથા જાણ્યા વિચાર્યા વિના આહાર વિગેરે લેવાથી, અનેષણીય કોઈપણ વસ્તુને લેવાથી, પાણી વિગેરે પીવા યોગ્ય વસ્તુનાં એષણામાં કોઇ પણ પ્રકારની ખામી હોવાથી, દ્વીન્દ્રિયાદિ-પ્રાણિ-મિશ્રિત, બીજયુકત, તથા હરિતકાયયુકત આહાર આદિ લેવાથી, પશ્ચાત્કર્મિક (જેમાં આહાર આદિ ગ્રહણ કરી લીધા પછી હાથ-વાસણ વિગેરે

१ 'प्राणा'-अत्र-अर्श आदित्वादच्।

२-प्राणभोजना-शाकपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्तु सप्रभेदमाह–'उग्घाडकवाड उग्घाडणाए' उद्घाटयत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदत्तविष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्यो द्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तया। 'साणावच्छदारासंघट्टणाए' श्वा=कुकुर , वत्सः=बालापत्यरूपो वत्सतरः, दारकः= बालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषा संघट्टना=गात्रैः संहतीकरण श्ववत्सदारकसंघट्टना तया, उपलक्षणमिद गवादीनामपि। 'मंडीपाहुडियाए' मण्डी=अग्रकूर (अग्रभक्त[1]) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृत मुपढौकन[2]मिति यावत्, यद्वा प्र=प्रकर्षेण आ=मर्यादया भृता सा त्वर्थे संरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तया। 'बलिपाहुडिआए' बलिः=देवभूताद्युद्देशेन देयमन्नादि तस्य प्राभृतिका तया। 'ठवणापाहुडिआए' स्थाप्यत इति [3]स्थापना= कृपणवनीपकादिभ्य स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, 'संकिए'

अनिष्ट वस्तुओंमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमें समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना साकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाडों को विना पूँजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछडे, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक–कृपण आदिके

(સાધારણ) કુળેમા તથા ઇષ્ટ અનિષ્ટ વસ્તુઓમા રાગાદિ રહિત થઇને લાભાલાભમા સમાન ભાવથી આહાર આદિ ગ્રહણ કરવુ) તેમા સાકળ વિના બધ કરેલ અગર અર્ધા વાસેલા કમાડને પૂજ્યા વિના અથવા ધણીની આજ્ઞા વિના ખોલવાથી, કુતરા, વાછરડા, બાલક આદિને ધકેલીને અથવા ઓળગીને જવાથી, કુતરા વિગેરે માટે કાઢેલ અગ્રપિંડ લેવાથી, દેવતા, ભૂત વિગેરેના બલિના માટે તથા યાચક–કૃપણ

१–हन्तकारादिस्वरूप 'हन्दा' इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, 'मण्डूकडी' इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२–इद हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमान देयमिष्ट वस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देय भिक्षान्नमपि।

३–बाहुलकात्कर्मणि 'ण्यासश्रन्थो युच्' (३।३।१०७) इति युच्।

पुरः=भिक्षाप्रदानात्पूर्वं कर्म=हस्तधावनादि यस्या सा=पुरःकर्मिका तया, 'अदिट्ठहडाए' अदृष्टम्=अनालोकितम् आहृत=गृहीत यस्या (भिक्षायां) सा, यद्वा अदृष्टात् स्थानादाहृता=आनीता अदृष्टाहृता तया, गृहीतादृष्टवस्तुकये त्यर्थः अत्र हि जीवसम्मिश्रणमर्दनादिनातिचारसम्भवः, 'दगससट्ठहडाए' दकमुदकं, तेन ससृष्ट=सम्मिश्रित दकससृष्ट तत आहृत=गृहीत यस्या सा=दकससृष्टाहृता तया सचित्तजलमिश्रितान्नादिग्रहणिकया हस्तसलग्नजलसयुतया वेत्यर्थः, 'रयससट्ठहडाए' रजः=सचित्तधूलिकादि, तेन ससृष्ट=युक्त रज.ससृष्ट, तत आहृत यस्या सा=रज.ससृष्टाहृता तया, 'पारिसाडणियाए' परिशाटन=देय वस्तुनो घृतादेर्बिन्द्वादीना भूमौ पातन, तेन निर्वृत्ता पारिशाटनिकी तया, 'पारिट्ठावणियाए' परि=सर्वतोभावेन स्थापन परिष्ठापन=गृहस्थेन अकल्पनीय वस्तु प्रदानपात्रान्निःसार्य तत्रैव पात्रे देयवस्तुस्थापन, तेन निर्वृत्ता भिक्षा पारिष्ठापनिकी तया[1], 'ओहासणभिक्खाए' 'ओहासण' इति प्रवचनपरिभाषया

तथा पुरःकर्मिक (जिसमें आहारादि देनेके पहिले हाथ बरतन आदि धोया जाय) आहारके लेने से, अदृष्ट स्थान से लाई हुई वस्तु के लेने से, सचित्त पानी के द्वारा गीले हाथ से आहारादिके ग्रहण करने से, सचित्त रजयुक्त आहारादि के लेने से, दाता द्वारा इधर उधर गिराते हुए आहारादि के लेने से, किसी पात्रमें अकल्पनीय वस्तु रक्खी हुई हो उसे निकाल कर उसी पात्र से दिये हुए आहारादि के लेने से, अथवा विना कारण आहारादि के परिठवने से और

धोवाय) तथा पुरःकर्मिक (જેમા આહારાદિ દેતા પહેલા હાથ, વાસણ આદિ ધોવાય) આહાર આદિ લેવાથી, અદૃષ્ટ જગ્યાએથી લાવવામા આવેલી વસ્તુને લેવાથી, સચિત્ત પાણીથી ભીંજાયેલા હાથે આહાર આદિ ગ્રહણ કરવાથી, સચિત્ત રજયુક્ત આહાર આદિ લેવાથી, દાતાર દ્વારા આમતેમ ઢોળાતા આહાર આદિ લેવાથી, કોઈ પાત્રમા અકલ્પનીય વસ્તુ પડેલી હોય તેને ખાલી કરી તેજ પાત્રથી દેવામા આવેલ આહાર આદિ લેવાથી અથવા વિના કારણે આહાર આદિ પરિઠવાથી

१–उपसर्गात्सुनोतीति षत्व, यदि त्वत्र परिर्भोगार्थकोऽनर्थको वा तदा 'परी'–त्यस्य कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञयोपसर्गसञ्ज्ञाया अभावात्सत' परस्य–सस्य षत्वाभाव एवाऽतएव क्वचित् 'पारिस्थापनिकी' ति षकाररहितोऽपि प्रयोगो दृश्यते ।

विशिष्टद्रव्ययाचन गृह्यते, तत्प्रधाना भिक्षा ओहासनभिक्षा तया, हेतु विनैव विशिष्टस्य वस्तुनो नामोपादाय 'अमुक मे देहि नामुक'-मित्येवरूपया याचनयेत्यर्थः। भेदस्य बहुत्वात्सक्षिपति - 'ज' यत्, 'उग्गमेण' उद्गमेन=आधाकर्मादिदोष-स्वरूपेण, 'उप्पायणेसणाए' उत्पादना=धात्र्यादिदोष., एषणा=शङ्कितादि-स्वरूपा ताभ्याम् 'अपरिसुद्ध' अपरिशुद्ध=दूषित, 'पडिग्गहिय' प्रतिगृहीत=स्वीकृतम्, 'परिभुत्त' परिभुक्तम्=आसेवितम्, स पामेव तृतीयान्ताना सप्तम्यन्ताना च अपरिशुद्धादिभिः क्तान्तैरेव सम्बन्ध इति विभावनीयम्, 'ज' यत्, 'न परिट्ठविय' न परिष्ठापित=न परित्यक्त, 'तस्स' तस्य सर्वस्योक्त-रूपस्यातिचारस्य 'मिच्छा मि दुक्कड' इति व्याख्यातपूर्वम् ॥ सू० ४ ॥

एव गोचरातिचारॉश्चिन्तयित्वा सम्प्रति स्वाध्यायातिचाराश्चिन्तयति-'पडिक्कमामि चाउक्काल०' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि चाउक्काल सज्झायस्स अकरणयाए उभओ-काल भडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए दुप्पडिलेहणाए अपमज्जणाए दुप्पमज्जणाए अइक्कमे वइक्कमे अईयारे अणायारे जो मे देवसिओ अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ५ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि चतुष्काल स्वाध्यायस्याऽकरणतया, उभयकाल भाण्डो-पकरणस्याऽप्रतिलेखनया दुष्प्रतिलेखनया अप्रमार्जनया दुष्प्रमार्जनया, अतिक्रमे

बिना कारण मागकर विशिष्ट वस्तु के लेने से जो कोई अतिचार लगा हो, तथा आधाकर्म आदि उद्गमदोष, धात्री आदि उत्पादना-दोष, एव शङ्कित आदि एषणादोष से दूषित आहार आदि लिया गया हो, उपभोगमें लाया गया हो और जो परिष्ठापित न किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ॥ सू० ४ ॥

અને વિના કારણે વિશિષ્ટ વસ્તુની યાચના કરી લેવાથી જે કાંઈ અતિચાર લાગ્યા હોય, તથા આધાકર્મ આદિ ઉદ્‌ગમદોષ, ધાત્રી આદિ ઉત્પાદના દોષ, અને શકિત આદિ એષણા દોષથી દૂષિત આહાર આદિ લેવાઈ ગયા હોય, ઉપભોગમા લીધા હોય અથવા જે પરિષ્ઠાપિત ન કર્યા હોય "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" (સૂ૰ ૪)

पुरः=भिक्षाप्रदानात्पूर्वं कर्म=हस्तधावनादि यस्याः सा=पुरःकर्मिका तया, 'अदिट्ठहडाए' अदृष्टम्=अनालोकितम् आहृतम्=गृहीतं यस्याः (भिक्षायां) सा, यद्वा अदृष्टात् स्थानादाहृता=आनीता अदृष्टाहृता तया, गृहीतादृष्टवस्तुकये त्यर्थः अत्र हि जीवसम्मिश्रणमर्दनादिनातिचारसम्भवः, 'दगससट्ठहडाए' दकमुदकं, तेन संसृष्टं=सम्मिश्रितं दकसंसृष्टं तत आहृतं=गृहीतं यस्याः सा=दकसंसृष्टाहृता तया सचित्तजलमिश्रितान्नादिग्रहणिकया हस्तसंलग्नजलसंयुतया वेत्यर्थः, 'रयससट्ठहडाए' रजः=सचित्तधूलिकादि, तेन संसृष्टं=युक्तं रजःसंसृष्टं, तत आहृतं यस्याः सा=रजःसंसृष्टाहृता तया, 'पारिसाडणियाए' परिशाटनं=देयवस्तुनो घृतादेर्बिन्द्वादीनां भूमौ पातनं, तेन निर्वृत्ता पारिशाटनिकी तया, 'पारिट्ठावणियाए' परि=सर्वतोभावेन स्थापनं परिष्ठापनं=गृहस्थेन अकल्पनीयवस्तु प्रदानपात्रान्निःसार्य तत्रैव पात्रे देयवस्तुस्थापनं, तेन निर्वृत्ता भिक्षा पारिष्ठापनिकी तया[1], 'ओहासणभिक्खाए' 'ओहासण' इति प्रवचनपरिभाषया

तथा पुरःकर्मिक (जिसमें आहारादि देनेके पहिले हाथ बरतन आदि धोया जाय) आहारके लेने से, अदृष्ट स्थान से लाई हुई वस्तु के लेने से, सचित्त पानी के द्वारा गीले हाथ से आहारादिके ग्रहण करने से, सचित्त रजयुक्त आहारादि के लेने से, दाता द्वारा इधर उधर गिराते हुए आहारादि के लेने से, किसी पात्रमें अकल्पनीय वस्तु रक्खी हुई हो उसे निकाल कर उसी पात्र से दिये हुए आहारादि के लेने से, अथवा बिना कारण आहारादि के परिठवने से और

ધોવાય) તથા પુરઃકર્મિક (જેમાં આહારાદિ દેતાં પહેલાં હાથ, વાસણ આદિ ધોવાય) આહાર આદિ લેવાથી, અદૃષ્ટ જગ્યાએથી લાવવામાં આવેલી વસ્તુને લેવાથી, સચિત્ત પાણીથી ભીંજાયેલા હાથે આહાર આદિ ગ્રહણ કરવાથી, સચિત્ત રજયુક્ત આહાર આદિ લેવાથી, દાતાર દ્વારા આમતેમ ઢોળાતા આહાર આદિ લેવાથી, કોઈ પાત્રમાં અકલ્પનીય વસ્તુ પડેલી હોય તેને ખાલી કરી તેજ પાત્રથી દેવામાં આવેલ આહાર આદિ લેવાથી અથવા વિના કારણે આહાર આદિ પરિઠવાથી

१–उपसर्गात्सुनोतीति षत्वं, यदि त्वत्र परिर्भोगार्थकोऽनर्थको वा तदा 'परी'–त्यस्य कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञयोपसर्गसञ्ज्ञाया अभावात्तत' परस्य–सस्य षत्वाभाव एवाऽतएव क्वचित् 'पारिस्थापनिकी' ति षकाररहितोऽपि प्रयोगो दृश्यते ।

भण्ड [1]तदेव भाण्ड=पात्रादि, उपक्रियते=दृढीक्रियते सयमाडि येन तदुपकरण= सदोरकमुखवस्त्रिकावस्त्ररजोहरणादि, भाण्ड चोपकरण चेत्यनयोः समाहारः,भाण्डोपकरण तस्य, 'अप्पडिलेहणाए' अप्रत्युपेक्षणया=सर्वथैवानिरीक्षणेन,'दुप्पडिलेहणाए' दुष्प्रतिलेखनया=असम्यग् निरीक्षणेन, 'अप्पमज्जणाए' अप्रमार्जनया अप्रमार्जना=रजोहरणादिना सर्वतोभावेनाऽशोधनतया, 'दुप्पमज्जणाए' दुष्प्रमार्जनया दुष्प्रमार्जना=तेनैव रजोहरणादिनाऽसम्यक् परिशोधन तया,[2] 'अइक्कमे' अतिक्रमे अतिक्रमः=अकृत्यसेवनस्य सङ्कल्पस्तस्मिन् 'सयमसम्बन्धिनि' इति शेष',एवमग्रेऽपि सप्तम्यन्तेषु,सति सप्तमीयम्।एवमग्रेऽपि।'वइक्कमे' व्यतिक्रमे व्यतिक्रमः=अकृत्यसेवनाय सामग्रीसयोजन तस्मिन्,'अईयारे' अतिचारे-अतिचारः=अकृत्यसेवनाय प्रवर्त्तन तस्मिन्, 'अणायारे' अनाचारे-अनाचारः=अकृत्यसेवन तस्मिन्, 'जो' य''मे' मया 'देवसिओ' दैवसिकः=दिवस व्याप्य भवः, 'अईयारो' अतिचारः, 'कओ' कृत', 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' इति व्याख्यातपूर्वम् ॥ सू० ५ ॥

का सर्वथा सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखन न करना, तथा पात्र उपाश्रय आदिका सर्वथा या यतनापूर्वक न पूँजना आदि कारणों से सयमसम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्यसेवनका भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवन की सामग्री मिलाना), अतिचार (अकृत्य सेवनमें गमनादिरूप प्रवृत्ति करना) तथा अनाचार (अकृत्य का सेवन करना) हो जाने पर जो मुझसे अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ॥ सू० ५ ॥

અથવા સમ્યક્ પ્રકારે પ્રતિલેખન ન કર્યું હોય, તથા પાત્ર, ઉપાશ્રય આદિનો સર્વથા અથવા યતનાપૂર્વક પૂંજવાનું કાર્ય ન કર્યું હોય આદિ કારણોથી સયમ સબધી અતિક્રમ (અકૃત્ય સેવનનો ભાવ), વ્યતિક્રમ (અકૃત્ય સેવનની સામગ્રી મેળવવી), અતિચાર (અકૃત્ય સેવનમા ગમનાદિરૂપ પ્રવૃત્તિ કરવી) તથા અનાચાર (અકૃત્યનું સેવન કરવું) થઈ જવાને કારણે મારાથી જે અતિચાર થયા હોય "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" (સૂ० ५)

१- शब्दार्थकाद् 'भण' धातोरौणादिको ड प्रत्यय । प्रज्ञादिपाठादण्।

२- एषु सर्वत्र हेतौ तृतीया, हेतुत्व चातिक्रमाद्यपेक्षया।

व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ५ ॥

॥ टीका ॥

'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि = विनिवर्ते, यद्वा स्वात्मानं विनिवर्त्तयामि अतिचारादिति शेषः। अतिचारस्वरूपमाह——'चाउक्काल' चत्वारः=दिवसरात्रि-प्रथमान्तिमप्रहरस्वरूपाः कालाः=समया यस्य तद्यथा स्या-त्तथेति क्रियाविशेषणमिदम्, यद्वा चतुर्णां कालानां समाहारश्चतु'ष्काल'[1] 'सज्झायस्य' सु=सुष्ठु आ=मर्यादया अध्याय=अध्ययनं स्वाध्यायः निर्दिष्टकालानतिक्रमेण यथाविधि प्रवचनपठनं, तस्य, 'अकरणयाए' अवि-द्यमानं करणम्=अनुष्ठानं यस्मिन् सोऽकरणः-अस्वाध्यायः, तस्य भावोऽकरणता तया अकरणेनेत्यर्थः। अत्र 'स्वाध्यायकरणादिभिर्हेतुभिरतिक्रमे व्यतिक्रमेऽति-चारेऽनाचारे (जाते) सति यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम्'-मित्यादिरीत्या सम्बन्ध इति बुद्धिमेक्षिकयाऽवधारणीयम्।

'उभओकाल' दिवसस्य उभयतः=प्रथमान्तिमप्रहररूपौ कालौ यस्मिं-स्तदुभयतःकालम्, तद्यथा स्यात्तथा 'भंडोवगरणस्स' भणति=शब्दायते इति

मैं आगे कहे हुए इन अतिचारों से निवृत्त होता हूँ, दिन तथा रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहररूप चार कालों में मर्यादा पूर्वक प्रवचनके मूलपठनरूप स्वाध्यायको न करना, दोनो कालों (दिनके प्रथम और अन्तिम प्रहर) में पात्र रजोहरण आदि भण्ड उपकरण

આગળ કહેવામા આવેલા અતિચારોથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ દિવસ તથા રાત્રીના પ્રથમ અને છેલ્લા પ્રહરરૂપ ચાર કાળમા મર્યાદા પૂર્વક પ્રવચનના મૂળપઠન રૂપ સ્વાધ્યાય ન કરવુ, બન્ને સમય (દિવસના પહેલા અને પાછલા પ્રહર) મા પાત્ર રજોહરણ આદિ ભડ ઉપકરણનું સર્વથા

१-समाहारद्विगुत्वान्नपुंसकता, ततोऽत्यन्तसंयोगे 'व्याप्य' इति क्रियाध्याहारेण वा द्वितीया, न चैवं सति 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इति वार्तिकबलेन स्त्रीत्वे 'त्रिलोकी' इत्यादिवद् द्विगोः' (४।१।२१) इति ङीप् स्यादिति वाच्यम्, पात्राद्यन्तर्गणेऽस्य पाठकल्पनात्। कालस्य वस्तुत एकत्वेऽप्यौपचारिकत्वादिह चातुर्विध्यं बोध्यम्।

भण्ड [१]तदेव भाण्ड=पात्रादि, उपक्रियते=दृढीक्रियते सयमादि येन तदुपकरण= सदोरकमुखवस्त्रिकावस्त्ररजोहरणादि, भाण्ड चोपकरण चेत्यनयोः समाहार',भाण्डोपकरण तस्य, 'अप्पडिलेहणाए' अप्रत्युपेक्षणया=सर्वथैवानिरीक्षणेन,'दुप्पडिलेहणाए' दुष्प्रतिलेखनया=असम्यग् निरीक्षणेन, 'अप्पमज्जणाए' अप्रमार्जनया अप्रमार्जना=रजोहरणादिना सर्वतोभावेनाऽशोधन तया, 'दुप्पमज्जणाए' दुष्प्रमार्जनया दुष्प्रमार्जना=तेनैव रजोहरणादिनाऽसम्यक् परिशोधन तया,[२] 'अइक्कमे' अतिक्रमे अतिक्रम.=अकृत्यसेवनस्य सङ्कल्पस्तस्मिन् 'सयमसम्बन्धिनि' इति शेष',एवमग्रेऽपि सप्तम्यन्तेषु, सति सप्तमीयम्। एवमग्रेऽपि। 'वइक्कमे' व्यतिक्रमे व्यतिक्रमः=अकृत्यसेवनाय सामग्रीसयोजन तस्मिन्, 'अईयारे' अतिचारे—अतिचारः=अकृत्यसेवनाय प्रवर्त्तन तस्मिन्, 'अणायारे' अनाचारे—अनाचार'=अकृत्यसेवन तस्मिन्, 'जो' य' 'मे' मया 'देवसिओ' दैवसिकः=दिवस व्याप्य भवः, 'अईयारो' अतिचारः, 'कओ' कृत', 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' इति व्याख्यातपूर्वम् ॥ सू० ५ ॥

का सर्वथा सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखन न करना, तथा पात्र उपाश्रय आदिका सर्वथा या यतनापूर्वक न पूँजना आदि कारणों से सयमसम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्यसेवनका भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवन की सामग्री मिलाना), अतिचार (अकृत्य सेवनमें गमनादिरूप प्रवृत्ति करना) तथा अनाचार (अकृत्य का सेवन करना) हो जाने पर जो मुझसे अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ॥ सू० ५ ॥

અથવા સમ્યક્ પ્રકારે પ્રતિલેખન ન કર્યું હોય, તથા પાત્ર, ઉપાશ્રય આદિનો સર્વથા અથવા યતનાપૂર્વક પૂજવાનું કાર્ય ન કર્યું હોય આદિ કારણોથી સયમ સબંધી અતિક્રમ (અકૃત્ય સેવનનો ભાવ), વ્યતિક્રમ (અકૃત્ય સેવનની સામગ્રી મેળવવી), અતિચાર (અકૃત્ય સેવનમા ગમનાદિરૂપ પ્રવૃત્તિ કરવી) તથા અનાચાર (અકૃત્યનું સેવન કરવું) થઈ જવાને કારણે મારાથી જે અતિચાર થયા હોય "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" (સૂ૦ ૫)

१– शब्दार्थकाद् 'भण्' धातोरौणादिको डः प्रत्यय. । प्रज्ञादिपाठादण् ।

२– एषु सर्वत्र हेतौ तृतीया, हेतुत्व चातिक्रमाद्यपेक्षया ।

व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ५ ॥

॥ टीका ॥

'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि = विनिवर्ते, यद्वा स्वात्मानं विनिवर्तयामि अतिचारादिति शेषः । अतिचारस्वरूपमाह——'चाउकाल' चत्वारः=दिवसरात्रि-प्रथमान्तिमप्रहरस्वरूपाः कालाः=समया यस्य तद्यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणमिदम्, यद्वा चतुर्णां कालानां समाहारश्चतुःकालं 'सज्झायस्स' सु=सुष्ठु आ=मर्यादया अध्याय=अध्ययनं स्वाध्यायः निर्दिष्टकालानतिक्रमेण यथाविधि प्रवचनपठनं, तस्य, 'अकरणयाए' अविद्यमानं करणम्=अनुष्ठानं यस्मिन् सोऽकरणः-अस्वाध्याय, तस्य भावोऽकरणता तया अकरणेनेत्यर्थः । अत्र 'स्वाध्यायकरणादिभिर्हेतुभिरतिक्रमे व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे (जाते) सति यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृत'-मित्यादिरीत्या सम्बन्ध इति सूक्ष्मेक्षिकयाऽवधारणीयम् ।

'उभओकाल' दिवसस्य उभयतः=प्रथमान्तिमप्रहररूपौ कालौ यस्मिंस्तदुभयतःकालम्, तद्यथा स्यात्तथा 'भंडोवगरणस्स' भणति=शब्दायते इति

मैं आगे कहे हुए इन अतिचारों से निवृत्त होता हूँ, दिन तथा रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहररूप चार कालों में मर्यादा पूर्वक प्रवचनके मूलपठनरूप स्वाध्यायको न करना, दोनो कालों (दिनके प्रथम और अन्तिम प्रहर) में पात्र रजोहरण आदि भंड उपकरण

આગળ કહેવામા આવેલા અતિચારોથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ દિવસ તથા રાત્રીના પ્રથમ અને છેલ્લા પ્રહરરૂપ ચાર કાળમા મર્યાદા પૂર્વક પ્રવચનના મૂળપઠન રૂપ સ્વાધ્યાય ન કરવુ, બન્ને સમય (દિવસના પહેલા અને પાછલા પ્રહર) મા પાત્ર રજોહરણ આદિ ભંડ ઉપકરણનું સર્વથા

१-समाहारद्विगुत्वान्नपुंसकता, ततोऽत्यन्तसंयोगे 'व्याप्य' इति क्रियाध्याहारेण वा द्वितीया, न चैवं सति 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्ट' इति वार्तिकबलेन स्त्रीत्वे 'त्रिलोकी' इत्यादिवत् द्विगो" (४।१।२१) इति ङीप् स्यादिति वाच्यम्, पात्राद्यन्तर्गणेऽस्य पाठकल्पनात् । कालस्य वस्तुत एकत्वेऽप्यौपचारिकत्वादिह चातुर्विध्यं बोध्यम् ।

विरतिस्तस्मिन्, अर्थादेकविधेऽसयमे जाते सति निषिद्धाऽऽचरणादिना यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य दुष्कृत मयि मिथ्याऽस्त्विति सारार्थः। एवमन्यत्रापि बोध्यम्। उक्तोऽसयमरूप एकविधोऽतिचारः, सम्प्रति नानाविध त दर्शयन्नाह–'पडिक्कमामि दोहिं बधणेहिं' इति 'दोहिं' द्वाभ्या, बध्यते=बन्धविषयीक्रियते जीवो याभ्या=राग–द्वेषाभ्या ते बन्धने ताभ्या, हेतौ तृतीया, अत्र 'योऽतिचारः कृतस्त, तस्मात् इति वा 'प्रतिक्रामामि'–ति सम्बन्धः कार्यः, के ते बन्धने? इत्यपेक्षायामाह–'रागबधणेण' रज्यते येनेति रागः, स च तद्बन्धन च तेन, 'दोसबधणेण' प्राकृते द्वेष–दोष–शब्दयोः समानरूपत्वात् द्वेषबन्धनेन–दोषबन्धनेन वा इति च्छाया, द्वेष्टि=जीवानामप्रीतिमुत्पादयतीति, द्विष्यते=अप्रीतिरुत्पाद्यते येन यस्माद्वा स द्वेषः, स च तद्बन्धन च द्वेषबन्धन, तेन[1] यद्वा दुष्यन्ति=विकृता भवन्ति क्षान्त्याद्यात्मगुणा येन यस्माद्वेति दोषः=मिथ्यात्वाविरति प्रमाद-कषायाशुभयोगलक्षणः स च तद्बन्धन च दोषबन्धन तेन,[2] 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'तिहिं' त्रिभिः, 'दडेहिं' दण्डैः, दण्ड्यते रत्नत्रयैश्वर्यापहरणादसारीक्रियते आत्मा यैरिति, दण्ड्यन्ते=व्यापाद्यन्ते प्राणिनो यैरिति वा दण्डास्तैः, दण्डो द्रव्यादिभेदादनेकविधोऽप्यत्र भावदण्ड एवाधिकृतो बोध्यः, दण्डत्रैविध्यमाह–'मणदडेण' मन्यते=ज्ञायते पदार्थसार्थोऽनेनेति मनस्तेन दण्डो (असद्व्यापारात्मक) मनोदण्डस्तेन, 'वयदडेण' उच्यते इति वचस्तेन दण्डो वचोदण्डस्तेन, 'कायदडेण' चीयतेऽस्मिन्नस्थ्यादिकमिति काय.[3] कायेन दण्डः=कायदण्ड-

---

हो तो, एव राग (अनुराग) द्वेष (अप्रीति) रूप दो बन्धनों के कारण, सम्यग्ज्ञानादिरूप रत्नत्रयका नाश करके आत्माको असार करनेवाले, अथवा प्राणियो की हिंसामें निमित्तभूत मानसिक, वाचिक, कायिक, इन तीन दण्डों के कारण, विहित का अनुष्ठान

પ્રમાણે રાગદ્વેષ રૂપ બે બન્ધનોના કારણે સમ્યક્-જ્ઞાનાદિ રૂપ રત્નત્રયનો નાશ કરીને આત્માને અસાર કરવાવાળા, અથવા પ્રાણીઓની હિંસામા નિમિત્તભૂત માનસિક, વાચિક અને કાયિક એ ત્રણ દડોના કારણે વિહિતનું અનુ

१– 'द्विष अप्रीतौ' अस्माद्बाहुलकात्करणेऽपादाने वा घञ्।

२– 'दुष वैकृत्ये' अस्मात्पूर्ववद्घञ्।

३– 'निवासचितीत्यधिकरणे घञ् चस्य कुत्व च'।

सम्प्रत्यतिचारैकानेकभेदगर्भं प्रतिक्रमणमाह-'पडिक्कमामि एगविहे' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि एगविहे असंजमे । पडिक्कमामि दोहिं बंधणेहिं-रागबंधणेणं दोसबंधणेणं । पडिक्कमामि तिहिं दंडेहिं-मणदंडेणं वयदंडेणं कायदंडेणं । पडिक्कमामि तिहिं गुत्तीहिं-मणगुत्तीए वयगुत्तीए कायगुत्तीए । पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं-मायासल्लेणं नियाणसल्लेणं मिच्छादंसणसल्लेणं । पडिक्कमामि तिहिं गारवेहिं-इड्ढीगारवेणं रसगारवेणं सायागारवेणं । पडिक्कमामि तिहिं विराहणाहिं-नाणविराहणाए दंसणविराहणाए चरित्तविराहणाए ॥ सू० ६ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि एकविधेऽसंयमे । प्रतिक्रामामि द्वाभ्यां बन्धनाभ्यां-रागबन्धनेन द्वेषबन्धनेन । प्रतिक्रामामि त्रिभिर्दण्डैः-मनोदण्डेन वचोदण्डेन कायदण्डेन। प्रतिक्रामामि तिसृभिर्गुप्तिभिः-मनोगुप्त्या वचोगुप्त्या कायगुप्त्या। प्रतिक्रामामि त्रिभिः शल्यैः-मायाशल्येन निदानशल्येन मिथ्यादर्शनशल्येन। प्रतिक्रामामि त्रिभिर्गौरवैः-ऋद्धिगौरवेण रसगौरवेण शातगौरवेण । प्रतिक्रामामि तिसृभिर्विराधनाभिः-ज्ञानविराधनया दर्शनविराधनया चारित्रविराधनया ॥ सू० ६ ॥

॥ टीका ॥

'पडिक्कमामि' गताऽस्य व्याख्या, 'एगविहे' एका विधा=प्रकारो (भेदो) यस्य स एकविधस्तस्मिन्, 'असंजमे' न संयमः=असंयमः=पापाचारः

यह अतिचार संक्षेप से एक प्रकारका, विस्तार से दो तीन आदि आत्माध्यवसायसे संख्यात असंख्यात यावत् अनन्त प्रकार का है, उनमें से एक आदि भेद कहते हैं—'पडिक्कमामि एगविहे०' इत्यादि ।

एक प्रकारका असंयम होने पर जो मुझसे अतिचार हुआ

આ અતિચાર સંક્ષેપથી એક પ્રકારના છે, અને વિસ્તારથી બે-ત્રણ આદિ આત્માધ્યવસાયથી સંખ્યાત અસંખ્યાત યાવત્ અનન્ત પ્રકારના છે, તેમાંથી એક વગેરેના ભે૦ કહે છે-"પડિક્કમામિ એગવિહે" ઇત્યાદિ

એક પ્રકારનો અસંયમ થવાથી મને જે અતિચાર લાગ્યો હોય એ

सुखलालसारूपनिशितधारकुठारेण तन्निदानं तच्च तच्छल्यं निदानशल्यं तेन, 'मिच्छादंसणसल्लेणं' मिथ्या=विपरीतं=मोहकर्मोदयजनितं दर्शनम्=अभिप्रायो मिथ्यादर्शनं तदेव शल्यं तेन, 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'तिहिं' त्रिभिः, 'गारवेहिं' गुरोः कर्म भावो वा गौरवं, तद्द्विविधं द्रव्यगतं भावगतं च, द्रव्यगतं वज्रादे', भावगतमहङ्कारलोभादिजन्यमात्मनोऽशुभभावरूपचतुर्गतिसंसारचक्रभ्रमणनिदानं - कर्मकारणम्, अत्र त्वेतदेव विवक्षितं प्रकरणात्, तैः, तद्द्वारेति भावः 'यो मयाऽतिचारः कृतः' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वत्। तदेव गौरवत्रयमाह-'इड्ढी०' इति, 'इड्ढीगारवेणं' ऋद्धिः=राजैश्वर्यादिलक्षणा, आचार्यादिपदसम्प्राप्तिलक्षणा वा तया तस्या वा गौरवमृद्धिगौरवम्=आत्मोत्कर्षस्तेन, 'रसगारवेणं' रसः=रसनेन्द्रियार्थो मधुरादिः, तस्य गौरवं=तद्वाप्त्यभिमानस्तेन, 'सायागारवेणं' शातं= शरीरादिसुखं तेन तस्य वा गौरवं शातगौरवं, तेन-'अहो अहमस्मि शरीरादिसुखसम्पन्नः' इत्यभिमानेनेति यावत् 'साया' इत्यत्र प्राकृतत्वाद्दीर्घः, 'पडिक्कमामि'

समान, आत्मरूप भूमिमें उत्पन्न समकित रूप अङ्कुर से युक्त निर्मल भावनारूप जलसे सींचे हुए, तप संयम आदि फूलों से हरे भरे और मोक्षरूप फलसे विभूषित कुशलकर्मरूप कल्पवृक्ष को काटनेवाला निदान (नियाणा) और मोहकर्म के उदय से होनेवाला अभिप्रायरूप मिथ्यादर्शन, इन तीन शल्यों से और राजा आदि या आचार्य आदि की पदप्राप्तिरूप ऋद्धिगौरव, मधुर आदि रसकी प्राप्ति का अभिमानरूप रसगौरव, तथा शरीर आदि की सुख प्राप्ति से होनेवाला अभिमानरूप शातगौरव के कारण, एवं ज्ञानकी (जिसके

धारथी युक्त कुठार समान, आत्मरूप भूमिमां उत्पन्न समकितरूप अंकुरथी युक्त निर्मल भावनारूप जलथी सींचेल, तपसंयम आदि फूलोथी भरेला मोक्षरूप फलथी विभूषित कुशल कर्म रूप कल्पवृक्षने कापवावाळा निदान (नियाणु) अने मोहकर्मना उदयथी उत्पन्न थनारा अभिप्राय रूप मिथ्यादर्शन, आ त्रण शल्योथी, राजा अथवा आचार्य आदि पदनी प्राप्ति रूप ऋद्धिगौरव, मधुर आदि रसनी प्राप्तिना अभिमान रूप रसगौरव तथा शरीर आदिना सुखनी प्राप्तिथी थवावाळा अभिमानरूप शातगौरव, ए प्रमाणे ज्ञाननी (जेना वडे

१-निपूर्वकात् 'दो अवखण्डने' अस्मात् करणे ल्युट्।

स्तेन, 'तिहिं' तिसृभिः, 'गुत्तीहिं' गोपनमर्थाद्रक्षण गुप्तिः आगन्तुककर्मकच वरनिरोधो योगनिरोधो वा ताभिर्योऽतिचारः कृतस्तस्मात् 'पडिक्कमामि' प्रति क्रामामि, गुप्तित्रयमाह 'मण' इति 'मणगुत्तीए' मनोगुप्त्या 'वयगुत्तीए' वचोगुप्त्या, 'कायगुत्तीए' कायगुप्त्या, अर्थः प्रस्फुटः, आह–कथ गुप्तीनामतिचार प्रति करणत्व? मिति, उच्यते–विहितानननुष्ठान–निपिद्धाऽऽचरण–श्रद्धान प्रस्खलनादिना व्युत्क्रमेण सेविता मनोगुप्त्यादयोऽतिचारहेतवः सम्पद्यन्त इति। 'तिहिं' त्रिभिः, 'सल्लेहिं' शल्यते=क्लिश्यते जीवो यैस्तानि शल्यानि, द्रव्य भावभेदेन शल्यस्य द्वैविध्येऽप्यत्र प्रकरणाद्भावशल्यस्यैव ग्रहण बोध्यम्, अन्वय इहापि प्राग्वदेव, शल्यत्रयमाह–'माया०' इति–'मायासल्लेण' मीयते=प्रतार्यते प्रक्षिप्यते[1] वा नरकादौ लोकोऽनयेति, यद्वा, [2]माय्यते=अशुभकर्मरूपे गर्ते पात्यते लोकोऽनयेति, भ्रान्ति सर्वे दुर्गुणा यस्यामिति वा माया, तद्रूप शल्य मायाशल्य= मनसा वाचा कायेन वा परवञ्चनस्वरूप तेन, 'नियाणसल्लेण' नितरा दीयते= छिद्यते आत्मभूमिजात–सम्यक्त्वाऽङ्कुरित–विविधविमलभावनासलिलसवर्द्धित–ध्यानक्रियापल्लविताऽखण्डतप'सयमाद्यनुष्ठानपुष्पित – मोक्षफलसुभूषित – कुशल कर्मकल्पवृक्षो येन—ऐहिकचक्रवर्त्यादिपारलौकिकदेवर्द्ध्यादिपदप्राप्तिजन्यविषय-

---

न करने, निषिद्ध का सेवन करने, तथा अश्रद्धानादिसे सम्यक् असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति, इन तीन गुप्तियों के कारण, अशुभ कर्मों के गड्ढेमे या नरकमें गिरानेवाली अथवा विषयोंमें प्राणियों को लुभानेवाली माया, ऐहिक चक्रवर्त्ती आदि, परलोकसम्बन्धी देवऋद्धि आदिके पदों की प्राप्ति से होनेवाली विषयसुखलालसारूप तीक्ष्णधारा से युक्त कुठार के

-ष्ठान न कर्युं होय अने निषिद्धनुं सेवन कर्युं होय, तथा अश्रद्धाथी सम्यक् असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, आ त्रणु गुप्तिओना कारणे अशुभ कर्मोना खाडामा अथवा नरकमा नाखनारी, अथवा विषयोमा प्राणीओने लोभावनारी माया, ऐहिक–चक्रवर्ती आदि, परलोक सबधी देव ऋद्धि आदि पदोनी प्राप्तिथी थनारी विषयसुखनी लालसारूप तीक्ष्ण

१–'डुमिञ् प्रक्षेपणे' इत्यस्येदम्।

२–'मय गतौ' इत्यस्य ण्यन्तस्येदम्।

सुखलालसारूपनिशितधारकुठारेण तन्निदान[1]तच तच्छल्य निदानशल्य तेन, 'मिच्छादसणसल्लेण' मिथ्या=विपरीत=मोहकर्मोदयजनित दर्शनम्=अभिप्रायो मिथ्यादर्शन तदेव शल्य तेन, 'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, 'तिहिं' त्रिभिः, 'गारवेहिं' गुरोः कर्म भावो वा गौरव, तद्विविधं द्रव्यगत भावगत च, द्रव्यगत वज्रादे', भावगतमहङ्कारलोभादिजन्यमात्मनोऽशुभभावरूपचतुर्गतिससारचक्रभ्रमणनिदान -कर्मकारणम्, अत्र त्वेतदेव विवक्षित प्रकरणात्, तैः, तद्वारेति भावः 'यो मयाऽतिचारः कृतः' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वत्। तदेव गौरवत्रयमाह-'इड्ढी०' इति, 'इड्ढीगारवेण' ऋद्धिः=राजैश्वर्यादिलक्षणा, आचार्यादिपदसम्प्राप्तिलक्षणा वा तया तस्या वा गौरवमृद्धिगौरवम्=आत्मोत्कर्षस्तेन, 'रसगारवेण' रस =रसनेन्द्रियार्थो मधुरादिः, तस्य गौरव=तदवाप्त्यभिमानस्तेन, 'सायागारवेण' शात=शरीरादिसुख तेन तस्य वा गौरव शातगौरव, तेन-'अहो अहमस्मि शरीरादिसुखसम्पन्नः' इत्यभिमानेनेति यावत् 'साया' इत्यत्र प्राकृतत्वाद्दीर्घः, 'पडिकमामि'

समान, आत्मरूप भूमिमें उत्पन्न समकित रूप अङ्कुर से युक्त निर्मल भावनारूप जलसे सींचे हुए, तप सयम-आदि फूलों से हरे भरे और मोक्षरूप फलसे विभूपित कुशलकर्मरूप कल्पवृक्ष को काटनेवाला निदान (नियाणा) और मोहकर्म के उदय से होनेवाला अभिप्रायरूप मिथ्यादर्शन, इन तीन शल्यों से और राजा आदि या आचार्य आदि की पदप्राप्तिरूप ऋद्धिगौरव, मधुर आदि रसकी प्राप्ति का अभिमानरूप रसगौरव, तथा शरीर आदि की सुख प्राप्ति से होनेवाला अभिमानरूप शातगौरव के कारण, एव ज्ञानकी (जिसके

धारथी युक्त कुठार समान, आत्मरूप भूमिमा उत्पन्न समकितरूप अकुरथी युक्त निर्मल भावनारूप जलथी सीचेल, तपसयम आदि फूलोथी भरेला मोक्षरूप फलथी विभूषित कुशल कर्म रूप कल्पवृक्षने कापवावाळा निदान (नियाणु) अने मोहकर्मना उदयथी उत्पन्न थनारा अभिप्राय रूप मिथ्यादर्शन, आ त्रण शल्योथी, राजा अथवा आचार्य आदि पदनी प्राप्ति रूप ऋद्धिगौरव, मधुर आदि रसनी प्राप्तिना अभिमान रूप रसगौरव तथा शरीर आदिना सुखनी प्राप्तिथी थवावाळा अभिमानरूप शातगौरव, ए प्रमाणे ज्ञाननी (जेना वडे

१-निपूर्वकात् 'दो अवखण्डने' अस्मात् करणे ल्युट्।

स्तेन, 'तिहिं' तिसृभिः, 'गुत्तीहिं' गोपनमर्यादक्षण गुप्तिः आगन्तुककर्मकचवरनिरोधो योगनिरोधो वा ताभिर्योऽतिचारः कृतस्तस्मात् 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, गुप्तित्रयमाह 'मण' इति 'मणगुत्तीए' मनोगुप्त्या 'वयगुत्तीए' वचोगुप्त्या, 'कायगुत्तीए' कायगुप्त्या, अर्थः प्रस्फुटः, आह–कथ गुप्तीनामतिचार प्रति करणत्व? मिति, उच्यते–विहितानानुष्ठान–निषिद्धाऽऽचरण–श्रद्धानप्रस्खलनादिना व्युत्क्रमेण सेविता मनोगुप्त्यादयोऽतिचारहेतवः सम्पद्यन्त इति। 'तिहिं' त्रिभिः, 'सल्लेहिं' शल्यते=क्लिश्यते जीवो यैस्तानि शल्यानि, द्रव्य भावभेदेन शल्यस्य द्वैविध्येऽप्यत्र प्रकरणाद्भावशल्यस्यैव ग्रहण बोध्यम्, अन्वय इहापि प्राग्वदेव, शल्यत्रयमाह–'माया०' इति–'मायासल्लेण' मीयते=प्रतार्यते प्रक्षिप्यते[1] वा नरकादौ लोकोऽनयेति, यद्वा, [2]माय्यते=अशुभकर्मरूपे गर्ते पात्यते लोकोऽनयेति, भ्रन्ति सर्वे दुर्गुणा यस्यामिति वा माया, तद्रूप शल्य मायाशल्य= मनसा वाचा कायेन वा परवञ्चनस्वरूप तेन, 'नियाणसल्लेण' नितरा दीयते= छिद्यते आत्मभूमिजात–सम्यक्त्वाऽङ्कुरित–विविधविमलभावनासलिलसवर्द्धित–ध्यानक्रियापल्लविताऽखण्डतपःसयमाद्यनुष्ठानपुष्पित – मोक्षफलसुभूषित – कुशलकर्मकल्पवृक्षो येन—ऐहिकचक्रवर्त्यादिपारलौकिकदेवर्द्ध्यादिपदप्राप्तिजन्यविषय

न करने, निषिद्ध का सेवन करने, तथा अश्रद्धानादिसे सम्यक् असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति, इन तीन गुप्तियों के कारण, अशुभ कर्मों के गड्ढेमे या नरकमें गिरानेवाली अथवा विषयोंमें प्राणियों को लुभानेवाली माया, ऐहिक चक्रवर्त्ती आदि, परलोकसम्बन्धी देवऋद्धि आदिके पदों की प्राप्ति से होनेवाली विषयसुखलालसारूप तीक्ष्णधारा से युक्त कुठार के

-ष्ठान न कर्युं होय अने निषिद्धनुं सेवन कर्युं होय, तथा अश्रद्धाथी सम्यक् असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, आ त्रणु गुप्तिओना कारणे अशुभ कर्मोना खाडामा अथवा नरकमा नाखनारी, अथवा विषयोमा प्राणीओने लोभावनारी माया, ऐहिक–चक्रवर्त्ती आदि, परलोक सबंधी देव ऋद्धि आदि पदोनी प्राप्तिथी थनारी विषयसुखनी लालसारूप तीक्ष्ण

१–'डुमिञ् प्रक्षेपणे' इत्यस्येदम्।

२–'मय गतौ' इत्यस्य ण्यन्तस्येदम्।

हसण्णाए। पडिक्कमामि चउहिं विकहाहि–इत्थिकहाए, भत्तकहाए, देसकहाए, रायकहाए। पडिक्कमामि चउहि झाणेहि–अट्टेण झाणेणं, रुद्देण झाणेणं, धम्मेणं झाणेणं, सुक्केणं झाणेणं ॥ सू० ७ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि चतुर्भिः कषायै –क्रोधकषायेण, मानकषायेण, मायाकषायेण, लोभकषायेण। प्रतिक्रामामि चतसृभिः सञ्ज्ञाभि–आहारसञ्ज्ञया, भयसञ्ज्ञया, मैथुनसञ्ज्ञया, प्रतिग्रहसञ्ज्ञया। प्रतिक्रामामि चतसृभिर्विकथाभिः–स्त्रीकथया, भक्तकथया, देशकथया, राजकथया। प्रतिक्रामामि चतुर्भिर्ध्यानैः–आर्त्तेन ध्यानेन, रौद्रेण ध्यानेन, धर्मेण ध्यानेन, शुक्लेन ध्यानेन ॥ सू० ७ ॥

॥ टीका ॥

'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'चऊहिं' चतुर्भिः, 'कसाएहिं' कष्यते=संसारे समाकृष्यत आत्मा यैस्ते कषायाः[1], यद्वा कषति=हिनस्ति विषयकरवालेन प्राणिन इति कषः=संसारस्तस्य आयः=लाभो यैरिति, कष्यन्ते=गमनाऽऽगमनादिकण्टकेषु घृष्यन्ते प्राणिनो यैरिति, कृष्यते=सुखदुःखादिसस्यफलयोग्या क्रियते कर्मभूमिर्यैरिति, कलुषयन्ति=मलिनयन्ति स्वभावमपि जीवमिति निरुक्तवृत्त्या वा कषायास्तैः, तद्द्वारेत्यर्थः 'यो मये'–त्यादिसम्बन्धः प्राग्वत्, तदेव कषायचतुष्टयमाह—'कोह०' इति–'कोहकसाएण' क्रुध्यति=विकृतो भवत्यात्माऽनेनेति क्रोधः स चासौ कषायश्च क्रोधकषायस्तेन, 'माणकसाएण' *माननं=स्वमपेक्ष्याऽन्यस्य हीनतया परिच्छेदनं, यद्वा मीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेति* मानः स चासौ कषायश्च मानकषायस्तेन, 'मायाकसाएण' मायाशब्दव्याख्या

आत्मा को इस संसारमें परिभ्रमण करानेवाले, या गमनागमनरूप कण्टकों में प्राणियों को घसीटने वाले, अथवा आत्मा को मलिन करनेवाले जीवपरिणाम को कषाय कहते हैं, इस कषाय अर्थात् क्रोध-मान–माया–और लोभ के कारण, जिससे जीव या

આત્માને સંસારમાં પરિભ્રમણ કરાવનાર અથવા જવું આવવું વગેરે ક્રિયારૂપ કંટકોમાં પ્રાણીઓને ખેંચી જવાવાળા, અથવા આત્માને મલિન કરવાવાળા જીવના પરિણામોને કષાય કહે છે આ કષાય અર્થાત્ ક્રોધ, માન,

१– 'कष्' धातोरौणादिक 'आय' प्रत्यय.

प्रतिक्रामामि, 'तिहिं' तिसृभिः, 'विराहणाहिं' विगतान्याराधनानि, यद्वा वि= विशेषेण राधनानि विराधनाः=खण्डनास्ताभिरर्थात्तद्वारा यो मयाऽतिचारः कृतः' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्रुक्तप्रकारः। विराधनाभेदानाह-'नाण०' इति 'नाणवि राहणाए' ज्ञायन्ते-अवबुध्यन्ते पदार्था येन यस्माद्वा तज्ज्ञानम्=पदार्थपरिबोध-स्तस्य विराधना=ज्ञानविराधना=तया, 'दंसणविराहणाए' दृश्यन्ते= धातूनामनेकार्थत्वात् श्रद्धीयन्ते पदार्था अनेनेति दर्शनं=सम्यग्रूपं तस्य विरा धना तया, 'चारित्तविराहणाए' चर्यते=समाराध्यते मुमुक्षुभिरिति चर्यते= कर्मणा रिक्तीक्रियते आत्माऽनेनेति वा चरित्रं तदेव-[1]चारित्रं=त्रस-स्थावरादि प्राणातिपाताद्युपरमरूपाऽऽत्मपरिणामरूपं, सर्वसावद्ययोगपरित्यागपुरस्सरनिरवद्य-योगानुष्ठानरूपं वा सामायिकादि, तस्य विराधना=चारित्रविराधना तया ॥सू० ६॥

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि चउहिं कसाएहिं-कोहकसाएणं, माणक-साएणं, मायाकसाएणं, लोहकसाएणं। पडिक्कमामि चउहिं सण्णाहिं-आहारसण्णाए, भयसण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग्ग-

---

द्वारा जीवादि पदार्थ जाना जाय वह ज्ञान, उसकी) विराधना, दर्शनकी (जिस के द्वारा जीवादि पदार्थों का श्रद्धान किया जाय वह दर्शन, उसकी) विराधना, चारित्रकी (मोक्षार्थियों से सेवन करने योग्य, अथवा आत्मा को कर्म रहित करने वाला चारित्र, उसकी) विराधना, इन तीन विराधनाओं (आराधना के अभाव अथवा खण्डनारूप) के कारण जो मुझ से अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता ॥ सू० ६ ॥

જીવાદિ પદાર્થ જાણી શકાય તે જ્ઞાન, તેની) વિરાધના, દર્શનની (જેના વડે જીવાદિ પદાર્થોની શ્રદ્ધા કરવામા આવે, પ્રવચનમા રુચી થાય તે દર્શન, તેની) વિરાધના, ચારિત્રની (મોક્ષાર્થી જીવોને સેવન કરવા યોગ્ય, અથવા આત્માને કર્મ-રહિત કરવાવાળો ચારિત્ર, તેની,) વિરાધના, આ ત્રણ વિરાધનાઓના કારણે (આરાધનાનો અભાવ અથવા ખંડનારૂપ) કારણે મને જે અતિચાર લાગ્યો હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ (સૂ૦ ૬)

१-प्रज्ञादित्वात्स्वार्थिकोऽण् प्रत्ययः।

हसण्णाए। पडिक्कमामि चउहिं विकहाहिं-इत्थिकहाए, भत्तकहाए, देसकहाए, रायकहाए। पडिक्कमामि चउहि झाणेहिं-अट्टेणं झाणेणं, रुद्देण झाणेण, धम्मेणं झाणेणं, सुक्केणं झाणेणं ॥ सू० ७ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि चतुर्भिः कषायैः-क्रोधकषायेण, मानकषायेण, मायाकषायेण, लोभकषायेण। प्रतिक्रामामि चतसृभिः सञ्ज्ञाभिः-आहारसञ्ज्ञया, भयसञ्ज्ञया, मैथुनसञ्ज्ञया, परिग्रहसञ्ज्ञया। प्रतिक्रामामि चतसृभिर्विकथाभिः-स्त्रीकथया, भक्तकथया, देशकथया, राजकथया। प्रतिक्रामामि चतुर्भिर्ध्यानैः-आर्तेन ध्यानेन, रौद्रेण ध्यानेन, धर्मेण ध्यानेन, शुक्लेन ध्यानेन ॥ सू० ७ ॥

॥ टीका ॥

'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'चउहिं' चतुर्भिः, 'कसाएहिं' कष्यते=संसारे समाकृष्यत आत्मा यैस्ते कषायाः[1], यद्वा कषति=हिनस्ति विषयकरवालेन प्राणिन इति कषः=संसारस्तस्य आयः=लाभो यैरिति, कष्यन्ते=गमनाऽऽगमनादिकण्टकेषु घृष्यन्ते प्राणिनो यैरिति, कृष्यते=सुखदुःखादिसस्यफलयोग्या क्रियते कर्मभूमिर्यैरिति, कलुषयन्ति=मलिनयन्ति स्वभावमपि जीवमिति निरुक्तवृत्त्या वा कषायास्तैः, तद्द्वारेत्यर्थः 'यो मये'-त्यादिसम्बन्धः प्राग्वत्, तदेव कषायचतुष्टयमाह—'कोह०' इति-'कोहकसाएण' क्रुध्यति=विकृतो भवत्यात्माऽनेनेति क्रोधः स चासौ कषायश्च क्रोधकषायस्तेन, 'माणकसाएण' माननं=स्वमपेक्ष्याऽऽन्यस्य हीनतया परिच्छेदनं, यद्वा मीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेति मानः स चासौ कषायश्च मानकषायस्तेन, 'मायाकसाएण' मायाशब्दव्याख्या

आत्मा को इस संसारमें परिभ्रमण करानेवाले, या गमनागमनरूप कण्टकों में प्राणियों को घसीटने वाले, अथवा आत्मा को मलिन करनेवाले जीवपरिणाम को कषाय कहते हैं, इस कषाय अर्थात् क्रोध-मान-माया-और लोभ के कारण, जिससे जीव या

આત્માને સંસારમાં પરિભ્રમણ કરાવનાર અથવા જવું આવવું વગેરે ક્રિયારૂપ કંટકોમાં પ્રાણીઓને ખેંચી જવાવાળા, અથવા આત્માને મલિન કરવાવાળા જીવના પરિણામોને કષાય કહે છે આ કષાય અર્થાત્ ક્રોધ, માન,

१-'कष्' धातोरौणादिक 'आय' प्रत्ययः.

त्वनुपदमेवोक्ता, 'लोहकसाएण' लोभोऽभिकाङ्क्षा, अथवा [1] लुभ्यते व्याकुलीक्रियत आत्माऽनेनेति लोभः, स चासौ कपायश्च लोभकपायस्तेन, 'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, काभिः ? 'चउहिं' चतसृभिः, 'सण्णाहिं' सज्ञानानि=सज्ञाः, सज्ञायते जीवस्तच्चेष्टाविशेषो वा याभिरिति सज्ञाः=अभिलापविशेषरूपास्ताभिरर्थाचद्द्वारा 'योऽतिचारः कृत' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वत् । तद्भेदानाह— 'आहार०' इति 'आहारसण्णाए' आहारणमाहारस्तद्विपया सज्ञाऽऽहारसज्ञा=क्षुद्वेदनीयोदयेन कवलाद्यभिलापस्वरूपाऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया, 'भयसण्णाए' भय=भीतिस्तद्विपया सज्ञा भयसज्ञा तया 'मेहुणसण्णाए' मिथुन स्त्रीपुसौ तत्कर्म मैथुन तद्विपया सज्ञा मैथुनसज्ञा=स्त्र्यादिवेदोदयरूपा तया, 'परिग्गहसण्णाए' परि=समन्ताद् गृह्यते=स्वीक्रियत इति परिग्रह., यद्वा परिग्रहण=परिग्रहस्तद्विपया सज्ञा परिग्रहसज्ञा=लोभजन्याऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया । 'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, 'चउहिं' चतसृभिः, 'विकहाहिं' वि=विरुद्धाः सयमविराधकत्वेन कथा =वचनरचनाविशेषः विकथास्ताभिस्तद्द्वारेत्यर्थ. 'यो मये'त्यादिसम्बन्धः प्राग्वदेव । तदेव विकथाचतुष्टयमाह—'इत्थि०' इति । 'इत्थिकहाए' स्त्रीणा कथा स्त्रीकथा तया, इय च स्त्रीकथा जाति-कुल-रूप-नेपथ्य-भेदाच्चतुर्द्धा, तत्र जात्या स्त्रीकथा, यथा——

'मृते पत्यौ दुःखदग्धा, धिगस्तु ब्राह्मणी सदा। धन्या शूद्रैव याऽऽप्नोति,

---

अजीवकी चेष्टा जानी जाय ऐसी आहार-भय-मैथुन-तथा परिग्रहरूप सज्ञा के कारण और स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा तथा राजकथा रूप चार विकथाओं के कारण जो कुछ अतिचार किया गया हो तो उससे मै निवृत्त होता हूँ ।

इनमें 'स्त्रीकथा' जाति कुल रूप और नेपथ्य के भेदसे

માયા અને લોભના કારણે, જેના વડે જીવ અને અજીવની ચેષ્ટા જાણવામા આવે એવી આહાર, ભય, મૈથુન તથા પરિગ્રહ રૂપ સજ્ઞાના કારણે, અને સ્ત્રીકથા, ભકતકથા, દેશકથા, તથા રાજકથા રૂપ ચાર વિકથાઓ કરવાના કારણે જે કોઇ અતિચાર થયા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ

એમા સ્ત્રીકથા જાતિ કુલ રૂપ અને નેપથ્યના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે,

---

[1]– 'लुभ विमोहने' 'विमोहनमाकुलीकरण'–मिति सिद्धान्तकौमुदी ।

धवे मेते पर परम्" ॥१॥ इत्यादि रीत्या ब्राह्मण्यादीना विनिन्दनादिः। कुलेन यथा-'अहो प्रशस्ततमोग्रकुलसभूतेय बाले'-इत्येवमादिः । रूपेण यथा-'कटाक्षवाणा मैथिल्य आन्ध्र्यः शशधरानना' इत्येवमादिः, नेपथ्येन यथा-'चैनाः पर्वतीयाश्च चिपिटनासिका निःसीमवस्त्राभरणादिभारा दुर्भाषिताश्च, आन्ध्री-गुर्जरी-मैथिली-पाश्चाल्यो यथोचितवस्त्राभरणादिसुवेषपरिच्छिन्नाः' इत्यादि, स्त्रीकथाया स्वपरोदीरणोद्वाढब्रह्मचर्यागुप्त्यादिदोषसम्भवेनाऽतिचारहेतुत्वमवसेयम् । 'भत्तकहाए' भक्तस्य=ओदनादेः कथा, भक्तकथा तया, इयमपि चतुर्धा-आवाप-निर्वापा-ऽऽरम्भ-निष्ठानभेदात्, तत्राऽऽवापेन भक्तकथा यथा—

चार प्रकारकी है, उनमें जातिकथा जैसे-"पति के मर जाने पर दुःख से दिन बितानेवाली ब्राह्मणी को धिक्कार है, शूद्रा ही धन्य है जो एक पति मर जाने पर भी दूसरे पति के द्वारा सुखसे जीवन बिताती है' इत्यादि । कुलकथा जैसे—'यह कन्या उग्रकुलकी है इसलिये अच्छी है' इत्यादि । रूपकथा जैसे—'पहाडी स्त्रिया वस्त्र और आभूषण बहुत रखती है, मैथिली और पजाबी स्त्रियाँ आवश्यकतासे अधिक वस्त्र तथा आभूषण नहीं पहनती है' इत्यादि । ऐसी कथाओंसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतों में दोष लगने की सभावना रहती है इसलिये इसको अतिचार का हेतु माना गया है ।

'भक्तकथा' आवाप, निर्वाप, आरम्भ और निष्ठान भेदसे चार प्रकारकी है । उनमें आवाप भक्तकथा जैसे—इस रसोई में

તેમા જાતિકથા જેવી રીતે કે-પતિ મરણ પામ્યા પછી દુ:ખથી દિવસો વિતાવનારી બ્રાહ્મણીને ધિક્કાર છે, શૂદ્રાણીનેજ ધન્ય છે કે જેનો એક પતિ મરણ પામી જતા બીજા પતિ દ્વારા સુખથી જીવન ગુજારે છે ઈત્યાદિ

કુલકથા—આ કન્યા ઉગ્રકુલની છે, એટલા માટે સારી છે ઈત્યાદિ રૂપકથા જેમ—પહાડી સ્ત્રીઓ વસ્ત્રો અને આભૂષણ બહુજ રાખે છે, મૈથિલી અને પજાબી સ્ત્રીઓ જરૂરત કરતા વધારે વસ્ત્ર તથા આભૂષણ પહેરતી નથી, ઈત્યાદિ આવી કથાઓથી બ્રહ્મચર્ય આદિ વ્રતોમા દોષ લાગવાની સભાવના રહેવાથી તેને અતિચારનો હેતુ માનવામા આવેલ છે

ભક્તકથા-આવાપ-નિર્વાપ-આરભ અને નિષ્ઠાન ભેદથી ચાર પ્રકારની છે

त्वनुपदमेवोक्ता, 'लोहकसाएण' लोभोऽभिकाङ्क्षा, अथवा [1] लुभ्यते व्याकुली-क्रियत आत्माऽनेनेति लोभः, स चासौ कषायश्च लोभकषायस्तेन, 'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, काभिः? 'चऊहिं' चतसृभिः, 'सण्णाहिं' सञ्ज्ञानानि=सञ्ज्ञाः, सञ्ज्ञायते जीवस्तच्चेष्टाविशेषो वा याभिरिति सञ्ज्ञाः=अभिलापविशेषरूपास्ता भिरर्थात्तद्द्वारा 'योऽतिचारः कृत' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वत्। तद्भेदानाह— 'आहार०' इति 'आहारसण्णाए' आहारणमाहारस्तद्विषया सञ्ज्ञाऽऽहारसञ्ज्ञा= क्षुद्वेदनीयोदयेन कवलाद्यभिलापस्वरूपाऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया, 'भय सण्णाए' भय=भीतिस्तद्विषया सञ्ज्ञा भयसञ्ज्ञा तया 'मेहुणसण्णाए' मिथुनं स्त्रीपुंसौ तत्कर्म मैथुनं तद्विषया सञ्ज्ञा मैथुनसञ्ज्ञा=स्त्र्यादिवेदोदयरूपा तया, 'परिग्गहसण्णाए' परि=समन्तात् गृह्यते=स्वीक्रियत इति परिग्रहः, यद्वा परि ग्रहण=परिग्रहस्तद्विषया सञ्ज्ञा परिग्रहसञ्ज्ञा=लोभजन्याऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया। 'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, 'चऊहिं' चतसृभिः, 'विकहाहिं' वि=विरुद्धाः संयमविराधकत्वेन कथाः=वचनरचनावल्यः विकथास्ताभिस्तद्द्वारेत्यर्थः 'यो मये' त्यादिसम्बन्धः प्राग्वदेव। तदेव विकथाचतुष्टयमाह—'इत्थि०' इति। 'इत्थि-कहाए' स्त्रीणां कथा स्त्रीकथा तया, इयं च स्त्रीकथा जाति-कुल-रूप-नेपथ्य-भेदा चतुर्द्धा, तत्र जात्या स्त्रीकथा, यथा——

'मृते पत्यौ तु खदग्धा, धिगस्तु ब्राह्मणी सदा। धन्या शूद्रैव याऽऽप्नोति,

---

अजीवकी चेष्टा जानी जाय ऐसी आहार-भय-मैथुन-तथा परिग्रहरूप सञ्ज्ञा के कारण और स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा तथा राजकथा रूप चार विकथाओं के कारण जो कुछ अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ।

इनमे 'स्त्रीकथा' जाति कुल रूप और नेपथ्य के भेदसे

માયા અને લોભના કારણે, જેના વડે જીવ અને અજીવની ચેષ્ટા જાણવામા આવે એવી આહાર, ભય, મૈથુન તથા પરિગ્રહ રૂપ સંજ્ઞાના કારણે, અને સ્રીકથા, ભક્તકથા, દેશકથા, તથા રાજકથા રૂપ ચાર વિકથાઓ કરવાના કારણે જે કોઇ અતિચાર થયા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ

એમા સ્રીકથા જાતિ કુલ રૂપ અને નેપથ્યના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે,

---

[1]– 'लुभ विमोहने' 'विमोहनमाकुलीकरण'–मिति सिद्धान्तकौमुदी।

धवे मेते परं परम्" ॥१॥ इत्यादि रीत्या ब्राह्मण्यादीना विनिन्दनादिः। कुलेन यथा-'अहो प्रशस्ततमोग्रकुलसभूतेय बाले'-त्येवमादिः । रूपेण यथा-'कटाक्षवाणा मैथिल्य आन्ध्रयः शशधरानना'' इत्येवमादिः, नेपथ्येन यथा-'चैनाः पर्वतीयाश्च चिपिटनासिका निःसीमवस्त्राभरणादिभारा दुर्भापिताश्च, आन्ध्री-गुर्जरी-मैथिली-पाञ्चाल्यो यथोचितवस्त्राभरणादिसुवेपपरिच्छिन्नाः' इत्यादि, स्त्रीकथाया स्वपरोदीरणोद्भाढब्रह्मचर्यागुप्त्यादिदोपसम्भवेनाऽतिचारहेतुत्वमवसेयम्। 'भत्तकहाए' भक्तस्य=ओदनादेः कथा, भक्तकथा तया, इयमपि चतुर्द्धा-आवाप-निर्वापा-ऽऽरम्भ-निष्ठानभेदात्, तत्राऽऽवापेन भक्तकथा यथा—

चार प्रकारकी है, उनमें जातिकथा जैसे-"पति के मर जाने पर दुःख से दिन बितानेवाली ब्राह्मणी को धिक्कार है, शूद्रा ही धन्य है जो एक पति मर जाने पर भी दूसरे पति के द्वारा सुखसे जीवन बिताती है' इत्यादि । कुलकथा जैसे—'यह कन्या उग्रकुलकी है इसलिये अच्छी है' इत्यादि । रूपकथा जैसे—'पहाडी स्त्रिया वस्त्र और आभूषण बहुत रखती है, मैथिली और पजाबी स्त्रियाँ आवश्यकतासे अधिक वस्त्र तथा आभूषण नहीं पहनती है' इत्यादि । ऐसी कथाओंसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतों में दोष लगने की सभावना रहती है इसलिये इसको अतिचार का हेतु माना गया है ।

'भक्तकथा' आवाप, निर्वाप, आरम्भ और निष्ठान भेदसे चार प्रकारकी है। उनमें आवाप भक्तकथा जैसे—इस रसोई में

તેમા જાતિકથા જેવી રીતે કે-પતિ મરણ પામ્યા પછી દુઃખથી દિવસો વિતાવનારી બ્રાહ્મણીને ધિક્કાર છે, શૂદ્રાણીનેજ ધન્ય છે કે જેનો એક પતિ મરણ પામી જતા બીજા પતિ દ્વારા સુખથી જીવન ગુજારે છે ઈત્યાદિ

કુલકથા—આ કન્યા ઉગ્રકુલની છે, એટલા માટે સારી છે ઇત્યાદિ રૂપકથા જેમ—પહાડી સ્ત્રીઓ વસ્ત્રો અને આભૂષણ બહુજ રાખે છે, મૈથિલી અને પજાબી સ્ત્રીઓ જરૂરત કરતા વધારે વસ્ત્ર તથા આભૂષણ પહેરતી નથી, ઇત્યાદિ આવી કથાઓથી બ્રહ્મચર્ય આદિ વ્રતોમા દોષ લાગવાની સભાવના રહેવાથી તેને અતિચારનો હેતુ માનવામા આવેલ છે

ભક્તકથા—આવાપ-નિર્વાપ-આરભ અને નિષ્ઠાન ભેદથી ચાર પ્રકારની છે

'एतावदत्र महानसे घृतमेतावच्छाकमेतावद्वेसवारादि युक्तं स्यादित्येवं भक्तकथनम् । निर्वापेण यथा–'एतावन्ति पक्वान्येतावन्त्यपक्वान्यन्नान्येतावद् व्यञ्जन'–मित्याद्युक्तिः । आरम्भेण यथा 'अस्मिन् महानसे शाकफलादीनि एतावन्ति उपयोक्ष्यन्त' इत्युक्तिः । निष्ठानेन यथा–'अस्मिन् महानसे शत रूप्यकाणि [1]'त्रियन्ति' इत्यादि द्रव्यसकथनम्, अत्र चाजितेन्द्रियत्वौदरिकत्वादयो दोषा भवन्ति । 'देसकहाए' देशः=मगधराजस्थानपञ्चालादिरूपो जनपदस्तस्य कथा देशकथा तया, इयमपिच्छन्द–विधि–विकल्प–नेपथ्य–भेदाच्चतुर्विधा–तत्र छन्देन देशकथा यथा— —

इतना घी इतना शाक और इतना मसाला ठीक होगा' इत्यादि । निर्वाप भक्तकथा जैसे—इतने पकवान थे इतना शाक था और इतना मधुर था' इस प्रकार देखे हुए भोज्य पदार्थों की कथा करना । आरम्भ भक्तकथा जैसे—'इस रसोईमें इतने शाक और फल आदिकी जरूरत रहेगी' इत्यादि । निष्ठान भक्तकथा जैसे—अमुक भोज्य पदार्थों मे इतने रूपये लगेंगे' इस प्रकार द्रव्य की मुख्यता से कथा करना । भक्तकथा से अजितेन्द्रियत्व आदि दोष होनेके कारण अतिचार होता है ।

मगध आदि देशोंकी कथा करने को 'देशकथा' कहते हैं । वह भी चार प्रकारकी है–(१) छन्द (२) विधि (३) विकल्प (४) नेपथ्य

તેમા આવાપ ભકતકથા–જેવી રીતે કે આ રસોઈમા–અમુક પ્રમાણમા ઘી–શાક અને મશાલે હશે તો સારી રસોઇ થશે, ઇત્યાદિ નિર્વાપ ભકતકથા–આટલા પકવાન હતા, આટલા શાક હતા અને સ્વાદમા મધુર હતા એ પ્રમાણે જોયેલા પદાર્થોની કથા કરવી તે આરભ ભકતકથા–જેમકે 'આ રસોઈમા આટલા શાક અને ફળોની જરૂરત રહેશે, ઇત્યાદિ નિષ્ઠાન ભકતકથા–જેમકે અમુક ભોજન કરવાના પદાર્થોમા આટલા રૂપિઆ થશે આ પ્રમાણે દ્રવ્યની મુખ્યતાથી કથા કરવી તે ભકતકથાથી અજિતેન્દ્રિયત્વ આદિ દોષ થવાના કારણે અતિચાર લાગે છે

મગધ આદિ દેશોની કથા વગેરેને દેશ કથા કહે છે તે પણ ચાર પ્રકારની છે (૧) છન્દ, (૨) વિધિ, (૩) વિકલ્પ, (૪) નેપથ્ય

१–व्ययितानि भवन्तीत्यर्थः ।

'दक्षिणे मातुली कन्या परिणेया प्रयत्नतः'—इति लाटादिदेशेषु मातुलकन्या गम्या तदितरत्र-'मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रा तथैव च। समान प्रवरा चैव भुक्त्वा चान्द्रायण चरेत्' इति सैवागम्येत्यादिप्रकथनम्। विधिः= भोजनादिसम्पादन तेन देशकथा यथा—मगधेऽन्नदुग्धादीना भोज्यानामेव प्राचुर्यं भवति, कोसलदेशे भवनादीन्येव निर्मीयन्ते, सुघ्ने चैव व्यापारपरायणा धनिनः,-इत्येवमादि, विकल्प =क्षेत्र-वापी-कूप-तडागादि निर्माण, सस्यादिसम्पनिश्च, तेन देशकथेत्यतिरोहितम्, नेपथ्य=स्त्रीपुरुषकर्तृकमणिभूषणादिधारण

(१) छद-देशकथा जैसे-दक्षिण देशमे मामाकी कन्या के साथ विवाह किया जाता है। अन्य देशों में दोष माना जाता है, जैसा लिखा है कि-'मामाकी कन्या से माता के गोत्रमे उत्पन्न किसी और भी कन्या से अथवा एक प्रवर (मूल) की कन्या से यदि कोई विवाह करे तो वह विवाह अयोग्य समझा जाता है और विवाह करनेवाले को चान्द्रायणव्रत करना पडता है' इत्यादि। (२) विधि-देशकथा जैसे—'मगध देशमे चावल, दूध, आम वगैरह इस प्रकार उत्पन्न होते हैं, कोसल (अवध) देशमे मकान इस प्रकार बनाये जाते हैं, तथा सुघ्न (आगरा प्रान्त) के धनी लोग इस प्रकार व्यापार किया करते हैं' इत्यादि। (३) विकल्प-देशकथा जैसे-खेत, बावडी, कूप, तालाब, आदि के खुदवाने तथा शालि आदि के रोपने आदि की कथा करना। (४) नेपथ्य-देशकथा 'मणि-भूषण-

(१) छन्द देशकथा-जेमके, दक्षिण देशमा मामानी पुत्री साथे लग्न करी शकाय छे अने बीजा देशोमा ते प्रमाणे करवामा दोष मानवामा आव्यो छे जेवी रीते अन्य ग्रथोमा लखेलु छे के-' मामानी पुत्रीथी, माताना गोत्रमा उत्पन्न कोई बीजी कन्याथी अ वा एक प्रवर (मूल) नी कन्या साथे कोई विवाह करे तो ते विवाह-लग्न अयोग्य समजवामा आवे छे अने लग्न करनारने चाद्रायण व्रत करवु पडे छे इत्यादि (२) विधि देशकथा-जेमके, मगध देशमा चावल-(चोखा)-दूध-आबा वगेरे आ प्रमाणे उत्पन्न थाय छे कोशल (अवध) देशमा मकान आ प्रमाणे बनाववामा आवे छे तथा आगरा प्रान्तमा धनवान माणसो आ प्रमाणे व्यापार करे छे इत्यादि (३) विकल्पथी देशकथा-जेमके, खेती, वाडी, कूवा-तलाव वगेरे खोदाववानी तथा शाली आदि धान्य रोपवानी कथा करवी ते (४) नेपथ्य

तेन-देशकथा यथा—'अहो वैदेहीना केशपाशविन्यासो वासोधारणप्रावीण्य च, अहो गौर्जरीणामल्पीयसाऽपि भूषाप्रयोगेण रूपसौन्दर्यम्, अहो पाञ्चाली नामधरीयचैलचमत्कार'' इत्यादिः, इह च रागद्वेषोदयपक्षपातादयो दोषा बोद्धव्या'। 'रायकहाए' राज्ञः=नृपतेः कथा राजकथा तया, इयमपि अतियान-निर्याण—बलवाहन—कोशकोष्ठागारभेदाच्चतुर्विधा; तत्राऽतियान=नगरादि-प्रवेशन तेन राजकथा यथा——'शशिप्रभच्छत्रनिवारितातप', सदन्तिवाजी सितचामरद्वयः। असौ नृपो मागधवन्दिवन्दितो, रथेन सम्प्राप्स्यति राजधानिकाम्'

वस्त्र आदि के धारण करने की कथा करना, जैसे-विदेह देशकी स्त्रियों के केशपाश आदि की सुन्दरता अच्छी है, गुजराती स्त्रियों की थोडे आभूषण से भी रूपसुन्दरता और पञ्जाबी स्त्रियों के अधरीय वस्त्रोंका चमत्कार प्रशंसनीय है' इत्यादि रूप से कथन करना। देशकथा में राग-द्वेष-पक्षपात आदि दोषों की सभावना से अतिचार लगता है।

राजकथा भी चार प्रकार की है-(१) अतियान (२) निर्याण (३) बलवाहन (४) कोष-कोठागार, उनमें (१) अतियान (नगरादि-प्रवेश) से राजकथा-जैसे 'चन्द्रमा के समान स्वच्छ छत्र और चामरों से सुशोभित, हाथी घोडों से युक्त, रथ पर चढा हुवा यह राजा मागध, बन्दी आदि याचक जनों की जयध्वनि के साथ राजधानी

દેશ કથા—મણિ ભૂષણ વસ્ત્ર આદિ ધારણ કરવાની કથા કરવી તે જેમકે વિદેહ દેશની સ્ત્રીઓના કેશ-પાશ વગેરેની સુ દરતા સારી છે ગુજરાતી સ્ત્રીઓ થોડા આભૂષણ પહેરે તો પણ સુ દર દેખાય છે, પ જાબી સ્ત્રીઓના વસ્ત્રોના ચમત્કાર પ્રશ સા કરવા યોગ્ય છે ઈત્યાદિ રૂપથી વાત કરવી તે દેશકથામા રાગ-દ્વેષ-પક્ષપાત વગેરે દોષો થવાનો સ ભવ છે તેથી અતિચાર લાગે છે

રાજકથા પણ ચાર પ્રકારની છે (૧) અતિયાન, (૨) નિર્યાણ, (૩) બલ વાહન, (૪) કોષ-કોષ્ઠાગાર તેમા (૧) અતિયાન (નગરાદિપ્રવેશ) થી રાજકથા— જેમકે—'ચન્દ્રમા પ્રમાણે સ્વચ્છ છત્ર અને બે ચામરોથી સુશોભિત, હાથી ઘોડાથી યુક્ત, રથ ઉપર બેઠેલા આ રાજા માગધ-બન્દી આદિ યાચક જનોની જયઘોષણા સાથે રાજધાનીમા પ્રવેશ કરશે-ઇત્યાદિ (૨) નિર્યાણ—નગરાદિથી બહાર નીકલવાની

इति। निर्याण=पुराद्बहिर्गमन, तेन यथा [1]तत्रैव'पुराद्बहिर्गच्छति सैन्यसवृतः' इति चतुर्थचरणव्यत्यासेनोदीरणम्। बल=सैन्य, वाहन=गजादि, ताभ्या यथा—

'अमी खुरक्षुण्णधरास्तुरङ्गमाः, रथा महान्तश्च गजा मदोद्धताः। पदातयो वैरिनिबर्हणक्षमाः, क्षमापतेः कस्य चकासतीदृशाः' ॥ इति, कोशः=भाण्डागार, कोष्ठागार=धान्यादिगृह ताभ्या यथा—

'रत्नादिपूर्णकोशः, कोट्टपदातिप्रकोपदलितारि'। सभृतकोष्ठागारः, सुख स्वपित्येष नरनाथः' इत्यादि। अत्र राजरहस्यभेदनादयो दोषाः प्रतीता

में प्रवेश करेगा' इत्यादि। (२) निर्याण (नगरादि से बाहर निकलने) से राजकथा-जैसे-'उक्तशोभाके साथ राजा राजधानी से बाहर निकलेगा' इत्यादि। (३) बल (सेना) वाहन (हाथी घोडे आदि) से राजकथा—जैसे-'अहा! ऐसे बडे २ चचल घोडे, मदोन्मत्त हाथी और शत्रुओं के छक्के छुडानेवाले शूरवीर किस राजाके हैं!' इत्यादि। ४ कोष (खजाने) और कोष्ठागार (कोठार) से राजकथा-जैसे-'जिसके रत्नादि से खजाना, और धान्य आदि से कोठार भरे हुए हैं तथा जिसका किला अभेद्य एव योद्धागण शत्रुओं का दमन करनेवाले हैं, ऐसा यह राजा सुख से समय बिताता है' इत्यादि। इस प्रकार राजकथा करने से राजरहस्य-भेदन आदि अनेक दोषों की उत्पत्ति होने के कारण अतिचार लगता है।

કથા-જેમકે-ઉપર કહેલી શોભા સાથે રાજા-રાજધાનીથી બહાર નીકળશે ઇત્યાદિ (૩) બલ-(સેના) વાહન (હાથી ઘોડા) સહિત રાજકથા-જેમકે-અહા ? આવા મોટા-મોટા ચચલ ઘોડા, મદોન્મત્ત હાથી અને શત્રુઓના માન ઉતારી નાખે તેવા શૂરવીર કયા રાજાના છે ? ઇત્યાદિ (૪) કોષ (ખજાના) અને કોષ્ઠાગાર (કોઠાર) ની રાજકથા-જેમકે-જેના રત્નાદિકથી ખજાના અને ધાન્યાદિકથી કોઠાર ભરેલા છે તથા જેના રાજના કિલ્લા અભેદ્ય છે અને યોદ્ધાઓ શત્રુઓનું દમન કરવાવાળા છે એવા આ રાજા સુખથી સમય ગુજારે છે ઇત્યાદિ આ પ્રમાણે રાજકથા કહેવાથી રાજાની ગુપ્ત વાત ભેદન વગેરે અનેક દોષોની ઉત્પત્તિ થવાના કારણે અતિચાર લાગે છે.

१-तत्रैव-प्रोक्तश्लोकस्य एव।

एव । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'चऊहिं' चतुर्भिः, 'झाणेहिं' ध्यातिः= ध्यानं निर्वातस्थानस्थितनिश्चलप्रदीपशिखावत् स्थिरतर-धारावाहिज्ञानविच्छेदक विषयान्तरसञ्चारानन्तरितकमात्रार्थचिन्तनरूपचित्तैकाग्रतास्वरूप, यदुक्तम्—

'अतोमुहुत्तमित्त, चित्तावत्थाणमेगवत्थुम्मि ।
छउमत्थाण झाण, जोगणिरोहो जिणाण ति' इति ।

तैः, तद्द्वारा यो मयाऽतिचारः कृतः, इत्याद्यन्वयः प्राग्वत् । क्रमेण भेद-चतुष्टयमेवाह–'अट्टेण झाणेण' आर्त्तेन ध्यानेन, अर्त्तिः=मनोव्यथा, तस्या तया सह वा भवमिति, अथवा [1]ऋतिः=अशुभ तया सह भवमार्त्तं तेन ध्यानेन मनोज्ञामनोज्ञवस्तुसयोगवियोगजनितचित्तोद्रेकलक्षणेनेत्यर्थः, तदुक्तमितरत्रापि—

पवन रहित स्थानमें रखे हुए निश्चल दीपकी शिखाके समान अत्यत स्थिर-धारावाही ज्ञानका विच्छेद करनेवाले अन्य पदार्थों के सबन्ध से रहित एक मात्र वस्तु के न्तन को ध्यान कहते हैं, जैसा कि कहा है-'छद्मस्थों के एक वस्तु में अन्तर्मुहूर्त मात्र मनका अवस्थान 'ध्यान' कहलाता है; किन्तु जिन भगवान के मन का अभाव होने के कारण योगनिरोध ही होता है, अवस्थान नहीं'। वह ध्यान आर्त्त (१) रौद्र (२) धर्म्य (३) और शुक्ल (४) भेद से चार प्रकार का है, उनमें से (१) आर्तध्यान उसे कहते हैं जो अर्त्ति-मन की व्यथा के साथ, अथवा ऋति-अशुभ के साथ होने वाला हो, अर्थात् इष्ट शब्दादि के सयोग और अनिष्ट के वियोग का चिन्तन करना। जैसा कि लिखा है 'जिसमें

निर्वात (જ્યા પવન આવી શકે નહિ તેવા) સ્થળે રાખેલા નિશ્ચલ દીપક-દીવાની શિખા સમાન અત્યત સ્થિર ધારાવાહી જ્ઞાનનો વિચ્છેદ કરવાવાળા અન્ય પદાર્થોના સબધથી રહિત એક માત્ર વસ્તુના ચિન્તનને 'ધ્યાન' કહે છે

કહ્યુ છે કે 'છદ્મસ્થને' એક વસ્તુમા અન્તર્મુહૂર્ત્ત માત્ર મનનુ અવસ્થાન રહે છે તેને ધ્યાન કહે છે તે ધ્યાન (૧) આર્ત્ત, (૨) રૌદ્ર, (૩) ધર્મ્ય, (૪) શુકલ ભેદ થી ચાર પ્રકારનું છે તેમા (૧) આર્ત્તધ્યાન તેને કહે છે કે—જે અર્ત્તિ-મનની પીડાની સાથે અથવા ઋતિ-અશુભની સાથે થનારૂ હોય, અર્થાત્ ઇષ્ટ શબ્દાદિનો

१-ऋतिः—अशुभमिति शब्दकल्पद्रुम. ।

'राज्योपभोगशयनाऽऽसनवाहनेषु,
स्त्रीगन्धमाल्यमणिरत्नविभूषणेषु ।
यत्राभिलाषमतिमात्रमुपैति मोहाद्
ध्यानं तदार्त्तमिति सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१॥' इति

'रुद्देण झाणेण' रौद्रेण ध्यानेन, रोदयति=अन्तर्भावितणयर्थत्वात् सह-मोपघातादिपरिणामयुक्तो जीवो व्यथयति परानननेति रुद्रः, यद्वा रुद्र इव चण्डत्वाद्रुद्रस्तस्य कर्म रौद्रं, तेन ध्यानेन हिंसाद्यतिक्रौर्यभावोपहतेनेत्यर्थः, एतच्चोक्तम्——

'सञ्छेदनैर्दहन-भञ्जन-मारणैश्च,
बन्ध-प्रहार-दमनैर्विनिकृन्तनैश्च
रागोदयो भवति येन न चानुकम्पा,
ध्यानं तु रौद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥२॥' इति ।

मोहवश राज्य के उपभोग, शय्या, आसन, हाथी, घोडे आदि वाहन, स्त्री, गन्ध, माला, मणि, रत्न, भूषण आदि की इच्छा उत्पन्न हो उसे और इससे विपरीत संयोगों की अनिच्छा करना 'आर्त्तध्यान है'।

(२) उपघात आदि परिणामों से जो जीव को रुलावे अर्थात् दुखी करे, अथवा अत्यन्त क्रूर आत्माका जो कर्म (आत्म-परिणामरूप क्रियाविशेष) उसको 'रौद्रध्यान' कहते हैं, जैसे कहा है-' जिससे छेदन-भेदन-दहन-मारण-बन्धन-प्रहरण-दमन-कर्तन

સંયોગ અને અનિષ્ટના વિયોગનું ચિન્તન કરવું, જેમકે-જેમાં મોહવશ રાજ્યના ઉપભોગ શય્યા, આસન, હાથી, ઘોડા આદિ વાહન, સ્ત્રી, ગન્ધ, માલા, મણિ, રત્ન, ભૂષણ વગેરેની ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય તે અને એ સર્વથી વિપરીત સંયોગોની અનિચ્છા કરવી તે આર્ત્તધ્યાન કહેવાય છે

(૨) ઉપઘાત-વગેરે પરિણામોથી જીવને રડાવે અર્થાત્-દુઃખી કરે, અથવા અત્યંત ક્રૂર આત્માનું જે કર્મ (આત્મપરિણામરૂપ ક્રિયાવિશેષ) તેને 'રૌદ્રધ્યાન' કહે છે જેમ કહ્યું છે કે જેના દ્વારા છેદન, ભેદન, દહન, મારણ, બંધન, પ્રહરણ, દમન, કર્તન (કાપવું) વગેરેના કારણથી રાગ-દ્વેષનો ઉદય થાય અને દયા

एव । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'चऊहिं' चतुर्भिः, 'झाणेहिं' ध्यातिः= ध्यान निर्वातस्थानस्थितनिश्चलप्रदीपशिखावत् स्थिरतर-धारावाहिज्ञानविच्छेदक-विषयान्तरसञ्चारानन्तरितकमात्रार्थचिन्तनरूपचित्तैकाग्रतास्वरूप, यदुक्तम्—

> 'अतोमुहुत्तमित्त, चित्तावत्थाणमेगवत्थुम्मि ।
> छउमत्थाण झाण, जोगणिरोहो जिणाण ति' इति ।

तैः, तद्द्वारा यो मयाऽतिचारः कृतः, इत्याद्यन्वयः प्राग्वत् । क्रमेण भेद चतुष्टयमेवाह-'अट्टेण झाणेण' आर्त्तेन ध्यानेन, अर्त्तिः=मनोव्यथा, तस्या तया सह वा भवमिति, अथवा [1]ऋतिः=अशुभ तया सह भवमार्त्त तेन ध्यानेन मनोज्ञामनोज्ञवस्तुसयोगवियोगजनितचित्तोद्रेकलक्षणेनेत्यर्थः, तदुक्तमितरत्रापि—

पवन रहित स्थानमें रखे हुए निश्चल दीपकी शिखाके समान अत्यत स्थिर-धारावाही ज्ञानका विच्छेद करनेवाले अन्य पदार्थों के सबन्ध से रहित एक मात्र वस्तु के न्तन को ध्यान कहते हैं, जैसा कि कहा है-'छद्मस्थों के एक वस्तु में अन्तर्मुहूर्त मात्र मनका अवस्थान 'ध्यान' कहलाता है, किन्तु जिन भगवान के मन का अभाव होने के कारण योगनिरोध ही होता है, अवस्थान नहीं' । वह ध्यान आर्त्त (१) रौद्र (२) धर्म्य (३) और शुक्ल (४) भेद से चार प्रकार का है, उनमें से (१) आर्तध्यान उसे कहते हैं जो अर्त्ति-मन की व्यथा के साथ, अथवा ऋति-अशुभ के साथ होने वाला हो, अर्थात् इष्ट शब्दादि के सयोग और अनिष्ट के वियोग का चिन्तन करना । जैसा कि लिखा है 'जिसमें

નિર્વાત (જ્યા પવન આવી શકે નહિ તેવા) સ્થળે રાખેલા નિશ્ચલ દીપક-દીવાની શિખા સમાન અત્યત સ્થિર ધારાવાહી જ્ઞાનનો વિચ્છેદ કરવાવાળા અન્ય પદાર્થોના સબધથી રહિત એક માત્ર વસ્તુના ચિન્તનને 'ધ્યાન' કહે છે

કહ્યુ છે કે 'છદ્મસ્થને' એક વસ્તુમા અન્તર્મુહૂર્ત્ત માત્ર મનનું અવસ્થાન રહે છે તેને ધ્યાન કહે છે તે ધ્યાન (૧) આર્ત્ત, (૨) રૌદ્ર, (૩) ધર્મ્ય, (૪) શુકલ ભેદ થી ચાર પ્રકારનું છે તેમા (૧) આર્ત્તધ્યાન તેને કહે છે કે —જે અર્ત્તિ-મનની પીડાની સાથે અથવા ઋતિ-અશુભની સાથે થનારૂ હોય, અર્થાત્ ઇષ્ટ શબ્દાદિના

[1] १-ऋतिः—अशुभमिति शब्दकल्पद्रुम. ।

'राज्योपभोगशयनाऽऽसनवाहनेषु,
स्त्रीगन्धमाल्यमणिरत्नविभूषणेषु ।
यत्राभिलाषमतिमात्रमुपैति मोहाद्
ध्यान तदार्त्तमिति सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१॥' इति

'रुद्देण झाणेण' रौद्रेण ध्यानेन, रोदयति=अन्तर्भावितण्यर्थत्वात् सह-मोपघातादिपरिणामयुक्तो जीवो व्यथयति परानननेति रुद्रः, यद्वा रुद्र इव चण्डत्वादरुद्रस्तस्य कर्म रौद्र, तेन ध्यानेन हिंसाद्यतिक्रौर्यभावोपहतेनेत्यर्थः, एतच्चोक्तम्——

'सच्छेदनैर्दहन-भञ्जन-मारणैश्च,
वन्ध-प्रहार-दमनैर्विनिकृन्तनैश्च
रागोदयो भवति येन न चानुकम्पा,
ध्यान तु रौद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञा• ॥२॥' इति ।

मोहवश राज्य के उपभोग, शय्या, आसन, हाथी, घोडे आदि वाहन, स्त्री, गन्ध, माला, मणि, रत्न, भूषण आदि की इच्छा उत्पन्न हो उसे और इससे विपरीत सयोगों की अनिच्छा करना 'आर्त्तध्यान है'।

(२) उपघात आदि परिणामों से जो जीव को रुलावे अर्थात् दुखी करे, अथवा अत्यन्त क्रूर आत्माका जो कर्म (आत्म-परिणामरूप क्रियाविशेष) उसको 'रौद्रध्यान' कहते हैं, जैसे कहा है-' जिससे छेदन-भेदन-दहन-मारण-बन्धन-प्रहरण-दमन-कर्तन

સયોગ અને અનિષ્ટના વિયોગનું ચિન્તન કરવુ, જેમકે-જેમા મોહવશ રાજ્યના ઉપભોગ શય્યા, આસન, હાથી, ઘોડા આદિ વાહન, સ્ત્રી, ગન્ધ, માલા, મણિ, રત્ન, ભૂષણ વગેરેની ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય તે અને એ સર્વથી વિપરીત સયોગોની અનિચ્છા કરવી તે આર્ત્તધ્યાન કહેવાય છે

(૨) ઉપઘાત-વગેરે પરિણામોથી જીવને રડાવે અર્થાત્-દુ ખી કરે, અથવા અત્યત ક્રૂર આત્માનું જે કર્મ (આત્મપરિણામરૂપ ક્રિયાવિશેષ) તેને 'રૌદ્રધ્યાન' કહે છે જેમ કહ્યુ છે કે જેના દ્વારા છેદન, ભેદન, દહન, મારણ, બધન, પ્રહરણ, દમન, કર્તન (કાપવુ) વગેરેના કારણથી રાગ-દ્વેષનો ઉદય થાય અને દયા

'धम्मेण झाणेण' धर्म्येण ध्यानेन धर्मः=श्रुतचारित्रलक्षणस्तस्मादन पेतः=तद्युक्त 'धर्म्यं, तेन ध्यानेन वीतरागाऽऽज्ञाऽनुचिन्तनेनेत्यर्थः। एतदप्युक्तम्-

'सूत्रार्थसाधनमहाव्रतधारणेषु,
बन्धप्रमोक्षगमनागमहेतुचिन्ता ।
पञ्चेन्द्रियव्युपरमश्च दया च भूते,
ध्यानं तु धर्म्यमिति सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥३॥' इति ।

'सुक्केण झाणेण' शुक्लेन ध्यानेन, शुक्लम्=आर्त्तरौद्रोक्तदोषराहित्येन निष्कलङ्कतया स्वच्छम्, यद्वा शु=शुचः=ज्ञानावरणीयादिकर्ममल क्लं=क्लमयति= अपनयतीति शुक्लं तेन ध्यानेन, दोषमलापगमाच्छुचिस्वरूपेणेत्यर्थः। इदमप्युक्तम्-

'यस्येन्द्रियाणि विषयेषु पराङ्मुखानि,
संकल्पकल्पनविकल्पविकारदोषैः ।

(काटना) आदि के कारण रागद्वेषका उदय हो और दया न हो- ऐसे आत्मपरिणाम को 'रौद्रध्यान' कहते हैं' ॥

(३) वीतराग की आज्ञारूप धर्म से युक्त ध्यान को 'धर्म्यध्यान' कहते हैं, कहाभी है—'आगम के पठन, व्रतधारण, बन्धमोक्षादि के चिंतन, इन्द्रियदमन तथा प्राणियों पर दया करने को 'धर्म्यध्यान' कहते हैं ॥

(४) शुक्ल अर्थात् सकल दोषों से रहित होने के कारण निर्मल, अथवा शु-ज्ञानावरणीयादि कर्ममल को क्ल-दूर करनेवाले ध्यान को 'शुक्लध्यान' कहते हैं, जैसा कि कहा है 'जिसकी

न थाय આવા આત્મપરિણામને 'રૌદ્રધ્યાન' કહે છે

(૩) વીતરાગની આજ્ઞા રૂપ ધર્મયુક્ત ધ્યાનને 'ધર્મ્યધ્યાન' કહે છે કહ્યું છે કે—આગમનો સ્વાધ્યાય, વ્રતધારણ, બંધ-મોક્ષાદિનું ચિન્તન, ઇંદ્રિયદમન તથા પ્રાણીઓ પર દયા કરવી તેને ધર્મ્યધ્યાન કહે છે

(૪) શુકલ અર્થાત્ સકલ દોષોથી રહિત હોવાના કારણે નિર્મલ અથવા શુ-જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મમલને કલ-દૂર કરનાર ધ્યાનને શુકલધ્યાન કહે છે જેમ કહ્યું છે કે—જેની ઇંદ્રિયો વિષયવાસનારહિત હોય, સંકલ્પ-વિકલ્પ-દોષ-

---

१- 'धर्म्यम्'-'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' (४।४।९२) इति यत् ।

योगैस्तथा त्रिभिरहो ! निभृतान्तरात्मा,
ध्यानं तु शुक्लमिदमस्य समादिशन्ति ॥४॥' इति ।

संक्षिप्यैषां स्वरूपाण्युक्तानि यथा—

'[1]कामाणुरंजियं अट्ट, रोद्द हिंसाणुरंजियं ।
धम्माणुरंजियं धम्मं, सुक्कज्झाणं निरंजणं ॥१॥' इति ॥ सू० ७ ॥

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि पंचहिं किरियाहिं–काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए, परितावणियाए, पाणाइवायकिरियाए । पडिक्कमामि पंचहिं कामगुणेहिं–सद्देणं, रूवेणं, गंधेणं, रसेणं, फासेणं। पडिक्कमामि पंचहिं महव्वएहिं–सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं। पडिक्कमामि पंचहिं समिईहिं—इरियासमिईए, भासासमिईए, एसणासमिईए, आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिईए, उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघा-

इन्द्रियाँ विषयवासना रहित हो, संकल्पविकल्पादिदोषयुक्त जो तीन योग उनसे रहित उस महापुरुष के ध्यान को 'शुक्लध्यान' कहते हैं'। संक्षेप से चारों का स्वरूप इस प्रकार है–'किसी वस्तुकी कामना से युक्तको आर्त, हिंसादि से युक्त को रौद्र, धर्म से युक्त को धर्म्य और सब प्रकार के दोषों से रहित को शुक्लध्यान कहते हैं'॥ इन चार ध्यानों के निमित्त से जो अतिचार लगा हो उससे मैं निवृत्त होता हूं ॥ सू० ७ ॥

युक्त જે ત્રણ યોગ તેનાથી રહિત એવા મહાપુરુષના ધ્યાનને 'શુકલધ્યાન' કહે છે સંક્ષેપથી ચારે ધ્યાનનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે "કોઈ વસ્તુની કામનાથી યુક્તને આર્ત્ત, હિંસાદિથી યુક્તને રૌદ્ર, ધર્મથી યુક્તને ધર્મ્ય અને સર્વ પ્રકારના દોષ રહિતને શુકલધ્યાન કહે છે આ ચાર ધ્યાનોના નિમિત્તથી જે કાંઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેનાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું (સૂ૦ ૭)

१– कामानुरञ्जितमार्त्तं रौद्रं हिंसानुरञ्जितम् ।
धर्मानुरञ्जितं धर्म्यं, शुक्लध्यानं निरञ्जनम् ॥ १ ॥

'धम्मेण झाणेण' धर्म्येण ध्यानेन धर्मः=श्रुतचारित्रलक्षणस्तस्मादनपेतं=तद्युक्तं 'धर्म्यं, तेन ध्यानेन वीतरागाऽऽज्ञाऽनुचिन्तनेनेत्यर्थः। एतदप्युक्तम्-

'सूत्रार्थसाधनमहाव्रतधारणेषु,
बन्धप्रमोक्षगमनागमहेतुचिन्ता।
पञ्चेन्द्रियव्युपरमश्च दया च भूते,
ध्यान तु धर्म्यमिति समवदन्ति तज्ज्ञाः ॥३॥' इति।

'सुक्केण झाणेण' शुक्लेन ध्यानेन, शुक्लम्=आर्त्तरौद्रोक्तदोषराहित्येन निष्कलङ्कतया स्वच्छम्, यद्वा शु=शुचं=ज्ञानावरणीयादिकर्ममलं क्लः=क्लमयति=अपनयतीति शुक्लं तेन ध्यानेन, दोषमलापगमाच्छुचिस्वरूपेणेत्यर्थः। इदमप्युक्तम्-

'यस्येन्द्रियाणि विषयेषु पराङ्मुखानि,
सङ्कल्पकल्पनविकल्पविकारदोषः।

(काटना) आदि के कारण रागद्वेषका उदय हो और दया न हो- ऐसे आत्मपरिणाम को 'रौद्रध्यान' कहते हैं' ॥

(३) वीतराग की आज्ञारूप धर्म से युक्त ध्यान को 'धर्म्यध्यान' कहते हैं, कहाभी है—'आगम के पठन, व्रतधारण, बन्धमोक्षादि के चिंतन, इन्द्रियदमन तथा प्राणियों पर दया करने को 'धर्म्यध्यान' कहते हैं ॥

(४) शुक्ल अर्थात् सकल दोषों से रहित होने के कारण निर्मल, अथवा शु-ज्ञानावरणीयादि कर्ममल को क्ल-दूर रनेवाले ध्यान को 'शुक्ल्यान' कहते हैं, जैसा कि कहा है 'जिसकी

न थाय आवा आत्मपरिणामने 'रौद्रध्यान' कहे छे

(३) वीतरागनी आज्ञा रूप धर्मयुक्त ध्यानने 'धर्म्यध्यान' कहे छे कह्युं छे के—आगमनो स्वाध्याय, व्रतधारण, बंध-मोक्षादिनुं चिन्तन, इंद्रियदमन तथा प्राणीओ पर दया करवी तेने धर्म्यध्यान कहे छे

(४) शुक्ल अर्थात् सकल दोषोथी रहित होवाना कारणे निर्मल अथवा शु-ज्ञानावरणीय आदि कर्ममलने क्ल-दूर करनार ध्यानने शुक्लध्यान कहे छे जेम कह्युं छे के-जेनी इंद्रियो विषयवासनारहित होय, संकल्प-विकल्प-दोष-

१- 'धर्म्यम्'-'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' (४।४।९२) इति यत्।

व्यापार', इय त्रिविधा-अविरतकायिकी, दुष्प्रणिहितकायिकी, उपरतकायिकी चेति, तत्राविरताना=व्रतरहिताना सम्यग्दृष्टीना मिथ्यादृष्टीना च कर्मबन्धनहेतुभूता उत्क्षेपादिस्वरूपा प्रथमा, द्वितीया द्विविधा-इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी नोइन्द्रिय-दुष्प्रणिहितकायिकी च, इय द्विविधाऽपि प्रमत्तसयताना क्रियोच्यते, तत्र इन्द्रियैः=चक्षुःश्रोत्रादिभिः दुष्प्रणिहितस्य=इष्टानिष्टविषयसमाप्तौ किञ्चिन्मोक्ष-मार्गं प्रति दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽऽद्या, नोइन्द्रियेण मनसा दुष्प्रणिहित-स्याऽशुभसङ्कल्पेन दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽपरा । उपरतस्य=प्रायः सावद्य-योगनिवृत्तस्याऽप्रमत्तसयतस्य कायेन निर्वृत्ता-उपरतिकायिकी तृतीया, तया

(२) दुष्प्रणिहितकायिकी (३) उपरतकायिकी । मिथ्यादृष्टियों और अविरतसम्यग्दृष्टियों की कर्मबन्धन के हेतुभूत क्रिया को 'अविरतकायिकी' कहते हैं । दुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया दो प्रकारकी है-(१) इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, (२) नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, ये दोनों क्रियाए प्रमत्त साधुओं की हैं । उनमे चक्षु आदि इन्द्रियों की चपलता के कारण मोक्षमार्ग के प्रति अव्यवस्थित (अस्थिर) के काय से होनेवाली क्रिया को 'इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं, ऐसे ही नोइन्द्रिय (मन) के अशुभ सकल्प के द्वारा अव्यवस्थित के काय से होनेवाली क्रिया को 'नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं । प्राय' सावद्य योग से निवृत्त अप्रमत्त सयत के काया से होनेवाली क्रिया को 'उपरतकायिकी' कहते हैं । (१)

છે (૧) અવિરતકાયિકી, (૨) દુષ્પ્રણિહિતકાયિકી, (૩) ઉપરતકાયિકી મિથ્યા-દૃષ્ટિઓ અને અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિઓની કર્મબન્ધનની હેતુભૂત ક્રિયાઓને "અવિરતકાયિકી" કહે છે દુષ્પ્રણિહિતકાયિકી ક્રિયા બે પ્રકારની છે (૧) ઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાયિકી, (૨) નોઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાયિકી, આ બન્ને ક્રિયાઓ પ્રમત્ત સાધુઓની છે તેમા ચક્ષુ આદિ ઇન્દ્રિઓની ચપલતાને કારણે મોક્ષ-માર્ગમા અસ્થિર કાયાથી થવા વાળી ક્રિયાઓ ઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાયિકી કહેવાય છે એ પ્રમાણે નોઇન્દ્રિય (મન) ના અશુભ સકલ્પ દ્વારા અસ્થિર કાયાથી થવાવાળી ક્રિયાઓને નોઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાયિકી ક્રિયા કહે છે પ્રાય-ઘણુ કરીને સાવદ્ય યોગથી નિવૃત્ત અપ્રમત્ત સયતની કાયા વડે થવાવાળી ક્રિયાઓને 'ઉપરત કાયિકી' ક્રિયા કહે છે ॥ ૧ ॥

णपारिठावणियासमिईए। पडिक्कमामि छहिं जीवनिकाएहिं-पुढविकाएणं, आउकाएण, तेउकाएण, वाउकाएण, वणस्सइकाएणं, तसकाएण। पडिक्कमामि छहिं लेसाहिं-किण्हलेसाए, नीललेसाए, काउलेसाए, तेउलेसाए, पउमलेसाए, सुक्कलेसाए ॥ सू० ८ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि पञ्चभिः क्रियाभिः—कायिक्या, आधिकरणिक्या, प्राद्वेषिक्या, पारितापनिक्या, प्राणातिपातक्रियया। प्रतिक्रामामि पञ्चभिः कामगुणैः—शब्देन, रूपेण, गन्धेन, रसेन, स्पर्शेन। प्रतिक्रामामि पञ्चभिर्महाव्रतैः-प्राणातिपाताद्विरमणेन, मृषावादाद्विरमणेन, अदत्तादानाद्विरमणेन, मैथुनाद्विरमणेन, परिग्रहाद्विरमणेन। प्रतिक्रामामि पञ्चभिः समितिभिः—ईर्यासमित्या, भाषासमित्या, एषणासमित्या, भाण्डमात्रादाननिक्षेपणासमित्या, उच्चारणप्रस्रवणखेलजल्लसिंघाणपारिष्ठापनिकासमित्या। प्रतिक्रामामि षड्भिर्जीवनिकायैः-पृथ्वीकायेन, अप्कायेन, तेजस्कायेन, वायुकायेन, वनस्पतिकायेन, त्रसकायेन। प्रतिक्रामामि षड्भिर्लेश्याभिः-कृष्णलेश्यया, नीललेश्यया, कापोतलेश्यया, तेजोलेश्यया, पद्मलेश्यया, शुक्ललेश्यया ॥ सू० ८ ॥

॥ टीका ॥

'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'पचहिं' पञ्चभिः, 'किरियाहिं' क्रिया=करणव्यापारस्तेन तद्द्वारेत्यर्थः, बहुवचन, 'यो मयाऽतिचारः कृत इत्यादि-सम्बन्ध प्राग्वत्, क्रियापञ्चकमेवाह—'काइ०' इति 'काइयाए' चीयन्ते=एकत्रीभवन्ति अस्मिन्नस्थ्यादय इति कायः=शरीर तेन निर्वृत्ता क्रिया कायिकी=शरीर-

क्रिया पाच प्रकारकी है-(१) कायिकी (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी (५) प्राणातिपातकी। जिसमें अस्थि आदि हो उसे काय कहते हैं। उससे होनेवाली क्रिया को 'कायिकी' कहते हैं, वह तीन प्रकारकी है-(१) अविरतकायिकी,

ક્રિયા પાચ પ્રકારની છે (૧) કાયિકી, (૨) આધિકરણિકી, (૩) પ્રાદ્વેષિકી, (૪) પારિતાપનિકી, (૫) પ્રાણાતિપાતિકી જેમા અસ્થિ-હાડકા વગેરે હોય તેને કાય કહે છે અને તેના વડે થવા વાળી ક્રિયાને "કાયિકી" કહે છે તે ત્રણ પ્રકારની

-व्यापारः, इय त्रिविधा-अविरतकायिकी, दुष्प्रणिहितकायिकी, उपरतकायिकी चेति, तत्राविरताना=व्रतरहिताना सम्यग्दृष्टीना मिथ्यादृष्टीना च कर्मबन्धनहेतुभूता उत्क्षेपादिस्वरूपा प्रथमा, द्वितीया द्विविधा-इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी नोइन्द्रिय-दुष्प्रणिहितकायिकी च, इय द्विविधाऽपि प्रमत्तसयताना क्रियोच्यते, तत्र इन्द्रियैः=चक्षुःश्रोत्रादिभिः दुष्प्रणिहितस्य=इष्टानिष्टविषयसमासो किञ्चिन्मोक्ष-मार्गं प्रति दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽऽद्या, नोइन्द्रियेण मनसा दुष्प्रणिहित-स्याऽशुभसकल्पेन दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽपरा। उपरतस्य=प्रायः सावद्य-योगनिवृत्तस्याऽप्रमत्तसयतस्य कायेन निर्वृत्ता-उपरतिकायिकी तृतीया, तया

---

(२) दुष्प्रणिहितकायिकी (३) उपरतकायिकी। मिथ्यादृष्टियों और अविरतसम्यग्दृष्टियो की कर्मबन्धन के हेतुभूत क्रिया को 'अविरतकायिकी' कहते हैं। दुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया दो प्रकारकी है-(१) इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, (२) नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, ये दोनों क्रियाए प्रमत्त साधुओं की हैं। उनमे चक्षु आदि इन्द्रियों की चपलता के कारण मोक्षमार्ग के प्रति अव्यवस्थित (अस्थिर) के काय से होनेवाली क्रिया को 'इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं, ऐसे ही नोइन्द्रिय (मन) के अशुभ सकल्प के द्वारा अव्यवस्थित के काय से होनेवाली क्रिया को 'नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं। प्राय. सावद्य योग से निवृत्त अप्रमत्त सयत के काया से होनेवाली क्रिया को 'उपरतकायिकी' कहते है। (१)

છે (૧) અવિરતકાયિકી, (૨) દુષ્પ્રણિહિતકાયિકી, (૩) ઉપરતકાયિકી મિથ્યા-દૃષ્ટિઓ અને અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિઓની કર્મબન્ધનની હેતુભૂત ક્રિયાઓને "અવિરતકાયિકી" કહે છે દુષ્પ્રણિહિતકાયિકી ક્રિયા બે પ્રકારની છે (૧) ઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાયિકી, (૨) નોઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાયિકી, આ બન્ને ક્રિયાઓ પ્રમત્ત સાધુઓની છે તેમા ચક્ષુ આદિ ઇન્દ્રિઓની ચપલતાને કારણે મોક્ષ-માર્ગમા અસ્થિર કાયાથી થવા વાળી ક્રિયાઓ ઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાયિકી કહેવાય છે એ પ્રમાણે નોઇન્દ્રિય (મન) ના અશુભ સકલ્પ દ્વારા અસ્થિર કાયાથી થવાવાળી ક્રિયાઓને નોઇન્દ્રિયદુષ્પ્રણિહિતકાયિકી ક્રિયા કહે છે પ્રાય-ઘણુ કરીને સાવદ્ય યોગથી નિવૃત્ત અપ્રમત્ત સયતીની કયા વડે થવાવાળી ક્રિયાઓને 'ઉપરત કાયિકી' ક્રિયા કહે છે ॥ ૧ ॥

त्रिविधस्वरूपया, 'अहिगरणियाए' अधिक्रियते=समाश्रीयते=प्राप्यते नरकादि कुगतौ जीवोऽनेनेत्यधिकरणं=खड्गादि, तत्र भवाऽऽधिकरणिकी, इयं द्विविधा-संयोजनाधिकरणिकी निर्वर्त्तनाधिकरणिकी चेति, यस्यां खड्गतत्कोषादिकयोः संयोजनं क्रियते सा संयोजनाधिकरणिकी, यस्यां च खड्गतोमरादीनामादितो निर्वर्त्तन-निष्पादनं सा निर्वर्त्तनाधिकरणिकी तया, 'पाउसियाए' प्रद्वेषः=मत्सरस्तत्र भवा प्राद्वेषिकी तया, एषा द्विविधा-जीवप्राद्वेषिकी अजीवप्राद्वेषिकी च, तत्राऽऽद्या-जीवप्रद्वेषेण निर्वृत्ता, द्वितीया चाऽजीवप्रद्वेषेण=पाषाणादिस्खलनादिना यो द्वेष-

जिसके द्वारा आत्मा नरकादि कुगति में जावे, ऐसे खड्गादि से होनेवाली क्रियाको 'आधिकरणिकी' क्रिया कहते हैं। वह दो प्रकार की है—(१) संयोजनाधिकरणिकी और (२) निर्वर्त्तनाधिकरणिकी, जिसमें खड्ग आदि का कोष (म्यान) आदि के साथ संयोग किया जाय वह 'संयोजनाधिकरणिकी' है, और जिस (क्रिया) में खड्ग आदि बनाये जायँ उसे 'निर्वर्त्तनाधिकरणिकी' क्रिया कहते है ॥ २ ॥

द्वेष से युक्त क्रिया को 'प्राद्वेषिकी' क्रिया कहते हैं, वह दो प्रकारकी है-(१) जीवप्राद्वेषिकी और (२) अजीवप्राद्वेषिकी। जीव पर द्वेष करने से होनेवाली क्रिया को 'जीवप्राद्वेषिकी' और अजीव पाषाणादि की ठोकर आदि लगने के कारण उस पर द्वेष करने से होनेवाली क्रिया को 'अजीवप्राद्वेषिकी' क्रिया कहते हैं ॥ ३ ॥

જેના વડે આત્મા નરકાદિ કુગતિમાં જાય, એવી તલવાર આદિ શસ્ત્રથી થવાવાળી ક્રિયાઓને 'આધિકરણિકી' ક્રિયા કહે છે, તે બે પ્રકારની છે (૧) સંયોજનાધિકરણિકી (૨) અને 'નિર્વર્ત્તનાધિકરણિકી' જેમાં તલવાર આદિનો કોષ (મ્યાન) આદિ સાથે સંયોગ કરવામાં આવે તે 'સંયોજનાધિકરણિકી' છે અને જે ક્રિયામાં તલવાર આદિ બનાવવામાં આવે તેને 'નિર્વર્ત્તનાધિકરણિકી' કહે છે

દ્વેષયુક્ત ક્રિયાને 'પ્રા ષિકી' ક્રિયા કહે છે તે બે પ્રકારની છે (૧) જીવ પ્રાદ્વેષિકી અને (૨) અજીવપ્રદ્વેષિકી, જીવઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી ક્રિયાને 'જીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે અને અજીવ-પાષાણ આદિની ઠોકર લાગવાના કારણે તેના ઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી ક્રિયાને "અજીવપ્રાદ્વેષિકી" ક્રિયા કહે છે ॥૩॥

स्तेन निर्वृत्ता, 'पारितावणियाए' परितापन= दुःख तेन निर्वृत्ता तत्र भवा वा पारितापनिकी=खड्गाद्याघातेन पीडाकरण तथा, इयमपि द्विविधा स्वहस्तपारितापनिकी परहस्तपारितापनिकी च, स्वहस्तेन स्वपरदेहस्य दुःखमुत्पादयतः प्रथमा, परहस्तेन तथा कारयतो द्वितीया, 'पाणाइवायकिरियाए' प्राणाः सन्त्येपामिति [1]प्राणाः=प्राणिनःतेपामतिपातो=नाशः प्राणातिपातः स एव क्रिया प्राणातिपातक्रिया तथा, एपापि द्विविधा-स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया परहस्तप्राणातिपातक्रिया च, इहापि प्राणपदेन प्राणिनो ग्रहण प्राग्वत्, तत्र स्वहस्तेन प्राणातिपात कुर्वतः

खड्ग आदि के द्वारा पीडा पहुँचाने को 'पारितापनिकी' क्रिया कहते हैं, उसके दो भेद हैं-(१) स्वहस्तपारितापनिकी, और (२) परहस्तपारितापनिकी। अपने हाथ से परको दुःख पहुँचाने वाली क्रिया को 'स्वहस्तपारितापनिकी' और अन्य द्वारा दूसरे को दुख पहुँचाने वाली क्रिया को 'परहस्तपारितापनिकी' क्रिया कहते हैं ॥४॥

प्राणियों का नाश करने को 'प्राणातिपात' क्रिया कहते हैं। यह भी दो प्रकार की है-(१) स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया, और (२) परहस्तप्राणातिपातक्रिया। अपने हाथ से प्राणियों का नाश करने को 'स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया,' और पराये हाथ से प्राणियों का नाश करने को 'परहस्तप्राणातिपातक्रिया' कहते हैं ॥५॥

તલવાર આદિ હથિઆર વડે પીડા પહોચાડવી તેને "પારિતાપનિકી ક્રિયા" કહે છે, તેના બે ભેદ છે (૧) 'સ્વહસ્તપારિતાપનિકી' અને (૨) 'પરહસ્ત પારિતાપનિકી' પોતાના હાથ વડે પરને દુખ પહોચાડવા વાળી ક્રિયાને 'સ્વહસ્ત પારિતાપનિકી' ક્રિયા કહે છે અને અન્ય દ્વારા બીજાને દુખ પહોચાડવુ તે ક્રિયાને 'પરહસ્તપારિતાપનિકી' ક્રિયા કહે છે ॥ ૪ ॥

પ્રાણીઓના નાશને 'પ્રાણાતિપાત' ક્રિયા કહે છે તેના પણ બે ભેદ છે, (૧) સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા અને (૨) પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા, પોતાના હાથ વડે પ્રાણીઓનો નાશ કરવો તેને 'સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા' કહે છે અને બીજાના હાથથી પ્રાણીઓનો નાશ થાય તેવી ક્રિયાને 'પરહસ્તપ્રાણાતિપાત ક્રિયા કહે છે ॥ ૫ ॥

१- प्राणा'-अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् ।

त्रिविधस्वरूपया, 'अहिगरणियाए' अधिक्रियते=समाश्रीयते=प्राप्यते नरकादि कुगतौ जीवोऽनेनेत्यधिकरण=खङ्गादि, तत्र भवाऽऽधिकरणिकी, इय द्विविधा-सयोजनाधिकरणिकी निर्वर्त्तनाधिकरणिकी चेति, यस्या खङ्गतत्कोपादिकयोः सयोजन क्रियते सा सयोजनाधिकरणिकी, यस्या च खङ्गतोमरादीनामादितो निर्वर्त्तन-निष्पादन सा निर्वर्तनाधिकरणिकी तया, 'पाउसियाए' प्रद्वेषः=मत्सरस्तत्र भवा प्राद्वेषिकी तया, एपा द्विविधा-जीवप्राद्वेषिकी अजीवप्राद्वेषिकी च, तत्राऽऽद्या-जीवप्रद्वेषेण निर्वृत्ता, द्वितीया चाऽजीवप्रद्वेषेण=पाषाणादिस्खलनादिना यो द्वेष-

जिसके द्वारा आत्मा नरकादि कुगति में जावे, ऐसे खड्गादि से होनेवाली क्रियाको 'आधिकरणिकी' क्रिया कहते हैं। वह दो प्रकार की है—(१) सयोजनाधिकरणिकी और (२) निर्वर्त्तनाधिकरणिकी, जिसमें खड्ग आदि का कोष (म्यान) आदि के साथ सयोग किया जाय वह 'सयोजनाधिकरणिकी' है, और जिस (क्रिया) में खड्ग आदि बनाये जायँ उसे 'निर्वर्त्तनाधिकरणिकी' क्रिया कहते है ॥ २ ॥

द्वेष से युक्त क्रिया को 'प्राद्वेषिकी' क्रिया कहते हैं, वह दो प्रकारकी है-(१) जीवप्राद्वेषिकी और (२) अजीवप्राद्वेषिकी। जीव पर द्वेष करने से होनेवाली क्रिया को 'जीवप्राद्वेषिकी' और अजीव पाषाणादि की ठोकर आदि लगने के कारण उस पर द्वेष करने से होनेवाली क्रिया को 'अजीवप्राद्वेषिकी' क्रिया कहते हैं ॥ ३ ॥

જેના વડે આત્મા નરકાદિ કુગતિમા જાય, એવી તલવાર આદિ શસ્ત્રથી થવાવાળી ક્રિયાઓને 'આધિકરણિકી' ક્રિયા કહે છે, તે બે પ્રકારની છે (૧) સયોજનાધિકરણિકી (૨) અને 'નિર્વર્ત્તનાધિકરણિકી' જેમા તલવાર આદિનો કોષ (મ્યાન) આદિ સાથે સયોગ કરવામા આવે તે 'સયોજનાધિકરણિકી' છે અને જે ક્રિયામા તલવાર આદિ બનાવવામા આવે તેને 'નિવર્ત્તનાધિકરણિકી' કહે છે

દ્વેષયુક્ત ક્રિયાને 'પ્રા વિકી' ક્રિયા કહે છે તે બે પ્રકારની છે (૧) જીવપ્રાદ્વેષિકી અને (૨) અજીવપ્રાદ્વેષિકી, જીવઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી ક્રિયાને 'જીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે અને અજીવ-પાષાણ આદિની ઠોકર લાગવાના કારણે તેના ઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી િયાને "અજીવપ્રાદ્વેષિકી" ક્રિયા કહે છે ॥૩॥

स्तेन निर्वृत्ता, 'पारितावणियाए' परितापन= दुःख तेन निर्वृत्ता तत्र भवा वा पारितापनिकी=खड्गाद्याघातेन पीडाकरण तथा, इयमपि द्विविधा-स्वहस्तपारितापनिकी परहस्तपारितापनिकी च, स्वहस्तेन स्वपरदेहस्य दुःखमुत्पादयतः प्रथमा, परहस्तेन तथा कारयतो द्वितीया, 'पाणाइवायकिरियाए' प्राणाः सन्त्येपामिति [1]प्राणाः=प्राणिनः तेपामतिपातो=नाशः प्राणातिपातः स एव क्रिया प्राणातिपातक्रिया तथा, एपापि द्विविधा-स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया परहस्तप्राणातिपातक्रिया च, इहापि प्राणपदेन प्राणिनो ग्रहण प्राग्वत्, तत्र स्वहस्तेन प्राणातिपात कुर्वतः

खड्ग आदि के द्वारा पीडा पहुँचाने को 'पारितापनिकी' क्रिया कहते हैं, उसके दो भेद हैं-(१) स्वहस्तपारितापनिकी, और (२) परहस्तपारितापनिकी। अपने हाथ से परको दुःख पहुँचाने वाली क्रिया को 'स्वहस्तपारितापनिकी' और अन्य द्वारा दूसरे को दुख पहुँचाने वाली क्रिया को 'परहस्तपारितापनिकी' क्रिया कहते हैं ॥४॥

प्राणियों का नाश करने को 'प्राणातिपात' क्रिया कहते हैं। यह भी दो प्रकार की है-(१) स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया, और (२) परहस्तप्राणातिपातक्रिया। अपने हाथ से प्राणियों का नाश करने को 'स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया,' और पराये हाथ से प्राणियों का नाश करने को 'परहस्तप्राणातिपातक्रिया' कहते हैं ॥५॥

તલવાર આદિ હથિઆર વડે પીડા પહોચાડવી તેને "પારિતાપનિકી ક્રિયા" કહે છે, તેના બે ભેદ છે (૧) 'સ્વહસ્તપારિતાપનિકી' અને (૨) 'પરહસ્ત પારિતાપનિકી' પોતાના હાથ વડે પરને દુખ પહોચાડવા વાળી ક્રિયાને 'સ્વહસ્ત પારિતાપનિકી' ક્રિયા કહે છે અને અન્ય દ્વારા બીજાને દુખ પહોચાડવુ તે ક્રિયાને 'પરહસ્તપારિતાપનિકી' ક્રિયા કહે છે ॥ ૪ ॥

પ્રાણીઓના નાશને 'પ્રાણાતિપાત' ક્રિયા કહે છે તેના પણ બે ભેદ છે, (૧) સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા અને (૨) પરહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા, પોતાના હાથ વડે પ્રાણીઓનો નાશ કરવો તેને 'સ્વહસ્તપ્રાણાતિપાતક્રિયા' કહે છે અને બીજાના હાથથી પ્રાણીઓનો નાશ થાય તેવી ક્રિયાને 'પરહસ્તપ્રાણાતિપાત ક્રિયા કહે છે ॥ ૫ ॥

१- प्राणाः-अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् ।

क्रिया प्रथमा, परहस्तेन सा द्वितीया। 'पडिकमामि, प्रतिक्रामामि 'पचहिं' पञ्चभिः, 'कामगुणेहिं' काम्यन्ते=भोगार्थिभिरभिलष्यन्ते इति कामाः=शब्दा घास्ते च ते कामवृद्धिकारणत्वात् गुणा (पुद्गलधर्मा) श्च कामगुणाः, यद्वा कामस्य=कन्दर्पस्याऽभिलापमात्रस्य वा सम्पादका गुणाः कामगुणास्तैर्निषिद्धा घरणद्वारेत्यर्थः 'यो मयाऽतिचारः कृत' इत्यादिसम्बन्धो भूतपूर्वः, 'काम गुणपञ्चकमेवाऽऽह–'सद्देण' इति 'सद्देण' शब्दयते=उच्चार्यत इति शब्दः=कर्णेन्द्रिय ग्राह्यनियतक्रमवर्णस्वरूपस्तेन, 'रूवेण' रूप्यते=विलोक्यते इति रूप=चक्षुर्विषय नीलपीतादिलक्षण तेन, 'गधेण' गन्ध्यते=आघ्रायत इति गन्धः=घ्राणेन्द्रिय विषयश्चन्दनकर्पूरादिस्तेन, 'रसेण' रस्यते=आस्वाद्यत इति रस=रसनेन्द्रिय-विषयो मधुरादिस्तेन, 'फासेण' स्पृश्यते=छुप्यत[१] इति स्पर्शः=त्वगिन्द्रियविषयः

इन क्रियाओं के द्वारा मुझ से जो अतिचार किया गया हो उसकी मै निवृत्ति करता हूँ।

शब्द-जो बोला जाय उस को शब्द कहते है, वह कर्णेन्द्रिय-ग्राह्य मनोज्ञ-अमनोज्ञ वर्णमालास्वरूप है। रूप-जो देखा जाय उसको रूप कहते है, वह चक्षु इन्द्रिय का विषय नील-पीतादि है। गन्ध-जो सूघा जाय उसको गन्ध कहते है, वह घ्राणेन्द्रिय का विषय चन्दन कपूर आदि है। रस-जो चक्खा जाय उसको रस कहते हैं वह रसना इन्द्रिय का विषय मधुर आदिक है। स्पर्श-जो स्पर्श किया जाय (छुआ जाय) उस को स्पर्श कहते है, वह स्पर्श इन्द्रिय का विषय

આ ક્રિયાઓ વડે કરી મને જે અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેનાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છુ

શબ્દ-જે બોલવામા આવે છે તેને શબ્દ કહે છે, તે કર્ણેન્દ્રિય ગ્રાહ્ય અને મનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ વર્ણમાલા સ્વરૂપ છે રૂપ-જે જોવામા આવે તેને રૂપ કહે છે, તે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયનો વિષય લીલા પીળા આદિ છે ગન્ધ-જે સુઘવામા આવે તેને ગન્ધ કહે છે, તે ઘ્રાણેન્દ્રિયના વિષય સૂખડ કપૂર આદિ છે રસ-જે ચાખવામા આવે તેને રસ કહે છે, તે રસના ઇન્દ્રિયના વિષય મધુર આદિક છે સ્પર્શ-જેનો સ્પર્શ કરવામા આવે તેને સ્પર્શ કહે છે તે સ્પર્શેન્દ્રિયના વિષય માલા, સૂખડ,

टि० १– 'छुप स्पर्शे' तुदादिरनिट् परस्मैपदी।

स्रक्चन्दनाङ्गनादिस्तेन । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि 'पचहिं' : पञ्चभिः, 'महव्वएहिं' व्रत=शास्त्रमर्यादानुसरणं, महान्ति विशालानि च तानि व्रतानि महाव्रतानि तैः, महत्त्वं चैषां महद्भिस्तीर्थङ्करगणधरादिभिराचरितत्वेन महापुरुषाऽऽचर्यमाणत्वेन सर्वव्यापकत्वेन श्रावकव्रतापेक्षया च बोध्यं, तैस्तत्सम्बद्धत इति तात्पर्यं 'यो मयाऽतिचारः कृतः' इत्यादिसम्बन्धो यथापूर्वम्, महाव्रतपञ्चकमेवाह—'सव्वा०' इति । 'सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं' सर्वस्मात्=निखिलात्=स्थूलसूक्ष्मादियावद्भेदविशिष्टात् कृत-कारिता-ऽनुमोदितस्वरूपाच्च, प्राणाः=उच्छ्वासनिःश्वासादयस्तेषामतिपातो=वियोजनं=हिंसनमिति यावत्, उक्तञ्च-'पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः । प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता,-स्तेषां वियोगीकरणं तु हिंसा' इति, तस्माद्विरमणं=

माला, चन्दन, अंगना आदि हैं। ये पांच काम (विषय भोग के अभिलाष) गुण (वर्द्धक) हैं, अर्थात् ये आत्मा के स्वभाविक गुणों का नाश करने वाले हैं, इन कामगुणों द्वारा मुझसे जो अतिचार किया गया हो उसकी मैं निवृत्ति करता हूं।

शास्त्रकी मर्यादामें चलने का नाम 'व्रत' है, इन्हें तीर्थंकर गणधर आदि महापुरुषोंने स्वीकार किये अथवा ये महापुरुषों के ही आचरण करने योग्य होने से और श्रावक के व्रतों की अपेक्षा बडे होने के कारण 'महाव्रत' कहलाते हैं, वे पांच हैं-(१) कृत-कारित-अनुमोदित रूप सब प्रकार से स्थूल-सूक्ष्म आदि समस्त जीवों के प्राणों (पांच इन्द्रियाँ, तीन बल, श्वासोच्छ्वास

અંગના આદિ છે આ પાંચ કામ (વિષયભોગની અભિલાષા) ગુણ (વર્ધક) છે અર્થાત્ તે આત્માના સ્વાભાવિક ગુણોના નાશ કરવાવાળા છે તે કામ ગુણોથી મારાથી અતિચાર થયા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ

શાસ્ત્રોની મર્યાદામા ચાલવાનું નામ 'વ્રત' છે આ વ્રતો તીર્થંકર અને ગણધર આદિ મહાપુરૂષોએ સ્વીકાર કરેલ છે, અથવા એ મહાપુરૂષોનેજ આચરણ કરવા યોગ્ય હોવાથી અને શ્રાવકોના વ્રતોની અપેક્ષા મોટા હોવાથી 'મહાવ્રત' કહેવાય છે, તે પાંચ પ્રકારના છે-(૧) કરવુ, કરાવવુ અને કરતા હોય તેને અનુમોદન રૂપ સર્વ પ્રકારથી સ્થૂલ-સૂક્ષ્મ આદિ તમામ જીવોના પ્રાણો (પાંચ ઇન્દ્રિયો,

क्रिया प्रथमा, परहस्तेन सा द्वितीया । 'पडिक्कमामि, प्रतिक्रामामि 'पचहिं' पञ्चभिः, 'कामगुणेहिं' काम्यन्ते=भोगार्थिभिरभिलप्यन्ते इति कामाः=शब्दा-द्यास्ते च ते कामवृद्धिकारणत्वात् गुणा (पुद्गलधर्मा) श्च कामगुणाः, यद्वा कामस्य=कन्दर्पस्याऽभिलाषमात्रस्य वा सम्पादका गुणाः कामगुणास्तैर्निषिद्धा चरणद्वारेत्यर्थः 'यो मयाऽतिचारः कृत' इत्यादिसम्बन्धो भूतपूर्वः, 'काम गुणपञ्चकमेवाऽऽह-'सद्देण' इति 'सद्देण' शब्द्यते=उच्चार्यत इति शब्दः=कर्णेन्द्रिय ग्राह्यनियतक्रमवर्णस्वरूपस्तेन, 'रूवेण' रूप्यते=विलोक्यते इति रूप=चक्षुर्विषय नीलपीतादिलक्षण तेन, 'गन्धेण' गन्ध्यते=आघ्रायत इति गन्धः=घ्राणेन्द्रिय विषयश्चन्दनकर्पूरादिस्तेन, 'रसेण' रस्यते=आस्वाद्यत इति रस=रसनेन्द्रिय विषयो मधुरादिस्तेन, 'फासेण' स्पृश्यते=छुप्यत[1] इति स्पर्शः=त्वगिन्द्रियविषयः

इन क्रियाओं के द्वारा मुझ से जो अतिचार किया गया हो उसकी मैं निवृत्ति करता हूँ।

शब्द-जो बोला जाय उस को शब्द कहते हैं, वह कर्णेन्द्रिय-ग्राह्य मनोज्ञ-अमनोज्ञ वर्णमालास्वरूप है। रूप-जो देखा जाय उसको रूप कहते हैं, वह चक्षु इन्द्रिय का विषय नील-पीतादि है। गन्ध-जो सूघा जाय उसको गन्ध कहते हैं, वह घ्राणेन्द्रिय का विषय चन्दन कपूर आदि है। रस-जो चक्खा जाय उसको रस कहते हैं वह रसना इन्द्रिय का विषय मधुर आदिक है। स्पर्श-जो स्पर्श किया जाय (छुआ जाय) उस को स्पर्श कहते हैं, वह स्पर्श इन्द्रिय का विषय

આ ક્રિયાઓ વડે કરી મને જે અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેનાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છુ

શબ્દ-જે બોલવામા આવે છે તેને શબ્દ કહે છે, તે કર્ણેન્દ્રિય ગ્રાહ્ય અને મનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ વર્ણમાલા સ્વરૂપ છે રૂપ-જે જોવામા આવે તેને રૂપ કહે છે, તે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયનો વિષય લીલા પીળા આદિ છે ગન્ધ-જે સુઘવામા આવે તેને ગન્ધ કહે છે, તે ઘ્રાણેન્દ્રિયના વિષય સૂખડ કપૂર આદિ છે રસ-જે ચાખવામા આવે તેને રસ કહે છે, તે રસના ઇન્દ્રિયના વિષય મધુર આદિક છે સ્પર્શ-જેનો સ્પર્શ કરવામા આવે તેને સ્પર્શ કહે છે તે સ્પર્શેન્દ્રિયના વિષય માલા, સૂખડ,

---

टि० १- 'छुप स्पर्शे' तुदादिरनिट् परस्मैपदी ।

सहाऽनयेति लेश्या, सा च कषायोदयलब्धशक्तिविशेषा योगप्रवृत्तिः, लेश्या द्रव्य-भावभेदाद्द्विविधा, तत्र द्रव्यलेश्या-पुद्गलविशेषरूपा, साऽपि द्विधा-नोकर्मद्रव्यलेश्या कर्मद्रव्यलेश्या च, तत्र नोकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेषात्मिका, कर्मद्रव्यलेश्या तु भावलेश्याजनककषायमोहनीयकर्म=नामकर्मद्रव्याणि ।

यच्च परैः कर्मनिष्यन्द-(बध्यमानकर्मप्रवाह)-रूपत्वं कर्मद्रव्यलेश्याया उक्तं, तन्न युक्तम्, तथाहि-स कर्मणा निष्यन्दः साररूपोऽसाररूपो वा ? साररूपश्चेत् ज्ञानावरणीयादिष्वन्यतमस्य सारः सर्वेषां वा ? विकल्पद्वयमप्यागमविरुद्धम्,

को लेश्या कहते है, वह द्रव्य, भाव भेद से दो प्रकार की है। उनमें द्रव्यलेश्या पुद्गलस्वरूप है, वह भी नोकर्मलेश्या, कर्मलेश्या के भेद से दो प्रकार की है। उस में नोकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेषरूप मानी गई है और कर्मद्रव्यलेश्या भावलेश्या के उत्पादक कषायमोहनीयकर्म और नामकर्म द्रव्यस्वरूप है।

जो कोई इस कर्मद्रव्यलेश्या को कर्मनिष्यन्द (बध्यमान कर्मप्रवाह) रूप मानते हैं वह ठीक नहीं, क्यों कि यदि ऐसा लक्षण मान लिया जाय तो यहाँ दो प्रश्न उपस्थित होते हैं कि-वह कर्मनिष्यन्द साररूप है या असाररूप ?। यदि सार रूप माने तो ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों में से किसी एक कर्म का सार है या सब कर्मोंका ?, मगर ये दोनों विकल्प आगमविरुद्ध है, क्यों कि

પ્રાપ્ત થયેલી શક્તિવિશેષવાલી યોગપ્રવૃત્તિને લેશ્યા કહે છે તે દ્રવ્ય અને ભાવ ના ભેદથી બે પ્રકારની છે તેમા દ્રવ્યલેશ્યા પુદ્ગલસ્વરૂપ છે તે પણ નોકર્મલેશ્યા અને કર્મલેશ્યાના ભેદથી બે પ્રકારની છે તેમા નોકર્મદ્રવ્યલેશ્યા વર્ણવિશેષરૂપ માનવામા આવી છે અને કર્મદ્રવ્યલેશ્યા ભાવલેશ્યાની ઉત્પાદક કષાયમોહનીયકર્મ અને નામકર્મ દ્રવ્યસ્વરૂપ છે

જો કે કેટલાક માણસો આ કર્મદ્રવ્યલેશ્યાને કર્મનિષ્યદ (બધ્યમાન કર્મ પ્રવાહ) રૂપ માને છે પણ તે માન્યતા ઠીક નથી કારણ કે જો એવા લક્ષણ માનવામા આવે તો આ સ્થળે બે પ્રશ્ન ઉભા થાય છે કે-તે કર્મનિષ્યદ સારરૂપ છે કે અસાર રૂપ છે ? જો સાર રૂપ છે એમ માનશો તો જ્ઞાનાવરણીયાદિ આઠ કર્મોમાથી કોઇ એક કર્મનો સાર છે, અથવા સર્વ કર્મોનો ? પણ

निक्खेवणासमिईए' भाण्डमात्रे=उपकरणमात्रे, आदाननिक्षेपण=ग्रहणस्थापन तद्विपया समितिस्तया । 'उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणपरिठावणियासमिईए' उच्चारः=पुरीप, मस्रवण=मूत्र, खेलः=श्लेष्मा, जल्लः=देहमल, सिंघाण=नासामल, तेपा परिष्ठापनिका=व्युत्सर्जन तद्विपया समितिस्तया । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'जीवनिकाएहिं' जीवाना निकायाः=राशय' जीवनिकायाः=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसस्वरूपास्तैस्तद्द्वारेत्यर्थः 'यो मया ऽतिचारः कृत' इत्यादि-सम्बन्धः प्राग्वदेव । 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'लेस्साहिं' लिश्यते=श्लिप्यते=सम्बध्यते आत्मा कर्मभि'

(४) 'आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति'-वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का यत्नापूर्वक लेना और रखना।

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिङ्घाण-पारिष्ठापनिका-समिति'-उच्चार आदि का यत्नापूर्वक दश बोल वर्ज (टाल) के परिष्ठापन करना, इनसे एव पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसरूप छह जीव निकायों से, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल, इन छह लेश्याओं के सम्बन्ध से जो अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हू'।

अथ लेश्या का स्वरूप कहते हैं—

जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लेपायमान हो उसको अर्थात् कषायों के उदय से प्राप्त शक्तिविशेषवाली योगप्रवृत्ति

(૪) 'આદાન-ભાંડ-માત્ર-નિક્ષેપણા-સમિતિ'—વસ્ત્ર, પાત્ર આદિ ઉપકરણોને યત્નાપૂર્વક લેવું મૂકવું

તથા (૫) 'ઉચ્ચાર-પ્રસવણ-ખેલ-જલ્લ-સિંઘાણ-પારિષ્ઠાપનિકા-સમિતિ'-ઉચ્ચાર આદિને યત્ના પૂર્વક દશ-બોલ ત્યજીને પરિષ્ઠાપન કરવું એનાથી એવ પૃથ્વી, પાણી, તેજ વાયુ, વનસ્પતિ અને ત્રસરૂપ છ જીવ નિકાયોથી, તથા કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, તેજ, પદ્મ અને શુક્લ આ છ લેશ્યાઓના સમ્બન્ધથી જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું.

હવે લેશ્યાનું સ્વરૂપ કહે છે-

જેના દ્વારા આત્મા કર્મોથી લેપાયમાન થાય તેને અર્થાત્ કષાયોના ઉદયથી

सहाऽनयेति लेश्या, सा च कषायोदयलब्धशक्तिविशेषा योगप्रवृत्तिः, लेश्या द्रव्य-भावभेदाद्विविधा, तत्र द्रव्यलेश्या-पुद्गलविशेषरूपा, साऽपि द्विधा-नोकर्मद्रव्यलेश्या कर्मद्रव्यलेश्या च, तत्र नोकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेषात्मिका, कर्मद्रव्यलेश्या तु भावलेश्याजनककषायमोहनीयकर्म=नामकर्मद्रव्याणि ।

यच्च परैः कर्मनिष्यन्द-(बध्यमानकर्मप्रवाह)-रूपत्वं कर्मद्रव्यलेश्याया उक्तं, तन्न युक्तम्, तथाहि-स कर्मणां निष्यन्दः साररूपोऽसाररूपो वा? साररूपश्चेत् ज्ञानावरणीयादिष्वन्यतमस्य सारः सर्वेषां वा? विकल्पद्वयमप्यागमविरुद्धम्,

---

को लेश्या कहते हैं, वह द्रव्य, भाव भेद से दो प्रकार की है। उनमें द्रव्यलेश्या पुद्गलस्वरूप है, वह भी नोकर्मलेश्या, कर्मलेश्या के भेद से दो प्रकार की है। उस में नोकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेष-रूप मानी गई है और कर्मद्रव्यलेश्या भावलेश्या के उत्पादक कषायमोहनीयकर्म और नामकर्म द्रव्यस्वरूप है।

जो कोई इस कर्मद्रव्यलेश्या को कर्मनिष्यन्द (बध्यमान कर्म-प्रवाह) रूप मानते हैं वह ठीक नहीं, क्यों कि यदि ऐसा लक्षण मान लिया जाय तो यहाँ दो प्रश्न उपस्थित होते हैं कि-वह कर्म-निष्यन्द साररूप है या असाररूप?। यदि सार रूप मानें तो ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों में से किसी एक कर्म का सार है या सब कर्मोंका?, मगर ये दोनों विकल्प आगमविरुद्ध हैं, क्यों कि

प्राप्त थयेली शक्तिविशेषवाली योगप्रवृत्तिने लेश्या कहे छे ते द्रव्य अने भाव ना भेदथी बे प्रकारनी छे तेमा द्रव्यलेश्या पुद्गलस्वरूप छे ते पण नोकर्मलेश्या अने कर्मलेश्याना भेदथी बे प्रकारनी छे तेमा नोकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेषरूप मानवामा आवी छे अने कर्मद्रव्यलेश्या भावलेश्यानी उत्पादक कषायमोहनीयकर्म अने नामकर्म द्रव्यस्वरूप छे

जो के केटलाक माणुसो आ कर्मद्रव्यलेश्याने कर्मनिष्यंद (बध्यमान कर्म प्रवाह) रूप माने छे पण ते मान्यता ठीक नथी कारण के जो एवा लक्षण मानवामा आवे तो आ स्थळे बे प्रश्न उभा थाय छे के-ते कर्मनिष्यंद साररूप छे के असार रूप छे? जो सार रूप छे एम मानशो तो ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मोमाथी कोई एक कर्मनो सार छे, अथवा सर्व कर्मोनो? पण

निक्खेवणासमिईए' भाण्डमात्रे=उपकरणमात्रे, आदाननिक्षेपण=ग्रहणस्थापन तद्विषया समितिस्तया। 'उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणपरिठावणियासमिईए' उच्चारः=पुरीष, प्रस्रवण=मूत्र, खेलः=श्लेष्मा, जल्लः=देहमल, सिंघाण=नासामल, तेपा परिष्ठापनिका=व्युत्सर्जन तद्विषया समितिस्तया। 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'जीवनिकाएहिं' जीवाना निकायाः=राशयः जीवनिकायाः=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसस्वरूपास्तैस्तद्द्वारेत्यर्थः 'यो मया ऽतिचारः कृत' इत्यादि-सम्बन्धः प्राग्वदेव। 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'लेस्साहिं' लिश्यते=श्लिष्यते=सम्बध्यते आत्मा कर्मभिः

(४) 'आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति'-वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का यत्नापूर्वक लेना और रखना।

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिङ्घाण-पारिष्ठापनिका-समिति'-उच्चार आदि का यत्नापूर्वक दश बोल वर्ज (टाल) के परिष्ठापन करना, इनसे एव पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसरूप छह जीव निकायों से, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल, इन छह लेश्याओं के सम्बन्ध से जो अतिचार किया गया हो 'तो उससे मै निवृत्त होता हू'।

अब लेश्या का स्वरूप कहते हैं—

जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लेपायमान हो उसको अर्थात् कषायों के उदय से प्राप्त शक्तिविशेषवाली योगप्रवृत्ति

(४) 'આદાન-ભાંડ-માત્ર-નિક્ષેપણા-સમિતિ'—વસ્ત્ર, પાત્ર આદિ ઉપકરણોને યત્નાપૂર્વક લેવું મૂકવું

તથા (૫) 'ઉચ્ચાર-પ્રસવણ-ખેલ-જલ્લ-સિંઘાણ-પારિષ્ઠાપનિકા-સમિતિ'-ઉચ્ચાર આદિને યત્ના પૂર્વક દશ-બોલ ત્યજીને પરિષ્ઠાપન કરવું. એનાથી એવ પૃથ્વી, પાણી, તેજ વાયુ, વનસ્પતિ અને ત્રસરૂપ છ જીવ નિકાયોથી, તથા કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, તેજ, પદ્મ અને શુક્લ આ છ લેશ્યાઓના સમ્બન્ધથી જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ.

હવે લેશ્યાનું સ્વરૂપ કહે છે-

જેના દ્વારા આત્મા કર્મોથી લેપાયમાન થાય તેને અર્થાત્ કષાયોના ઉદયથી

पादान च कर्मवर्गणान्तर्गतत्वसाधक, ततश्च, 'तदन्तर्भावाभावात्' इत्यय हेतुर्बाधितविषयः ।

उक्ता द्रव्यलेश्या सम्प्रति भावलेश्यामाह-सा च कषायोदयलब्धशक्तिविशेषयोगप्रवृत्त्यात्मिका प्रोक्तैव ।

अत्राशङ्कते कश्चित्-ननु भावलेश्याया उक्तलक्षणस्वीकारे उपशान्त-क्षीणकषाय सयोगिकेवलि गुणस्थानेषु तदभावः प्रसज्यते, तत्र कषायाभावात्-योगप्रवृत्तेरतिशयान्तरमुपनीतेरसंभवात्, इति चेन्न, तत्र भावलेश्याया उपचारतोऽङ्गी-

---

ऐसा प्रश्न करना ठीक नही, क्यों कि आगमों से विरोध आता है।

अर्थात् किसीभी आगम में लेश्या को कार्यकारणरूप नहीं माना है।

लेश्या को अलग नहीं बताने का कारण यह है कि वे कर्मवर्गणा के अन्तर्गत साधकस्वरूप हैं। यह हुई द्रव्यलेश्या, अब भावलेश्या कहते हैं—

भावलेश्या कषायोदयलब्धशक्तिविशेषयोगप्रवृत्तिरूप पहले कह चुके हैं।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि भावलेश्या का पूर्वोक्त लक्षण मानने से उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगिकेवली गुणस्थानो में उस (लेश्या) का अभाव मानना पडेगा, क्यों कि वहाँ कषाय नही है।

ठीक नथी, કારણ કે આગમોના તેમા વિરોધ આવે છે

અર્થાત્ કોઈપણ આગમમા લેશ્યાને કાર્યકારણ રૂપ માનવામા આવેલ નથી

લેશ્યાને જૂદી બતાવવાનું કારણ એ છે કે કર્મવર્ગણાની અદર સાધક સ્વરૂપ છે, આ વાત દ્રવ્યલેશ્યાની થઇ હવે ભાવલેશ્યા કહે છે

ભાવલેશ્યા કષાયોદયલબ્ધશકિતવિશેષયોગપ્રવૃત્તિરૂપ છે એમ પ્રથમ કહેવાયુ છે

અહિંઆ એક પ્રશ્ન થાય છે કે-ભાવલેશ્યાનું પૂર્વોકત લક્ષણ માનવાથી ઉપશાન્તકષાય, ક્ષીણકષાય અને સયોગિકેવળી ગુણસ્થાનોમા તે લેશ્યાને અભાવ માનવો પડશે, કારણકે ત્યા કષાય નથી

तत्र (आगमे) तासा कर्मफलत्वेनाऽप्रतिपादनात्, कर्मसारेण त्वत्रस्य फलवता भवितव्यम्। यत्तुत्तरपक्षः कक्षीक्रियते तर्हि असारस्वरूपस्य तस्य नोत्कृष्टानुभाग प्रति हेतुत्व सिध्यति।

ननु यथा कार्मणशरीरस्य कर्मवर्गणाभिः कार्यकारणभेदोऽभ्युपगतः शास्त्रे तथैव लेश्याद्रव्याण्यपि कर्मवर्गणाभिर्भिन्नान्यभ्युपगन्तव्यानि, तासा तदन्तर्भावाऽभावादिति, तदप्यप्रामाणिकमेव, यथा कार्मणशरीरस्य कर्मवर्गणाभिर्भिन्नद्रव्यत्वमागमे प्रतिपादित तथा लेश्याद्रव्यस्य पृथक्त्वेनाऽनुपादानात्, पृथक्त्वेनाऽनु

आगमों मे लेश्या कर्मफलस्वरूप नहीं बताई गई है और कर्मों का सार तो अवश्य फलवाला होना ही चाहिये, इसलिये उसको कर्मों का साररूप नहीं कह सकते, यदि असाररूप मानें तो वह उत्कृष्ट अनुभाग का हेतु नहीं हो सकता। अतः लेश्या को कर्मनिष्यन्दरूप नही मानना चाहिये। इसलिये जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त हो ऐसी शुभाशुभ आत्मपरिणति को ही लेश्या मानना शास्त्र समत है।

यहाँ एक ऐसा प्रश्न होता है कि जैसे कार्मण शरीर को कर्मवर्गणा के साथ कार्यकारणरूप माना है वैसे ही लेश्याद्रव्य को भी कर्मवर्गणा के साथ का कारणरूप मानने मे क्या आपत्ति है? क्यो कि उन लेश्याओंका कर्म के अन्दर समावेश नहीं होता है।

એ બન્ને વિકલ્પ આગમથી વિરુદ્ધ છે કેમકે આગમોમા લેશ્યાને કર્મના ફલ સ્વરૂપ કહેવામા આવી નથી અને કર્મોના સારરૂપ તો જરૂર ફળવાળુ હોવુજ જોઇએ, એટલા માટે તેને કર્મોના સારરૂપ કહી શકાશે નહિ હવે જો અસારરૂપ માનીએ તો તે ઉત્કૃષ્ટ અનુભાગનો હેતુ થઈ શકતો નથી તે કારણથી લેશ્યાને કર્મનિષ્યન્દરૂપ નહિ માનવુ જોઇએ એટલા માટે જેના દ્વારા આત્મા કર્મોથી લેપાય એવી શુભ-અશુભ આત્મપરિણતિનેજ લેશ્યા માનવી, તે શાસ્ત્રસમત છે

અહિં એક એ પ્રશ્ન થાય છે કે —જેવી રીતે કાર્મણ શરીરને કર્મવર્ગણાની સાથે કાર્યકારણરૂપ માનવામા આવે છે તેવીજ રીતે લેશ્યાદ્રવ્યને પણ કર્મવર્ગણાની સાથે કાર્યકારણરૂપ માનવામા શુ આપત્તિ છે? કારણ કે તે લેશ્યાઓનો કર્મની અદર સમાવેશ થતો નથી એ પ્રમાણે પ્રશ્ન કરવો તે

शास्त्राऽभिप्राय औपचारिक एवेत्यवसीयते। वास्तविकलेश्यास्वीकारे तत्र स्थित्यनुभागबन्धप्रसङ्गः स्यात्, न च तत्र तत्सद्भावः, तथाहि-'जोगा पयडि-पएस ठिइ अणुभाग कसायओ कुणई' इति वचनात्, प्रकृतिप्रदेशौ योगजन्यौ, स्थित्यनुभागौ च कषायजन्यौ स्तः। सयोगिकेवल्यादिगुणस्थानेषु योग-निमित्तकप्रकृतिप्रदेशबन्धसद्भावेऽपि कषायाभावात् स्थित्यनुभागसभवेन कुड्यपतितशुष्कलोष्ठवत्स्थितिमकुर्वन्नेव कर्म त्वरितं प्रत्यावर्त्तते, तदुक्तं श्री-

यदि वहाँ वास्तविक लेश्या मानी जाय तो उससे स्थिति-बन्ध और अनुभागबन्ध का भी प्रसग होगा, परन्तु वहाँ उन दोनों बन्धों का अभाव है, कहा भी है कि-" प्रकृति और प्रदेश का बन्ध योग से होता है तथा स्थिति और अनुभाग बन्ध कषाय से होता है।"

इस वचन से प्रकृति और प्रदेश-बन्ध योगजनित है, स्थिति और अनुभागबन्ध कषायजनित है।

सयोगिकेवलि आदि गुणस्थानो में योगनिमित्तक प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध का सद्भाव होने पर भी तथा कषाय के अभाव से स्थिति और अनुभाग का सभव होते हुए भी भींत पर फेंके हुवे सूखे ढेले की तरह वहाँ स्थिति नहीं करता। हुआही कर्म तुरन्त वापस हट जाता है, यही श्री सूयगडाग सूत्रमें भगवानने फरमाया है कि—

સ્થિતિબંધ અથવા અનુભાગબંધનો પણ પ્રસગ થશે, પરંતુ ત્યા તે બને બંધોનો અભાવ છે, કહ્યુ પણ છે કે "પ્રકૃતિ અને પ્રદેશનો બંધ યોગથી થાય છે તથા સ્થિતિ અને અનુભાગનો બંધ કષાયથી થાય છે"

આ વચનથી પ્રકૃતિ અને પ્રદેશબંધ યોગજનિત છે સ્થિતિ અને અનુભાગ બંધ કષાયજનિત છે સયોગિકેવળી વિગેરે ગુણસ્થાનોમા યોગનિમિત્તક પ્રકૃતિબંધ અને પ્રદેશબંધનો સદ્ભાવ થયા પછી પણ તથા કષાયના અભાવથી સ્થિતિ અને અનુભાગનો સભવ થયા પછી પણ ભીંત ઉપર ફેંકેલ સુકા ઢેફાની માફક ત્યા સ્થિતિ નથી કરતો તુરત થએલુ કર્મ પાછુ હઠી જાય છે આ વિષય શ્રી સૂયગડાગ સૂત્રમા ભગવાને ફરમાવેલુ છે—

कारात्। 'मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते' इति न्यायादत्र योगप्रवृत्तिसत्त्वैवौपचारिकलेश्यासत्त्वे हेतुः। इदमत्रेदम्पर्यम्–या हि योगप्रवृत्तिः सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानपर्यन्त कषायोदयलब्धशक्तिविशेषाऽऽसीत् सैवोपशान्त कषायादिष्वस्ति, अत एव भूतपूर्वनयाऽपेक्षया तत्र लेश्यासद्भावः शास्त्रेषूपगीयते। यथा लोके भगिन्या मृतायामपि तत्पतिर्भगिनीपतित्वेन व्यवह्रियत एव।

नन्वागमे सामान्येन सयोगिकेवलिपर्यन्त लेश्यासद्भावाऽऽवेदक

यह प्रश्न करना ठीक नहीं, क्यों कि वहाँ भावलेश्या उपचारमात्र से मानी गई है। "मुख्य का अभाव होने पर निमित्त मे उपचार किया जाता है" इस न्याय से योगप्रवृत्ति की सत्ता ही औपचारिक लेश्या के सद्भाव में हेतु माना गया है। यहाँ तात्पर्य यह है कि जो योगप्रवृत्ति सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक कषायोदयलब्धशक्तिविशेषस्वरूप थी वही योगप्रवृत्ति उपशान्त-कषायादिक मे है इसलिये भूतपूर्वनयकी अपेक्षा से वहाँ (उपशान्त क्षीणकषायादि गुणस्थानों मे) लेश्या का सद्भाव शास्त्रों में कहा है। लोक मे भी यह उक्ति प्रसिद्ध है कि भगिनी (बहिन) के मर जाने पर भी उसके पतिको भगिनीपति (बहनोई) कहते है।

बात यह है कि सामान्यतया सयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त उपचार से ही लेश्या का सद्भाव सिद्ध होता है।—

આ પ્રશ્ન કરવો ઠીક નથી, કેમ કે ત્યા ભાવલેશ્યા ઉપચાર માત્રથી માનવામા આવી છે 'મુખ્યનો અભાવ હોવાથી નિમિત્તમા ઉપચાર કરાય છે' આ ન્યાયથી યોગપ્રવૃત્તિની સત્તાજ ઔપચારિક લેશ્યાના સદ્ભાવમા હેતુ માનવામા આવેલ છે, અહિં તાત્પર્ય એ છે કે જે યોગપ્રવૃત્તિ સૂક્ષ્મસંપરાય ગુણસ્થાન સુધી કષાયોદયલબ્ધશક્તિવિશેષ રૂપે હતી એજ યોગપ્રવૃત્તિ ઉપશાંતકષાયાદિકમા છે, એટલા માટે ભૂતપૂર્વનયની અપેક્ષાથી ત્યા (ઉપશાતક્ષીણકષાયાદિ ગુણસ્થાનોમા) લેશ્યાનો સદ્ભાવ શાસ્ત્રોમા કહેલ છે લોકમા પણ આ ઉક્તિ પ્રસિદ્ધ છે કે બેન મરી જવા પછી પણ તેના પતિને બનેવી કહે છે

વાત એ છે કે સામાન્ય રીતે સયોગિકેવળીગુણસ્થાન સુધી ઉપચારથીજ લેશ્યાનો સદ્ભાવ સિદ્ધ થાય છે જો ત્યા વાસ્તવિક લેશ્યા માનીએ તો તેનાથી

लेश्याषट्कमेवाह-(१) 'किण्हलेसाए' कृष्णद्रव्यात्मिका कृष्णद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या कृष्णलेश्या=कृष्णद्रव्योपाधिकात्मपरिणामविशेषः, येन जीवस्य हिंसाद्यास्रवेषु प्रवृत्तिः, मनोवाक्कायानामसयमः, स्वभावे क्षुद्रता, गुणदोषावविमृश्यैव कार्येषु प्रवृत्तिः क्रूरत्व च सजायते तया ।

(२) 'नीललेसाए' नीलद्रव्यात्मिका नीलद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या नीललेश्या=अशोकतरुसमाननीलवर्णद्रव्योपाधिकाऽऽत्मपरिणामविशेषः, येन जीवः ईर्ष्यालुः असहिष्णुः, मायावी, निस्त्रपः, प्रदीप्तविषयाभिलाषः, रसलोलुपः, सदा पौद्गलिकसुखगवेषकश्च भवति, तया ।

(३) 'काउलेसाए' कपोतस्याय कापोतः=पारावतवर्णस्ततुल्यद्रव्यरूपा तत्तु-

---

(१) कृष्णलेश्या— कृष्णद्रव्यस्वरूप तथा कृष्णद्रव्योपरागजनित आत्मपरिणाम स्वरूप है, जिससे हिंसा आदि आश्रवों में आत्माकी प्रवृत्ति होती है, मन-वचन-कायाका असयम, स्वभावमें क्षुद्रता, गुण दोषो के विना विचारे कार्यमे प्रवृत्ति करना और क्रूर भाव का आना होता है।

(२) नीललेश्या— नीलद्रव्यात्मक तथा नीलद्रव्यउपरागजनित अर्थात् अशोक वृक्ष के समान नीलवर्णवाले आत्मपरिणामस्वरूप है। इससे आत्मा ईर्ष्यालु, असहिष्णु, मायावी, निर्लज्ज, विषयलोलुपी, रसलोलुपी और पौद्गलिक सुखोंका अन्वेषक होता है।

(३) कापोतलेश्या— कबूतर के तुल्य वर्णवाली तथा उसके

---

(૧) કૃષ્ણલેશ્યા-કૃષ્ણદ્રવ્યસ્વરૂપ તથા કૃષ્ણદ્રવ્યોપરાગજનિત આત્મપરિણામ સ્વરૂપ છે, જેનાથી હિંસા આદિ આશ્રવોમા આત્માની પ્રવૃત્તિ થાય છે મન વચન અને કાયાનો અસયમ, સ્વભાવમા ક્ષુદ્રતા, ગુણદોષોને વિચાર્યા વિના કાર્યમા પ્રવૃત્તિ કરવી અને ક્રૂરભાવનુ આવવુ થાય છે

(૨) નીલલેશ્યા-નીલદ્રવ્યાત્મક તથા નીલદ્રવ્યઉપરાગજનિત અર્થાત્ અશોક વૃક્ષની જેમ નીલવર્ણવાળા આત્મપરિણામ સ્વરૂપ છે, એથી આત્મા ઇર્ષ્યાલુ, અસહિષ્ણુ માયાવી નિર્લજ્જ, વિષયપ્રેમી, રસપ્રેમી અને પૌદ્ગલિક સુખોના અન્વેષક હોય છે

(૩) કાપોતલેશ્યા-કબુતરની સમાન વર્ણવાળી તથા તેની જેમ દ્રવ્યોપરાગ

सूत्रकृताङ्गे–'त पढमसमए वद्धं, बीयसमए वेइय, ततियसमये निज्जिण्ण' इति, अतस्तद्बन्ध ईर्यापथबन्ध उच्यते । अयमेवाऽऽगमस्तत्रौपचारिकलेश्यासत्त्वाऽऽवेदकः; इत्युक्तलक्षणलक्षितैव भावलेश्येति सिद्धम् ।

अत्र च भावलेश्यैव प्रतिक्रमणविषयस्तस्या एवाधिकृतत्वात्, भावलेश्यासु कृष्णादिशब्दव्यवहारस्तदुत्पादकलेश्यापुद्गलनिमित्तकः परिणामसादृश्यमूलक श्चेति ध्येय, ताभिः ।

"प्रथम समयमें बन्ध होता है, दूसरे समयमें वेदा जाता है और तीसरे समयमें निर्जर जाता है अर्थात् दूर हो जाता है ॥"

इसी कारण से उस बन्धको ईर्यापथबन्ध कहा है। यही आगमवाक्य वहा औपचारिक लेश्या के सद्भावको बतानेवाला है, अतः पूर्वोक्त लक्षणवाली ही भावलेश्या है।

यहा प्रतिक्रमणमें भावलेश्या का अधिकार है, उनमें कृष्णादि शब्दों का जो व्यवहार होता है वह सिर्फ उनके उत्पादक लेश्या के पुद्गलों के निमित्त से तथा परिणाम भी वैसे हो जाने के कारण से माना जाता है।

वह लेश्या छह प्रकारकी है जैसे—

(१) कृष्णलेश्या । (२) नीललेश्या । (३) कापोतलेश्या । (४) तेजोलेश्या । (५) पद्मलेश्या । (६) शुक्ललेश्या ।

"પ્રથમ સમયમા બધ થાય છે, બીજા સમયમા અનુભવ થાય છે, અને ત્રીજા સમયમા નિર્જરી જાય છે અર્થાત્ દૂર થઈ જાય છે" આ કારણથી તે બધને ઈર્યાપથ બધ કહેલ છે આ શાસ્ત્રવાક્ય ત્યા ઔપચારિક લેશ્યાના સદ્‌ભાવને બતાવવા વાળો છે, એટલે પૂર્વોક્ત લક્ષણવાળીજ ભાવલેશ્યા છે

અહિં પ્રતિક્રમણમા ભાવલેશ્યાનો અધિકાર છે, એમા કૃષ્ણાદિ શબ્દોનો જે વ્યવહાર થાય છે તે માત્ર તેની ઉત્પાદક લેશ્યાના પુદ્ગલોના નિમિત્તથી તથા પરિણામ પણ તેવાજ થઈ જવાના કારણથી મનાય છે તે લેશ્યા ૬ પ્રકારની છે, જેવી રીતે (૧) કૃષ્ણલેશ્યા, (૨) નીલલેશ્યા, (૩) કાપોતલેશ્યા, (૪) તેજોલેશ્યા (૫) પદ્મલેશ્યા, (૬) શુકલલેશ્યા

लेश्याषट्कमेवाह-(१) 'किण्हलेसाए' कृष्णद्रव्यात्मिका कृष्णद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या कृष्णलेश्या=कृष्णद्रव्योपाधिकात्मपरिणामविशेषः, येन जीवस्य हिंसाद्यास्रवेषु प्रवृत्तिः, मनोवाक्कायानामसयमः, स्वभावे क्षुद्रता, गुणदोषावविमृश्यैव कार्येषु प्रवृत्तिः क्रूरत्व च सजायते तया ।

(२) 'नीललेसाए' नीलद्रव्यात्मिका नीलद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या नीललेश्या=अशोकतरुसमाननीलवर्णद्रव्योपाधिकाऽऽत्मपरिणामविशेषः, येन जीवः ईर्ष्यालुः असहिष्णुः, मायावी, निस्त्रपः, प्रदीप्तविषयाभिलाषः, रसलोलुपः, सदा पौद्गलिकसुखगवेषकश्च भवति, तया ।

(३) 'काउलेसाए' कपोतस्यायं कापोतः=पारावतवर्णस्ततुल्यद्रव्यरूपा तत्तु-

---

(१) कृष्णलेश्या— कृष्णद्रव्यस्वरूप तथा कृष्णद्रव्योपरागजनित आत्मपरिणाम स्वरूप है, जिससे हिंसा आदि आश्रवों में आत्माकी प्रवृत्ति होती है, मन-वचन-कायाका असयम, स्वभावमें क्षुद्रता, गुण दोषों के विना विचारे कार्यमें प्रवृत्ति करना और क्रूर भाव का आना होता है।

(२) नीललेश्या— नीलद्रव्यात्मक तथा नीलद्रव्यउपरागजनित अर्थात् अशोक वृक्ष के समान नीलवर्णवाले आत्मपरिणामस्वरूप है। इससे आत्मा ईर्ष्यालु, असहिष्णु, मायावी, निर्लज्ज, विषयलोलुपी, रसलोलुपी और पौद्गलिक सुखोंका अन्वेषक होता है।

(३) कापोतलेश्या— कबूतर के तुल्य वर्णवाली तथा उसके

---

(१) કૃષ્ણલેશ્યા-કૃષ્ણદ્રવ્યસ્વરૂપ તથા કૃષ્ણદ્રવ્યોપરાગજનિત આત્મપરિણામ સ્વરૂપ છે, જેનાથી હિંસા આદિ આશ્રવોમા આત્માની પ્રવૃત્તિ થાય છે મન વચન અને કાયાનો અસયમ, સ્વભાવમા ક્ષુદ્રતા, ગુણદોષોને વિચાર્યા વિના કાર્યમા પ્રવૃત્તિ કરવી અને ક્રૂરભાવનું આવવુ થાય છે

(૨) નીલલેશ્યા-નીલદ્રવ્યાત્મક તથા નીલદ્રવ્યઉપરાગજનિત અર્થાત્ અશોક વૃક્ષની જેમ નીલવર્ણવાળા આત્મપરિણામ સ્વરૂપ છે, એથી આત્મા ઇર્ષ્યાલુ, અસહિષ્ણુ માયાવી નિર્લજ્જ, વિષયપ્રેમી, રસપ્રેમી અને પૌદ્ગલિક સુખોના અન્વેષક હોય છે

(૩) કાપોતલેશ્યા-કબુતરની સમાન વર્ણવાળી તથા તેની જેમ દ્રવ્યોપરાગ

ल्यद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या कापोतलेश्या=तरुणपारावतकण्ठतुल्यकृष्ण लोहित (धूपछाया) वर्णद्रव्योपाधिकात्मपरिणामः; येन जीवस्य वचसि कर्तव्ये विचारणायां च सर्वत्र वक्रतैव जायते, कस्मिन्नपि विषये सारल्यं न भवति, नास्तिकत्वं परदुःखजनकभाषणशीलत्वं च संजायते तया।

(४) 'तेउलेसाए' तेजः=अग्निज्वाला तत्तुल्यलोहितवर्णद्रव्यात्मिका तादृशद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या तेजोलेश्या=शुकतुण्डवद्रक्तवर्णद्रव्योपाधिकात्म परिणामविशेषः, यद्वशात् जीवे नम्रत्वं पदमादधाति शाठ्यं चापल्यं च सुदूरम पसरति, धर्मेऽभिरुचिर्दाढर्यं सर्वजनहितैषित्वं च जञ्जन्यते तया।

तुल्य द्रव्योपरागजनित अर्थात् तरुण कबूतर के कंठसदृश कृष्ण और नील वर्णवाले द्रव्यात्मक आत्मपरिणाम स्वरूप है, जिससे आत्मा मन वचन कर्तव्य और विचारमें सर्वथा वक्र भावको धारण करता है, किन्तु किसी विषयमें सरलता नहीं रखता है, और उसमें पुण्य पाप आदिकी नास्तिकता तथा परदुःखजनक भाषा बोलनेका स्वभाव होता है।

(४) तेजोलेश्या— अग्निज्वाला के समान लालवर्णद्रव्यस्वरूप तथा तादृश (वैसे) द्रव्योपरागजनितस्वरूप है, अर्थात् तोते की चोंचके समान लाल वर्णवाले द्रव्य के सदृश आत्मपरिणामरूप है, इससे आत्मा नम्र बनता है, शठता और चपलता रहित होता है, धर्म के अन्दर दृढ, प्राणीमात्र का हितैषी होता है।

જનિત અર્થાત્ તરુણ કબુતરના કંઠના જેવા કાળા અને નીલવર્ણવાળા—દ્રવ્યાત્મક આત્મપરિણામરૂપ છે, જેથી આત્મા, મન, વચન, કર્ત્તવ્ય અને વિચારમા હંમેશા વક્રભાવને ધારણ કરે છે પરંતુ કોઈ વિષયમા સરળતા નથી રાખતો, અને તેમા પુણ્ય પાપ વિગેરેની નાસ્તિકતા તથા પરદુખજનક ભાષા બોલવાનો સ્વભાવ થાય છે

(૪) તેજોલેશ્યા—અગ્નિની જ્વાળાની પેઠે લાલવર્ણ દ્રવ્યસ્વરૂપ તથા એવુજ દ્રવ્યોપરાગજનિત સ્વરૂપ છે, અર્થાત્ પોપટની ચાંચની જેમ લાલવર્ણવાળા દ્રવ્યની જેમ આત્મપરિણામરૂપ છે, એથી આત્મા નમ્ર બને છે, લુચ્ચાઈ તથા ચપલતાથી રહિત થાય છે, ધર્મની અંદર દૃઢ, પ્રાણીમાત્રનો હિતૈષી થાય છે

(५) 'पउमलेसाए' अत्र पद्मशब्देनोपचारात्पद्मगर्भग्रहणम् स च पीतो भवत्यतः पद्मगर्भवत्पीतद्रव्यात्मिका पीतद्रव्योपाधिजन्या वा लेश्या पद्मलेश्या=हरिद्रावत्पीतद्रव्योपाधिकाऽऽत्मपरिणामविशेषः, यद्द्वारा जीवस्य क्रोधमानादिकषायाणां बहुतराशेषु मान्द्य, स्वान्ते शान्तिः, आत्मसंयमधारणक्षमत्वम्, मितभाषित्वम्, जितेन्द्रियत्वं च सपद्यते, तया।

'सुक्कलेसाए' शुक्ल=शुक्लद्रव्यं तदात्मिका तदुपरागजनिता वा लेश्या शुक्लेश्या=शङ्खवच्छ्वेतवर्णद्रव्योपाधिकात्मपरिणामः, यद्वशतो जीवस्याऽऽर्त्तरौद्रध्यानाऽवरोधपूर्वकं धर्म-शुक्लध्यानद्वयमुपसपद्यते, मनोवाक्कायसंयमनशक्तिः, कषायोपशान्तिः, वीतरागभावसम्पादनाऽऽनुकूल्यं च जायते, तया (६)

---

(५) पद्मलेश्या—पद्म-कमल-के गर्भ के समान पीतद्रव्यस्वरूप तथा हलदी के समान पीले द्रव्यवाले आत्मपरिणामविशेषस्वरूप है, जिससे आत्मा के क्रोध मान माया आदि कषाय मंद अर्थात् पतले हो जाते हैं, और आत्मामें मन की शान्ति, आत्मसंयम का सामर्थ्य, मर्यादित बोलना और जितेन्द्रियता आदि गुण आजाते हैं।

(६) शुक्ललेश्या-शुक्लद्रव्यस्वरूप याने शंखके तलेके समान श्वेत द्रव्यवाले आत्मपरिणामविशेषरूप है, जिससे आत्मा आर्त्त-रौद्र ध्यान को छोडकर धर्म तथा शुक्लध्यानधारी होता है, मन वचन काया के संयमन का सामर्थ्य, कषायों की उपशान्ति, वीत-

---

(૫) પદ્મલેશ્યા—પદ્મ=કમળના ગર્ભ સમાન પીળા દ્રવ્ય સ્વરૂપ તથા હળદરની જેમ પીળા દ્રવ્યવાળા આત્મપરિણામવિશેષસ્વરૂપ છે જેનાથી આત્માને, ક્રોધ, માન, માયા આદિ કષાયો મંદ અર્થાત્ પાતલા થઇ જાય છે, અને આત્મામાં મનની શાંતિ, આત્મસંયમનું સામર્થ્ય, મર્યાદિત બોલવું અને જીતેંદ્રિયપણું આદિ ગુણ આવી જાય છે

(૬) શુકલલેશ્યા—શુકલદ્રવ્યસ્વરૂપ અર્થાત્ શંખના તલીયાની સમાન સફેદ દ્રવ્યવાળા આત્મપરિણામવિશેષરૂપ છે જેથી આત્મા આર્ત્ત રૌદ્ર ધ્યાનને છોડીને ધર્મ તથા શુકલ ધ્યાન ધારી થાય છે મન વચન કાયાના સંયમનું સામર્થ્ય, કષાયોની ઉપશાંતિ, વીતરાગભાવને પ્રાપ્ત કરવાની અનુકૂળતા વિગેરે

ल्यद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या कापोतलेश्या=तरुणपारावतकण्ठतुल्यकृष्ण लोहित (धूपछाया) वर्णद्रव्योपाधिकात्मपरिणामः; येन जीवस्य वचसि कर्तव्ये विचारणाया च सर्वत्र वक्रतैव जायते, कस्मिन्नपि विषये सारल्य न भवति, नास्तिकत्व परदुःखजनकभाषणशीलत्व च सजायते तया।

(४) 'तेउलेसाए' तेज=अग्निज्वाला तत्तुल्यलोहितवर्णद्रव्यात्मिका तादृशद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या तेजोलेश्या=शुकतुण्डवद्रक्तवर्णद्रव्योपाधिकात्म परिणामविशेषः, यद्वशात् जीवे नम्रत्व पदमादधाति शाठ्य चापल्य च सुदूरम पसरति, धर्मेऽभिरुचिर्दार्ढ्यं सर्वजनहितैषित्व च जञ्जन्यते तया।

तुल्य द्रव्योपरागजनित अर्थात् तरुण कबूतर के कठसदृश कृष्ण और नील वर्णवाले द्रव्यात्मक आत्मपरिणाम स्वरूप है, जिससे आत्मा मन वचन कर्तव्य और विचारमें सर्वथा वक्र भावको धारण करता है, किन्तु किसी विषयमें सरलता नही रखता है, और उसमें पुण्य पाप आदिकी नास्तिकता तथा परदुःखजनक भाषा बोलनेका स्वभाव होता है।

(४) तेजोलेश्या—अग्निज्वाला के समान लालवर्णद्रव्यस्वरूप तथा तादृश (वैसे) द्रव्योपरागजनितस्वरूप है, अर्थात् तोते की चोंचके समान लाल वर्णवाले द्रव्य के सदृश आत्मपरिणामरूप है, इससे आत्मा नम्र बनता है, शठता और चपलता रहित होता है, धर्म के अन्दर दृढ, प्राणीमात्र का हितैषी होता है।

જનિત અર્થાત્ તરુણ કબુતરના કંઠના જેવા કાળા અને નીલવર્ણવાળા-દ્રવ્યાત્મક આત્મપરિણામરૂપ છે, જેથી આત્મા, મન, વચન, કર્તવ્ય અને વિચારમા હંમેશા વક્રભાવને ધારણ કરે છે પરતુ કોઈ વિષયમા સરળતા નથી રાખતો, અને તેમા પુણ્ય પાપ વિગેરેની નાસ્તિકતા તથા પરદુઃખજનક ભાષા બોલવાનો સ્વભાવ થાય છે

(૪) તેજોલેશ્યા-અગ્નિની જ્વાળાની પેઠે લાલવર્ણ દ્રવ્યસ્વરૂપ તથા એવુજ દ્રવ્યોપરાગજનિત સ્વરૂપ છે, અર્થાત્ પોપટની ચાંચની જેમ લાલવર્ણવાળા દ્રવ્યની જેમ આત્મપરિણામરૂપ છે, એથી આત્મા નમ્ર બને છે, લુચ્ચાઈ તથા ચપલતાથી રહિત થાય છે, ધર્મની અદર દૃઢ, પ્રાણીમાત્રનો હિતૈષી થાય છે

तथोक्तं नीतौ-'राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा,' 'राजसेवा मनुष्याणामसिधारावलेहनम्। पञ्चाननपरिष्वङ्गो, व्यालीवदनचुम्बनम्' इत्यादि। अकस्मात्=बाह्यनिमित्तमन्तरेणैव सर्पादिबुद्ध्या रज्ज्वादिभ्यो भयं, सहसैवार्त्तनादादिश्रवणाद्वा भयम्। आजीवः=जीविका तस्मात्तदर्थं वा भयम्-'निर्धनोऽहं दुर्भिक्षादौ कथं प्राणान् धारयिष्यामि' इति, 'कथं वा मम जीविका सुदृढा भविष्यतीति। मरणं=प्राणवियोगस्तस्माद्भयम्। श्लोकः=यशः-'पद्ये यशसि च श्लोकः'-इत्यमरः, न श्लोकः अश्लोकः=अपयशस्तस्माद्भयम्। तदेवमुक्तविधैः सप्तभिर्भयस्थानैर्यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्मात्तं वा प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते-परित्यजामि वेति समन्वयः। अत्रोक्तस्य 'पडिक्कमामि' इत्यस्यैतत आरभ्य त्रयस्त्रिंशदाशातना यावत् सम्बन्धो बोद्धव्यः। 'अट्ठहिं' अष्टभिः, 'मयट्ठाणेहिं' मदोऽहङ्कारस्तस्य स्थानानि=जाति-कुल-बल-रूप-तपः-श्रुत-लाभै-श्वर्यरूपाणि तैः, सम्बन्धः प्राग्वत्।

'नवहिं' नवभिः, 'बंभचेरगुत्तीहिं' ब्रह्मचर्यं=मैथुनविरतिव्रतं तस्य गुप्तयः=रक्षाप्रकाराः ब्रह्मचर्यगुप्तयः=मैथुनविरतिपरिरक्षणोपायास्ताभिः, सम्बन्धः पूर्ववत्। ताश्च ब्रह्मचर्यगुप्तय -(१) वसति-(२) कथा-(३-४) निषद्येन्द्रिय-(५) कुड्यान्तर-(६) पूर्वक्रीडा-(७-८) प्रणीताऽतिमात्राहार-(९) विभूषणपरिहाररूपाः, तत्र वसतिः=स्त्रीपशुपण्डकाऽऽश्रितस्थानसेवनं तत्परिहारः प्रथमा गुप्तिः (१)।

अकस्माद्भय- विनाकारण ही अचानक डर जाना, (५) आजीविका भय-मेरा निर्वाह कैसे होगा! दुष्काल आदि में प्राण कैसे रक्खूँगा! इत्यादि रूप भय, (६) प्राणवियोग का भय, और (७) अश्लोक (अपयश) होने का भय, इन सात भयों से, जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ, और ऐश्वर्य-मद, इन आठ मदों से, तथा (१) वसति-स्त्री, पशु, पण्डक सहित स्थान-का त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी

રેથી ધન આદિ છીનવીને લઇ જવાનો ભય, (૪) અકસ્માત્‌ભય-વિના કારણેજ અચાનક બી જવુ, (૫) આજીવિકાભય-મારો નિર્વાહ કેમ થાશે? દુષ્કાળ આદિમા પ્રાણ કઇ રીતે રાખીશ? ઈત્યાદિ રૂપ ભય, (૬) પ્રાણ વિયોગનો ભય, અને (૭ અશ્લોક (અપજસ) થવાનો ભય, આ સાત ભયોથી જાતિ, કુળ, બલ, રૂપ, તપ, શ્રુત લાભ અને ઐશ્વર્ય-મદ આ આઠે મદોથી તથા (૧) વસતિ-સ્ત્રી, પશુ, પડક સહિત સ્થાનનો ત્યાગ, (૨) કથા-સ્ત્રી સબધી વાર્તાનો ત્યાગ, (૩) નિષધા-જ્યા

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि सत्तहिं भयट्ठाणेहिं। अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं। नवहिं बंभचेरगुत्तीहिं। दसविहे समणधम्मे ॥ सू० ९ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि सप्तभिर्भयस्थानैः। अष्टभिर्मदस्थानैः। नवभिर्ब्रह्मचर्यगुप्तिभिः। दशविधे श्रमणधर्मे ॥ सू० ९ ॥

॥ टीका ॥

'पडिक्कमामि' इत्यादि। भय=भीतिस्तस्य स्थानानि=पर्यायभेदाः-भयस्थानानि तैः, सप्त भयस्थानान्युक्तानि यथा-'इहपरलोयादाणमकम्हा आजीवमरणमसिलोए' इति। अस्य 'इहपरलोकादानमकस्मादाजीवमरणमश्लोकः'-इतिच्छाया। तत्र लोकशब्दस्य द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वादिहेत्यनेनाप्यन्वयः, इहलोकः=सजातीयलोकस्तस्माद्भयं यथा मनुष्येभ्यो मनुष्याणां, तिर्यग्भ्यस्तिरश्चां भयम्। परलोकः=विजातीयलोकस्तस्माद्भयं, यथा सिंहादिभ्यो मनुष्यादीनां भयम्, आदीयते=गृह्यते इत्यादानं धनं, तद्धेतुकं चौरा-ऽग्नि-राजादिभ्यो भयम्, यद्वा आदानं=राजादिवितीर्णपदवीग्रामादिस्वीकरणं, तदर्थं भयमर्थाद्राजादिभ्य एव, राजानो हि चारचक्षुष्ट्वात् क्षणे तुष्टाः क्षणे रुष्टाः दत्तमपि सर्वस्वं कदाचिदपराधलवेनाऽप्यपहरन्ति,

---

से फिर यह भविष्य मे ऐसा अनर्थ न करके अच्छे रास्ते चले और सुखी बने ॥ ६ ॥

इसी प्रकार दूसरा आम्रफल के खानेवाले छह पुरुषों का दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है ॥ सू० ८ ॥

(१) इहलोकभय-मनुष्य को मनुष्य से और तिर्यञ्च को तिर्यञ्च से भय, (२) परलोकभय-मनुष्य आदि को सिंह आदि से भय, (३) आदानभय-चोर राजा आदि से धन आदि छीने जाने का भय, (४)

કરવુ જોઈએ જેથી એ ફરીથી ભવિષ્યમા આવો અનર્થ ન કરીને ઉત્તમ માર્ગે જાય અને સુખી થાય (૬) આવી રીતે બીજુ આમ્રફળ ખાનારા છ પુરૂષોનું દૃષ્ટાંત પ્રસિદ્ધજ છે (સૂ૦ ૮)

(૧) ઇહલોકભય- મનુષ્યને મનુષ્યથી અને તિર્યંચને તિર્યંચથી ભય, (૨) પરલોકભય-મનુષ્ય આદિને સિંહ વિગેરેથી ભય, (૩) આદાનભય-ચોર રાજા વિગે

तथोक्त नीतौ-'राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा,' 'राजसेवा मनुष्याणामसिधारा-वलेहनम्। पञ्चाननपरिष्वङ्गो, व्यालीवदनचुम्बनम्' इत्यादि। अकस्मात्=बाह्य-निमित्तमन्तरेणैव सर्पादिबुद्ध्या रज्ज्वादिभ्यो भय, सहसैवार्त्तनादादिश्रवणाद्वा भयम्। आजीवः=जीविका तस्मात्तदर्थं वा भयम्-'निर्धनोऽहं दुर्भिक्षादौ कथं प्राणान् धारयिष्यामि' इति, 'कथ वा मम जीविका सुदृढा भविष्यतीति। मरण=प्राण-वियोगस्तस्माद्भयम्। श्लोक =यशः-'पद्ये यशसि च श्लोक '-इत्यमरः, न श्लोकः अश्लोकः=अपयशस्तस्माद्भयम्। तदेवमुक्तविधैः सप्तभिर्भयस्थानैर्यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्मात्त वा प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते-परित्यजामि वेति समन्वयः। अत्रोक्त-स्य 'पडिक्कमामि' इत्यस्येत आरभ्य त्रयस्त्रिंशदाशातना यावत् सम्बन्धो बोद्ध-व्यः। 'अट्ठहिं' अष्टभि', 'मयट्ठाणेहिं' मदोऽहङ्कारस्तस्य स्थानानि=जाति-कुल-बल-रूप-तपः-श्रुत-लाभै-श्वर्यरूपाणि तैः, सम्बन्धः प्राग्वत्।

'नवहिं' नवभि', 'बंभचेरगुत्तीहिं' ब्रह्मचर्य=मैथुनविरतिव्रत तस्य गुप्तयः=रक्षाप्रकाराः ब्रह्मचर्यगुप्तयः=मैथुनविरतिपरिरक्षणोपायास्ताभिः, सम्बन्धः पूर्ववत्। ताश्च ब्रह्मचर्यगुप्तय -(१) वसति-(२) कथा-(३-४) निषद्येन्द्रिय-(५) कुड्यान्तर-(६) पूर्वक्रीडा-(७-८) प्रणीताऽतिमात्राहार-(९) विभूषणपरिहाररूपा., तत्र वसतिः=स्त्रीपशुपण्डकाऽऽश्रितस्थानसेवन तत्परिहारः प्रथमा गुप्तिः (१)।

अकस्माद्भय- विनाकारण ही अचानक डर जाना, (५) आजीविका भय-मेरा निर्वाह कैसे होगा! दुष्काल आदि में प्राण कैसे रखूँगा! इत्यादि रूप भय, (६) प्राणवियोग का भय, और (७) अश्लोक (अपयश) होने का भय, इन सात भयों से, जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ, और ऐश्वर्य-मद, इन आठ मदों से, तथा (१) वसति-स्त्री, पशु, पण्डक सहित स्थान-का त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी

तेथी धन आदि छीनवीने लई जवानो भय, (४) अकस्मात्‌भय-विना कारणेज अचानक बी जवु, (५) आजीविकाभय-मारो निर्वाह केम थाशे? दुष्काळ आदिमा प्राण कई रीते राखीश? ईत्यादि रूप भय, (६) प्राण वियोगनो भय, अने (७ अश्लोक (अपजस) थवानो भय, आ सात भयोथी जाति, कुळ, बळ, रूप, तप, श्रुत लाभ अने ऐश्वर्य-मद आ आठे मदोथी तथा (१) वसति-स्त्री, पशु, पंडक सहित स्थाननो त्याग, (२) कथा-स्त्री संबंधी वार्तानो त्याग, (३) निषद्या-ज्या

कथा=स्त्रीसम्बन्धिनी, स्त्रिया सहैकान्ते वा वार्ता, तत्परिहारो द्वितीया (२)। निषद्या=पूर्वमुपविष्टाना पश्चादुत्थिताना स्त्रीणामासने तदुत्थानोत्तर होराद्वयाभ्यन्तरे समुपवेशस्तत्परिहारः (३)। इन्द्रियम्=इन्द्रियावलोकन=स्त्रीणामङ्गोपाङ्गनिरीक्षण, तत्परिहारः (४)। [1]कुड्यान्तर=भित्त्यादिव्यवहिताना स्त्रीणा सम्मोहकमधुर ध्वन्याद्याकर्णन तत्परिहारः (५)। 'पूर्वक्रीडा'=दीक्षाग्रहणात्पूर्वं ससारावस्थाया स्त्रिया सह कृतस्य क्रीडादेः स्मरण, तत्परिहारः (६), प्रणीत=निष्यन्दमान घृतादिबिन्दु, ततोऽन्यदपि वा धातूपबृंहक भोज्यवस्तु तत्परिहार. (७), अतिमात्राऽऽहारः=परिमाणाधिकभोजन, तत्परिहारः (८), विभूषण=स्नानादिना शरीरसस्कारस्तत्परिहारः (९)। 'दसविहे' दश विधाः=प्रकारा यस्य स तथा तस्मिन् 'समणधम्मे' श्रमणधर्मे, 'यो मयाऽतिचारः कृत'-इत्यादिसम्बन्धो

वार्ता का त्याग, (३) निषद्या-जहाँ पहले स्त्री बैठी हो उस स्थान पर स्त्री के उठ जाने पर दो घडी के भीतर उस स्थान पर उपवेशन (बैठने) आदि का त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्री के अगोपाग के निरीक्षण का त्याग, (५) कुडयान्तर-दीवार आदि की ओटमें स्त्री पुरुष के विषयोत्तेजक शब्द श्रवण का त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्री के साथ पहले की हुई क्रीडा आदि के स्मरण का त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग, (८) अतिमात्राहार-प्रमाण से अधिक भोजन का त्याग, (९) विभूषा-शरीर की शुश्रूषा का त्याग, इन नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों (बाडों) द्वारा और क्षान्ति, मुक्ति (लोभ परित्याग), आर्जव (मायापरित्याग), मार्दव (मानपरित्याग), लाघव

પહેલા સ્ત્રી બેઠી હોય તે સ્થાન ઉપર સ્ત્રી ઉઠી ગયા બાદ બે ઘડીની અંદર તે જગ્યા ઉપર બેસવા વિગેરેનો ત્યાગ, (૪) ઇન્દ્રિય-સ્ત્રીના અંગ-ઉપાંગ જોવાનો ત્યાગ, (૫) કુડયાન્તર-દીવાલ આદિની ઓટમા સ્ત્રીપુરુષના વિષયને ઉત્તેજન કરે એવા શબ્દ સાંભળવાનો ત્યાગ, (૬) પૂર્વક્રીડા-સ્ત્રીની સાથે પ્રથમ કરેલી ક્રીડા વિગેરેના સ્મરણનો ત્યાગ, (૭) પ્રણીત-પ્રતિદિન સરસ ભોજનનો ત્યાગ, (૮) અતિમાત્રાહાર-પ્રમાણથી વધારે ખોરાક ખાવાનો ત્યાગ (૯) વિભૂષા-શરીરની શુશ્રૂષાનો ત્યાગ, આ નવ બ્રહ્મચર્ય ગુપ્તિઓ (વાડો) દ્વારા અને ક્ષાન્તિ, મુકિત

१ कुड्यस्य अन्तर=व्यवधान कुड्यान्तरम्, एतस्योपलक्षणत्वादुक्तोऽर्थः।

भूतपूर्व एव, तत्र दश श्रमणधर्मो यथा-क्षान्ति-र्मुक्ति-रार्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, सयम-स्तप-स्त्यागो, ब्रह्मचर्यवासश्चेति ॥ सू० ९ ॥

॥ मूलम् ॥ एगारसहिं उवासगपडिमाहिं ॥ सू० १० ॥

॥ छाया ॥ एकादशभिरुपासकप्रतिमाभिः ॥ सू० १० ॥

॥ टीका ॥

'एगारसहिं' इत्यादि । उपासते श्रमणानित्युपासकाः=श्रावकास्तेषा प्रतिमाः=अभिग्रहा (प्रतिज्ञाविशेषाः) उपासकप्रतिमास्ताभिः प्ररूपणादौ यो मयाऽतिचारः कृत इत्यादि सम्बन्धो यथापूर्वम् । आसा प्रतिमानामाद्या प्रथमा (१) मासिकी सम्यक्त्व (दर्शन)-प्रतिमा, शङ्कादिदोषरहितस्य सम्यक्त्वस्य पालनम् । द्वितीया (२) द्वैमासिकी व्रतप्रतिमा, तत्र नैर्मल्येन

(द्रव्यभावसे लघुता), सत्य, सयम, तप, त्याग (साम्भोगिक साधुओं को आहारादि लाकर देना) और ब्रह्मचर्यवास (ब्रह्मचर्य-पालन) इस दश प्रकार के यतिधर्म मे जो कोई अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ सू० ९ ॥

उपासकों (श्रावकों) की प्रतिमाएँ (प्रतिज्ञाविशेष) ग्यारह होती हैं, उनमें पहली 'दर्शनप्रतिमा' एक मास की, इसमें एक मास एकान्तर उपवास और शङ्कादि दोषों से रहित निर्मल समकित का पालन किया जाता है (१)। दूसरी 'व्रतप्रतिमा' दो मास की होती है, इसमें पूर्वक्रिया सहित दो महीने तक दो दो उपवास

(લોભનો ત્યાગ) આર્જવ (માયાનો ત્યાગ) માર્દવ (માનનો ત્યાગ) લાઘવ (દ્રવ્ય ભાવથી હળવાપણુ), સત્ય, સયમ, તપ, ત્યાગ (સાભોગિક સાધુઓને આહાર વિગેરે લાવી દેવો), અને બ્રહ્મચર્યવાસ (બ્રહ્મચર્યપાલન) આ દશ પ્રકારના યતિધર્મમા જે કોઈ અતિચાર કર્યો હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ (સૂ૦ ૯)

ઉપાસકો (શ્રાવકો) ની પ્રતિમાઓ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) અગિયાર હોય છે એમા પહેલી 'દર્શનપ્રતિમા' એક માસની, એમા એક માસ એકાતર ઉપવાસ અને શકાદિ દોષોથી રહિત નિર્મલ સમકિતનુ પાલન કરાય છે (૧) બીજી 'વ્રત પ્રતિમા' બે માસની હોય છે એમા પૂર્વ ક્રિયા સહિત બે મહિના સુધી બબ્બે ઉપવાસના પારણાપૂર્વક વ્રત પ્રત્યાખ્યાન નિર્મળ પાળવામા આવે છે (૨) ત્રીજી

कथा=स्त्रीसम्बन्धिनी, स्त्रिया सहैकान्ते वा वार्ता, तत्परिहारो द्वितीया (२)। निषद्या=पूर्वमुपविष्टाना पश्चादुत्थिताना स्त्रीणामासने तदुत्थानोत्तर होराद्वयाभ्यन्तरे समुपवेशस्तत्परिहारः (३)। इन्द्रियम्=इन्द्रियावलोकन=स्त्रीणामङ्गोपाङ्गनिरीक्षण, तत्परिहारः (४)। [1]कुड्यान्तर=भित्त्यादिव्यवहिताना स्त्रीणा सम्मोहकमधुर ध्वन्याद्याकर्णन तत्परिहारः (५)। 'पूर्वक्रीडा'=दीक्षाग्रहणात्पूर्वं ससारावस्थाया स्त्रिया सह कृतस्य क्रीडादेः स्मरण, तत्परिहारः (६), प्रणीत=निष्यन्दमान घृतादिबिन्दु, ततोऽन्यदपि वा धातूपबृंहक भोज्यवस्तु तत्परिहार. (७), अतिमात्राऽऽहारः=परिमाणाधिकभोजन, तत्परिहारः (८), विभूषण=स्नानादिना शरीरसस्कारस्तत्परिहारः (९)। 'दसविहे' दश विधाः=प्रकारा यस्य स तथा तस्मिन् 'समणधम्मे' श्रमणधर्मे, 'यो मयाऽतिचारः कृत'-इत्यादिसम्बन्धो

वार्ता का त्याग, (३) निषद्या-जहाँ पहले स्त्री बैठी हो उस स्थान पर स्त्री के उठ जाने पर दो घडी के भीतर उस स्थान पर उपवेशन (बैठने) आदि का त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्री के अगोपाग के निरीक्षण का त्याग, (५) कुडयान्तर-दीवार आदि की ओटमें स्त्री पुरुष के विषयोत्तेजक शब्द श्रवण का त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्री के साथ पहले की हुई क्रीडा आदि के स्मरण का त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग, (८) अतिमात्राहार-प्रमाण से अधिक भोजन का त्याग, (९) विभूषा-शरीर की शुश्रूषा का त्याग, इन नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों (वाडों) द्वारा और क्षान्ति, मुक्ति (लोभ परित्याग), आर्जव (मायापरित्याग), मार्दव (मानपरित्याग), लाघव

પહેલા સ્ત્રી બેઠી હોય તે સ્થાન ઉપર સ્ત્રી ઉઠી ગયા બાદ બે ઘડીની અદર તે જગ્યા ઉપર બેસવા વિગેરેનો ત્યાગ, (૪) ઇન્દ્રિય-સ્ત્રીના અગ-ઉપાગ જોવાનો ત્યાગ, (૫) કુડયાન્તર-દીવાલ આદિની ઓટમા સ્ત્રીપુરુષના વિષયને ઉત્તેજન કરે એવા શબ્દ સાભળવાનો ત્યાગ, (૬) પૂર્વક્રીડા-સ્ત્રીની સાથે પ્રથમ કરેલી ક્રીડા વિગેરેના સ્મરણનો ત્યાગ, (૭) પ્રણીત-પ્રતિદિન સરસ ભોજનનો ત્યાગ, (૮) અતિમાત્રાહાર-પ્રમાણથી વધારે ખોરાક ખાવાનો ત્યાગ (૯) વિભૂષા-શરીરની શુશ્રૂષાનો ત્યાગ, આ નવ બ્રહ્મચર્ય ગુપ્તિઓ (વાડો) દ્વારા અને ક્ષાન્તિ, મુકિત

---

१ कुड्यस्य अन्तर=व्यवधान कुड्यान्तरम्, एतस्योपलक्षणत्वादुक्तोऽर्थः।

-कच्छत्व च ।-सप्तमी (७) -सप्तमासिकी-सचित्तपरित्यागप्रतिमा, तत्र सर्वथा सचित्तवस्तुपरित्यागः । अष्टमी (८) अष्टमासिकी आरम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र स्वहस्तेनारम्भपरित्यागः । नवमी (९) नवमासिकी-प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र अन्यद्वाराप्यारम्भपरित्यागः। दशमी (१०) दशमासिकी उद्दिष्टभक्तपरित्याग-प्रतिमा, तत्र स्वोद्दिष्टभक्तपरित्यागः । अत्र स्थितेन श्रावकेण क्षुरमुण्डितमुण्डेनाऽ-

छह छह उपवास का पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है तथा दोनों लागे खुली रखी जाती हैं (६)। सातवी 'सचित्त-परित्यागप्रतिमा' सात मास की, इसमे सात मास तक सात सात उपवास का पारणा, और सर्वथा सचित्त वस्तु का त्याग किया जाता है (७)।आठवीं 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मास की, इसमे आठ मास तक आठ आठ उपवास का पारणा तथा स्वय आरम्भ करने का त्याग किया जाता है (८)। नववीं 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नौ मास की, इसमे नौ मास तक नौ २ उपवास का पारणा और दूसरे से भी आरम्भ कराने का परित्याग किया जाता है (९)। दसवी 'उद्देश्यप्रतिमा' दस मास की, इसमें दस मास तक दस दस उपवास का पारणा तथा अपने उद्देश्य से बनाये गये आहारादि का परित्याग किया जाता है, इसमें स्थित श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा असुण्डित रह कर गृहसम्बन्धी किसी बात के पूछे जाने

પારણાપૂર્વક અખંડ બ્રહ્મચર્યનુ પાલન કરાય છે તથા બન્ને લાગો ખુલી રાખવામા આવે છે (૬) સાતમી 'સચિત્તપરિત્યાગપ્રતિમા' સાત માસની, એમા સાત માસ સુધી સાત સાત ઉપવાસના પારણા અને સર્વથા સચિત્ત વસ્તુનો ત્યાગ કરાય છે (૮) આઠમી 'આરભપરિત્યાગપ્રતિમા' આઠ માસની, એમા આઠ માસ સુધી આઠ આઠ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના હાથે આરભ કરવાનો ત્યાગ કરાય છે (૯) નવમી 'પ્રેષ્યારભપરિત્યાગપ્રતિમા' નવ માસની, એમા નવ માસ સુધી નવ નવ ઉપવાસના પારણા અને બીજાથી પણ આરભ કરાવવાનો પરિત્યાગ કરાય છે (૧૦) દશમી 'ઉદ્દેશ્યપ્રતિમા' દશ માસની, એમા દશ માસ સુધી દશ દશ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના ઉદ્દેશથી બનાવાએલા આહારાદિકનો પરિત્યાગ કરાય છે, એમા રહેલ શ્રાવક ક્ષુરમુડિત અથવા અમુડિત રહીને ઘર

व्रत-प्रत्याख्यानयोः पालनम् । तृतीया (३) त्रैमासिकी सामायिक-प्रतिमा, तत्र अतिचारवर्जनपूर्वकमुभयोः कालयोः सामायिकाऽऽचरणम् । चतुर्थी (४) चातुर्मासिकी पौषधप्रतिमा, तत्र अष्टमी-चतुर्दशी-पूर्णिमादिपर्वतिथिषूपवासः । पञ्चमी (५) पञ्चमासिकी प्रतिमा, तत्र स्नान-रात्रिभोजनवर्जन-कच्छेकमोचन-दिवाब्रह्मचर्यपालन - नक्तन्तत्परिमाणकरणरूपपञ्चविधमर्यादापालनम् । षष्ठी (६) 'षाण्मासिकी ब्रह्मप्रतिमा, तत्र सर्वथा ब्रह्मचर्यपालनम्-अबद्धपरिधान

का पारणापूर्वक व्रतप्रत्याख्यान निर्मल पाला जाता है (२)। तीसरी 'सामायिकप्रतिमा' तीन मास की, इसमें तीन मास तक तीन तीन उपवास का पारणा किया जाता है, दोनों काल अतिचार रहित सामायिक की जाती है (३)। चौथी 'पौषधप्रतिमा' चार मास की, इस में चार मास तक चार चार उपवास का पारणापूर्वक अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि पर्व तिथियों मे पौषध किया जाता है (४)। पाचवी 'प्रनिमा' नामकी प्रतिमा पांच मास की, इसमें पांच मास तक पाच पाच उपवास का पारणापूर्वक पाच बोलों की मर्यादा की जाती है। वे पाच बोल इस प्रकार हैं-(१) स्नान न करना, (२) रात्रिभोजन न करना, (३) एक लाँग खुली रखना, (४) दिन में मैथुन का सर्वथा त्याग करना, और (५) रात्रि में उसका परिमाण करना, परन्तु पौषध-अवस्था मे सर्वथा त्याग ही करना (५)। छठी 'ब्रह्मप्रतिमा' छह मास की, इसमे छह महीने तक

'સામાયિકપ્રતિમા' ત્રણ માસની એમા ત્રણ માસ સુધી ત્રણ ત્રણ ઉપવાસના પારણા કરાય છે બન્ને વખત અતિચારરહિત સામાયિક કરાય છે (૩), ચોથી 'પૌષધ પ્રતિમા' ચાર માસની, એમા ચાર માસ સુધી ચાર ચાર ઉપવાસના પારણા અને આઠમ, ચૌદશ, પૂનમ, આદિ પર્વ તિથિયોમા પૌષધ કરાય છે (૪) પાચમી 'પ્રતિમા' નામની પ્રતિમા પાચ માસની, એમા (પાચ માસ સુધી પાચ પાચ ઉપવાસના પારણાપૂર્વક નિમ્ન પાચ બોલોની મર્યાદા કરાય છે તે પાચ બોલ આ પ્રકારે છે-(૧) સ્નાન ન કરવુ (૨) રાત્રિ ભોજન ન કરવુ (૩) એક લાગ ખુલી રાખવી (૪) દિવસે મૈથુનનો સર્વથા ત્યાગ કરવો અને (૫) રાત્રિમા એનો પરિમાણ કરવુ, પરતુ પૌષધ અવસ્થામા સર્વથા ત્યાગજ કરવો (૬) છઠી 'બ્રહ્મપ્રતિમા' છ માસની, એમા (છ માસ સુધી છ છ ઉપવાસના

कच्छत्व च।-सप्तमी (७) -सप्तमासिकी-सचित्तपरित्यागप्रतिमा, तत्र सर्वथा सचित्तवस्तुपरित्यागः। अष्टमी (८) अष्टमासिकी आरम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र स्वहस्तेनारम्भपरित्यागः। नवमी (९) नवमासिकी-प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र अन्यद्वाराप्यारम्भपरित्यागः। दशमी (१०) दशमासिकी उद्दिष्टभक्तपरित्याग-प्रतिमा, तत्र स्वोद्दिष्टभक्तपरित्यागः। अत्र स्थितेन श्रावकेण क्षुरमुण्डितमुण्डेनाऽ-

---

छट्ट छट्ट उपवास का पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है तथा दोनो लागे खुली रखी जाती हैं (६)। सातवीं 'सचित्त-परित्यागप्रतिमा' सात मास की, इसमें सात मास तक सात सात उपवास का पारणा, और सर्वथा सचित्त वस्तु का त्याग किया जाता है (७)। आठवीं 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मास की, इसमें आठ मास तक आठ आठ उपवास का पारणा तथा स्वय आरम्भ करने का त्याग किया जाता है (८)। नववीं 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नौ मास की, इसमे नौ मास तक नौ २ उपवास का पारणा और दूसरे से भी आरभ कराने का परित्याग किया जाता है (९)। दसवीं 'उद्देश्यप्रतिमा' दस मास की, इसमें दस मास तक दस दस उपवास का पारणा तथा अपने उद्देश्य से बनाये गये आहारादि का परित्याग किया जाता है, इसमें स्थित श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा असुण्डित रह कर गृहसम्बन्धी किसी बात के पूछे जाने

પારણાપૂર્વક અખડ બ્રહ્મચર્યનુ પાલન કરાય છે તથા બન્ને લાગો ખુલી રાખ વામા આવે છે (૬) સાતમી 'સચિત્તપરિત્યાગપ્રતિમા' સાત માસની, એમા સાત માસ સુધી સાત સાત ઉપવાસના પારણા અને સર્વથા સચિત્ત વસ્તુનો ત્યાગ કરાય છે (૮) આઠમી 'આરભપરિત્યાગપ્રતિમા' આઠ માસની, એમા આઠ માસ સુધી આઠ આઠ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના હાથે આરભ કરવાનો ત્યાગ કરાય છે (૯) નવમી 'પ્રેષ્યારભપરિત્યાગપ્રતિમા' નવ માસની, એમા નવ માસ સુધી નવ નવ ઉપવાસના પારણા અને બીજાથી પણ આરભ કરાવવાનો પરિત્યાગ કરાય છે (૧૦) દશમી 'ઉદ્દેશ્યપ્રતિમા' દશ માસની, એમા દશ માસ સુધી દશ દશ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના ઉદ્દેશથી બનાવાએલા આહારાદિકનો પરિત્યાગ કરાય છે, એમા રહેલ શ્રાવક ક્ષુરમુડિત અથવા અમુડિત રહીને ઘર

व्रत-प्रत्याख्यानयोः पालनम् । तृतीया (३) त्रैमासिकी सामायिक प्रतिमा, तत्र अतिचारवर्जनपूर्वकमुभयोः कालयोः सामायिकाऽऽचरणम् । चतुर्थी (४) चातुर्मासिकी पौषधप्रतिमा, तत्र अष्टमी-चतुर्दशी-पूर्णिमादिपर्वतिथिषूपवासः । पञ्चमी (५) पञ्चमासिकी प्रतिमा, तत्र स्नान-रात्रिभोजनवर्जन-कच्छैकमोचन-दिवाब्रह्मचर्यपालन - नक्तन्तत्परिमाणकरणरूपपञ्चविधमर्यादापालनम् । षष्ठी (६) 'षाण्मासिकी ब्रह्मप्रतिमा, तत्र सर्वथा ब्रह्मचर्यपालनम्-अबद्धपरिधान

का पारणापूर्वक व्रतप्रत्याख्यान निर्मल पाला जाता है (२)। तीसरी 'सामायिकप्रतिमा' तीन मास की, इसमें तीन मास तक तीन तीन उपवास का पारणा किया जाता है, दोनों काल अतिचार रहित सामायिक की जाती है (३)। चौथी 'पौषधप्रतिमा' चार मास की, इस में चार मास तक चार चार उपवास का पारणापूर्वक अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि पर्व तिथियों में पौषध किया जाता है (४)। पाचवी 'प्रतिमा' नामकी प्रतिमा पाच मास की, इसमें पाच मास तक पाच पाच उपवास का पारणापूर्वक पाच बोलों की मर्यादा की जाती है। वे पाच बोल इस प्रकार हैं-(१) स्नान न करना, (२) रात्रिभोजन न करना, (३) एक लाँग खुली रखना, (४) दिन में मैथुन का सर्वथा त्याग करना, और (५) रात्रि में उसका परिमाण करना, परन्तु पौषध-अवस्था मे सर्वथा त्याग ही करना (५)। छठी 'ब्रह्मप्रतिमा' छह मास की, इसमें छह महीने तक

'સામાયિકપ્રતિમા' ત્રણ માસની એમા ત્રણ માસ સુધી ત્રણ ત્રણ ઉપવાસના પારણા કરાય છે બન્ને વખત અતિચારરહિત સામાયિક કરાય છે (૩), ચોથી 'પોષધ પ્રતિમા' ચાર માસની, એમા ચાર માસ સુધી ચાર ચાર ઉપવાસના પારણા અને આઠમ, ચૌદશ, પૂનમ, આદિ પર્વ તિથિયોમા પોષધ કરાય છે (૪) પાચમી 'પ્રતિમા' નામની પ્રતિમા પાચ માસની, એમા (પાચ માસ સુધી પાચ પાચ ઉપવાસના પારણાપૂર્વક નિમ્ન પાચ બોલોની મર્યાદા કરાય છે તે પાચ બોલ આ પ્રકારે છે-(૧) સ્નાન ન કરવુ (૨) રાત્રિ ભોજન ન કરવુ (૩) એક લાગ ખુલી રાખવી (૪) દિવસે મૈથુનનો સર્વથા ત્યાગ કરવો અને (૫) રાત્રિમા એનો પરિમાણ કરવુ, પરતુ પોષધ અવસ્થામા સર્વથા ત્યાગજ કરવો (૬) છઠી 'બ્રહ્મપ્રતિમા' છ માસની, એમા (છ માસ સુધી છ છ ઉપવાસના

कच्छत्व च ।-सप्तमी (७) सप्तमासिकी–सचित्तपरित्यागप्रतिमा, तत्र सर्वथा सचित्तवस्तुपरित्यागः । अष्टमी (८) अष्टमासिकी आरम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र स्वहस्तेनारम्भपरित्यागः । नवमी (९) नवमासिकी–प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र अन्यद्वाराप्यारम्भपरित्यागः। दशमी (१०) दशमासिकी उदिष्टभक्तपरित्याग-प्रतिमा, तत्र स्वोद्दिष्टभक्तपरित्यागः । अत्र स्थितेन श्रावकेण क्षुरमुण्डितमुण्डेनाऽ-

छह छह उपवास का पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है तथा दोनों लागे खुली रखी जाती हैं (६)। सातवीं 'सचित्त-परित्यागप्रतिमा' सात मास की, इसमें सात मास तक सात सात उपवास का पारणा, और सर्वथा सचित्त वस्तु का त्याग किया जाता है (७)। आठवीं 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मास की, इसमें आठ मास तक आठ आठ उपवास का पारणा तथा स्वय आरम्भ करने का त्याग किया जाता है (८)। नववी 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नौ मास की, इसमे नौ मास तक नौ २ उपवास का पारणा और दूसरे से भी आरभ कराने का परित्याग किया जाता है (९)। दसवी 'उद्देश्यप्रतिमा' दस मास की, इसमें दस मास तक दस दस उपवास का पारणा तथा अपने उद्देश्य से बनाये गये आहारादि का परित्याग किया जाता है, इसमें स्थित श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा अमुण्डित रह कर गृहसम्बन्धी किसी बात के पूछे जाने

પારણાપૂર્વક અખંડ બ્રહ્મચર્યનુ પાલન કરાય છે તથા બને લાગો ખુલી રાખવામા આવે છે (૬) સાતમી 'સચિત્તપરિત્યાગપ્રતિમા' સાત માસની, એમા સાત માસ સુધી સાત સાત ઉપવાસના પારણા અને સર્વથા સચિત્ત વસ્તુને ત્યાગ કરાય છે (૮) આઠમી 'આરભપરિત્યાગપ્રતિમા' આઠ માસની, એમા આઠ માસ સુધી આઠ આઠ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના હાથે આરભ કરવાને ત્યાગ કરાય છે (૯) નવમી 'પ્રેષ્યારભપરિત્યાગપ્રતિમા' નવ માસની, એમા નવ માસ સુધી નવ નવ ઉપવાસના પારણા અને બીજાથી પણ આરભ કરાવવાને પરિત્યાગ કરાય છે (૧૦) દશમી 'ઉદ્દેશ્યપ્રતિમા' દશ માસની, એમા દશ માસ સુધી દશ દશ ઉપવાસના પારણા અને પોતાના ઉદ્દેશથી બનાવાએલા આહારાદિકને પરિત્યાગ કરાય છે, એમા રહેલ શ્રાવક ક્ષુરમુડિત અથવા અમુડિત રહીને ઘર

व्रत-प्रत्याख्यानयोः पालनम् । तृतीया (३) त्रैमासिकी सामायिक प्रतिमा, तत्र अतिचारवर्जनपूर्वकमुभयोः कालयोः सामायिकाऽऽचरणम् । चतुर्थी (४) चातुर्मासिकी पौषधप्रतिमा, तत्र अष्टमी-चतुर्दशी-पूर्णिमादिपर्वतिथिषूपवासः । पञ्चमी (५) पञ्चमासिकी प्रतिमा, तत्र स्नान-रात्रिभोजनवर्जन-कच्छैकमोचन-दिवाब्रह्मचर्यपालन - नक्तन्तत्परिमाणकरणरूपपञ्चविधमर्यादापालनम् । षष्ठी (६) 'पाण्मासिकी ब्रह्मप्रतिमा, तत्र सर्वथा ब्रह्मचर्यपालनम्-अबद्धपरिधान

का पारणापूर्वक व्रतप्रत्याख्यान निर्मल पाला जाता है (२)। तीसरी 'सामायिकप्रतिमा' तीन मास की, इसमें तीन मास तक तीन तीन उपवास का पारणा किया जाता है, दोनों काल अतिचार रहित सामायिक की जाती है (३)। चौथी 'पौषधप्रतिमा' चार मास की, इस में चार मास तक चार चार उपवास का पारणापूर्वक अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि पर्व तिथियों मे पौषध किया जाता है (४)। पाचवी 'प्रनिमा' नामकी प्रतिमा पांच मास की, इसमें पाच मास तक पाच पाच उपवास का पारणापूर्वक पांच बोलों की मर्यादा की जाती है। वे पाच बोल इस प्रकार हैं-(१) स्नान न करना, (२) रात्रिभोजन न करना, (३) एक लाँग खुली रखना, (४) दिन में मैथुन का सर्वथा त्याग करना, और (५) रात्रि में उसका परिमाण करना, परन्तु पौषध-अवस्था मे सर्वथा त्याग ही करना (५)। छठी 'ब्रह्मप्रतिमा' छह मास की, इसमे छह महीने तक

'સામાયિકપ્રતિમા' ત્રણ માસની એમા ત્રણ માસ સુધી ત્રણ ત્રણ ઉપવાસના પારણા કરાય છે બન્ને વખત અતિચારરહિત સામાયિક કરાય છે (૩), ચોથી 'પૌષધ પ્રતિમા' ચાર માસની, એમા ચાર માસ સુધી ચાર ચાર ઉપવાસના પારણા અને આઠમ, ચૌદશ, પૂનમ, આદિ પર્વ તિથિયોમા પૌષધ કરાય છે (૪) પાચમી 'પ્રતિમા' નામની પ્રતિમા પાચ માસની, એમા (પાચ માસ સુધી પાચ પાચ ઉપવાસના પારણાપૂર્વક નિમ્ન પાચ બોલોની મર્યાદા કરાય છે તે પાચ બોલ આ પ્રકારે છે-(૧) સ્નાન ન કરવુ (૨) રાત્રિ ભોજન ન કરવુ (૩) એક લાગ ખુલી રાખવી (૪) દિવસે મૈથુનનો સર્વથા ત્યાગ કરવો અને (૫) રાત્રિમા એનો પરિમાણ કરવુ, પરતુ પૌષધ અવસ્થામા સર્વથા ત્યાગજ કરવો (૬) છઠી 'બ્રહ્મપ્રતિમા' છ માસની, એમા (છ માસ સુધી છ છ ઉપવાસના

॥ मूलम् ॥

वारसहि भिक्खुपडिमाहि ॥ सू० ११ ॥

॥ छाया ॥

द्वादशभिर्भिक्षुप्रतिमाभिः ॥ सू० ११ ॥

॥ टीका ॥

द्वादशभिर्भिक्षुप्रतिमाभिः—भिक्षूणा प्रतिमाः भिक्षुप्रतिमास्ताभिर्योऽतिचारः कृत इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वदेव। तत्र प्रथमा मासिकी भिक्षोः प्रतिमा, तस्यामन्नस्य जलस्य चैकैका दत्तिर्ग्राह्या, दत्तिश्च हस्तपात्रादितो निरवच्छिन्न-धारारूपेण पतिता भिक्षा गृह्यते, धाराविच्छेदेन तु सिक्थमात्रपातेऽपि दत्ति-भेदः। एवं द्वैमासिकी–त्रैमासिकी–चातुर्मासिकी–पाञ्चमासिकी–पाण्मासिकी–सप्त-मासिकीषु क्रमेणाऽन्न–जलयोर्दत्तिद्वय–त्रय–चतुष्टय–पञ्चतय–षट्क–सप्तकानि गृह्यन्त इति स्वयमूहनीयम्। अष्टमी प्रतिमा सप्ताहोरात्रिकी, तत्र चतुर्विधाऽऽ-

---

प्रतिमा के गुण उत्तर उत्तर प्रतिमामें समझने चाहिये। इनमें प्ररूपणा आदि द्वारा जो कोई अतिचार लगा हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० १०॥

भिक्षु (साधु) की बारह प्रतिमाएँ (प्रतिज्ञाविशेष) होती हैं। पहली एक मासकी, यावत् सातवीं सातमासकी भिक्षुप्रतिमा। पहली प्रतिमामे निर्लेप एक दत्ति अन्नकी एक दत्ति पानी की ली जाती है। अखण्डित एक धारा से एक बार जितना आहारपानी पात्र मे गिरे उतना ही उपभोग में ले १। इसी प्रकार क्रमसे सातवी प्रतिमामे सात दत्ति अन्न और सात दत्ति पानी की ली

મામા સમજવા જોઈએ એમા પ્રરૂપણા આદિ દ્વારા જે કોઇ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ (સૂ૦ ૧૦)

ભિક્ષુ (સાધુ) ની બાર પ્રતિમાઓ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) હોય છે પહેલી એક માસની, બીજી બે માસની, યવત સાતમી સાત માસની ભિક્ષુપ્રતિમા પહેલી પ્રતિમામા નિર્લેપ એક દત્તિ અન્નની એક દત્તિ પાણીની લેવાય છે અખંડિત એકધારાથી એક વખત જેટલો આહાર પાણી પાત્રમા પડે તેટલોજ ઉપભોગમા લે (૧) [illegible] ...મી પ્રતિમામા સાત દત્તિ અન્નની અને

मुण्डितेन वा गृहसम्बन्धे कैश्चित्किञ्चित्पृष्टे सति तद्ज्ञाने 'वेद्मी'-ति तदज्ञाने 'न वेद्मीति च निगदता भाव्यम्। एकादशी (११) एकादशमासिकी-श्रमणभूत प्रतिमा, तत्र तेन शिखावर्जं कृतलुञ्चनेन क्षुरमुण्डितेन वा साधुवेषधारिणा ईर्या समित्यादिकमखिलं साधुधर्ममनुपालयता धृतनिर्ग्रन्थरजोहरणदण्डेन स्वजाति मात्रत एव पालितभिक्षाग्रहणव्रतेन भिक्षार्थं गृहप्रवेशवेलायां 'श्रमणोपासकाय प्रतिपन्नाय भिक्षा देया'-इति भाषितव्यम्, 'कस्त्व'-मिति केनापि पृष्टे सति 'श्रमणोपासकोऽहम्,-इति ब्रुवता भवितव्यम्। आस्वेकादशसु प्रतिमासु यथोत्तरं पूर्वपूर्वप्रतिमागतगुणसम्बन्धो योग्यः ॥ सू० १० ॥

पर जानता हो तो कहे कि 'जानता हूँ' और नही जानता हो तो ऐसा कहे 'नही जानता हूँ' (१०)। ग्यारहवीं 'श्रमणभूत (साधु समान) प्रतिमा' ग्यारह मास की, इस में ग्यारह महीने तक ग्यारह २ उपवास का पारणा किया-जाता है, इस में स्थित श्रावक शक्ति हो तो लोच करे, नहीं तो मुण्डन करे, शिखा रक्खे, ईर्यासमिति आदि समस्त साधुधर्मों का पालन करता हुआ उघाडी (खुली हुई) दाडी का रजोहरण लिये हुए, केवल अपनी जाति मे गोचरी करे और गोचरी के लिये किसी के घरमें प्रवेश करते समय बोले कि-'प्रतिमाधारी श्रमणोपासक को भिक्षा दो।' यदि कोई पूछे कि-'तुम कौन हो ?' तो कहे कि 'मै प्रतिमाधारी श्रावक हूँ साधु नही' (१)। इन ग्यारह प्रतिमाओं मे पहली पहली

સબધી કોઇ વાત પૂછવામા આવે તો જાણુતા હોય તો કહે કે હુ જાણુ છુ, નહિ જાણુતા હોય તો કહે કે ાથી જાણુતો, (૧૧) અગિયારમી 'શ્રમણુભૂત-(સાધુસમાન) પ્રતિમા' અગિયાર માસની, એમા અગિયાર માસ સુધી અગિયાર અગિયાર ઉપ વાસના પારણા કરાય છે એમા સ્થિત શ્રાવક શકિત હોય તો લોચ કરે, નહિ તો મુડન કરે, ચોટલી રાખે, ઈર્યાસમિતિ આદિ સર્વ સાધુધર્મોનુ પાલન કરતા થકા ઉઘાડી દાડીનું રજોહરણુ લઇને કેવળ પોતાની જાતિમાજ ગોચરી કરે અને ગોચરી માટે કોઇના ઘરમા પ્રવેશ કરતી વખતે બોલે કે 'પ્રતિમાધારી શ્રમણોપાસકને ભિક્ષા આપો' જો કોઈ પૂછે કે-'તમે કોણુ છો ?' તો કહેવુ કે 'હુ પ્રતિમાધારી શ્રાવક છુ, સાધુ નથી' આ અગિયાર પ્રતિમાઓમા પહેલી પહેલી પ્રતિમાના ગુણુ ઉત્તર ઉત્તર પ્રતિ

॥ मूलम् ॥

वारसहि भिक्खुपडिमाहि ॥ सू० ११ ॥

॥ छाया ॥

द्वादशभिर्भिक्षुप्रतिमाभिः ॥ सू० ११ ॥

॥ टीका ॥

द्वादशभिर्भिक्षुप्रतिमाभिः-भिक्षूणा प्रतिमा, भिक्षुप्रतिमास्ताभिर्योऽतिचारः कृत इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वदेव। तत्र प्रथमा मासिकी भिक्षोः प्रतिमा, तस्यामन्नस्य जलस्य चैकैका दत्तिर्ग्राह्या, दत्तिश्च हस्तपात्रादितो निरवच्छिन्न-धारारूपेण पतिता भिक्षा गृह्यते, धाराविच्छेदेन तु सिक्थमात्रपातेऽपि दत्ति-भेदः। एवं द्वैमासिकी-त्रैमासिकी-चातुर्मासिकी-पाञ्चमासिकी-षाण्मासिकी-सप्त-मासिकीषु क्रमेणाऽन्न-जलयोर्दत्तिद्वय-त्रय-चतुष्टय-पञ्चतय-षट्क-सप्तकानि गृह्यन्त इति स्वयमूहनीयम्। अष्टमी प्रतिमा सप्ताहोरात्रिकी, तत्र चतुर्विधाऽऽ-

प्रतिमा के गुण उत्तर उत्तर प्रतिमामें समझने चाहियें। इनमें प्ररूपणा आदि द्वारा जो कोई अतिचार लगा हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० १०॥

भिक्षु (साधु) की बारह प्रतिमाएँ (प्रतिज्ञाविशेष) होती हैं। पहली एक मासकी, यावत् सातवीं सातमासकी भिक्षुप्रतिमा। पहली प्रतिमामे निर्लेप एक दत्ति अन्नकी एक दत्ति पानी की ली जाती है। अखण्डित एक धारा से एक बार जितना आहारपानी पात्र में गिरे उतना ही उपभोग में ले १। इसी प्रकार क्रमसे सातवी प्रतिमामें सात दत्ति अन्न और सात दत्ति पानी की ली

મામા સમજવા જોઇએ એમા પ્રરૂપણા આદિ દ્વારા જે કોઇ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ (સૂ૦ ૧૦)

ભિક્ષુ (સાધુ) ની બાર પ્રતિમાઓ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) હોય છે પહેલી એક માસની, બીજી બે માસની, યવત્ સાતમી સાત માસની ભિક્ષુપ્રતિમા પહેલી પ્રતિમામા નિર્લેપ એક દત્તિ અન્નની એક દત્તિ પાણીની લેવાય છે અખડિત એકધારાથી એક વખત જેટલો આહાર પાણી પાત્રમા પડે તેટલોજ ઉપભોગમા લ્યે (૧) એજ પ્રકારે ક્રમથી સાતમી પ્રતિમામા સાત દત્તિ અન્નની અને

मुण्डितेन वा गृहसम्बन्धे कैश्चित्किञ्चित्पृष्टे सति तद्ज्ञाने 'वेद्मी'-ति तदज्ञाने 'न वेद्मीति च निगदता भाव्यम्। एकादशी (११) एकादशमासिकी-श्रमणभूत प्रतिमा, तत्र तेन शिखावर्जं कृतलुञ्चनेन क्षुरमुण्डितेन वा साधुवेषधारिणा ईर्या समित्यादिकमखिलं साधुधर्ममनुपालयता धृतनिर्वस्त्ररजोहरणदण्डेन स्वजाति मात्रत एव पालितभिक्षाग्रहणव्रतेन भिक्षायै गृहप्रवेशवेलायां 'श्रमणोपासकाय प्रतिपन्नाय भिक्षा देया'-इति भाषितव्यम्, 'कस्त्व'-मिति केनापि पृष्टे सति 'श्रमणोपासकोऽहम्,-इति ब्रुवता भवितव्यम्। आस्वेकादशसु प्रतिमासु यथोत्तर पूर्वपूर्वप्रतिमागतगुणसम्बन्धो योग्यः ॥ सू० १० ॥

पर जानता हो तो कहे कि 'जानता हूँ' और नहीं जानता हो तो ऐसा कहे 'नही जानता हूँ' (१०)। ग्यारहवीं 'श्रमणभूत (साधु समान) प्रतिमा' ग्यारह मास की, इस में ग्यारह महीने तक ग्यारह २ उपवास का पारणा किया जाता है, इस में स्थित श्रावक शक्ति हो तो लोच करे, नहीं तो मुण्डन करे, शिखा रक्खे, ईर्यासमिति आदि समस्त साधुधर्मों का पालन करता हुआ उघाडी (खुली हुई) दाडी का रजोहरण लिये हुए केवल अपनी जाति में गोचरी करे और गोचरी के लिये किसी के घरमें प्रवेश करते समय बोले कि-'प्रतिमाधारी श्रमणोपासक को भिक्षा दो।' यदि कोई पूछे कि-'तुम कौन हो?' तो कहे कि 'मैं प्रतिमाधारी श्रावक हूँ साधु नहीं' (१)। इन ग्यारह प्रतिमाओं में पहली पहली

સબંધી કોઇ વાત પૂછવામા આવે તો જાણુતા હોય તો કહે કે હુ જાણુ છુ, નહિ જાણુતા હોય તો કહે કે નથી જાણુતો, (૧૧) અગિયારમી 'શ્રમણુભૂત-(સાધુસમાન) પ્રતિમા' અગિયાર માસની, એમા અગિયાર માસ સુધી અગિયાર અગિયાર ઉપ વાસના પારણા કરાય છે એમા સ્થિત શ્રાવક શકિત હોય તો લોચ કરે, નહિ તો મુડન કરે, ચોટલી રાખે, ઇર્યાસમિતિ આદિ સર્વ સાધુધર્મોનું પાલન કરતા થકા ઉઘાડી દાડીનુ રજોહરણુ લઇને કેવળ પોતાની જાતિમાજ ગોચરી કરે અને ગોચરી માટે કોઇના ઘરમા પ્રવેશ કરતી વખતે બોલે કે 'પ્રતિમાધારી શ્રમણોપાસકને ભિક્ષા આપો' જો કોઇ પૂછે કે-'તમે કોણુ છો?' તો કહેવુ કે 'હુ પ્રતિમાધારી શ્રાવક છુ, સાધુ નથી' આ અગિયાર પ્રતિમાઓમા પહેલી પહેલી પ્રતિમાના ગુણુ ઉત્તર ઉત્તર પ્રતિ

'वीरासन'–निरालम्बेऽपि सिंहासनोपविष्टवद्न्यस्तचरण मुक्तजानुकमुपवेशनम्, 'गोदोहिकासन'–गोदोहिकावत् = गोदोहनवदासनमर्थात्–यथा गोदोहको गोदोहनवेलायामास्ते तद्वत्पादाग्रतलाभ्यामवस्थानम्, 'आम्रकुब्जकासनम्'–आम्रवत्कुब्जमासनम्। आस्वष्टम्यादिदशम्यन्तप्रतिमासु प्रतिप्रतिमयुक्तानामासनानामन्यतमाऽवलम्बनेनासितव्यमिति तात्पर्यम्। एकादशी प्रतिमा त्वेकाहोरात्रसाध्या, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनद्वयोपवासो ग्रामाद्बहिर्गत्वा कायोत्सर्गश्च कर्तव्यः।

अथैकदिनमात्रसाध्या द्वादशी प्रतिमा, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनत्रयमुपोष्य तृतीयस्मिन् दिने ग्रामाद्बहिः श्मशानस्थान गत्वा पुद्गलस्यैकस्योपरि दृष्टिदानेन कायोत्सर्गः कर्तव्यः, तदानी च तत्र देव–मनुष्य–

विना सहारे स्थिर रहना), गोदोहासन (गोदोहनकी तरह पैरो के अग्रभाग और तल भाग के सहारे बैठना) और आम्रकुब्जकासन (आम्रफलकी तरह कूबडा हो कर स्थिर रहना), इनमें कोई भी एक आसन किया जाता है १०।

ग्यारहवी प्रतिमा केवल एक दिन की होती है, इसमें चउविहार बेला किया जाता है और गाम के बाहर काउसग किया जाता है ११। बाहरवी प्रतिमा एक दिन की होती है, इसमें चउविहार तेला किया जाता है, तेला के दिन गाम से बाहर श्मशान भूमिमे जा कर किसी एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके कायोत्सर्ग किया जाता है। उस समय होने वाले देव–मनुष्य और

વિના સ્થિર રહેવુ, ગોદોહાસન–ગાય દોતા હોઇએ તેવી રીતે પગના આગલા ભાગ અને તલ ભાગના આશ્રયે બેસવુ, અને આમ્રકુબ્જકાસન (આમ્રફળની જેમ કૂબડા થઇને સ્થિર રહેવુ) આમાથી કોઇ પણ એક આસન કરાય છે (૧૦)

અગિયારમી પ્રતિમા ફક્ત એક દિવસની હોય છે એમા ચોવિહાર છઠ્ઠ કરાય છે અને ગામની બહાર કાઉસગ્ગ કરાય છે (૧૧) બારમી પ્રતિમા એક દિવસની હોય છે એમા ચોવિહાર અઠ્ઠમ કરાય છે અઠ્ઠમના દિવસે ગામની બહાર શ્મશાન ભૂમિમા જઇને કોઇ એક પુદ્ગલ ઉપર દૃષ્ટિ સ્થિર કરીને કાયોત્સર્ગ કરાય છે એ વખતે થવાવાળા દેવ મનુષ્ય અને તિર્યંચ સબધી ઉત્કૃષ્ટ ઉપસર્ગ ને સહન

हारपरित्यागपूर्वकैकान्तरोपवासेन ग्रामाद्बहिः कायोत्सर्गं च कुर्यात्, उत्तान एकपार्श्वो वा शयीत, पल्यङ्कासनेन वाऽऽसीत। एवं नवमी दशम्यावपि प्रतिमे सप्तसप्ताहोरात्रसाम्ये, तयोस्तपश्चरणमष्टमीवदेव केवलमासनभेदः, तत्र नवम्यां दण्डासन-लगण्डासनो-त्कुटुकासनरूपाणि त्रीण्यासनानि, तेषु दण्डासनं नाम-पादाग्रादिप्रसारणेन दण्डवत्पतनरूपम्। लगण्ड=वक्रकाष्ठं, तद्वत् अर्थान्मस्तकपाष्णर्यादिभागानां भूमिसम्बन्धेन पृष्ठस्य च तदसम्बन्धेन यदासनं तल्लगण्डासनम्। उत्कुटुकासनं नाम-पुतस्य (श्रोणिभागस्य) अलगने नोपवेशनम्। दशम्यां वीरासन-गोदोहिकासना-ऽऽम्रकुब्जकासनानि, तत्र

जाती है। आठवी प्रतिमा सात अहोरात्र की है, इसमें एकान्तर चउविहार उपवास और गाम से बाहर कायोत्सर्ग किया जाता है। तथा उत्तानासन (चित्त सोना), एकपार्श्वासन (एक पसवाडे से सोना) और पर्यंकासन, इन तीन आसनोंमें से कोई भी एक आसन किया जाता है। इसी प्रकार नवमी और दशवी प्रतिमाएँ आठवी के समान हैं, किन्तु नववी मे दण्डासन (दडके पडने की तरह पग पसार कर सोना), लगण्डासन (मस्तक और एडियों को भूमि पर लगा कर पीठ को अधर रखना), उत्कुडुकासन-पूतिभाग-बैठकको जमीन पर नही लगा कर ऊकडूँ बैठना यानी दो पैरों के ऊपर ही बैठना। तथा दसवीं में वीरासन (पृथ्वी पर पैर रख कर सिंहासन पर बैठे हुए के समान, घुटने अलग २ रख कर

સાત દત્તિ પાણીની લેવાય છે આઠમી પ્રતિમા સાત અહોરાત્રિની છે એમા એકાંતર ચોવિહાર ઉપવાસ, અને ગામથી બહાર કાયોત્સર્ગ કરાય છે, તથા ઉત્તાનાસન (ચિત્તા સુવુ), એકપાર્શ્વાસન (એક પડખે સુવુ), અને પર્યંકાસન આ ત્રણ આસનોમાથી કોઇ પણ એક આસન કરાય છે એવી રીતે નવમી અને દશમી પ્રતિમા આઠમીના સમાન છે પરતુ નવમીમા દડાસન (દડ-લાકડી પડેલ હોય તેમ પગ પસારીને સુવુ), લગડાસન (માથુ અને એડીઓને ભૂમિ ઉપર લગાવી પીઠને અધર રાખવી), ઉત્કુટુકાસન-પૂતિભાગ-બેઠકને જમીન પર ન લગાવીને ઉભડક બેસવુ, અર્થાત્ બે પગ ઉપરજ બેસવુ તથા દશમીમા વીરાસન-પૃથ્વી પર પગ રાખીને સિંહાસન ઉપર બેઠા હોય એવી રીતે ઘુટણ જુદા જુદા રાખીને આધાર

'वीरासन'-निरालम्बेऽपि सिंहासनोपविष्टवद्न्यस्तचरण मुक्तजानुकमुपवेशनम्, 'गोदोहिकासन'-गोदोह्किावत् = गोदोहनवदासनमर्थात्-यथा गोदोहका गोदोहनवेलायामास्ते तद्वत्पादाग्रतलाभ्यामवस्थानम्, 'आम्रकुब्जकासनम्'-आम्रवत्कुब्जमासनम्। आस्वष्टम्यादिदशम्यन्तप्रतिमासु प्रतिमतिमप्रुक्तानामासनानामन्यतमाऽवलम्बनेनासितव्यमिति तात्पर्यम्। एकादशी प्रतिमा त्वेकाहोरात्रसाध्या, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनद्वयोपवासो ग्रामाद्बहिर्गत्वा कायोत्सर्गश्च कर्तव्यः।

अथैकदिनमात्रसाध्या द्वादशी प्रतिमा, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनत्रयमुपोष्य तृतीयस्मिन् दिने ग्रामाद्बहि॰ श्मशानस्थान गत्वा पुद्गलस्यैकस्योपरि दृष्टिदानेन कायोत्सर्गः कर्तव्यः, तदानी च तत्र देव-मनुष्य-

---

विना सहारे स्थिर रहना), गोदोहासन (गोदोहनकी तरह पैरो के अग्रभाग और तल भाग के सहारे बैठना) और आम्रकुब्जकासन (आम्रफलकी तरह कुबडा हो कर स्थिर रहना), इनमें कोई भी एक आसन किया जाता है १०।

ग्यारहवी प्रतिमा केवल एक दिन की होती है, इसमें चउविहार बेला किया जाता है और गाम के बाहर काउसग किया जाता है ११। बाहरवी प्रतिमा एक दिन की होती है, इसमें चउविहार तेला किया जाता है, तेला के दिन गाम से बाहर श्मशान भूमिमें जा कर किसी एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके कायोत्सर्ग किया जाता है। उस समय होने वाले देव-मनुष्य और

વિના સ્થિર રહેવુ, ગેદોહાસન-ગાય દોતા હોઇએ તેવી રીતે પગના આગલા ભાગ અને તલ ભાગના આશ્રયે બેસવુ, અને આમ્રકુબ્જકાસન (આમ્રફળની જેમ કૂબડા થઇને સ્થિર રહેવુ) આમાથી કોઇ પણ એક આસન કરાય છે (૧૦)

અગિયારમી પ્રતિમા ફકત એક દિવસની હોય છે એમા ચોવિહાર છઠ્ઠ કરાય છે અને ગામની બહાર કાઉસગ્ગ કરાય છે (૧૧) બારમી પ્રતિમા એક દિવસની હોય છે એમા ચોવિહાર અઠ્ઠમ કરાય છે અઠ્ઠમના દિવસે ગામની બહાર શ્મશાન ભૂમિમા જઇને કોઇ એક પુદ્ગલ ઉપર દૃષ્ટિ સ્થિર કરીને કાયોત્સર્ગ કરાય છે એ વખતે થવાવાળા દેવ મનુષ્ય અને તિર્યંચ સબધી ઉત્કૃષ્ટ ઉપસર્ગ ને સહન

तिर्यक्कृते घोर उपसर्गे सोढेऽवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानामन्यतमस्यैकस्य कस्य चिज्ज्ञानस्योदयो जायते, [1]अन्यथा तून्मादादिदुष्टरोगसंक्रमेण श्रमणस्य केवलिप्ररूपितधर्माद्भवति परिभ्रंशनम् ॥ सू० ११ ॥

॥ मूलम् ॥

तेरसहि किरियाठाणेहि ॥ सू० १२ ॥

॥ छाया ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैः ॥ सू० १२ ॥

॥ टीका ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैर्यो मयाऽतिचारः कृतः इत्यादिसम्बन्धो यथोक्तः। तत्र क्रियास्थानान्युक्तानि, यथा-"(१) अट्ठादंडे, (२) अणट्ठादंडे, (३) हिंसादंडे, (४) अकम्हादंडे, (५) दिट्ठिविपरियासियादंडे, (६) मोसवत्तिए, (७) अदिन्नादाणवत्तिए, (८) अज्झत्थवत्तिए, (९) माणवत्तिए, (१०) मित्तदोसवत्तिए, (११) मायावत्तिए, (१२) लोभवत्तिए, (१३) इरियावहिए" इति। तत्राऽर्थाय=स्वप्रयोजनाय दण्डोऽर्थदण्डः (१) अनर्थ=प्रयोजनमन्तरेण दण्डो

तिर्यंच सम्बन्धी घोर उपसर्ग यदि सहन करले तो अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञान मे से किसी एक की उत्पत्ति होती है, नहीं तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादि रोगों से पीडित और केवलिप्ररूपित धर्म से च्युत हो जाता है। इन बारह भिक्षु-प्रतिमाओं में न्यूनाधिक श्रद्धा-प्ररूपणा आदि द्वारा जो अतिचार किया हो तो उस से मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० ११॥

क्रियास्थान तेरह हैं-(१) अर्थदण्ड (स्वप्रयोजन के लिये

કરી લે તો અવધિ, મનઃપર્યય અને કેવળ જ્ઞાનમાથી કોઈ એકની ઉત્પત્તિ થાય છે, નહિ તો ઉન્મત્ત (પાગલ), દીર્ઘકાલિક દાહજ્વરાદિક રોગોથી પીડિત અને કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મથી પતિત થાય છે આ બાર ભિક્ષુપ્રતિમાઓમા ઓછી વધતી શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા વિગેરે દ્વારા જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ (સૂ૦ ૧૧)

ક્રિયાસ્થાન તેર છે-(૧) અર્થદંડ (પોતાના પ્રયોજન માટે ક્રિયા કરવી) (૨) અનર્થદંડ (કારણ વિના ક્રિયા કરવી), (૩) હિંસાદંડ, (૪) અકસ્માતદંડ

[1] उपसर्गभीरुत्वे

ऽनर्थदण्ड.=सावद्यक्रियाऽनुष्ठानम् (२) हिंसैव दण्डः=हिंसादण्डः=प्राणातिपातस्वरूप. (३)। अकस्मात्=अन्यक्रिययाऽन्यदीयव्यापादनरूपो दण्डः=अकस्माद्दण्ड. (४)। दृष्टेः=नेत्रस्य विपर्यास-दर्शनविभ्रान्ति=रज्ज्वादिषु सर्पादिबुद्धि'-दृष्टिविपर्यास', स चासौ दण्डश्च दृष्टिविपर्यासदण्ड'-बाणादिना लोष्टादिभ्रान्त्या तित्तिरिचटकादीना विहिंसनम् (५)। सद्भूतनिह्नवपूर्वका-ऽसद्भूतसमारोपणनिमित्तो मृषावादप्रात्ययिकः, 'मोसवत्तिए' इति पुम्त्व तु दण्डविशेषणत्वाभिप्रायेण, एवमेवाग्रेऽपि (६)। अदत्तस्य=स्वाम्यादिभिरवितीर्णस्य परकीयस्येति यावत् आदान=ग्रहणमदत्तादान=चौर्यप्रकारस्तन्निमित्तः (७)। आत्मनीत्यध्यात्म, तत्प्रात्ययिकोऽध्यात्मप्रात्ययिकः=स्वात्मनिमित्तको दण्ड', यतो दुःखभावो जनो निर्हेतुकमेव क्षतसङ्कल्पश्चिन्तासन्तानसमाक्रान्तस्वान्तो नितान्त [१]दूनान्तस्तिष्ठति (८)। जाति-कुल-बलरूपादिमदस्थानाष्टकाऽऽवेष्टितहृदयस्य परनीचत्वावलोकिनो योऽभिमानमूलको दण्ड' स मानप्रात्ययिक. (९)। मित्रकर्मकसन्तापजो दोषो मित्रदोषो मातृ-पितृप्रभृतीनामल्पीयसाऽप्यपराधेनोग्रतमस्वरूपधारणया महाऽऽधिजनकचेष्टाविशेषरूपस्तन्निमित्तको दण्डो मित्रदोषप्रात्ययिकः (१०)। माया=परप्रतारणोपाय-

---

क्रिया करना), (२) अनर्थदण्ड (विना प्रयोजन क्रिया करना), (३) हिंसादण्ड, (४) अकस्माद्दण्ड (एकको मारते बीचमें दूसरे का मारा जाना), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर समझकर तीतर, चटका आदि का मारा जाना), (६) मृषाप्रात्ययिक (असत्य से लगने वाला पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (जिससे मनुष्य स्वय निष्कारण चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०)

(એકને મારતા વચમા બીજાની હિંસા થવી), (૫) દૃષ્ટિવિપર્યાસદંડ (પત્થર સમજીને તેતર ચકલી આદિની હિંસા થવી), (૬) મૃષાપ્રાત્યયિક (અસત્યથી લાગવાવાળુ પાપ), (૭) અદત્તાદાનપ્રાત્યયિક, (૮) અધ્યાત્મપ્રાત્યયિક (જેથી માણસ પોતે નકામી ચિંતા કરે), (૯) માનપ્રાત્યયિક, (૧૦) મિત્રદોષપ્રાત્યયિક (માતા, પિતા આદિને અલ્પ અપરાધને ભારે દંડ દેવો), (૧૧) માયાપ્રાત્ય

१-'अन्त' शब्दो रेफान्तोऽन्त करणपर्यायोऽव्यय.।

तिर्यक्कृते घोर उपसर्गे सोढेऽवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानामन्यतमस्यैकस्य कस्य चिज्ज्ञानस्योदयो जायते, [1]अन्यथा तून्मादादिदुष्टरोगसङ्क्रमेण श्रमणस्य केवलिप्ररूपितधर्माद्भ्रवति परिभ्रंशनम् ॥ सू० ११ ॥

॥ मूलम् ॥

तेरसहिं किरियाठाणेहि ॥ सू० १२ ॥

॥ छाया ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैः ॥ सू० १२ ॥

॥ टीका ॥

त्रयोदशभि क्रियास्थानैर्यो मयाऽतिचारः कृतः इत्यादिसम्बन्धो यथोक्तः। तत्र क्रियास्थानान्युक्तानि, यथा-"(१) अट्ठादंडे, (२) अणट्ठादंडे, (३) हिंसादंडे, (४) अकम्हादंडे, (५) दिट्ठिविपरियासियादंडे, (६) मोसवत्तिए, (७) अदिन्नादाणवत्तिए, (८) अज्झत्थवत्तिए, (९) माणवत्तिए, (१०) मित्तदोसवत्तिए, (११) मायावत्तिए, (१२) लोभवत्तिए, (१३) इरियावहिए" इति। तत्राऽर्थाय=स्वप्रयोजनाय दण्डोऽर्थदण्डः (१) अनर्थ=प्रयोजनमन्तरेण दण्डो-

---

तिर्यंच सम्बन्धी घोर उपसर्ग यदि सहन करले तो अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञान मे से किसी एक की उत्पत्ति होती है, नहीं तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादि रोगो से पीडित और केवलिप्ररूपित धर्म से च्युत हो जाता है। इन बारह भिक्षु-प्रतिमाओं मे न्यूनाधिक श्रद्धा-प्ररूपणा आदि द्वारा जो अतिचार किया हो तो उस से मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० ११॥

क्रियास्थान तेरह हैं-(१) अर्थदण्ड (स्वप्रयोजन के लिये

કરી લે તો અવધિ, મનપર્યય અને કેવળ જ્ઞાનમાથી કોઇ એકની ઉત્પત્તિ થાય છે, નહિ તો ઉન્મત્ત (પાગલ), દીર્ઘકાલિક દાહજ્વરાદિક રોગોથી પીડિત અને કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મથી પતિત થાય છે આ બાર ભિક્ષુપ્રતિમાઓમા ઓછી વધતી શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા વિગેરે દ્વારા જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ (સૂ૦ ૧૧)

ક્રિયાસ્થાન તેર છે-(૧) અર્થદંડ (પોતાના પ્રયોજન માટે ક્રિયા કરવી) (૨) અનર્થદંડ (કારણ વિના ક્રિયા કરવી), (૩) હિંસાદંડ, (૪) અકસ્માતદંડ

---

[1] उपसर्गभीरुत्वे

ऽनर्थदण्डः=सावद्यक्रियाऽनुष्ठानम् (२) हिंसैव दण्डः=हिंसादण्डः=प्राणातिपातस्वरूपः (३)। अकस्मात्=अन्यक्रिययाऽन्यदीयव्यापादनरूपो दण्डः=अकस्माद्दण्डः (४)। दृष्टेः=नेत्रस्य विपर्यासः–दर्शनविभ्रान्तिः=रज्ज्वादिषु सर्पादिबुद्धिः–दृष्टिविपर्यासः, स चासौ दण्डश्च दृष्टिविपर्यासदण्डः–बाणादिना लोष्टादिभ्रान्त्या तित्तिरिचटकादीनां विहिंसनम् (५)। सद्भूतनिह्नवपूर्वका–ऽसद्भूतसमारोपणनिमित्तो मृषावादप्रात्ययिकः, 'मोसवत्तिए' इति पुंस्त्वं तु दण्डविशेषणत्वाभिप्रायेण, एवमेवाग्रेऽपि (६)। अदत्तस्य=स्वाम्यादिभिरवितीर्णस्य परकीयस्येति यावत् आदानं=ग्रहणमदत्तादानं=चौर्यप्रकारस्तन्निमित्तः (७)। आत्मनीत्यध्यात्मं, तत्प्रात्ययिकोऽध्यात्मप्रात्ययिकः=स्वात्मनिमित्तको दण्डः, यतो दुःखभावो जनो निर्हेतुकमेव क्षतसकल्पश्चिन्तासन्तानसमाक्रान्तस्वान्तो नितान्तं [1]दूनान्तस्तिष्ठति (८)। जाति–कुल–बलरूपादिमदस्थानाष्टकाऽऽवेष्टितहृदयस्य परनीचत्वावलोकिनो योऽभिमानमूलको दण्डः स मानप्रात्ययिकः (९)। मित्रकर्मकसन्तापजो दोषो मित्रदोषो मातृ–पितृप्रभृतीनामल्पीयसाऽप्यपराधेनोग्रतमस्वरूपधारणया महाऽऽधिजनकचेष्टाविशेषरूपस्तन्निमित्तको दण्डो मित्रदोषप्रात्ययिकः (१०)। माया=परप्रतारणोपाय-

क्रिया करना), (२) अनर्थदण्ड (विना प्रयोजन क्रिया करना), (३) हिंसादण्ड, (४) अकस्माद्दण्ड (एकको मारते बीचमें दूसरे का मारा जाना), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर समझकर तीतर, चटका आदि का मारा जाना), (६) मृषाप्रात्ययिक (असत्य से लगने वाला पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (जिससे मनुष्य स्वयं निष्कारण चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०)

(એકને મારતા વચમા બીજાની હિંસા થવી), (૫) દૃષ્ટિવિપર્યાસદંડ (પત્થર સમજીને તેતર ચકલી આદિની હિંસા થવી), (૬) મૃષાપ્રાત્યયિક (અસત્યથી લાગવાવાળુ પાપ), (૭) અદત્તાદાનપ્રાત્યયિક, (૮) અધ્યાત્મપ્રાત્યયિક (જેથી માણસ પોતે નકામી ચિંતા કરે), (૯) માનપ્રાત્યયિક, (૧૦) મિત્રદોષપ્રાત્યયિક (માતા, પિતા આદિને અલ્પ અપરાધને ભારે દંડ દેવો), (૧૧) માયાપ્રાત્ય

[1] १–'अन्त' शब्दो रेफान्तोऽन्तःकरणपर्यायोऽव्ययः।

तिर्यक्कृते घोर उपसर्गे सोढेऽवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानामन्यतमस्यैकस्य कस्य चिज्ज्ञानस्योदयो जायते, [1]अन्यथा तून्मादादिदुष्टरोगसङ्क्रमेण श्रमणस्य केवलिप्ररूपितधर्माद्भ्रवति परिभ्रंशनम् ॥ सू० ११ ॥

॥ मूलम् ॥

तेरसहि किरियाठाणेहिं ॥ सू० १२ ॥

॥ छाया ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैः ॥ सू० १२ ॥

॥ टीका ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैर्यो मयाऽतिचारः कृतः इत्यादिसम्बन्धो यथोक्तः। तत्र क्रियास्थानान्युक्तानि, यथा–"(१) अट्ठादण्डे, (२) अणट्ठादण्डे, (३) हिंसादण्डे, (४) अकम्हादण्डे, (५) दिट्ठिविपरियासियादण्डे, (६) मोसवत्तिए, (७) अदिन्नादाणवत्तिए, (८) अज्झत्थवत्तिए, (९) माणवत्तिए, (१०) मित्तदोस वत्तिए, (११) मायावत्तिए, (१२) लोभवत्तिए, (१३) इरियावहिए" इति। तत्रार्थाय=स्वप्रयोजनाय दण्डोऽर्थदण्डः (१) अनर्थ=प्रयोजनमन्तरेण दण्डो

तिर्यंच सम्बन्धी घोर उपसर्ग यदि सहन करले तो अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञान मे से किसी एक की उत्पत्ति होती है, नहीं तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादि रोगो से पीडित और केवलिप्ररूपित धर्म से च्युत हो जाता है। इन बारह भिक्षु-प्रतिमाओं में न्यूनाधिक श्रद्धा-प्ररूपणा आदि द्वारा जो अतिचार किया हो तो उस से मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० ११॥

क्रियास्थान तेरह हैं–(१) अर्थदण्ड (स्वप्रयोजन के लिये

करी લે તો અવધિ, મન:પર્યય અને કેવળ જ્ઞાનમાથી કોઇ એકની ઉત્પત્તિ થાય છે, નહિ તો ઉન્મત્ત (પાગલ), દીર્ઘકાલિક દાહજ્વરાદિક રોગોથી પીડિત અને કેવલિપ્રરૂપિત ધર્મથી પતિત થાય છે આ બાર ભિક્ષુપ્રતિમાઓમા ઓછી વધતી શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા વિગેરે દ્વારા જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ (સૂ૦ ૧૧)

ક્રિયાસ્થાન તેર છે–(૧) અર્થદંડ (પોતાના પ્રયોજન માટે ક્રિયા કરવી) (૨) અનર્થદંડ (કારણ વિના ક્રિયા કરવી), (૩) હિંસાદંડ, (૪) અકસ્માતદંડ

[1] उपसर्गभीरुत्वे

ऽनर्थदण्डः=सावद्यक्रियाऽनुष्ठानम् (२) हिंसैव दण्डः=हिंसादण्डः=प्राणातिपातस्वरूप. (३)। अकस्मात्=अन्यक्रिययाऽन्यदीयव्यापादनरूपो दण्डः=अकस्माद्दण्ड' (४)। दृष्टेः=नेत्रस्य विपर्यास -दर्शनविभ्रान्तिः=रज्ज्वादिषु सर्पादिबुद्धि.-दृष्टिविपर्यासः, स चासौ दण्डश्च दृष्टिविपर्यासदण्ड'-बाणादिना लोष्टादिभ्रान्त्या तित्तिरिचटकादीना विहिंसनम् (५)। सद्भूतनिह्नवपूर्वका-ऽसद्भूतसमारोपणनिमित्तो मृषावादप्रात्ययिकः, 'मोसवत्तिए' इति पुस्त्व तु दण्डविशेषणत्वाभिप्रायेण, एवमेवाग्रेऽपि (६)। अदत्तस्य=स्वाम्यादिभिरवितीर्णस्य परकीयस्येति यावत् आदान=ग्रहणमदत्तादान=चौर्यप्रकारस्तन्निमित्तः (७)। आत्मनीत्यध्यात्म, तत्प्रात्ययिकोऽध्यात्मप्रात्ययिक.=स्वात्मनिमित्तको दण्ड, यतो दु'खभावो जनो निर्हेतुकमेव क्षतसकलपश्चिन्तासन्तानसमाक्रान्तस्वान्तो नितान्त [1]दूनान्तस्तिष्ठति (८)। जाति-कुल-बलरूपादिमदस्थानाष्टकाऽऽवेष्टितहृदयस्य परनीचत्वावलोकिनो योऽभिमानमूलको दण्ड' स मानप्रात्ययिक (९)। मित्रकर्मकसन्तापजो दोषो मित्रदोषो मातृ-पितृप्रभृतीनामल्पीयसाऽप्यपराधेनोग्रतमस्वरूपधारणया महाऽऽधिजनकचेष्टाविशेषरूपस्तन्निमित्तको दण्डो मित्रदोषप्रात्ययिकः (१०)। माया=परप्रतारणोपाय-

क्रिया करना), (२) अनर्थदण्ड (विना प्रयोजन क्रिया करना), (३) हिंसादण्ड, (४) अकस्माद्दण्ड (एकको मारते बीचमें दूसरे का मारा जाना), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर समझकर तीतर, चटका आदि का मारा जाना), (६) मृषाप्रात्ययिक (असत्य से लगने वाला पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (जिससे मनुष्य स्वय निष्कारण चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०)

(એકને મારતા વચમા બીજાની હિંસા થવી), (૫) દૃષ્ટિવિપર્યાસદડ (પત્થર સમજીને તેતર ચકલી આદિની હિંસા થવી), (૬) મૃષાપ્રાત્યયિક (અસત્યથી લાગવાવાળુ પાપ), (૭) અદત્તાદાનપ્રાત્યયિક, (૮) અધ્યાત્મપ્રાત્યયિક (જેથી માણુસ પોતે નકામી ચિંતા કરે), (૯) માનપ્રાત્યયિક, (૧૦) મિત્રદોષપ્રાત્યયિક (માતા, પિતા આદિને અલ્પ અપરાધનો ભારે દડ દેવો), (૧૧) માયાપ્રાત્ય

१-'अन्त' शब्दो रेफान्तोऽन्त करणपर्यायोऽव्यय ।

त्वन्निमित्तको दण्डो मायाप्रात्ययिकः (११)। लोभनिमित्तको दण्डो लोभ प्रात्ययिकः (१२)। ईर्यानिमित्तको दण्ड ईर्याप्रात्ययिकः (१३)। व्यपेत कपायस्य सर्वत्रोपयुक्तसमितिगुप्तिमतो भगवतो योगेनेर्याप्रात्ययिको जायते। एषु च सर्वत्र प्रात्ययिकपदार्थस्य 'कर्मबन्ध' इति विशेष्यः स्वयमूहनीय। अत्र 'प्रात्ययिक' पदस्थाने 'प्रत्ययक' शब्देन व्याख्यायामौचित्य प्रतिभाति, मृषा प्रत्ययो यस्येत्यादिरीत्या बहुव्रीहौ शेषाद्विभाषेति वैकल्पिककप्रत्यय', तथा सति विवक्षितोऽर्थो विस्पष्ट प्रतीयते। 'प्रत्यय' शब्दश्चात्र हेतुपर्यायः- 'प्रत्ययो ऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः। 'प्रात्ययिक' इति पाठे भवार्थे ठञ्, 'प्रत्ययिक' इति पाठस्तु यथा न रोचते तथा प्रेक्षावन्त एव प्रमाणम् ॥ सू० १२ ॥

॥ मूलम् ॥

चउद्दसहिं भूयग्गामेहि। पन्नरसहि परमाहम्मिएहि। सोलसहि गाहासोलसएहिं। सत्तरसविहे असंजमे। अट्ठारसविहे अबंभे। एगूणवीसाए नायज्झयणेहिं। वीसाए असमाहिट्ठाणेहि ॥सू० १३॥

॥ छाया ॥

चतुर्दशभिर्भूतग्रामैः। पञ्चदशभिः परमाधार्मिकैः। षोडशभिर्गाथाषोडशकैः। सप्तदशविधेऽसयमे। अष्टादशविधेऽब्रह्मणि। एकोनविंशत्या ज्ञाताध्ययनैः। विंशत्याऽसमाधिस्थानैः ॥ सू० १३ ॥

मित्रदोषप्रात्ययिक (माता, पिता आदि को अल्प अपराध का भारी दण्ड देना), (११) मायाप्रात्ययिक, (१२) लोभप्रात्ययिक (१३) ईर्याप्रात्ययिक (कषायरहित, उपयोगसहित, समिति-गुप्ति के धारक भगवान को योग से लगने वाला सामान्य कर्मबन्ध), इन तेरह क्रियास्थानों द्वारा जो अतिचार लगा हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १२ ॥

યિક, (૧૨) લોભપ્રાત્યયિક, (૧૩) ઈર્યાપ્રાત્યયિક (કષાયરહિત ઉપયોગસહિત સમિતિગુપ્તિને ધારણ કરવાવાળા ભગવાનને યોગથી લાગવાવાળા સામાન્ય કર્મબંધ) આ તેર ક્રિયાસ્થાનો દ્વારા જે કોઈ અતિચાર લાગેલ હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું (સૂ૦ ૧૨)

॥ टीका ॥

'चउद्दसहिं' चतुर्दशभि', 'भूयग्गामेहिं' भूतानि=जीवास्तेषा ग्रामा'=समुदायास्तैः, ग्रामैरिति बहुवचनेन सूक्ष्मैकेन्द्रियग्राम-बादरैकेन्द्रियग्राम-द्वीन्द्रियग्राम-त्रीन्द्रियग्राम-सज्ञिपञ्चेन्द्रियग्रामा-ऽसज्ञिपञ्चेन्द्रियग्रामाणा पर्याप्तकाऽपर्याप्तकभेदेन चतुर्दशाना ग्रहणमभिप्रेतम् । एतत्सूत्रस्थाना सर्वेषामेव पदाना 'यो मयाऽतिचार' कृत ' इत्यादिभि पूर्वोक्तैः सम्बन्धः।

'पन्नरसहिं' पञ्चदशभि , 'परमाहम्मिएहिं' धर्मं चरन्तीति धार्मिका न धार्मिकाः=अधार्मिका परमाश्च ते अधार्मिका =परमाधार्मिकाः अतिकलुषितहृदयपरिणामा यम-लोकपालसेवका असुरकुमारदेवविशेषास्तैस्तत्कृतपापाऽनुमोदनादिभिरित्यर्थः । तन्नामानि प्रोक्तानि यथा—

(१) अंबे, (२) अंबरिसी, (३) सामे, (४) सबले, (५) रुद्दे, (६) उवरुद्दे, (७) काले, (८) महाकाले, (९) असिपत्ते, (१०) धणू, (११) कुंभे, (१२) वालू, (१३) वेयरणी, (१४) खरस्सरे, (१५) महाघोसे।

'तत्र 'अम्ब '=अम्बनामा परमाधार्मिको, यो हि नारकान् गगनतल

---

(१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय, (२) बादर एकेन्द्रिय, (३) द्वीन्द्रिय, (४) त्रीन्द्रिय, (५) चतुरिन्द्रिय, (६) असज्ञि पञ्चेन्द्रिय (७) सज्ञि पञ्चेन्द्रिय, इन सातों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चौदह भूतग्राम (जीवसमूह) होते हैं, इनकी विराधना आदि से जो अतिचार लगा हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ'

अत्यन्त कलुषित परिणाम वाले होने से परमाधार्मिक कहलाने वाले देव (१५) पन्द्रह प्रकार के हैं—

(१) अम्ब—नारकी जीवों को आकाश में ले जाकर नीचे

---

(૧) સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય, (૨) બાદર એકેન્દ્રિય (૩) દ્વીન્દ્રિય, (૪) ત્રીન્દ્રિય, (૫) ચતુરિન્દ્રિય, (૬) અસજ્ઞિ પચેન્દ્રિય, (૭) સજ્ઞિ પચેન્દ્રિય, આ સાતેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી ચૌદ ભૂતગ્રામ (જીવસમૂહ) હોય છે એઓની વિરાધના આદિથી જે અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ'

અત્યત કલુષિત પરિણામવાળા હોવાથી પરમાધાર્મિક કહેવાતા દેવ ૫૬૨ પ્રકારના છે–

स्तन्निमित्तको दण्डो मायाप्रात्ययिकः (११)। लोभनिमित्तको दण्डो लोभप्रात्ययिकः (१२)। ईर्यानिमित्तको दण्ड ईर्याप्रात्ययिकः (१३)। व्यपेतकषायस्य सर्वत्रोपयुक्तसमितिगुप्तिमतो भगवतो योगेनेर्याप्रात्ययिको जायते। एषु च सर्वत्र प्रात्ययिकपदार्थस्य 'कर्मबन्ध' इति विशेष्यः स्वयमूहनीय। अत्र 'प्रात्ययिक' पदस्थाने 'प्रत्ययक' शब्देन व्याख्यायामौचित्य प्रतिभाति, मृषा प्रत्ययो यस्येत्यादिरीत्या बहुव्रीहौ शेषाद्विभाषेति वैकल्पिककुत्पत्तः, तथा सति विवक्षितोऽर्थो विस्पष्ट प्रतीयते। 'प्रत्यय' शब्दश्चात्र हेतुपर्यायः- 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः। 'प्रात्ययिकः' इति पाठे भवार्थे ठक्, 'प्रत्ययिकः' इति पाठस्तु यथा न रोचते तथा प्रेक्षावन्त एव प्रमाणम् ॥ सू० १२ ॥

॥ मूलम् ॥

चउद्दसहिं भूयग्गामेहिं। पन्नरसहिं परमाहम्मिएहिं। सोलसहिं गाहासोलसएहिं। सत्तरसविहे असंजमे। अट्ठारसविहे अबंभे। एगूणवीसाए नायज्झयणेहिं। वीसाए असमाहिट्ठाणेहिं ॥सू० १३॥

॥ छाया ॥

चतुर्दशभिर्भूतग्रामैः। पञ्चदशभिः परमाधार्मिकैः। षोडशभिर्गाथाषोडशकैः। सप्तदशविधेऽसंयमे। अष्टादशविधेऽब्रह्मणि। एकोनविंशत्या ज्ञाताध्ययनैः। विंशत्याऽसमाधिस्थानैः ॥ सू० १३ ॥

मित्रदोषप्रात्ययिक (माता, पिता आदि को अल्प अपराध का भारी दण्ड देना), (११) मायाप्रात्ययिक, (१२) लोभप्रात्ययिक (१३) ईर्याप्रात्ययिक (कषायरहित, उपयोगसहित, समिति-गुप्ति के धारक भगवान को योग से लगने वाला सामान्य कर्मबन्ध), इन तेरह क्रियास्थानों द्वारा जो अतिचार लगा हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूं ॥ सू० १२ ॥

યિક, (૧૨) લોભપ્રાત્યયિક, (૧૩) ઈર્યાપ્રાત્યયિક (કષાયરહિત ઉપયોગસહિત સમિતિગુપ્તિને ધારણ કરવાવાળા ભગવાનને યોગથી લાગવાવાળા સામાન્ય કર્મબંધ) આ તેર ક્રિયાસ્થાને દ્વારા જે કોઇ અતિચાર લાગેલ હોય તો તેનાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું (સૂ૦ ૧૨)

॥ टीका ॥

'चउद्दसहिं' चतुर्दशभिः, 'भूयग्गामेहिं' भूतानि=जीवास्तेषां ग्रामाः=समुदायास्तैः, ग्रामैरिति बहुवचनेन सूक्ष्मैकेन्द्रियग्राम-बादरैकेन्द्रियग्राम-द्वीन्द्रियग्राम-त्रीन्द्रियग्राम-सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियग्रामा-ऽसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियग्रामाणां पर्याप्तकाऽपर्याप्तकभेदेन चतुर्दशानां ग्रहणमभिप्रेतम् । एतत्सूत्रस्थानां सर्वेषामेव पदानां 'यो मयाऽतिचारः कृत' इत्यादिभिः पूर्वोक्तैः सम्बन्धः।

पन्नरसहिं' पञ्चदशभिः, 'परमाहम्मिएहिं' धर्मं चरन्तीति धार्मिकाः न धार्मिकाः=अधार्मिकाः परमाश्च ते अधार्मिकाः=परमाधार्मिकाः अतिकलुषित हृदयपरिणामाः यम-लोकपालसेवका असुरकुमारदेवविशेषास्तैस्तत्कृतपापाऽनुमोदनादिभिरित्यर्थः । तन्नामानि प्रोक्तानि यथा—

(१) अंबे, (२) अंबरिसी, (३) सामे, (४) सबले, (५) रुद्दे, (६) उवरुद्दे, (७) काले, (८) महाकाले, (९) असिपत्ते, (१०) धणू, (११) कुंभे, (१२) वालू, (१३) वेयरणी, (१४) खरस्सरे, (१५) महाघोसे।

'तत्र 'अम्बः'=अम्बनामा परमाधार्मिको, यो हि नारकान् गगनतल

---

(१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय, (२) बादर एकेन्द्रिय, (३) द्वीन्द्रिय, (४) त्रीन्द्रिय, (५) चतुरिन्द्रिय, (६) असंज्ञि पञ्चेन्द्रिय (७) संज्ञि पञ्चेन्द्रिय, इन सातों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चौदह भूतग्राम (जीवसमूह) होते हैं, इनकी विराधना आदि से जो अतिचार लगा हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ'

अत्यन्त कलुषित परिणाम वाले होने से परमाधार्मिक कहलाने वाले देव (१५) पन्द्रह प्रकार के हैं—

(१) अम्ब—नारकी जीवों को आकाश में ले जाकर नीचे

---

(૧) સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય, (૨) બાદર એકેન્દ્રિય (૩) દ્વીન્દ્રિય, (૪) ત્રીન્દ્રિય, (૫) ચતુરિન્દ્રિય, (૬) અસંજ્ઞિ પંચેન્દ્રિય, (૭) સંજ્ઞિ પંચેન્દ્રિય, આ સાતેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી ચૌદ ભૂતગ્રામ (જીવસમૂહ) હોય છે એઓની વિરાધના આદિથી જે અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું'

અત્યંત કલુષિત પરિણામવાળા હોવાથી પરમાધાર્મિક કહેવાતા દેવ પંદર પ્રકારના છે—

नीत्वा ऽधस्ताद्विमुञ्चति, दत्त्वा च गलहस्तं गर्त्ते पातयति, अधोमुखमम्बरतले समुत्क्षिप्य पुनः पुनः पतन्तं शूलादिना नि यति, पाप सस्मार्य सस्मार्य चानेकधा भूयः कदर्थयति ।१।

'अम्बरीषो' नारकान् मुद्गरादिना कुट्टयित्वा क्रकचादिभिः खण्डशः कृत्वा भ्राष्ट्रादौ पचति, हताऽऽहततया मूर्च्छितांश्च तान् कदलीस्तम्भवच्च र्मणामेकैकं पुटमुत्पाट्योत्पाट्य कदर्थयति ।२।

'श्यामः' कशाघातादिना शातयति, हस्तपादादीन् दुर्दर्शतया छिनत्ति, शूल-सूच्यादिना विध्यति, उपरितो वज्रशिलाया पातयति, तथा रज्ज्वादिना

पटकने वाले, गर्दनिया देकर (गर्दन पकड कर) गड्ढे में गिराने वाले, उलटे मुँह आकाश में उछाल कर गिरते समय बर्छी आदि भोंकने वाले, और पाप का बारम्बार स्मरण कराकर अनेक प्रकार से पीडा पहुँचाने वाले।

(२) अबरीष—नेरइयों को मुद्गर आदि से कूट कर करौंत, कैंची आदि से टुकडे २ कर भाड भूँजने वाले तथा अधमरे कर के कदली स्तम्भ के समान एक एक चर्मपुट को खीच कर दुःखी करने वाले।

(३) श्याम कशा (कोडा) आदि से पीटने वाले, हाथ पैर आदि अवयवों को बुरी तरह काटनेवाले, शूल सुई आदि से बीधनेवाले, ऊपर से वज्रशिला पर पटकने वाले, और रस्सी

(१) અબ-નારકી જીવોને આકાશમા લઇ જઇને નીચે પછાડવાવાળા, ગરદન પકડીને ખાડામા ફેંકવાવાળા અથવા મોઢે આકાશમા ઉછાળીને પડતી વખતે બરછી વિગેરે ભોકવાવાળા, અને પાપનુ વારવાર સ્મરણ કરાવીને અનેક પ્રકારથી પીડા પહોચાડવાવાળા

(२) અબરીષ-નેરઇયોને મુગદર આદિથી કૂટીને કરોત, કેંચી (કાતર) આદિથી ટુકડા ટુકડા કરીને ભઠીમા શેકવાવાળા તથા અધમુવા કરીને કેળના થામલાની જેમ એકેક ચર્મપુટને ખેચીખેચીને દુખી કરવાવાળા

(३) શ્યામ-કશા (કોયડા) આદિથી મારવાવાળા, હાથ પગ આદિ અવયવોને બુરી રીતે કાપવાવાળા, શૂળ સોય આદિથી વીધવાવાળા, ઉપરથી વજ્ર શિલા ઉપર

दृढ बद्ध्वा लतादिप्रहारपुरस्सरं भीषणयातनां नयति, अस्य श्यामाङ्गत्वाच्छ्याम-नाम । ३ ।

शबलः=वर्णेन कर्बुरः, अयं मुद्गरादिना नारकिणामस्थिसन्धिं चूर्णयति, अन्त्रवसादीन्निष्कासयति च । ४ ।

'रौद्रो' रुद्रकर्मकरत्वात्, यतोऽयं नारकान् भ्रामयित्वा २ व्योम्नि सुदूरमुत्क्षिप्य निपततस्तान् शक्त्यसितोमरादिषु प्रोतयति । ५ ।

उपरौद्रः=रौद्रकल्पः, एष च करचरणाद्यङ्गोपाङ्गानि भनक्ति । ६ ।

'काल' स यो नारकान् नानाविधेषु कुम्भ्यादिपात्रेषु पचति, अयं च वर्णतोऽपि काल एव । ७ ।

महाकालः-पूर्वस्मिन् जन्मनि मांसाहारिणो नारकांस्तदीयोत्कर्तित पृष्ठा-दिस्थ मांसं कदर्थनया भक्षयति, अयं च वर्णेन महाश्यामत्वान्महाकाल उच्यते ।८।

आदि से मजबूत बाँध कर लता (बेंत) आदि के प्रहार से चमडा उधेडने वाले ।

(४) शबल—मुद्गर आदि द्वारा नारकियों की हड्डी के जोडो को चूर चूर करने वाले, तथा आँत और चरबी को निकालने वाले। (५) रौद्र—नरकस्थ जीवों को खूब ऊँचे उछाल कर गिरते समय, शक्ति, तलवार, भाले आदि मे पिरोनेवाले। (६) उपरौद्र–नारकीय जीवों के हाथ पैर तोडने वाले। (७) काल—कुभी आदिमें पचानेवाले। (८) महाकाल—पूर्वजन्म के मांसाहारी जीवों को उन्ही की पीठ आदिका मांस काट काट कर खिलाने वाले। (९)

પછાડવાવાળા અને દોરડા આદિથી બાંધીને લતા (નેતર) વિગેરેથી મારીને ચામડુ ઉખેડનાર

(૪) શબલ-મુગદર આદિ દ્વારા નારકીઓના હાડકાઓના ચૂરેચૂરા કરવાવાળા તથા આંતરડા અને ચરબીને કાઢવાવાળા (૫) રૌદ્ર-નરકમા રહેલા જીવોને ખૂબ ઉંચે ઉછાળીને પડતી વખતે શકિત, તલવાર, ભાલા વિગેરેમા પરોવવાવાળા (૬) ઉપરૌદ્ર-નારકીય જીવોના હાથ પગ તોડવાવાળા (૭) કાલ-કુભી આદિમા પકાવવાવાળા (૮) મહાકાલ પૂર્વજન્મના માંસાહારી જીવોને તેમનીજ પીઠનું માંસ કાપી કાપીને ખવરાવવાવાળા. (૯) અસિપત્ર-તલવાર જેવા તીક્ષ્ણ પાંદડાવાળા

नीत्वा ऽधस्ताद्विमुञ्चति, दत्त्वा च गलहस्तं गर्ते पातयति, अधोमुखमम्बरतले समुत्क्षिप्य पुनः पुनः पतन्तं शूलादिना विध्यति, पापं स्मारं स्मारं चानेकधा भृशः कदर्थयति ।१।

'अम्बरीषो' नारकान् मुद्गरादिना कुट्टयित्वा क्रकचादिभिः खण्डशः कृत्वा भ्राष्ट्रादौ पचति, हताऽऽहततया मूर्च्छितांश्च तान् कदलीस्तम्भवच्चर्मणामेकैकं पुटमुत्पाट्योत्पाट्य कदर्थयति ।२।

'श्यामः' कशाघातादिना शातयति, हस्तपादादीन् दुर्दर्शतया छिनत्ति, शूल-सूच्यादिना विध्यति, उपरितो वज्रशिलाया पातयति, तथा रज्ज्वादिना

पटकने वाले, गर्दनिया देकर (गर्दन पकड कर) गड्ढे में गिराने वाले, उलटे मुँह आकाश में उछाल कर गिरते समय बर्छी आदि भोंकने वाले, और पाप का बारम्बार स्मरण कराकर अनेक प्रकार से पीडा पहुँचाने वाले।

(२) अंबरीष—नेरइयों को मुद्गर आदि से कूट कर करौंत, कैंची आदि से टुकडे २ कर भाड भूँजने वाले तथा अधमरे कर के कदली स्तम्भ के समान एक एक चर्मपुट को खींच कर दुःखी करने वाले।

(३) श्याम कशा (कोडा) आदि से पीटने वाले, हाथ पैर आदि अवयवों को बुरी तरह काटनेवाले, शूल सुई आदि से बींधनेवाले, ऊपर से वज्रशिला पर पटकने वाले, और रस्सी

(૧) અંબ-નારકી જીવોને આકાશમાં લઇ જઇને નીચે પછાડનારાવાળા, ગરદન પકડીને ખાડામાં ફેંકવાવાળા અવળા મોઢે આકાશમાં ઉછાળીને પડતી વખતે બરછી વિગેરે ભોકવાવાળા, અને પાપનું વારંવાર સ્મરણ કરાવીને અનેક પ્રકારથી પીડા પહોચાડવાવાળા

(૨) અંબરીષ-નેરઇયોને મુગદર આદિથી કૂટીને કરોત, કૈંચી (કાતર) આદિથી ટુકડા ટુકડા કરીને ભઠીમાં શેકવાવાળા તથા અધમુવા કરીને કેળના થાંભલાની જેમ એકેક ચર્મપુટને ખેંચીખેંચીને દુખી કરવાવાળા

(૩) શ્યામ-કશા (કોયડા) આદિથી મારવાવાળા, હાથ પગ આદિ અવયવોને બુરી રીતે કાપવાવાળા, શૂળ સોય આદિથી વીંધવાવાળા, ઉપરથી વજ્ર શિલા ઉપર

यिता क्षारोष्णजलभृता भयानका विकृतदर्शना नदीं विकृत्य नारकान् क्लिश्नाति । १३ ।

खरस्वरः-सचीत्कारमुच्चैराक्रोशतो नारकान् तीक्ष्णवज्रकण्टकाऽऽकीर्णेषु शाल्मल्यादिमाशुवृक्षेषु[१] समारोप्याऽऽकर्षति, शिरस्सु च क्रकच निधाय विदारयति, परशुभिर्वा खण्डयति । १४ ।

'महाघोषः'-अथ परमपीडोत्पत्तिभीतान् मृगानिवेतस्ततः पलायमानान् नारकान् घोरगर्जना कुर्वन् वाटक (व्रज) पशूनिव [२]नरकाऽऽवासमवरुणद्धि । १५ ।

'सोलसहिं' पोडशभि', 'गाहासोलसएहि' गाथानामक पोडशमध्य-

नरकके जीवों को डाल कर अनेक प्रकार से पीडित करनेवाले। (१४) खरस्वर-तीखे वज्रमय काँटेवाले ऊँचे२ शाल्मली (सेमल) वृक्षों पर चढाकर चिल्लाते हुए नारकी जीवों को खींचनेवाले, मस्तक पर करोंत रखकर चीरनेवाले, तथा फरसा से खड२ करनेवाले।

(१५) महाघोप—अत्यन्त वेदना के डरसे मृगोंकी तरह इधर-उधर भागते हुए नारकी जीवों को वाडेमे पशुओंकी तरह घोर गर्जना करके रोकनेवाले। इनके द्वारा होनेवाले पापकी अनुमोदना आदि से जो अतिचार लगा हो 'तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ।

सूत्रकृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन इस

નરકના જીવોને નાખીને અનેક પ્રકારવી દુઃખ દેવાવાળા (૧૪) ખરસ્વર-તીખા વજ્ર જેવા કાટાવાળા ઉચા ઉચા શેમળના ઝાડ ઉપર ચઢાવીને બુમો પાડતા નારકી જીવોને ખેચવાવાળા, માથા ઉપર કરવત નાખીને ચીરવાવાળા તથા ફરસીથી ટુકડા ટુકડા કરવાવાળા (૧૫) મહાઘોષ-અત્યત વેદનાના ડરથી હરણોની જેમ જયા ત્યા ભાગતા નારકી જીવોને વાડામા પશુઓની માફક ઘોર ગર્જના કરીને રોકવાવાળા એ પરમાધાર્મિક દેવોથી થતા પાપની અનુમોદના આદિથી જે અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ

સૂત્રકૃતાગના પ્રથમ શ્રુતસ્કધના સોળ અધ્યયન આ પ્રકારે છે

---

१ - 'माशुरुच ' इत्यर्थः ।

२- रुधेर्द्विकर्मकत्वादिदमकथित कर्म 'व्रजमवरुणद्धि गाम्' इत्यादिवत् ।

'¹असिपत्रः' स देवो योऽसितुल्यपत्राणा वन विरचय्य तच्छायाऽभिलाषेण समागतान्नारकिणो विकृतवातान्दोलनपूर्वमसिपत्रपातनेन खण्डश श्छिनत्ति । ९ ।

धनुः-स यो धनुषो विनिर्मुक्तैरर्द्धचन्द्राकारैर्बाणैः कर्णोष्ठनासादीनवयवा न्नारकिणा छिनत्ति । १० ।

कुम्भ.-विविधासु कन्दुकाद्याकारासु कुम्भीषु नारकिणो भृश पचति हन्ति च । ११ ।

'वालु'-भ्राष्ट्रस्थतप्तवज्रवालुकासु नारकान् सतडत्कार चणकादीनिव भर्जयति । १२ ।

वैतरणी=नरकस्थनदी, तदधिष्ठातृत्वेन तद्देवोऽपि तात्स्थ्यात् गृहा दारा इतिवत्, स चातिपूतिगन्धिपूयरुधिरमत्राह्पारपूरिता तप्तत्रपुताम्रादिकलकला-

---

असिपत्र—तलवार जैसे तीखे पत्तों के वनकी विकुर्वणा करके उस वनमें छायाकी इच्छा से आये हुए नारकी जीवों को वैक्रिय वायुद्वारा पत्ते गिराकर छिन्नभिन्न करनेवाले। (१०) धनु—धनुष से छोडे हुए अर्द्धचन्द्राकार बाणों से आँख नाक आदि अवयवों को छेदनेवाले। (११) कुम—ऊँटनी आदि के आकारवाली कुम्भियों में पचानेवाले। (१२) वालू—वज्रमय तप्तवालुका मे चनों के समान तडतडाहट करते हुए नारकी जीवों को भूननेवाले। (१३) वैतरणी—अत्यन्त दुर्गन्धवाली राध लोहू से भरी हुई, एव तपे हुए जस्त और कथीर की उकलती हुई, अत्यन्त क्षार से युक्त उष्ण पानी से भरी हुई वैतरणी नदी की विकुर्वणा करके उसमें

વનની વિકુર્વણા કરીને તે વનમા છાયાની ઈચ્છાથી આવેલા નારકી જીવોને વૈક્રિય વાયુ દ્વારા પાદડાઓને ખેરવીને છિન્નભિન્ન કરવાવાળા (૧૦) ધનુ-ધનુષ્યથી છોડેલ અર્ધચદ્રાકાર બાણોથી આખ નાક આદિ અવયવોને છેદવાવાળા (૧૧) કુભ ઉટની (સાઢણી) આદિના આકારવાળી કુભિયોમા પકાવવાવાળા (૧૨) વાલૂ-વજ્રમય તપેલી રેતીમા ચણાની સમાન તડતડાત કરતા નારકી જીવોને શેકવાવાળા (૧૩) વૈતરણી-ખૂબ દુર્ગંધવાલી રાધ લોહીથી ભરેલી, તપેલા જસત અને કથીરથી ઉકળતી, અત્યત ક્ષાર યુક્ત ઉના પાણીની ભરેલી વૈતરણી નદીની વિકુર્વણા કરીને એમા

१– 'असिपत्र' इत्यत्राऽर्श आदित्वादच् ।

यिता क्षारोष्णजलभृता भयानका विकृतदर्शना नदीं विकृत्य नारकान् क्लिश्नाति । १३ ।

खरस्वरः-सचीत्कारमुच्चैराक्रोशतो नारकान् तीक्ष्णवज्रकण्टकाऽऽकीर्णेषु शाल्मल्यादिमाशूद्वृक्षेषु[1] समारोप्याऽऽकर्षति, शिरस्सु च क्रकच निधाय विदारयति, परशुभिर्वा खण्डयति । १४ ।

'महाघोषः'-अथ परमपीडोत्पत्तिभीतान् मृगानिवेतस्ततः पलायमानान् नारकान् घोरगर्जना कुर्वन् वाटक (व्रज) पशूनिव [2]नरकाऽऽवासमवरुणद्धि । १५ ।

'सोलसहिं' षोडशभि', 'गाहासोलसएहिं' गाथानामक षोडशमध्य-

नरकके जीवों को डाल कर अनेक प्रकार से पीडित करनेवाले। (१४) खरस्वर-तीखे वज्रमय काँटेवाले ऊँचे२ शाल्मली (सेमल) वृक्षों पर चढाकर चिल्लाते हुए नारकी जीवों को खींचनेवाले, मस्तक पर करौंत रखकर चीरनेवाले, तथा फरसा से खड२ करनेवाले।

(१५) महाघोष—अत्यन्त वेदना के डरसे मृगोंकी तरह इधर-उधर भागते हुए नारकी जीवों को वाडेमे पशुओंकी तरह घोर गर्जना करके रोकनेवाले। इनके द्वारा होनेवाले पापकी अनुमोदना आदि से जो अतिचार लगा हो 'तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ।

सूत्रकृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन इस

નરકના જીવોને નાખીને અનેક પ્રકારથી દુખ દેવાવાળા (૧૪) ખરસ્વર-તીખા વજ્ર જેવા કાટાવાળા ઉચા ઉચા શેમળના ઝાડ ઉપર ચઢાવીને બુમો પાડતા નારકી જીવોને ખેચવાવાળા, માથા ઉપર કરવત નાખીને ચીરવાવાળા તથા ફરસીથી ટુકડા ટુકડા કરવાવાળા (૧૫) મહાઘોષ-અત્યત વેદનાના ડરથી હરણોની જેમ જ્યા ત્યા ભાગતા નારકી જીવોને વાડામા પશુઓની માફક ઘોર ગર્જના કરીને રોકવાવાળા એ પરમાધાર્મિક દેવોથી થતા પાપની અનુમોદના આદિથી જે અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ

સૂત્રકૃતાગના પ્રથમ શ્રુતસ્કધના સોળ અધ્યયન આ પ્રકારે છે

१ - 'प्राशुरुचः' इत्यर्थः।

२- रुधेर्द्विकर्मकत्वादिदमकथित कर्म 'व्रजमवरुणद्धि गाम्' इत्यादिवत्।

'[1]असिपत्रः' स देवो योऽसितुल्यपत्राणां वनं विरचय्य तच्छायाऽभिलाषेण समागतान्नारकिणो विकृतवातान्दोलनपूर्वकमसिपत्रपातनेन खण्डशश्छिनत्ति । ९ ।

धनुः-स यो धनुषो विनिर्मुक्तैरर्द्धचन्द्राकारैर्बाणैः कर्णोष्ठनासादीनवयवान्नारकिणां छिनत्ति । १० ।

कुम्भः-विविधासूष्ट्रिकाद्याकारासु कुम्भीषु नारकिणो भृशं पचति हन्ति च । ११ ।

'वालुः'-भ्राष्ट्रस्थतप्तवज्रवालुकासु नारकान् सतडत्कारं चणकादीनिव भर्जयति । १२ ।

वैतरणी=नरकस्थनदी, तदधिष्ठातृत्वेन तद्देवोऽपि तात्स्थ्यात् गृहा दारा इतिवत्, स चातिपूतिगन्धिपूयरुधिरप्रवाहपरिपूरितां तप्तत्रपुताम्रादिकलकला

असिपत्र—तलवार जैसे तीखे पत्तों के वनकी विकुर्वणा करके उस वनमें छायाकी इच्छा से आये हुए नारकी जीवों को वैक्रिय वायुद्वारा पत्ते गिराकर छिन्नभिन्न करनेवाले। (१०) धनु—धनुष से छोडे हुए अर्द्धचन्द्राकार बाणों से आँख नाक आदि अवयवों को छेदनेवाले। (११) कुम्भ—ऊँटनी आदि के आकारवाली कुम्भियों में पचानेवाले। (१२) वालू-वज्रमय तप्तवालुका मे चनों के समान तडतडाहट करते हुए नारकी जीवों को भूननेवाले। (१३) वैतरणी—अत्यन्त दुर्गन्धवाली राध लोहू से भरी हुई, एव तपे हुए जस्त और कथीर की उकलती हुई, अत्यन्त क्षार से युक्त उष्ण पानी से भरी हुई वैतरणी नदी की विकुर्वणा करके उसमें

વનની વિકુર્વણા કરીને તે વનમા છાયાની ઈચ્છાથી આવેલા નારકી જીવોને વૈક્રિય વાયુ દ્વારા પાદડાઓને ખેરવીને છિન્નભિન્ન કરવાવાળા (૧૦) ધનુ-ધનુષ્યથી છોડેલ અર્ધચદ્રાકાર બાણોથી આખ નાક આદિ અવયવોને છેદવાવાળા (૧૧) કુભ ઉટની (સાઢણી) આદિના આકારવાળી કુભિયોમા પકાવવાવાળા (૧૨) વાલૂ-વજ્રમય તપેલી રેતીમા ચણાની સમાન તડતડાત કરતા નારકી જીવોને શેકવાવાળા (૧૩) વૈતરણી-ખૂબ દુર્ગંધવાલી રાધ લોહીથી ભરેલી, તપેલા જસત અને કથીરથી ઉકળતી, અત્યત ક્ષાર યુકત ઉના પાણીની ભરેલી વૈતરણી નદીની વિકુર્વણા કરીને એમા

१– 'असिपत्र' इत्यत्राऽर्श आदित्वादच् ।

चतुर्थं कूर्मज्ञाताध्ययनम् । पञ्चम शैलकराजर्षिज्ञाताध्ययनम् । षष्ठ तुम्बज्ञातम् । सप्तम रोहिणीज्ञातम् । अष्टमम् मल्लीज्ञातम् । नवम माकन्दीपुत्रज्ञातम् । दशम चन्द्रज्ञातम् । एकादश समुद्रनीरस्थदावद्रवृक्षचरित्रयुक्तत्वाद्दावद्रवज्ञाताध्ययनम् । द्वादशमुदकज्ञाताध्ययनम्, अत्र नगरपरिखाजलवर्णनम् । त्रयोदश मण्डूकज्ञाताध्ययनम् । अत्र नन्दनमणिकारश्रेष्ठिजीववृत्तान्तवर्णनम् । चतुर्दश तेतलीप्रधानज्ञाताध्ययनम् । पञ्चदश नन्दिवृक्षाख्यतरुफलवृत्तान्तसम्बन्धान्नन्दिफलज्ञाताध्ययनम् । षोडशममरकङ्काज्ञातम्, अमरकङ्का नाम धातकीखण्ड-भरतक्षेत्रराजधानी तत्सम्बन्धात् । सप्तदशमाकीर्णज्ञातम्-आकीर्णाः=आकीर्णजातीयाः समुद्रमध्यवर्तिनोऽश्वविशेषास्तत्सम्बन्धात् । अष्टादश सुसुमाज्ञात नाम । एकोनविंशतितम पुण्डरीकज्ञात नामाध्ययनम् ॥

'वीसाए' विंशत्या 'असमाहिट्ठाणेहिं' समाधिश्चित्तैकाग्रता=मोक्षमार्गेऽवस्थान, न समाधिरसमाधि, यत्सेवनेन स्वपरोभयमोक्षसुखविच्छेदो जायते

(५) शैलकराजर्षि, (६) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्रववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तेतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक, इन उन्नीस ज्ञाताध्ययनों की श्रद्धा-प्ररूपणादि में न्यूनाधिकता होने से जो कोई अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ।

चित्तकी एकाग्रतापूर्वक मोक्षमार्ग में स्थित होने को समाधि कहते हैं, और इससे विपरीत को असमाधि कहते हैं, उसके बीस स्थान (ज्ञानादिरहित अप्रशस्तभाव वाले स्थान) हैं-

રાજર્ષિ (૬) તુમ્બલેપ, (૭) રોહિણી, (૮) મલ્લિનાથ, (૯) માકન્દી, (૧૦) ચન્દ્ર, (૧૧) દાવદ્રવવૃક્ષ, (૧૨) ઉદકનામ, (૧૩) મણ્ડૂક, (૧૪) તેતલીપ્રધાન, (૧૫) નન્દીફલ, (૧૬) અમરકકા, (૧૭) આકીર્ણજાતીય અશ્વ, (૧૮) સુસુમા, (૧૯) પુણ્ડરીક આ ઓગણીસ અધ્યયનોની શ્રદ્ધા-પ્રરૂપણાદિમા ન્યૂનાધિકતા થવાના કારણે જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ'

ચિત્તની એકાગ્રતાપૂર્વક મોક્ષમાર્ગમા સ્થિત થવુ તેને સમાધિ કહે છે, અને તેનાથી વિપરીત સ્થિતિને અસમાધિ કહે છે તેના વીસ સ્થાનકો

कुशलमनुष्ठान ब्रह्म, न ब्रह्म=अब्रह्म=अर्थान्मैथुन, तस्मिन् अब्रह्मणि, एतद्धि औदारिक वैक्रयिकशरीराभ्या करणकारणाऽनुमोदनैर्योर्गमनःकायतोऽष्टादशविध भवति, अर्थादौदारिक मनसा वाचा कायेन च स्वय न करोतीति त्रिविधम्, मनसा वाचा कायेन चाऽन्यद्वारा न कारयतीति त्रिविधमिति षड्विधम्। मनसा वाचा कायेन च कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानातीति च त्रिविधमिति सर्वसङ्कलनयौदारिक शरीरसम्बन्धिनो नव भेदाः। एवमेव वैक्रयिकशरीरसम्बन्धिनोऽपीति मिलित्वाऽष्टादशविधत्वम्।

'एगूणवीसाए' एकोनविंशत्या 'नायज्झयणेहिं' ज्ञातानि=उदाहरणानि, तत्प्रतिपादकान्यध्ययनानि=ज्ञाताध्ययनानि तै, एषु[१] यत्र परमेण कारुण्येनाऽऽत्यन्तिककष्टसहनपूर्वक मेघकुमारकर्तृक हस्तिभवाधिकरणक पादैकोत्क्षेपणरूप वृत्तमुपनिबद्ध तदुत्क्षिप्तज्ञात नाम प्रथममध्ययनम्। अस्य चैव ज्ञातत्वम्-दयादिगुणशालिनो दवदाहादिकष्ट सहन्ते समुत्क्षिप्तैकचरण-मेघकुमार-जीव हस्तिवदिति १। यत्र श्रेष्ठि-तस्करयोरेकत्र बन्धनवृत्तान्त उपनिबद्धस्तत् 'सघाटज्ञात' नाम द्वितीयमध्ययनम्। तृतीय 'मयूराण्डज्ञाताध्ययनम्।'

अनुमोदना की हो, इसी प्रकार (१०-१८) वैक्रिय शरीर से मैथुन मन, वचन और काय से सेवन किया हो, कराया हो और अनुमोदन की हो। इस अठारह प्रकार के अब्रह्मचर्य द्वारा जो अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ।

ज्ञाताधर्मकथा के उन्नीस अध्ययन-(१) मेघकुमार (उत्क्षिप्त), (२) धन्ना सार्थवाह (सघाट), (३) मयूराण्ड, (४) कूर्म (कच्छप)

મન વચન અને કાયાથી સેવન કર્યું હોય, કરાવ્યુ હોય અને અનુમોદન આપ્યુ હોય, આ પ્રકારે (૧૦-૧૮) વૈક્રિય શરીરથી મૈથુન મન વચન અને કાયાથી સેવન કર્યું હોય, કરાવ્યુ હોય અને અનુમોદન આપ્યુ હોય આ અઢાર પ્રકારના અબ્રહ્મચર્ય દ્વારા જે અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉ છુ

જ્ઞાતાધર્મકથાના ઓગણીસ અધ્યયન (૧) મેઘકુમાર (ઉત્ક્ષિપ્ત), (૨) ધન્ના સાર્થવાહ (સઘાટ), (૩) મયૂરાડ, (૪) કૂર્મ (કચ્છપ), (૫) શૈલ

१- ज्ञाताध्ययनेषु।

चतुर्थं कूर्मज्ञाताध्ययनम्। पञ्चमं शैलकराजर्षिज्ञाताध्ययनम्। षष्ठं तुम्बज्ञातम्। सप्तमं रोहिणीज्ञातम्। अष्टमम् मल्लीज्ञातम्। नवमं माकन्दीपुत्रज्ञातम्। दशमं चन्द्रज्ञातम्। एकादशं समुद्रनीरस्थदावद्रववृक्षचरित्रयुक्तत्वाद्दावद्रवज्ञाताध्ययनम्। द्वादशमुदकज्ञाताध्ययनम्, अत्र नगरपरिखाजलवर्णनम्। त्रयोदशं मण्डूकज्ञाताध्ययनम्। अत्र नन्दनमणिकारश्रेष्ठिजीववृत्तान्तवर्णनम्। चतुर्दशं तेतलीप्रधानज्ञाताध्ययनम्। पञ्चदशं नन्दिवृक्षाख्यतरुफलवृत्तान्तसम्बन्धान्नन्दिफलज्ञाताध्ययनम्। षोडशममरकङ्काज्ञातम्, अमरकङ्का नाम धातकीखण्ड-भरतक्षेत्रराजधानी तत्सम्बन्धात्। सप्तदशमाकीर्णज्ञातम्-आकीर्णाः=आकीर्णजातीयाः समुद्रमध्यवर्त्तिनोऽश्वविशेषास्तत्सम्बन्धात्। अष्टादशं सुसुमाज्ञातं नाम। एकोनविंशतितमं पुण्डरीकज्ञातं नामाध्ययनम्॥

'वीसाए' विंशत्या 'असमाहिट्ठाणेहिं' समाधिश्चित्तैकाग्रता=मोक्षमार्गेऽवस्थानं, न समाधिरसमाधिः, यत्सेवनेन स्वपरोभयमोक्षसुखविच्छेदो जायते

---

(५) शैलकराजर्षि, (६) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्रववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तेतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक, इन उन्नीस ज्ञाताध्ययनों की श्रद्धा-प्ररूपणादि में न्यूनाधिकता होने से जो कोई अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ।

चित्तकी एकाग्रतापूर्वक मोक्षमार्ग में स्थित होने को समाधि कहते हैं, और इससे विपरीत को असमाधि कहते हैं, उसके वीस स्थान (ज्ञानादिरहित अप्रशस्तभाव वाले स्थान) हैं-

---

રાજર્ષિ (૬) તુમ્બલેપ, (૭) રોહિણી, (૮) મલ્લિનાથ, (૯) માકંદી, (૧૦) ચંદ્ર, (૧૧) દાવદ્રવવૃક્ષ, (૧૨) ઉદકનામ, (૧૩) મંડૂક, (૧૪) તેતલીપ્રધાન, (૧૫) નન્દીફલ, (૧૬) અમરકંકા, (૧૭) આકીર્ણજાતીય અશ્વ, (૧૮) સુસુમા, (૧૯) પુંડરીક આ ઓગણીસ અધ્યયનોની શ્રદ્ધા-પ્રરૂપણાદિમાં ન્યૂનાધિકતા થવાના કારણે જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું'

ચિત્તની એકાગ્રતાપૂર્વક મોક્ષમાર્ગમાં સ્થિત થવું તેને સમાધિ કહે છે, અને તેનાથી વિપરીત સ્થિતિને અસમાધિ કહે છે તેના વીસ સ્થાનકો

सः, तस्य स्थानानि=पदान्यसमाधिस्थानानि–ज्ञानादिरहिताऽप्रशस्तभाव सम्पन्नानि स्थानानीत्यर्थस्तैः। तानि क्रमेण यथा–प्रथम द्रुतद्रुतचरण=सयमविरा धनामात्मविराधना चानपेक्ष्य गमनम्। द्वितीयमप्रमार्जितचरणम्=अप्रमार्जिते= रजोहरणेनाऽविशुद्धीकृते मार्गादौ गमनम्। तृतीय दुष्प्रमार्जितचरणम्=असम्यक् प्रमार्जिते गमनम्। चतुर्थ मर्यादातिरिक्तशय्यापीठफल्कादिसेवनम्। पञ्चम रत्नाधिकपरिभव=गुर्वाचार्यादीना पराभवकरणम्। षष्ठ स्थविराणा घातचिन्त-नम्। सप्तम भूतानामुपघातचिन्तनम्। अष्टम प्रतिक्षण क्रोधकरणम्। नवम पृष्ठ-तोऽवर्णवाद=परोक्ष आक्षेपवचनम्। दशम शङ्कितेऽर्थे पुनः पुनर्निश्चितभाषणम्। एकादशमनुत्पन्ननूतनकलहकरणम्। द्वादश पुरातनोपशमितकलहोदीरणम्।

(१) दवदव–जल्दी जल्दी चलना (२) विना पूँजे चलना, (३) सम्यक् प्रकार पूँजे विना चलना (पूँजना कहीं चलना कहीं), (४) मर्यादा से अधिक पाट पाटला आदि का उपभोग करना, (५) गुरु आदि के साथ अविनयपूर्वक बोलना तथा उनका पराभव करना, (६) स्थविर (अपने से बडे) की घात चिन्तन करना, (७) भूतों (जीवों) की घात चिंतन करना, (८) क्षण क्षण में क्रोध करना, (९) परोक्ष मे अवर्णवाद करना, (१०) शङ्कित विषय मे बार बार निश्चयपूर्वक बोलना, (११) नवीन क्लेश उत्पन्न करना, (१२) उपशान्त क्लेश की उदीरणा करना, (१३)

(જ્ઞાનાદિ રહિત અપ્રશસ્ત ભાવવાળા સ્થાન) છે (૧) દવદવ (જલદી જલદી) ચાલવુ (૨) પૂજ્યા વિના ચાલવુ, (૩) સમ્યક પ્રકારે પૂજ્યા વિના ચાલવુ (પૂજવુ કયાય અને ચાલવુ કયાય), (૪) મર્યાદાથી વધારે પ્રમાણમા પાટ પાટલા વગેરેનો ઉપભોગ કરવો, (૫) ગુરુ વગેરેની સાથે અવિનયપૂર્વક બોલવુ તથા તેમનો પરાભવ કરવો, (૬) સ્થવિર (પોતાનાથી મોટા)ની ઘાત કરવાનુ ચિન્તવન કરવુ, (૭) ભૂતો (જીવોની) ઘાત કરવાનું ચિંતન કરવુ, (૮) ક્ષણુક્ષણુમા ક્રોધ કરવો, (૯) પરોક્ષમા અવર્ણુવાદ બોલવુ, (૧૦) શકા હોય તેવા વિષયમા વાર-વાર નિશ્ચયપૂર્વક બોલવુ, (૧૧) નવો ક્લેશ ઉત્પન્ન કરવો, (૧૨) ઉપશાન્ત ક્લેશની ઉદીરણા કરવી, (૧૩) અકાલે સ્વાધ્યાય કરવો, (૧૪) સચિત્ત રજવાળા

त्रयोदशमकाले स्वाध्यायकरणम्। चतुर्दश सरजस्कचरणेनाऽऽसनादावुपवेशनम्। पञ्चदश रात्रिषु प्रथमप्रहरोत्तरमुच्चैः सम्भाषणम्, गृहस्थभाषाभाषण वा। षोडश गच्छादिषु भेदोत्पादनम्। सप्तदश झञ्झकरणम्=गणदुःखदभाषाव्यवहरणम्। अष्टादश कलहकरणम्=येन केनचित् सह विरोधाऽऽचरणम्। एकोनविंशतितम सूर्योदयादारभ्याऽस्त यावत्पौनःपुन्येनाऽभ्यवहरणम्। विंशतितममनेषणिकाहारादिसेवनम् ॥ सू० १३ ॥

॥ मूलम् ॥

एगवीसाए सबलेहिं ॥ सू० १४ ॥

॥ छाया ॥

एकविंशत्या शबलैः ॥ सू० १४ ॥

॥ टीका ॥

यद्द्वारा चारित्र शबल=कर्बुर भवति तानि शबलानि, तेषामेकविंशति

अकाल में स्वाध्याय करना, (१४) सचित्त रजयुक्त चरणों से आसन आदि पर बैठना, (१५) प्रहररात्रि व्यतीत होने के बाद जोर से बोलना अथवा गृहस्थ जैसी भाषा बोलना, (१६) गच्छ आदि मे छेद-भेद करना, (१७) गण को दुख उत्पन्न हो ऐसी भाषा बोलना, (१८) हरेक के साथ विरोध करना, (१९) सूर्योदय से सूर्यास्त तक खाते रहना, (२०) अनेषणिक आहार आदि का सेवन करना। इनके विषयमे अतिचार किया गया हो तो उससे मै निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १३ ॥

जिनसे चारित्र शबल (कर्बुर) अर्थात् चारित्र दूषित हो

पग वडे आसन वगेरे पर बेसवु, (१५) प्रहर रात्रो गया बाद ऊंचा स्वरथी बोलवु-अथवा गृहस्थ जेवी भाषा बोलवी, (१६) गच्छ, संघ वगेरमा छेद-भेद पडाववो, (१७) गणने दु ख उत्पन्न थाय तेवी भाषा बोलवी, (१८) दरेकनी साथे विरोध करवो, (१९) सूर्योदयथी लइ सूर्यास्त समय थाय त्या सुधी भोजन करता रहेवु, (२०) अनेषणिक आहार आदिनु सेवन करवु, आ विषे जे कोइ अतिचार लाग्या होय 'तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु' (सू० १३)

जेना वडे चारित्र शबल-अर्थात् चारित्र दूषित थाय छे तेने 'शबल'

सः, तस्य स्थानानि=पदान्यसमाधिस्थानानि–ज्ञानादिरहिताऽप्रशस्तभाव सम्पन्नानि स्थानानीत्यर्थस्तैः। तानि क्रमेण यथा–प्रथम द्रुतद्रुतचरण=सयमविराधनामात्मविराधना चानपेक्ष्य गमनम्। द्वितीयमप्रमार्जितचरणम्=अप्रमार्जिते= रजोहरणेनाऽविशुद्धीकृते मार्गादौ गमनम्। तृतीय दुष्प्रमार्जितचरणम्=असम्यक् प्रमार्जिते गमनम्। चतुर्थं मर्यादातिरिक्तशय्यापीठफलकादिसेवनम्। पञ्चम रत्नाधिकपरिभव=गुर्वाचार्यादीना पराभवकरणम्। षष्ठ स्थविराणा घातचिन्तनम्। सप्तम भूतानामुपघातचिन्तनम्। अष्टम प्रतिक्षण क्रोधकरणम्। नवम पृष्ठतोऽवर्णवाद=परोक्ष आक्षेपवचनम्। दशम शङ्कितेऽर्थे पुनः पुनर्निश्चितभाषणम्। एकादशमनुत्पन्ननूतनकलहकरणम्। द्वादश पुरातनोपशमितकलहोदीरणम्।

(१) द्रवद्रव–जल्दी जल्दी चलना (२) विना पूँजे चलना, (३) सम्यक् प्रकार पूँजे विना चलना (पूँजना कही चलना कही), (४) मर्यादा से अधिक पाट पाटला आदि का उपभोग करना, (५) गुरु आदि के साथ अविनयपूर्वक बोलना तथा उनका पराभव करना, (६) स्थविर (अपने से बडे) की घात चिन्तन करना, (७) भूतों (जीवो) की घात चिंतन करना, (८) क्षण क्षण में क्रोध करना, (९) परोक्ष मे अवर्णवाद करना, (१०) शङ्कित विषय मे वार वार निश्चयपूर्वक बोलना, (११) नवीन क्लेश उत्पन्न करना, (१२) उपशान्त क्लेश की उदीरणा करना, (१३)

(જ્ઞાનાદિ રહિત અપ્રશસ્ત ભાવવાળા સ્થાન) છે (૧) દવદવ (જલદી જલદી) ચાલવુ (૨) પૂજ્યા વિના ચાલવુ, (૩) સમ્યક પ્રકારે પૂજ્યા વિના ચાલવુ (પૂજવુ કયાય અને ચાલવુ કયાય), (૪) મર્યાદાથી વધારે પ્રમાણમા પાટ પાટલા વગેરેનો ઉપભોગ કરવો, (૫) ગુરુ વગેરેની સાથે અવિનયપૂર્વક બોલવુ તથા તેમનો પરાભવ કરવો, (૬) સ્થવિર (પોતાનાથી મોટા)ની ઘાત કરવાનુ ચિન્તવન કરવુ, (૭) ભૂતો (જીવો ની) ઘાત કરવાનુ ચિંતન કરવુ, (૮) ક્ષણુક્ષણુમા ક્રોધ કરવો, (૯) પરોક્ષમા અવર્ણવાદ બોલવુ, (૧૦) શકા હોય તેવા વિષયમા વાર-વાર નિશ્ચયપૂર્વક બોલવુ, (૧૧) નવો કલેશ ઉત્પન્ન કરવો, (૧૨) ઉપશાન્ત કલેશની ઉદીરણા કરવી, (૧૩) અકાલે સ્વાધ્યાય કરવો, (૧૪) સચિત્ત રજવાળા

मम् (१०), मातृस्थानशब्देनात्र कपट (माया) गृह्यते। शय्यातरपिण्डसेवन-मेकादशम् (११), ज्ञात्वा प्राणातिपातकरण द्वादशम् (१२), ज्ञात्वा मृषावाद-करण त्रयोदशम् (१३), ज्ञात्वाऽदत्ताऽऽदान चतुर्दशम् (१४), ज्ञात्वा सचित्त-पृथिव्युपवेशनादि पञ्चदशम् (१५) स्निग्धपृथिव्यामुपवेशन षोडशम् (१६), सजीवपीठफलकादिसेवन सप्तदशम् (१७), मूल[१]-कन्द[२]-स्कन्ध[३]-त्वक्[४]-प्रवाल[५]-पत्र[६]-पुष्प[७]-फल[८]-बीज[९]-हरितादीना[१०] सेवनमष्टादशम् (१८), संवत्सराभ्यन्तरे दशोदकलेपसेवनमेकोनविंशतितमम् (१९) संवत्सराभ्यन्तरे दशमातृस्थानसेवन विंशतितमम् (२०), सचित्तोदकरजोभ्यामहस्तादिना दत्तस्याऽऽहारादेः सेवनमेकविंशतितमम् (२१) ॥ सू० १४ ॥

आदि से उतरना), (१०) एक महीने मे तीन मातृस्थान (कपट) सेवन करना, (११) शय्यातर पिण्ड का सेवन करना, (१२) जान-बूझ कर प्राणातिपात करना, (१३) जानबूझ कर झूठ बोलना, (१४) जानबूझ कर चोरी करना, (१५) जानबूझ कर सचित्त पृथ्वी पर बैठना, (१६) स्निग्ध (गीली) पृथ्वी पर बैठना, (१७) जीव सहित पीठ फलक आदि का सेवन करना, (१८) मूल-कन्द-स्कन्ध-त्वक्-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीज और हरित, इन दश प्रकार की सचित्त वनस्पति आदि का सेवन करना, (१९) एक वर्ष मे दश उदक लेप लगाना, (२०) एक वर्ष मे दश मातृस्थान सेवन करना, (२१) सचित्त उदक से भीगे हुए (गीले) हस्तपात्र

त्रण वार पाणीनो लेप लगाडवो (नदी विगेरे उतरवा), (१०) એક માસમા ત્રણ માતૃસ્થાનનું (કપટનુ) સેવન કરવુ, (૧૧) શય્યાતરપિંડ સેવન કરવુ, (૧૨) જાણી બુઝીને પ્રાણાતિપાત કરવો, (૧૩) જાણી-સમજીને અસત્ય બોલવુ, (૧૪) જાણી-સમજીને ચોરી કરવી, (૧૫) જાણી-બુઝીને સચિત્ત પૃથ્વી ઉપર બેસવુ, (૧૬) પાણીથી ભીંજાએલી જમીન પર બેસવુ, (૧૭) જીવ સહિત પીઠફલક વગેરેનુ સેવન કરવુ, (૧૮) મૂલ, કદ, સ્કન્ધ, છાલ, પ્રવાલ, પત્ર, પુષ્પ, ફલ, બીજ અને હરિત-લીલી આ દસ પ્રકારની સચિત્ત વનસ્પતિનુ સેવન કરવુ, (૧૯) એક વર્ષમા દસ પાણીના લેપ લગાડવા, (૨૦) એક વર્ષમા દસ માતૃસ્થાન (કપટ) સેવન કરવા, (૨૧) સચિત્ત પાણીથી ભીંજાએલા હાથ-પાત્ર આદિથી આપેલા આહાર-આદિનુ સેવન

भेदा, तत्र हस्तकर्मकरण प्रथमम् (१) अतिक्रमव्यतिक्रमातिचारैर्मैथुनसेवन द्वितीयम्, (२) रात्रिभोजन तृतीयम् (३) आधाकर्मसेवन चतुर्थम् (४), राजपिण्ड-(नृपतिमुद्दिश्य निष्पादित) ग्रहण पञ्चमम् (५), द्रव्यादिना साध्वर्थं क्रीतमुद्धारगृहीतमनिच्छतः पुत्रभृत्यादेर्हस्ताद्पहृत्याऽन्यसम्बन्धिसाधारणाऽऽहारादिकंताननापृच्छ्य स्वकीयमपि स्वस्थानादपहृत्य वा साधवे दीयमानमित्येषां पञ्चानां पिण्डानां सेवन षष्ठम् (६), पुनः पुनः प्रत्याख्यानभञ्जन सप्तमम् (७), षण्मासाभ्यन्तरे स्वगच्छान्निःसृत्य गच्छान्तरगमनमष्टमम् (८), मासाभ्यन्तरे उदकत्रयलेपसेवन नवमम् (९) मासाभ्यन्तरे मातृस्थानत्रयसेवन दश

उन्हे 'शबल' कहते हैं, वे इक्कीस (२१) हैं—(१) हस्तकर्म करना (२) अतिक्रम व्यतिक्रम और अतिचार से मैथुन सेवन करना, (३) रात्रि भोजन करना, (४) आधाकर्मी आहार आदिका सेवन करना, (५) राजपिण्ड लेना (६) 'कीय' (क्रीत)-साधु के निमित्त खरीदे हुए, 'पामिच्चे' (प्रामित्य)=उधार लिये हुए, 'अच्छिज्ज' (अच्छेद्य)=पुत्र भृत्य आदि के हाथ से छीने हुए, 'अणिसिट्ठ' (अनिसृष्ट)=अनेक के हिस्से का आहार आदि उनसे विना पूछे दिये हुए, तथा 'आहट्टु दिज्जमाण' (आहृत्य दीयमान) स्वस्थान से सामने लाकर दिये हुए, आहार आदि का सेवन करना, (७) प्रत्याख्यान का वारम्वार भग करना, (८) छह महीने से पहले अपना गच्छ छोड कर दूसरे गच्छ मे जाना, (९) एक महीनेमे तीन वार उदक का लेप लगाना (नदी

કહે છે તે એકવીશ પ્રકારના છે (૧) હસ્તકર્મ કરવુ, (૨) અતિક્રમ, વ્યતિક્રમ અને અતિચારથી મૈથુન સેવન કરવુ (૩) રાત્રિ-ભોજન કરવુ, (૪) આધાકર્મી આહાર વગેરેનુ સેવન કરવુ, (૫) રાજપિંડ ગ્રહણ કરવો (૬) 'कीय' (क्रीत) સાધુના નિમિત્ત ખરીદ કરેલા, 'पामिचे' (प्रामित्य) ઉધાર લીધેલા, 'अच्छिज्ज' (अच्छेद्य) પુત્ર-નોકર આદિના હાથમાથી છીનવી લીધેલા, 'अणिसिट्ठ' (अनिसृष्ट) અનેક માણુસોના ભાગનો આહાર વગેરે તેઓને પૂછયા વિના આપેલા તથા 'आहट्टु दिज्जमाण' (आहृत्य दीयमानम्) પોતાના સ્થાનથી સામા આવીને લાવી આપેલા આહાર આદિનું સેવન કરવું, (૭) પ્રત્યાખ્યાનનો વારવાર ભગ કરવો, (૮) છ માસ પૂર્વે પોતાનો ગચ્છ ત્યજી બીજા ગચ્છમા જવું, (૯) એક મહિનામા

मम् (१०), मातृस्थानशब्देनात्र कपट (माया) गृह्यते। शय्यातरपिण्डसेवन-मेकादशम् (११), ज्ञात्वा प्राणातिपातकरण द्वादशम् (१२), ज्ञात्वा मृषावाद-करण त्रयोदशम् (१३), ज्ञात्वाऽदत्ताऽऽदान चतुर्दशम् (१४), ज्ञात्वा सचित्त-पृथिव्युपवेशनादि पञ्चदशम् (१५) स्निग्धपृथिव्यामुपवेशन षोडशम् (१६), सजीवपीठफलकादिसेवन सप्तदशम् (१७), मूल[१]-कन्द[२]-स्कन्ध[३]-त्वक्[४]-प्रवाल[५]-पत्र[६]-पुष्प[७]-फल[८]-बीज[९]-हरितादीना[१०] सेवनमष्टादशम् (१८), सवत्सराभ्यन्तरे दशोदकलेपसेवनमेकोनविंशतितमम् (१९) सवत्सराभ्यन्तरे दशमातृस्थानसेवन विंशतितमम् (२०), सचित्तोदकरजोन्यासहस्तादिना दत्तस्याऽऽहारादेः सेवनमेक-विंशतितमम् (२१) ॥ सू० १४ ॥

आदि से उतरना), (१०) एक महीने मे तीन मातृस्थान (कपट) सेवन करना, (११) शय्यातर पिण्ड का सेवन करना, (१२) जान-बूझ कर प्राणातिपात करना, (१३) जानबूझ कर झूठ बोलना, (१४) जानबूझ कर चोरी करना, (१५) जानबूझ कर सचित्त पृथ्वी पर बैठना, (१६) स्निग्ध (गीली) पृथ्वी पर बैठना, (१७) जीव सहित पीठ फलक आदि का सेवन करना, (१८) मूल-कन्द-स्कन्ध-त्वक्-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीज और हरित, इन दश प्रकार की सचित्त वनस्पति आदि का सेवन करना, (१९) एक वर्ष मे दश उदक लेप लगाना, (२०) एक वर्ष में दश मातृस्थान सेवन करना, (२१) सचित्त उदक से भीगे हुए (गीले) हस्तपात्र

त्रणु वार पाणीनो लेप लगाडवो (नदी विगेरे उतरवा), (१०) એક માસમા ત્રણ માતૃસ્થાનનુ (કપટનુ) સેવન કરવુ, (૧૧) શય્યાતરપિંડ સેવન કરવુ, (૧૨) જાણી બુઝીને પ્રાણાતિપાત કરવો, (૧૩) જાણી-સમજીને અસત્ય બોલવુ, (૧૪) જાણી-સમજીને ચોરી કરવી, (૧૫) જાણી-બુઝીને સચિત્ત પૃથ્વી ઉપર બેસવુ, (૧૬) પાણીથી ભીંજાએલી જમીન પર બેસવુ, (૧૭) જીવ સહિત પીઠફલક વગેરેનુ સેવન કરવુ, (૧૮) મૂલ, કદ, સ્કન્ધ, છાલ, પ્રવાલ, પત્ર, પુષ્પ, ફલ, બીજ અને હરિત-લીલી આ દસ પ્રકારની સચિત્ત વનસ્પતિનુ સેવન કરવુ, (૧૯) એક વર્ષમા દસ પાણીના લેપ લગાડવા, (૨૦) એક વર્ષમા દસ માતૃસ્થાન (કપટ) સેવન કરવા, (૨૧) સચિત્ત પાણીથી ભીંજાએવા હાથ-પાત્ર આદિથી આપેલા આહાર-આદિનુ સેવન

भेदाः, तत्र हस्तकर्मकरणं प्रथमम् (१) अतिक्रमव्यतिक्रमातिचारैर्मैथुनसेवनं द्वितीयम्, (२) रात्रिभोजनं तृतीयम् (३) आधाकर्मसेवनं चतुर्थम् (४), राजपिण्ड-(नृपतिमुद्दिश्य निष्पादितं) ग्रहणं पञ्चमम् (५), द्रव्यादिना साध्वर्थं क्रीतमुद्धारगृहीतमनिच्छतः पुत्रभृत्यादेर्हस्तादपहृत्याऽन्यसम्बन्धिसाधारणाऽऽहारादिकंताननापृच्छ्य स्वकीयमपि स्वस्थानादपहृत्य यत् साधवे दीयमान मित्येषां पञ्चानां पिण्डानां सेवनं षष्ठम् (६), पुनः पुनः प्रत्याख्यानभञ्जनं सप्तमम् (७), षण्मासाभ्यन्तरे स्वगच्छान्निःसृत्य गच्छान्तरगमनमष्टमम् (८), मासाभ्यन्तरे उदकत्रयलेपसेवनं नवमम् (९) मासाभ्यन्तरे मातृस्थानत्रयसेवनं दश

उन्हें 'शबल' कहते हैं, वे इक्कीस (२१) हैं—(१) हस्तकर्म करना (२) अतिक्रम व्यतिक्रम और अतिचार से मैथुन सेवन करना, (३) रात्रि भोजन करना, (४) आधाकर्मी आहार आदिका सेवन करना, (५) राजपिण्ड लेना (६) 'कीय' (क्रीत)–साधु के निमित्त खरीदे हुए, 'पामिच्चे' (प्रामित्य)=उधार लिये हुए, 'अच्छिज्ज' (अच्छेद्य)=पुत्र भृत्य आदि के हाथ से छीने हुए, 'अणिसिट्ठ' (अनिसृष्ट)=अनेक के हिस्से का आहार आदि उनसे विना पूछे दिये हुए, तथा 'आहट्टु दिज्जमाण' (आहृत्य दीयमान) स्वस्थान से सामने लाकर दिये हुए, आहार आदि का सेवन करना, (७) प्रत्याख्यान का बारम्बार भंग करना, (८) छह महीने से पहले अपना गच्छ छोड कर दूसरे गच्छ में जाना, (९) एक महीनेमें तीन बार उदक का लेप लगाना (नदी

કહે છે તે એકવીશ પ્રકારના છે (૧) હસ્તકર્મ કરવું, (૨) અતિક્રમ, વ્યતિક્રમ અને અતિચારથી મૈથુન સેવન કરવું (૩) રાત્રિ-ભોજન કરવું, (૪) આધાકર્મી આહાર વગેરેનું સેવન કરવું, (૫) રાજપિંડ ગ્રહણ કરવો (૬) 'कीय' (क्रीत) સાધુના નિમિત્ત ખરીદ કરેલા, 'पामिच्चे' (प्रामित्य) ઉધાર લીધેલા, 'अच्छिज्ज' (अच्छेद्य) પુત્ર-નોકર આદિના હાથમાંથી છીનવી લીધેલા, 'अणिसिट्ठ' (अनिसृष्ट) અનેક માણસોના ભાગનો આહાર વગેરે તેઓને પૂછયા વિના આપેલા તથા 'आहट्टु दिज्जमाण' (आहृत्य दीयमानम्) પોતાના સ્થાનથી સામા આવીને લાવી આપેલા આહાર આદિનું સેવન કરવું, (૭) પ્રત્યાખ્યાનનો વારંવાર ભંગ કરવો, (૮) છ માસ પૂર્વે પોતાનો ગચ્છ ત્યજી બીજા ગચ્છમાં જવું, (૯) એક મહિનામાં

परिषहः (१९), प्रज्ञापरिषह॰ (२०), अज्ञानपरिषहः (२१), दर्शनपरिषह- (२२) श्चेति, सम्बन्धस्तु यो मयेत्यादिनैव सर्वत्रेति प्रागुक्त न विस्मर्त्तव्यम् ॥ सू॰ १५ ॥

॥ मूलम ॥

तेवीसाए सूअगडज्झयणेहिं। चउवीसाए देवेहिं। पणवीसाए भावणाहिं। छव्वीसाए दसाकप्पववहाराणं उद्देसणकालेहि। सत्तावीसाए अणगारगुणेहिं ॥ सू॰ १६ ॥

॥ छाया ॥

त्रयोविंशत्या सूत्रकृताध्ययनैः। चतुर्विंशत्या देवैः। पञ्चविंशत्या भावनाभिः। षड्विंशत्या दशाकल्पव्यवहाराणामुद्देशनकालैः। सप्तविंशत्याऽनगारगुणैः॥ सू॰ १६॥

॥ टीका ॥

'तेवी॰' इति। सूत्रकृताङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धस्य षोडशाध्ययनानि प्रागुक्तानि तद्व्यतिरिक्तानि च द्वितीयश्रुतस्कन्धस्य पुण्डरीकाध्ययन–क्रियास्थानाध्ययना–ऽऽहारपरिज्ञाध्ययन–प्रत्याख्यानक्रियाध्ययना–ऽऽचारश्रुताध्ययना–ऽऽर्द्रकाध्ययन–नालन्दीयाध्ययनानि सप्तेति मिलित्वा त्रयोविंशति॰ सूत्रकृताध्ययनानि तैः।

दर्शन। इन परिषहों को सम्यक् प्रकार न सहने से जो अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ' ॥ सू॰ १५ ॥

सूत्रकृताग के प्रथमश्रुतस्कन्ध के पूर्वोक्त सोलह (१६) अध्ययन और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के (१) पुण्डरीक, (२) क्रियास्थान, (३) आहारपरिज्ञा, (४) प्रत्याख्यानक्रिया, (५) आचारश्रुत, (६) आर्द्रकुमार और (७) नालन्दीय, ये सात मिलाकर तेईस अध्ययनोंमें श्रद्धा प्ररूपणा आदि की न्यूनाधिकतासे, तथा दस भवनपति, आठ

---

(२१) अज्ञान, (२२) दर्शन, आ बावीस परिषहोने सम्यक्–રૂડા પ્રકારે સહન ન કરવાથી જે કાઇ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ (સૂ॰ ૧૫)

સૂત્રકૃતાગના પ્રથમ શ્રુતસ્કન્ધના પૂર્વોક્ત ૧૬ (સોલ) અધ્યયન અને બીજા શ્રુતસ્કન્ધના (૧), પુડરીક (૨) ક્રિયાસ્થાન, (૩) આહારપરિજ્ઞા, (૪) પ્રત્યાખ્યાન ક્રિયા, (૫) આચારશ્રુત, (૬) આર્દ્રકુમાર અને (૭) નાલદીય, આ સાત અધ્યયન મેળવીને કુલ તેવીશ (૨૩) અધ્યયનોમા શ્રદ્ધાપ્રરૂપણા–વગેરેની ન્યૂનાધિકતાથી, તથા દસ ભવનપતિ, આઠ વ્યતર, પાચ જ્યોતિષી અને એક

॥ मूलम् ॥

बावीसाए परिसहेहिं ॥ सू० १५ ॥

॥ छाया ॥

द्वाविंशत्या परिषहै' ॥ सू० १५ ॥

॥ टीका ॥

'परिसहेहिं' परि=समन्तात् सह्यन्ते=क्षम्यन्ते कर्मनिर्जरार्थं मोक्षार्थिभिरिति परिषहास्तैः, ते यथा क्षुधापरिषहः (१), पिपासापरिषहः (२), शीत परिषह' (३), उष्णपरिषहः (४), दशमशकपरिषहः (५), अचेलपरिषहः (६), अरतिपरिषह. (७), स्त्रीपरिषहः (८), चर्या-(विहार) परिषह (९), नैषेधिकीपरिषहः (१०), शय्यापरिषहः (११), आक्रोशपरिषहः (१२), वधपरिषहः (१३), याचनापरिषहः (१४), अलाभपरिषहः (१५), रोगपरिषह (१६), तृणस्पर्शपरिषहः (१७), जल्ल [मल्ल]-परिषह' (१८), [1]सत्कारपुरस्कार-

---

आदि से दिये हुए आहार आदि का सेवन करना, इनसे जो अतिचार हुआ हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ' ॥ सू० १४ ॥

मोक्षार्थी जिन्हें कर्मों की निर्जरा के लिये सहन करते हैं उन्हें 'परिषह' कहते हैं वे बाईस हैं—

(१) क्षुधा, (१) पिपासा, (३) शीत, (४) उष्ण, (५) दंशमशक, (६) अचेल, (७) अरति, (८) स्त्री, (९) चर्या (चलना), (१०) नैषेधिकी (बैठना), (११) शय्या, (१२) आक्रोश, (१३) वध, (१४) याचना, (१५) अलाभ, (१६) रोग, (१७) तृणस्पर्श, (१८) मल, (१९) सत्कारपुरस्कार, (२०) प्रज्ञा, (२१) अज्ञान, (२२)

કરવુ,-એ સર્વથી જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ' (સૂ० ૧૪)

મોક્ષાર્થી જીવો કર્મોની નિર્જરા કરવા માટે જે સહન કરે છે તેને 'પરિષહ' કહે છે અને તે પરિષહ બાવીસ-૨૨ પ્રકારના છે (૧) ક્ષુધા ભૂખ, (૨) પિપાસા (તૃષા), (૩) શીત (ઠંડી), (૪) ઉષ્ણ (તાપ), (૫) દંશમશક (ડાંસ) (મચ્છર), (૬) અચેલ, (૭) અરતિ, (૮) સ્ત્રી, (૯) ચર્યા (ચાલવુ તે), (૧૦) નૈષેધિકી (બેસવુ), (૧૧) શય્યા, (૧૨) આક્રોશ, (૧૩) વધ, (૧૪) યાચના (૧૫) અલાભ, (૧૬) રોગ, (૧૭) તૃણસ્પર્શ, (૧૮) મલ, (૧૯) સત્કારપુરસ્કાર, (૨૦) પ્રજ્ઞા,

---

१- अत्र सत्कारो वस्त्रादिना, पुरस्कारश्चाभ्युत्थानादिना ।

मपि वृक्षादीनामच्छेदन, साधारणपिण्डस्याधिकतो न सेवन, साधुवैयावृत्यकरण चेति[3][4][5] पञ्च तृतीयमहाव्रतस्य (३)। स्त्री-पशु-पण्डकरहितवसतिसेवनं, स्त्रीकथावर्जन, स्त्र्य-[1][2] ङ्गोपाङ्गाऽनवलोकन, पूर्वकृतसुरतरतेरस्मरण, प्रतिदिन भोजनपरित्यागश्चेति पञ्च[3][4][5] चतुर्थमहाव्रतस्य (४)। प्रशस्ताऽप्रशस्त शब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्शेषु रागद्वेषवर्जन, शब्दादिभेदात्पञ्च पञ्चममहाव्रतस्ये (५) ति मिलित्वा पञ्चविंशतिर्भावनास्ताभिः। 'दसा कप्प ववहाराण' दशा-कल्प व्यवहाराणा=दशाश्रुतस्कन्ध-बृहत्कल्प व्यवहारसूत्राणा यथाक्रम दश-षड्-दशसंख्यकाध्ययनयुक्तानाम् 'उद्देसणकालेहिं' उद्देशनकालै:=पठनसमयैः। 'सत्तावीसाए' सप्तविंशत्या, 'अणगारगुणेहिं' अविद्यमान-

पीठ फलक आदि के लिए भी वृक्षादि को नहीं काटना, (१४) साधरण पिण्डका अधिक सेवन नही करना, (१५) साधुकी वैयावृत्य (वेयावच्च) करना। चौथे महाव्रत की पाँच भावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक-रहित स्थानका सेवन करना, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करना, (१८) स्त्रियों के अगोपागका अवलोकन नही करना, (१९) पूर्वकृत काम भोगका स्मरण नही करना, (२०) प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग करना। पाँचवे महाव्रत की पाँच भावना- (२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४), रस, और (२५) स्पर्शमें राग-द्वेष नही करना। इन पचीस भावनाओ के विषयमें तथा दशाश्रुतस्कन्ध के दस, बृहत्कल्पके छह और व्यवहारसूत्र के दस, इन छब्बीस अध्ययनों के पठनकालमें, और जिनके द्रव्यसे-मिट्टी आदिका बना हुआ

तृण-કાષ્ઠાદિનું અવગ્રહ લેવું (૧૩) પીઠ ફલક આદિ માટે પણ વૃક્ષને કાપવું નહિ તે, (૧૪) સાધારણ પિંડનું અધિક સેવન કરવું નહિ તે, (૧૫) સાધુના વૈયાવૃત્ય (વૈયાવચ્ચ) કરવી ચોથા મહાવ્રતની પાચ ભાવના-(૧૬) સ્ત્રી-પશુ-પડક-રહિત સ્થાનકનું સેવન કરવુ, (૧૭) સ્ત્રીકથા વર્જન કરવુ, (૧૮) સ્ત્રીઓના અગો પાગનું અવલોકન નહિ કરવુ, (૧૯) પૂર્વકૃત કામભોગનું સ્મરણ નહિ કરવુ, (૨૦) પ્રતિદિન સરસ ભોજનનો ત્યાગ કરવો પાચમા મહાવ્રતની પાચ ભાવના- (૨૧) ઇષ્ટાનિષ્ટ શબ્દ, (૨૨) રૂપ, (૨૩) ગન્ધ, (૨૪) રસ અને (૨૫) સ્પર્શમા રાગ-દ્વેષ નહિ કરવો આ પચીશ ભાવનાઓના વિષયમા તથા દશાશ્રુતસ્કધના દસ, બૃહત્કલ્પના ૬ અને વ્યવહારસૂત્રના દસ, આ છવ્વીસ અધ્યયનનો પઠન

'चउवीसाए देवेहिं' दश भवनपतयः, अष्टौ व्यन्तराः, पञ्च ज्योतिषिकाः, एको वैमानिकः, इति मिलित्वा चतुर्विंशतिर्देवास्तैः,अथवा चतुर्विंशतितीर्थकरैः। 'पणवीसाए भावणाहिं' भाव्यते=गुणैर्वास्यते आत्मा याभिरिति, भाव्यन्ते=अभ्यस्यन्ते कर्ममलक्षालनार्थं मुमुक्षुभिरिति वा भावनाः—ईर्या[1]-मनो[2]-वचनै[3]-षणा[4]-ऽऽदाननिक्षेपरूपाः पञ्च प्रथममहाव्रतस्य (१)। आलोच्य सभाषण[1] क्रोध[2]-लोभ[3]-भय[4]-हास्येष्वनृतविवर्जनश्चेति[5] पञ्च द्वितीयमहाव्रतस्य (२)। अष्टादशविधशुद्धवसतेर्याचनापूर्वक सेवन[1] प्रतिदिनमवग्रह याचित्वा तृणकाष्ठादिग्रहण[2], पीठफलकाद्यर्थ-

व्यन्तर, पाँच ज्योतिषी और एक वैमानिक, इन चौवीस प्रकार के देवों की अथवा चौवीस तीर्थंकरों की आशातना से जो अतिचार लगा हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ।

जिसके द्वारा आत्मा गुणयुक्त होता है अथवा कर्ममल धोने के लिये मोक्षार्थी जिसका अभ्यास करते हैं, उसे भावना कहते हैं। प्रत्येक महाव्रतकी पाँच पाँच भावनाएँ होने से वे सब मिलकर पचीस हैं। उनमें पहले महाव्रत की पाच भावना—(१) ईर्या, (२) मन, (३) वचन, (४) एषणा, (५) आदाननिक्षेप। दूसरे महाव्रतकी पाँच भावना-(६) विचार कर बोलना, (७) क्रोध, (८) लोभ, (९) भय, (१०) हास्यवश असत्य नहीं बोलना। तीसरे महाव्रतकी पाँच भावना—(११) अठारह प्रकार के शुद्ध स्थानकी याचना करके सेवन करना, (१२) प्रतिदिन तृण काष्ठादिका अवग्रह लेना, (१३)

વૈમાનિક, આ ચોવીશ પ્રકારના દેવોની અથવા તો ચોવીશ તીર્થકરોની આશાતનાથી જે અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ

જેના દ્વારા આત્મા, ગુણયુકત થાય છે, અથવા કર્મમલ ધોવા માટે મોક્ષાર્થી જીવો જેનો અભ્યાસ કરે છે તેને ભાવના કહે છે, પ્રત્યેક મહાવ્રતની પાચ-પાચ ભાવનાઓ હોવાથી તે સર્વ મળીને કુલ પચીસ ભાવના થાય છે તેમા પહેલા મહાવ્રતની પાચ ભાવના (૧) ઇર્યા, (૨) મન, (૩) વચન, (૪) એષણા, (૫) આદાનનિક્ષેપ બીજા મહાવ્રતની પાચ ભાવના (૬) વિચારીને બોલવુ, (૭) ક્રોધ, (૮) લોભ, (૯) ભય, (૧૦) હાસ્યવશ અસત્ય નહિ બોલવુ તે ત્રીજા મહાવ્રતની પાચ ભાવના— (૧૧) અઢાર પ્રકારના શુદ્ધ સ્થાનની યાચના કરીને સેવન કરવુ, (૧૨) પ્રતિદિન

मपि वृक्षादीनामच्छेदन[3], साधारणपिण्डस्याधिकतो न सेवन[4], साधुवैयावृत्यकरण[5] चेति पञ्च तृतीयमहाव्रतस्य (३)। स्त्री-पशु-पण्डकरहितवसतिसेवनं[1], स्त्रीकथावर्जन[2], स्त्र्यङ्गोपाङ्गाऽनवलोकन[3], पूर्वकृतसुरतरतेरस्मरण[4], प्रतिदिन भोजनपरित्यागश्चेति[5] पञ्च चतुर्थमहाव्रतस्य (४)। प्रशस्ताऽप्रशस्त शब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्शेषु रागद्वेषवर्जन, शब्दादिभेदात्पञ्च पञ्चममहाव्रतस्ये (५) ति मिलित्वा पञ्चविंशतिर्भावनास्ताभिः। 'दसा कप्प ववहाराण' दशा कल्प व्यवहाराणा=दशाश्रुतस्कन्ध-बृहत्कल्प व्यवहारसूत्राणा यथाक्रम दश-षड्-दशसङ्ख्यकाऽध्ययनयुक्तानाम् 'उद्देसणकालेहिं' उद्देशनकाले.=पठनसमयैः। 'सत्तावीसाए' सप्तविंशत्या, 'अणगारगुणेहिं' अविद्यमान-

पीठ फलक आदि के लिए भी वृक्षादि को नहीं काटना, (१४) साधरण पिण्डका अधिक सेवन नही करना, (१५) साधुकी वैयावृत्य (वेयावच्च) करना। चौथे महाव्रत की पाँच भावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक-रहित स्थानका सेवन करना, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करना, (१८) स्त्रियों के अगोपागका अवलोकन नही करना, (१९) पूर्वकृत काम भोगका स्मरण नही करना, (२०) प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग करना। पाँचवे महाव्रत की पाँच भावना- (२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४), रस, और (२५) स्पर्शमें राग-द्वेष नही करना। इन पचीस भावनाओं के विषयमें तथा दशाश्रुतस्कन्ध के दस, बृहत्कल्पके छह और व्यवहारसूत्र के दस, इन छब्बीस अध्ययनों के पठनकालमें, और जिनके द्रव्यसे-मिट्टी आदिका बना हुआ

तृण-काष्ठादिनु अवग्रह लेवु (१३) पीठ फलक आदि माटे पण वृक्षने कापवु नहि ते, (१४) साधारण पिंडनु अधिक सेवन करवु नहि ते, (१५) साधुना वैयावृत्य (वैयावच्च) करवी चोथा महाव्रतनी पाच भावना-(१६) स्त्री-पशु-पडक रहित स्थानकनु सेवन करवु, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करवु, (१८) स्त्रीओना अगोपागनु अवलोकन नहि करवु, (१९) पूर्वकृत कामभोगनु स्मरणु नहि करवु, (२०) प्रतिदिन सरस भोजननो त्याग करवो पाचमा महाव्रतनी पाच भावना-(२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४) रस अने (२५) स्पर्शमा राग-द्वेष नहि करवो आ पचीश भावनाओना विषयमा तथा दशाश्रुतस्कधना दश, बृहत्कल्पना छ अने व्यवहारसूत्रना दस, आ छवीस अध्ययननो पठन

मगार=द्रव्यतो गृह भावतः कपायमोहनीय येपा तेऽनगाराः=साधवस्तेपा गुणाः= पञ्चमहाव्रतानि, पञ्चेन्द्रियनिग्रहाः, चत्वारः क्रोधादिविवेकाः, अन्तरात्मशुद्धिसञ्जात भावसत्य, प्रत्युपेक्षणादिक्रियायामुपयुक्तत्व करणसत्य, योगाना मनआदीना यथार्थत्व योगसत्यमिति भाव–करण–योगसत्यानि त्रीणि, क्षमैका, विरागितैका मम्मिद्धे इमे, अकुशलाना मनो–वाक्कायाना निरोधास्त्रयः, ज्ञान–दर्शन–चारित्र सम्पन्नतास्तिस्रः, शीतादिवेदनासहिष्णुत्वमेक, मारणान्तिकोपसर्गसहनशीलता चैकेति सङ्कलनेन सप्तविंशतिरनगारगुणास्तैः ॥ सू० १६ ॥

॥ मूलम् ॥

अट्ठावीसाए आयारप्पकप्पेहिं। एगूणतीसाए पावसुयप्पसंगेहिं ॥ सू० १७ ॥

अगार (घर) और भावसे–कषायमोहनीयरूप अगार नहीं है उन अनगार के (१–५) पाँच महाव्रत, (६–१०) पाँच इन्द्रियनिग्रह, (११–१४) चार कषायजय, (१५) भावसत्य (अन्तरात्मशुद्धि), (१६) करणसत्य (प्रतिलेखनादि क्रिया मे उपयोग), (१७) योगसत्य (शुद्धमार्गमें मनयोग आदि की प्रवृत्ति करना), (१८) क्षमा, (१९) विरागिता–वैराग्य, (२०) अप्रशस्त मन (२१) वचन (२२) काय का निरोध, (२३) सम्यग् दर्शन, (२४) ज्ञान, (२५) चारित्र से युक्तता, (२६) शीत आदि वेदना का सहना, और (२७) मारणान्तिक उपसर्ग सहना। इन सत्ताईस अनगार गुणों के विषय में जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १६ ॥

સમયમા, અને જેના દ્રવ્યથી–માટી આદિનું બનેલુ મકાન (ઘર) અને ભાવથી-કષાય મોહનીય રૂપ અગાર નથી તે અણુગારના (૧–૫) પાચ મહાવ્રત (૬–૧૦) પાચ ઇન્દ્રિયનિગ્રહ (૧૧–૧૪) ચાર કષાય-જય, (૧૫) ભાવસત્ય (અન્તરાત્મશુદ્ધિ), (૧૬) કરણસત્ય (પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયામા ઉપયોગ), (૭) યોગસત્ય (શુદ્ધ માર્ગમા મનોયોગ આદિની પ્રવૃત્તિ કરવી), (૧૮) ક્ષમા, (૧૯) વૈરાગ્ય, (૨૦) અપ્રશસ્ત મન, (૨૧) વચન અને (૨૨) કાયાનું નિરોધ, (૨૩) સમ્યગ્દર્શન, (૨૪) જ્ઞાન અને (૨૫) ચારિત્રથી યુક્તતા, (૨૬) શીત આદિ વેદનાઓનુ સહન કરવુ અને (૨૭) મારણાન્તિક ઉપસર્ગ સહન કરવો આ સત્તાવીશ અણગારના ગુણોના વિષયમા જે કોઇ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ ' (સૂ૦ ૧૬)

॥ छाया ॥

अष्टाविंशत्याऽऽचारप्रकल्पैः । एकोनत्रिंशता पापश्रुतप्रसङ्गैः ॥ सू० १७॥

॥ टीका ॥

'अट्ठावीसाए' अष्टाविंशत्या, 'आयारप्पकप्पेहिं' आचारः=आचाराङ्ग पञ्चविंशत्यध्ययनात्मक, तत्र (१) शस्त्रपरिज्ञा-(२) लोकविजय-(३)-शीतोष्णीय-(४) सम्यक्त्व-(५) लोकसार-(६) धूत-(७) विमोक्षो-(८) पधानश्रुत-(९) महापरिज्ञारूपाध्ययननवकः प्रथमश्रुतस्कन्धः, (१-२) पिण्डैपणा-शय्ये-(३) र्या-(४) भाषा-(५) वस्त्रैपणा-(६-७) पात्रैपणाऽवग्रहप्रतिमाः, (८) स्थानसप्तैकिका (९) नैषेधिकीसप्तैकिका (१०) उच्चारप्रस्रवणसप्तैकिका (११) शब्दसप्तैकिका (१२) रूपसप्तैकिका (१३) परक्रियासप्तैकिका (१४)

आचाराग के दो श्रुतस्कन्ध हैं, उनमें प्रथम के नव अध्ययन हैं-(१) शास्त्रपरिज्ञाध्ययन (२) लोकविजयाध्ययन, (३) शीतोष्णनामाध्ययन, (४) सम्यक्त्वनामाध्ययन, (५) लोकसाराध्ययन, (६) धूताध्ययन, (७) विमोक्षाध्ययन, (८) उपधानश्रुताध्ययन, (९) महापरिज्ञाध्ययन । द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सोलह-(१) पिण्डैषणाध्ययन, (२) शय्याध्ययन, (३) ईर्याध्ययन, (४) भाषाध्ययन, (५) वस्त्रैषणाध्ययन, (६) पात्रैषणाध्ययन, (७) अवग्रहप्रतिमाध्ययन, (८) स्थानसप्तैकिकाध्ययन, (९) नैषेधिकीसप्तैकिकाध्ययन, (१०) उच्चारप्रस्रवणसप्तैकिकाध्ययन, (११) शब्दसप्तैकिकाध्ययन, (१२) रूपसप्तैकिकाध्ययन, (१३) परक्रियासप्तैकिकाध्ययन, (१४) अन्योन्य-

---

આચારાંગના બે શ્રુતસ્કંધ છે, તેમાં પ્રથમના નવ અધ્યયન છે (૧) શસ્ત્રપરિજ્ઞાધ્યયન (૨) લોકવિજયાધ્યયન (૩) શીતોષ્ણનામાધ્યયન, (૪) સમ્યક્ત્વનામાધ્યયન, (૫) લોકસારાધ્યયન, (૬) ધૂતાધ્યયન (૭) વિમોક્ષાધ્યયન, (૮) ઉપધાનશ્રુતાધ્યયન, (૯) મહાપરિજ્ઞાધ્યયન દ્વિતીય શ્રુતસ્કંધના સોળ અધ્યયન છે-(૧) પિંડૈષણાધ્યયન (૨) શય્યા, (૩) ઈર્યા, (૪) ભાષા, (૫) વસ્ત્રૈષણા, (૬) પાત્રૈષણા (૭) અવગ્રહપ્રતિમાધ્યયન, (૮) સ્થાનસપ્તૈકિકાધ્યયન, (૯) નૈષેધિકી સપ્તૈકિકાધ્યયન (૧૦) ઉચ્ચારપ્રસ્રવણસપ્તૈકિકાધ્યયન (૧૧) શબ્દસપ્તૈકિકાધ્યયન (૧૨) રૂપસપ્તૈકિકાધ્યયન (૧૩) પરક્રિયાસપ્તૈકિકાધ્યયન (૧૪) અન્યોન્યક્રિયા

अन्योन्यक्रियासप्तैकिका, (१५) भावना, (१६) विमुक्तिश्चेति षोडशाध्ययनात्मको द्वितीयश्रुतस्कन्धः, इति मिलित्वा पञ्चविंशतिरध्ययनानि, प्रकल्पः=प्रकृष्टः कल्पः स (१-२) चोद्घाताऽनुद्घाता-ऽऽ-(३) रोपणारूपाध्ययनत्रयात्मकनिशीथापर नामक इति सकल[1] सङ्कलनयाऽष्टाविंशतिरध्ययनानि, तथा चाऽऽचारपदेन पञ्चविंशतेरध्ययनाना, प्रकल्पपदेन च त्रयाणामध्ययनाना ग्रहणमभिप्रेत्य आचाराश्च प्रकल्पाश्चेति द्वन्द्वेनाऽऽचारप्रकल्पास्तैरिति बहुवचनमुक्तम् ॥

'एगूणतीसाए' एकोनत्रिंशता, 'पावसुयप्पसगेहिं' पातयन्त्यात्मान दुर्गताविति पापानि, श्रूयन्ते गुरुमुखादिति श्रुतानि=शास्त्राणि, पापानि=पापरूपाणि श्रुतानि, पापश्रुतानि तेषा प्रसङ्गाः=तद्विवेचनरूपास्तदभ्यसनरूपा वा पापश्रुत-प्रसङ्गास्तै', तत्र पापश्रुतानि यथा-भौमोत्पातस्वप्ना-ऽन्तरिक्षाङ्ग-स्वर-व्यञ्जन-

क्रियासप्तैकिकाध्ययन, (१५) भावनाध्ययन, (१६) विमुक्ताध्ययन, इस प्रकार दोनों मिलाकर पचीस अध्ययन हुए, और निशीथ के तीन—(१) उद्घात, (२) अनुद्घात, (३) आरोपणा, इन अट्ठाईस अध्ययनों की श्रद्धा प्ररूपणा आदिमे जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो उससे मै निवृत्त होता हूँ'।

आत्मा को दुर्गति में डालनेवाले को 'पाप' कहते हैं, जो गुरुमुख से सुना जाय उसे 'श्रुत' कहते है, और पापरूप श्रुत को 'पापश्रुत' कहते हैं, वह उन्तीस प्रकार का है—(१) भौम-भूकम्प आदि के फल का प्रतिपादक शास्त्र, (२) उत्पात-अपने आप

सप्तैकिकध्ययन (१५) भावनाध्ययन, (१६) विमुकताध्ययन એ રીતે બન્ને મળીને પચીશ અધ્યયન થયા, અને નિશીથના ત્રણ (૧) ઉદ્ઘાત, (૨) અનુદ્ઘાત, (૩) આરોપણ એ પ્રમાણે એ અઠ્ઠાવીશ અધ્યયનોની શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા આદિમા જે કાઈ અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ

આત્માને દુર્ગતિમા નાખનાર ક્રિયા તેને 'પાપ' કહે છે જે ગુરુના મુખથી સાભળવામા આવે તેને 'શ્રુત' કહે છે અને પાપરૂપ શ્રુતને 'પાપશ્રુત' કહે છે તે ઓગણત્રીશ પ્રકારના છે (૧) ભૌમ-ભૂકમ્પ વગેરેના ફ્લને કહેનારા શાસ્ત્ર (૨) ઉત્પાત-પોતાની મેળે-કુદરતી રીતે થનારી-લોહીની વૃષ્ટિના ફળને જણાવનારા

१-' सकल '-आचार-प्रकल्पयोरुभयोरिति भाव ।

लक्षणरूपाण्यष्टौ। प्रत्येक सूत्र (मूल)-वृत्ति (टीका) वार्तिक-(आकाङ्क्षितकदेशपूरण) -भेदाच्चतुर्विंशतिः, विकथानुयोग-विद्यानुयोग-मन्त्रानुयोग-योगानुयोगा-ऽन्य-तैर्थिकप्रवृत्तानुयोगाश्चेति मिलित्वा एकोनत्रिंशत्। तत्र भौम=भूकम्पादिफल-प्रतिपादक शास्त्रम्। उत्पात=स्वाभाविकरुधिरवृष्ट्यादिफलप्रतिपादकम्। [1]स्वप्न=स्वप्नफलप्रतिपादकम्। अङ्गम्=अङ्गस्फुरणादिफलप्रतिपादकम्। स्वर=जीवाजीव-गतस्वरफलप्रतिपादकम्। व्यज्यतेऽनेनेति व्यञ्जन=चिह्न, तत्सम्बन्धाच्छास्त्रमपि व्यञ्जन, तच्च जन्मोत्तरकालजायमानशरीरस्थतिलमषाऽऽदिचिह्नविशेषशुभाशुभ-फलसूचकम्। लक्षण=शरीरसहजातमानोन्मानप्रमाणादिफलाभिधायकम्। इत्येवं चतुर्विंशतिः। तथा विकथानुयोग=कामोपायप्रतिपादकानि वात्स्यायनप्रणीत-

होनेवाली रुधिर आदि की वृष्टि के फल का कहनेवाला शास्त्र, (३) स्वप्न-स्वप्नफलप्रतिपादक शास्त्र, (४) अन्तरिक्ष-आकाश में ग्रहयुद्ध आदि के फलका सूचक शास्त्र, (५) अंग फडकने के फल का सूचक शास्त्र, (६) स्वर-जीव आदि के स्वर के फल का प्रदर्शक शास्त्र, (७) व्यञ्जन-शरीर के तिल, मष आदि के फल का बोधक शास्त्र, (८) लक्षण-शरीर के साथ होने वाले मान उन्मान और प्रमाण के फलका प्रतिपादक शास्त्र ये आठ, सूत्र (मूल), वृत्ति (अर्थ) और वार्तिक (आकाङ्क्षित अर्थ की पूर्त्ति) ऐसे एक एक के तीन तीन भेद होने से आठत्रिक चौबीस हुए। (१) विकथा-नुयोग-कामोद्दीपकशास्त्र वात्स्यायन प्रणीत कामसूत्र आदि, (२)

શાસ્ત્ર (૩) સ્વપ્ન-સ્વપ્નફલનુ પ્રતિપાદન કરનારા શાસ્ત્ર (૪) અન્તરિક્ષ-આકાશમા ગ્રહયુદ્ધ આદિના ફલને જણાવનારૂ શાસ્ત્ર (૫) અગ ફરકે તેનુ ફળ જણાવનારૂ શાસ્ત્ર (૬) સ્વર-જીવ આદિના સ્વરના ફળને જણાવનારૂ શાસ્ત્ર (૭) વ્યજન-શરીરમા તિલ, મસા આદિના ફલને જણાવનારૂ શાસ્ત્ર (૮) લક્ષણ-શરીરના સાથે થવાવાળા માન ઉન્માન અને પ્રમાણના ફલને જણાવનારૂ શાસ્ત્ર એ આઠ સૂત્ર (મૂલ), વૃત્તિ (અર્થ) અને વાર્તિક (આકાક્ષિત અર્થની પૂર્ત્તિ) એ પ્રમાણે એક-એકના ત્રણ-ત્રણ ભેદ હોવાથી ત્રણ અટ્ઠા ચોવીશ થાય છે, (૧) વિકથાનુયોગ-કામોદ્દીપકશાસ્ત્ર-વાત્સ્યાયન રચિત કામસૂત્રાદિ, (૨) વિદ્યાનુયોગ-રોહિણી

१-स्वप्नः=स्वप्नसम्बन्धिफलाफलविषयोऽस्मिन्नस्तीति स्वप्नम्, अर्श आदि-त्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययस्तेन 'स्वप्न' इति जातम्।

अन्योन्यक्रियासप्तैकिका, (१५) भावना, (१६) विमुक्तिश्चेति षोडशाध्ययनात्मको द्वितीयश्रुतस्कन्धः, इति मिलित्वा पञ्चविंशतिरध्ययनानि, प्रकल्पः=प्रकृष्टः कल्पः स (१-२) चोद्घाताऽनुद्घाता-ऽऽ-(३) 'रोपणारूपाध्ययनत्रयात्मकनिशीथापर नामक इति सकल[1] सङ्कलनयाऽष्टाविंशतिरध्ययनानि, तथा चाऽऽचारपदेन पञ्चविंशतेरध्ययनानां, प्रकल्पपदेन च त्रयाणामध्ययनानां ग्रहणमभिप्रेत्य आचाराश्च प्रकल्पाश्चेति द्वन्द्वेनाऽऽचारप्रकल्पास्तैरिति बहुवचनमुक्तम् ॥

'एगूणतीसाए' एकोनत्रिंशता, 'पावसुयप्पसंगेहिं' पातयन्त्यात्मानं दुर्गताविति पापानि, श्रूयन्ते गुरुमुखादिति श्रुतानि=शास्त्राणि, पापानि=पापरूपाणि श्रुतानि, पापश्रुतानि तेषां प्रसङ्गाः=तद्विवेचनरूपास्तदभ्यसनरूपा वा पापश्रुत-प्रसङ्गास्तैः, तत्र पापश्रुतानि यथा-भौमोत्पातस्वप्ना-ऽन्तरिक्षाङ्ग-स्वर-व्यञ्जन-

क्रियासप्तैकिकाध्ययन, (१५) भावनाध्ययन, (१६) विमुक्ताध्ययन, इस प्रकार दोनों मिलाकर पच्चीस अध्ययन हुए, और निशीथ के तीन—(१) उद्घात, (२) अनुद्घात, (३) आरोपणा, इन अट्ठाईस अध्ययनों की श्रद्धा प्ररूपणा आदिमें जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ'।

आत्मा को दुर्गति में डालनेवाले को 'पाप' कहते हैं, जो गुरुमुख से सुना जाय उसे 'श्रुत' कहते हैं, और पापरूप श्रुत को 'पापश्रुत' कहते है, वह उन्तीस प्रकार का है—(१) भौम-भूकम्प आदि के फल का प्रतिपादक शास्त्र, (२) उत्पात-अपने आप

સપ્તૈકિકાધ્યયન (૧૫) ભાવનાધ્યયન, (૧૬) વિમુક્તાધ્યયન એ રીતે બન્ને મળીને પચીશ અધ્યયન થયા, અને નિશીથના ત્રણ (૧) ઉદ્‌ઘાત, (૨) અનુદ્‌ઘાત, (૩) આરોપણા એ પ્રમાણે એ અઠ્ઠાવીશ અધ્યયનોની શ્રદ્ધા પ્રરૂપણા આદિમા જે કોઇ અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ

આત્માને દુર્ગતિમા નાખનાર ક્રિયા તેને 'પાપ' કહે છે જે ગુરુના મુખથી સાભળવામા આવે તેને 'શ્રુત' કહે છે અને પાપરૂપ શ્રુતને 'પાપશ્રુત' કહે છે તે ઓગણત્રીશ પ્રકારના છે (૧) ભૌમ-ભૂકમ્પ વગેરેના ફલને કહેનારા શાસ્ત્ર (૨) ઉત્પાત-પોતાની મેળે-કુદરતી રીતે થનારી-લોહીની વૃષ્ટિના ફળને જણાવનારા

[1]-'सकल'-आचार-प्रकल्पयोरुभयोरिति भाव. ।

नीयशब्देन सामान्यतोऽष्टविध कर्म विशेपतश्चाष्टविधकर्मान्तर्गत चतुर्थ कर्म, तस्य स्थानानि=निमित्तानि मोहनीयस्थानानि=मोहनीयकर्मबन्धनजनकानीत्यर्थस्तैः। सम्बन्धस्तु यथापूर्वम्। तत्र त्रिंशत्स्थानानि यथा- (१) जले व्रोडयित्वा स्त्री-पुरुपादि-त्रसजीवाना हननम्, (२) श्वासाद्यवरोधेन हननम्, (३) अग्निधूम-प्रयोगेण हननम्, (४) प्रकृष्टप्रहारपूर्वकमस्तकस्फोटनेन हननम्, (५) आर्द्र-चर्मणा शिरो वेष्टयित्वा हननम्, (६) उन्मत्तादीन् मातुलुङ्गादिफलादिभिः पौनः-पुन्येन हत्वोपहसनम्, यद्वा तस्करमहासाहसिकादिवच्छलेन निर्जने वने नीत्वा हननम्, (७) गूढमायाचारित्व-मायया मायाऽऽच्छादन सूत्रार्थगोपन वा, (८) स्वात्मकृतस्य ऋषिघाताद्यकृत्यस्यान्यस्मिन्नारोपणम्, (९) सदसि मिश्रभापास-भाषणम्, (१०) भूपस्यार्थाऽऽगमद्वारमवरुध्य तद्द्वारा राज्यादेः स्वायत्तीकरणम्,

---

मोहनीय कर्म के बन्ध का कारण है, उसे 'महामोहनीयस्थान' कहते हैं, उसके तीस भेद हैं— (१) त्रसजीव स्त्रीपुरुष आदि पञ्चेन्द्रियों को पानी में डुबाकर मारना, (२) श्वास आदि को रोक कर मारना, (३) अग्नि धूम आदि के प्रयोग से मारना, (४) लट्ठ आदि से शिर फोड कर मारना, (५) गीले चमडे से सिर बांध कर मारना, (६) पागल को नीबू आदि से मारकर हँसना, या चोर डाकुओं की तरह छल से निर्जन स्थान में लेजाकर मारना, (७) कपट में कपट करना अथवा सूत्र और अर्थको छिपाना, (८) अपने किये हुए ऋपिघातादि के पापका दूसरे पर आरोप करना, (९) सभा में मिश्र भाषा बोलना, (१०) राजा की आमदनी आदि

બંધનુ કારણ છે તેને મહામોહનીય સ્થાન કહે છે, તેના ત્રીશ ભેદ છે (૧) ત્રસજીવ સ્ત્રી-પુરૂષ આદિ પંચેન્દ્રિય જીવોને પાણીમા ડુબાવી ડુબાવીને મારવા (૨) શ્વાસ વગેરે રોકીને મારવા (૩) અગ્નિ, ધૂમાડા વગેરેના પ્રયોગથી મારવા તે. (૪) લાઠી આદિથી માથુ ફોડીને મારવુ (૫) લીલા ચામડાથી માથુ બાધીને મારવુ (૬) ગાડા માણસને લિંબુના ફળ વડે મારીને હસવુ, અગર ચોર-ડાકુની પ્રમાણે છલ-કપટ કરી વગડામા લઈ જઇને મારવુ (૭) કપટમા કપટ કરવુ અથવા સૂત્ર-અર્થને છુપાવવુ (૮) પોતે કરેલા ઋષિઘાતાદિ પાપનો બીજા ઉપર આરોપ મૂકવો (૯) સભામા મિશ્રભાષા બોલવી (૧૦) રાજાની

कामसूत्रादीनि, विद्यानुयोगः=रोहिण्यादिविद्यासाधनोपायप्रदर्शकानि शास्त्राणि। मन्त्रानुयोगः=भूतपिशाचादिसाधकमन्त्रप्रतिपादकानि शास्त्राणि। योगाऽनुयोग = वशीकरणादिविधिबोधकानि हरमेखलादियोगप्रतिपादकानि शास्त्राणि। अन्यतैर्थिकप्रवृत्तानुयोग'=अन्ये च ते तैर्थिकाः=अन्यतैर्थिकाः=कापिल (साङ्ख्या) दयस्तेभ्यः प्रवृत्तः=अन्यतैर्थिकप्रवृत्तः स चासावनुयोग =स्वकीयाऽऽचारवस्तुतत्त्वाना विचार विशेषस्तत्करणार्थं शास्त्रसन्दर्भोऽपि तथा 'शृद्धा दारा' इतिवदिति। सम्बन्धस्तु 'यो मयाऽतिचारः कृतः' इत्यादिना प्रागुक्तवदेवेति वहुश उक्तमस्माभिः ॥सू० १७॥

॥ मूलम् ॥

तीसाए मोहणीयट्ठाणेहिं ॥ सू० १८ ॥

॥ छाया ॥

त्रिंशता मोहनीयस्थानैः ॥ सू० १८ ॥

॥ टीका ॥

'तीसाए' त्रिंशता=त्रिंशत्सख्यकै, 'मोहणीयट्ठाणेहिं' अत्र मोह-

विद्यानुयोग-रोहिणी आदि विद्या के साधन के उपाय का प्रदर्शक शास्त्र, (३) मन्त्रानुयोग-भूतपिशाच आदि के साधक मन्त्रों के शास्त्र, (४) योगानुयोग-वशीकरण आदि का बोधक, तथा हरमेखलादियोगप्रतिपादक शास्त्र, (५) अन्यतैर्थिकप्रवृत्तानुयोग-कपिल आदि के बनाये हुए साख्य आदि शास्त्र, इनकी श्रद्धा प्ररूपणा आदि करने से जो अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ' ॥ सू० १७ ॥

जो सामान्य रूप से आठ कर्मोंके और विशेषरूप से

આદિ વિદ્યા આદિના સાધનાના ઉપાયનું દર્શન કરાવનારૂ શાસ્ત્ર, (૩) મન્ત્રાનુ-યોગ-ભૂત પિશાચ આદિના સાધક મન્ત્રોનું શાસ્ત્ર (૪) યોગાનુયોગ-વશીકરણ આદિનો બોધ કરાનારૂ શાસ્ત્ર, તથા હર-મેખલાદિ યોગ પ્રતિપાદન કરનારૂ શાસ્ત્ર (૫) અન્યતૈર્થિકપ્રવૃત્તાનુયોગ-કપિલ આદિના બનાવેલા સાખ્યાદિ શાસ્ત્ર, તેની શ્રદ્ધા-પ્રરૂપણાદિ કરવાથી જે કોઇ અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ' (સૂ૦ ૧૭)

જે સામાન્ય રૂપથી આઠ કર્મોના અને વિશેષરૂપથી મોહનીય કર્મના

नीयशब्देन सामान्यतोऽष्टविध कर्म विशेषतश्चाष्टविधकर्मान्तर्गत चतुर्थं कर्म, तस्य स्थानानि=निमित्तानि मोहनीयस्थानानि=मोहनीयकर्मबन्धनजनकानीत्यर्थस्तैः। सम्बन्धस्तु यथापूर्वम्। तत्र त्रिंशत्स्थानानि यथा- (१) जले ब्रोडयित्वा स्त्री-पुरुषादि-त्रसजीवाना हननम्, (२) श्वासाद्यवरोधेन हननम्, (३) अग्निधूम-प्रयोगेण हननम्, (४) मकुष्टप्रहारपूर्वकमस्तकस्फोटनेन हननम्, (५) आर्द्र-चर्मणा शिरो वेष्टयित्वा हननम्, (६) उन्मत्तादीन् मातुलुङ्गादिफलादिभिः पौनः-पुन्येन हत्वोपहसनम्, यद्वा तस्करमहासाहसिकादिवच्छलेन निर्जने वने नीत्वा हननम्, (७) गूढमायाचारित्व-मायया मायाऽऽच्छादन सूत्रार्थगोपन वा, (८) स्वात्मकृतस्य ऋषिघाताद्यकृत्यस्यान्यस्मिन्नारोपणम्, (९) सदसि मिश्रभाषास-भाषणम्, (१०) भूपस्यार्थाऽऽगमद्वारमवरुध्य तद्द्वारा राज्यादेः स्वायत्तीकरणम्,

---

मोहनीय कर्म के बन्ध का कारण है, उसे 'महामोहनीयस्थान' कहते हैं, उसके तीस भेद हैं— (१) त्रसजीव स्त्रीपुरुष आदि पञ्चेन्द्रियों को पानी में डुबाकर मारना, (२) श्वास आदि को रोक कर मारना, (३) अग्नि धूम आदि के प्रयोग से मारना, (४) लट्ठ आदि से शिर फोड कर मारना, (५) गीले चमडे से सिर बाध कर मारना, (६) पागल को नीबू आदि से मारकर हँसना, या चोर डाकुओं की तरह छल से निर्जन स्थान में लेजाकर मारना, (७) कपट में कपट करना अथवा सूत्र और अर्थको छिपाना, (८) अपने किये हुए ऋषिघातादि के पापका दूसरे पर आरोप करना, (९) सभा में मिश्र भाषा बोलना, (१०) राजा की आमदनी आदि

બંધનું કારણ છે તેને મહામોહનીય સ્થાન કહે છે, તેના ત્રીશ ભેદ છે (૧) ત્રસજીવ સ્ત્રી-પુરુષ આદિ પચેન્દ્રિય જીવોને પાણીમા ડુબાવી ડુબાવીને મારવા (૨) શ્વાસ વગેરે રોકીને મારવા (૩) અગ્નિ, ધૂમાડા વગેરેના પ્રયોગથી મારવા તે (૪) લાઠી આદિથી માથુ ફોડીને મારવુ (૫) લીલા ચામડાથી માથુ બાધીને મારવુ (૬) ગાડા માણસને લિબુના ફળ વડે મારીને હસવુ, અગર ચોર-ડાકુની પ્રમાણે છલ-કપટ કરી વગડામા લઈ જઈને મારવુ (૭) કપટમા કપટ કરવુ અથવા સૂત્ર-અર્થને છુપાવવુ (૮) પોતે કરેલા ઋષિઘાતાદિ પાપનો બીજા ઉપર આરોપ મૂકવો (૯) સભામા મિશ્રભાષા બોલવી (૧૦) રાજાની

(११) अकुमारब्रह्मचारिणः सतोऽपि 'अहमस्मि कुमारब्रह्मचारी'-तिभाषणम्, (१२) मैथुनादनिवृत्तस्य सतोऽपि 'ब्रह्मचार्यह'-मिति सभाषणम्, (१३) यदवलम्बनेन वृद्धिमुपगतस्तस्यैव विभूतिषु गर्धोभः, (१४) यैः पौरजनैर्यः स्वामिपदे समारोपितस्तेन तेषामनिष्टकरणम्, (१५) स्त्रीयाण्डसमूहस्य नागिन्येव स्वामिनो व्यभिचारिण्या पत्न्येव पोषयितु राजादेर्दुःसचिवादिनेवाऽऽश्रयस्य स्वेन हननम्, (१६) एकदेशाधिपतेर्घातचिन्तन घातो वा, (१७) अनेकदेशाधिपतेर्बहुजननायकस्य, हेयोपादेयवस्तुनिरूपकधार्मिकपुरुषस्य वा घातचिन्तन घातो वा, (१८) प्रव्रज्यादिग्रहणरूपधर्मार्थमुद्यतस्य पुरुषस्य धर्मादे-

रोककर उसके राज्य आदि को अपने अधिकार मे करना, (११) बालब्रह्मचारी न रहने पर भी अपने को बालब्रह्मचारी कहना, (१२) ब्रह्मचारी नहीं और ब्रह्मचारी नाम धराना, (१३) जिसके आश्रय से उन्नत हुआ हो उसीकी जड काटना, (१४) जिस जन-समुदाय से उच्च अधिकार पाया हो उसीका अनिष्ट करना, (१५) जैसे सर्पिणी अपने अण्डेका, व्यभिचारिणी स्त्री अपने पतिका और दुष्ट मन्त्री अपने राजाका संहार करते हैं उसी प्रकार अपने रक्षक का विनाश करना, (१६) एक देशके स्वामी राजा का घात-चिन्तन करना, या घात करना, (१७) अनेक देशके स्वामी राजा, या जनसमुदाय के नायक, अथवा धर्मात्मा पुरुष का घात-चिन्तन करना या घात करना, (१८) प्रव्रज्या लेने के लिये उद्यत

આમદાની વગેરે રોકીને તેના રાજ્યને પોતાના કબજામા લેવુ (૧૧) બાલબ્રહ્મચારી ન હોવા છતાય પોતાને બાલબ્રહ્મચારી કહેવરાવવુ, (૧૨) બ્રહ્મચારી ન હોય અને બ્રહ્મચારી કહેવરાવવુ (૧૩) જેના આશ્રયે પોતાની ઉન્નતિ થઇ હોય તેજ માણસના મૂળ કાઢવા તે (૧૪) જે માણસના સમુદાયથી ઉચ્ચ અધિકાર મળ્યો હોય તેનુજ અનિષ્ટ કરવુ (૧૫) જેવી રીતે સર્પિણી પોતાના ઇંડાનો, વ્યભિચારિણી સ્ત્રી પોતાના પતિનો અને દુષ્ટ મત્રી પોતાના રાજાનો સહાર કરે છે, તે પ્રમાણે પોતાના રક્ષકનો વિનાશ કરવો (૧૬) એક દેશના સ્વામી રાજાનો ઘાત ચિંતવવો અથવા ઘાત કરવો (૧૭) અનેક દેશના સ્વામી રાજા, અથવા જનસમુદાયના નાયક અથવા ધર્માત્મા પુરુષના ઘાતનુ ચિન્તવન કરવુ, અગર તો ઘાત કરવો (૧૮) પ્રવ્રજ્યા લેવા તૈયાર થએલા પુરુષના પરિણામને પાછા

भ्रंशनम्, (१९) वीतरागावर्णवादकरणम्, (२०) मोक्षमार्गस्यापकरणमवर्णवाद-करण वा, (२१) येभ्य आचार्योपाध्यायेभ्यः सूत्रविनयादिकं गृहीत तेषामेव निन्दनम्, (२२) आचार्योपाध्यायादीना यथाशक्ति वैयावृत्त्याऽकरणम्, विनयाद्यकरण वा, (२३) अबहुश्रुतस्या ऽपि सतो 'बहुश्रुतोऽस्मी'-ति वचनम्' (२४) अतपस्विन' सतोऽपि 'तपस्व्यहमस्मी' ति प्रकथनम्, (२५) ग्लानादीना वैयावृत्त्याकरणम्, (२६) हिंसोपदेशदान सघच्छेदभेदादिकरण वा, (२७) आत्मश्लाघार्थ मुहुर्मुहुरधार्मिकवशीकरणादिप्रयोगसाधनम्, (२८) ऐहिक-पारलौकिककामभोगाना तीव्राभिलापाऽऽविष्करणम्, (२९) ऋद्धयादिमता

पुरुष के परिणामों को हटाना, (१९) वीतराग का अवर्णवाद करना, (२०) मोक्षमार्गका अपकार, अथवा अवर्णवाद करना, (२१) जिन आचार्य उपाध्याय आदिकों से सूत्र विनय आदि सीखे हों उन्ही की निंदा करना, (२२) आचार्य उपाध्याय आदिकों की यथाशक्ति वैयावृत्त्य विनय आदि का नहीं करना, (२३) बहुश्रुत नही होने परभी 'मै बहुश्रुत हूँ' ऐसा कहना, (२४) तपस्वी न होने पर भी तपस्वी नाम धराना, (२५) ग्लान आदिकी यथाशक्ति वैयावृत्त्य नहीं करना, (२६) हिंसाका उपदेश देना या सघमें छेद-भेद करना, (२७) अपनी बडाई के लिये वारवार वशीकरण आदि अधार्मिक प्रयोगों का करना, (२८) इसलोक या परलोक सम्बन्धी कामभोगों की तीव्र लालसा करना, (२९) ऋद्धियुक्त

હઠાવી દેવા તે (૧૯) વીતરગના અવર્ણવાદ કરવો (૨૦) મોક્ષમાર્ગનો અપકાર, અથવા અવર્ણવાદ કરવો (૨૧) જે આચાર્ય ઉપાધ્યાય આદિથી સૂત્ર વિનય આદિ શીખ્યા હોય તેની નિન્દા કરવી (૨૨) આચાર્ય ઉપાધ્યાય વગેરેની યથા-શકિત વૈયાવચ્ચ વિનય આદિ નહિ કરવુ તે (૨૩) બહુશ્રુત નહીં હોવા છતાય પણ 'હુ બહુશ્રુત છુ' એમ કહેવુ (૨૪) તપસ્વી નહિ હોવા છતાય તપસ્વી નામ ધરાવવુ (૨૫) ગ્લાન આદિની યથાશકિત વૈયાવૃત્ય નહિ કરવી (૨૬) હિંસાનો ઉપદેશ આપવો અથવા તો સઘમા છેદ-ભેદ પાડવો (૨૭) પોતાની બડાઇ માટે વારવાર વશીકરણ આદિ અધાર્મિક પ્રયોગ કરવો (૨૮) આ લોક અથવા પર-લોક સબધી કામભોગની તીવ્ર લાલસા કરવી, (૨૯) ઋદ્ધિયુક્ત દેવોનો અવ-

(११) अकुमारब्रह्मचारिणः सतोऽपि 'अहमस्मि कुमारब्रह्मचारी'-तिभाषणम्, (१२) मैथुनादनिवृत्तस्य सतोऽपि 'ब्रह्मचार्यह'-मिति सभाषणम्, (१३) यदवलम्बनेन वृद्धिमुपगतस्तस्यैव विभूतिषु गलोभः, (१४) यैः पौरजनैर्यः स्वामिपदे समारोपितस्तेन तेपामनिष्टकरणम्, (१५) स्त्रीयाण्डसमूहस्य नागिन्येव स्वामिनो व्यभिचारिण्या पत्न्येव पोपयितृ राजादेर्दुःसचिवादिनेवाऽऽश्रयस्य स्वेन हननम्, (१६) एकदेशाधिपतेर्घातचिन्तन घातो वा, (१७) अनेकदेशाधिपतेर्बहुजननायकस्य, हेयोपादेयवस्तुनिरूपकधार्मिकपुरुषस्य वा घातचिन्तन घातो वा, (१८) प्रव्रज्यादिग्रहणरूपधर्मार्थमुद्यतस्य पुरुषस्य धर्मादे-

रोककर उसके राज्य आदि को अपने अधिकार मे करना, (११) बालब्रह्मचारी न रहने पर भी अपने को बालब्रह्मचारी कहना, (१२) ब्रह्मचारी नहीं और ब्रह्मचारी नाम धराना, (१३) जिसके आश्रय से उन्नत हुआ हो उसीकी जड काटना, (१४) जिस जनसमुदाय से उच्च अधिकार पाया हो उसीका अनिष्ट करना, (१५) जैसे सर्पिणी अपने अण्डेका, व्यभिचारिणी स्त्री अपने पतिका और दुष्ट मन्त्री अपने राजाका सहार करते है उसी प्रकार अपने रक्षक का विनाश करना, (१६) एक देशके स्वामी राजा का घातचिन्तन करना, या घात करना, (१७) अनेक देशके स्वामी राजा, या जनसमुदाय के नायक, अथवा धर्मात्मा पुरुष का घातचिन्तन करना या घात करना, (१८) प्रव्रज्या लेने के लिये उद्यत

આમદાની વગેરે રોકીને તેના રાજ્યને પોતાના કબજામા લેવુ (૧૧) બાલબ્રહ્મચારી ન હોવા છતાય પોતાને બાલબ્રહ્મચારી કહેવરાવવુ, (૧૨) બ્રહ્મચારી ન હોય અને બ્રહ્મચારી કહેવરાવવુ (૧૩) જેના આશ્રયે પોતાની ઉન્નતિ થઇ હોય તેજ માણસના મૂળ કાઢવા તે (૧૪) જે માણસના સમુદાયથી ઉચ્ચ અધિકાર મળ્યો હોય તેનુજ અનિષ્ટ કરવુ (૧૫) જેવી રીતે સર્પિણી પોતાના ઇંડાનો, વ્યભિચારિણી સ્ત્રી પોતાના પતિનો અને દુષ્ટ મત્રી પોતાના રાજાનો સહાર કરે છે, તે પ્રમાણે પોતાના રક્ષકનો વિનાશ કરવો (૧૬) એક દેશના સ્વામી રાજાનો ઘાત ચિંતવવો અથવા ઘાત કરવો (૧૭) અનેક દેશના સ્વામી રાજા, અથવા જનસમુદાયના નાયક અથવા ધર્માત્મા પુરુષના ઘાતનુ ચિન્તવન કરવુ, અગર તો ઘાત કરવો (૧૮) પ્રવ્રજ્યા લેવા તૈયાર થએલા પુરુષના પરિણામને પાછા

भ्रंशनम्, (१९) वीतरागावर्णवादकरणम्, (२०) मोक्षमार्गस्यापकरणमवर्णवाद-करण वा, (२१) येभ्य आचार्योपाध्यायेभ्यः सूत्रविनयादिक गृहीत तेषामेव निन्दनम्, (२२) आचार्योपाध्यायादीना यथाशक्ति वैयावृत्त्याऽकरणम्, विन-याऽकरण वा, (२३) अवहुश्रुतस्या ऽपि सतो 'वहुश्रुतोऽस्मी'-ति वचनम्' (२४) अतपस्विन' सतोऽपि 'तपस्व्यहमस्मी' ति प्रकथनम्, (२५) ग्लानादीना वैयावृत्त्याकरणम्, (२६) हिंसोपदेशदान सघच्छेदभेदादिकरण वा, (२७) आत्मश्लाघार्थं मुहुर्मुहुरधार्मिकवशीकरणादिप्रयोगसाधनम्, (२८) ऐहिक-पारलौकिककामभोगाना तीव्राभिलाषाऽऽविष्करणम्, (२९) ऋद्धयादिमता

पुरुष के परिणामों को हटाना, (१९) वीतराग का अवर्णवाद करना, (२०) मोक्षमार्गका अपकार, अथवा अवर्णवाद करना, (२१) जिन आचार्य उपाध्याय आदिकों से सूत्र विनय आदि सीखे हों उन्ही की निंदा करना, (२२) आचार्य उपाध्याय आदिकों की यथाशक्ति वैयावृत्त्य विनय आदि का नहीं करना, (२३) बहुश्रुत नहीं होने परभी 'मै बहुश्रुत हूँ' ऐसा कहना, (२४) तपस्वी न होने पर भी तपस्वी नाम धराना, (२५) ग्लान आदिकी यथाशक्ति वैयावृत्त्य नहीं करना, (२६) हिंसाका उपदेश देना या सघमें छेद-भेद करना, (२७) अपनी बडाई के लिये वारवार वशीकरण आदि अधार्मिक प्रयोगों का करना, (२८) इसलोक या परलोक सम्बन्धी कामभोगों की तीव्र लालसा करना, (२९) ऋद्धियुक्त

હટાવી દેવા તે (૧૯) વીતરાગના અવર્ણવાદ કરવો (૨૦) મોક્ષમાર્ગનો અપકાર, અથવા અવર્ણવાદ કરવો (૨૧) જે આચાર્ય ઉપાધ્યાય આદિથી સૂત્ર વિનય આદિ શીખ્યા હોય તેની નિન્દા કરવી (૨૨) આચાર્ય ઉપાધ્યાય વગેરેની યથા-શકિત વેયાવચ વિનય આદિ નહિ કરવુ તે (૨૩) બહુશ્રુત નહીં હોવા છતાય પણ 'હુ બહુશ્રુત છુ' એમ કહેવુ (૨૪) તપસ્વી નહિ હોવા છતાય તપસ્વી નામ ધરાવવુ (૨૫) ગ્લાન આદિની યથાશકિત વૈયાવૃત્ય નહિ કરવી (૨૬) હિંસાનો ઉપદેશ આપવો અથવા તો સઘમા છેદ-ભેદ પાડવો (૨૭) પોતાની બડાઇ માટે વારવાર વશીકરણ આદિ અધાર્મિક પ્રયોગ કરવો (૨૮) આ લોક અથવા પર લોક સબધી કામભોગની તીવ્ર લાલસા કરવી, (૨૯) ઋદ્ધિયુકત દેવોનો અવ-

देवानामवर्णवादः, (३०) अपश्यतोऽपि 'पश्याम्यहं देवान्' इत्युक्तिः, अजिनत्वेऽपि 'जिनोऽस्मी' त्युक्तिर्वेति ॥ सू० १८ ॥

॥ मूलम् ॥

एगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं । बत्तीसाए जोगसंगहेहिं ॥ सू० १९ ॥

॥ छाया ॥

एकत्रिंशता सिद्धादिगुणैः । द्वात्रिंशता योगसङ्ग्रहैः ॥ सू० १९ ॥

॥ टीका ॥

'एग०' इति. 'एगतीसाए' एकत्रिंशता=एकत्रिंशत्सङ्ख्यकैः, 'सिद्धाइगुणेहिं' आदौ=सिद्धावस्थाप्राप्तिवेलायामेव यौगपद्येन स्थायिनो न तु क्रमभाविनो गुणा आदिगुणा', सिद्धानामादिगुणाः=सिद्धादिगुणास्तै. । सम्बन्धस्तूक्त एव । ते गुणा यथा–पञ्चविधज्ञानावरणीयक्षीणत्वानि पञ्च, नवविधदर्शनावरणीयक्षीणत्वानि नव, द्विविधवेदनीयक्षीणत्वे द्वे, द्विविधमोहनीयक्षीणत्वे द्वे, चतुर्विधायुःक्षीणत्वानि चत्वारि, द्विविधनामकर्मक्षीणत्वे द्वे, द्विविधगोत्रकर्मक्षीणत्वे द्वे, पञ्चविधान्तरायक्षीणत्वानि पञ्चेति मिलित्वैकत्रिंशदिति । 'बत्ती-

---

देवोका अवर्णवाद बोलना, (३०) देवता को नहीं देखते हुए भी 'मै देवता को देखता हूँ' ऐसा कहना, इन तीस महामोहनीय स्थानों के द्वारा जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ' ॥ सू०१८ ॥

सिद्ध अवस्था की प्राप्तिके समय सिद्धों में एक साथ रहनेवाले गुणोको सिद्धादिगुण कहते हैं, वे पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, दो वेदनीय, दो मोहनीय, चार आयु, दो गोत्र, दो नाम, पाँच अन्तराय, इन इकतीस प्रकृतियों के क्षयरूप इकत्तीस

र्णवाद બોલવો (૩૦) દેવતાને નહિ જોવા છતાંય 'હું દેવતાને જોઉં છું' એ પ્રમાણે કહેવું તે આ ત્રીશ મહામોહનીય સ્થાનો દ્વારા જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું' (સૂ૦ ૧૮)

સિદ્ધ અવસ્થાની પ્રાપ્તિના સમયે સિદ્ધોમા એક સાથે રહેવાવાળા ગુણોને સિદ્ધાદિગુણ કહે છે તે પાચ જ્ઞાનાવરણીય, નવ દર્શનાવરણીય, બે વેદનીય, બે મોહનીય, ચાર આયુ, બે ગોત્ર, બે નામ, પાચ અન્તરાય, એ એકત્રીશ પ્રકૃ-

साए' द्वात्रिंशता=द्वात्रिंशत्संख्यकैः 'जोगसंगहेहिं' योगाः=योजनानि=मनोवाकायव्यापारास्ते च यद्यपि शुभाशुभभेदेन द्विविधास्तथापि प्रसङ्गादत्र शुभा एव विवक्षिताः, तेषां सङ्ग्रहास्तैः, सम्बन्धो यथापूर्वमेव, ते च सग्रहा द्वात्रिंशद्यथा-(१) गुरुसमीपगमनपुरःसरपापसमालोचनरूपमालोचनम्, (२) अन्यपुरतो गुरुणाऽपि शिष्यानालोचनरूपो निरपलापः, (३) आपत्सु धर्मदार्ढ्यम्, (४) ऐहिकपारलौकिकसुखानिच्छया क्रियानुष्ठानरूपमनिश्रितोपधानम्, (५) [1]ग्रहणाऽऽसेवनारूपा शिक्षा, (६) शरीरादिसंस्कारवर्जनरूपा निष्प्रतिकर्मता, (७) प्रच्छन्नतपः-

गुण हैं, इनके विषयमें जो अतिचार किया गया हो 'तो मैं उस से निवृत्त होता हूँ।

मन वचन कायके व्यापार को योग कहते हैं, वे यद्यपि शुभ अशुभ के भेद से दो प्रकार के हैं, तथापि यहाँपर प्रकरण वश शुभ योगों का ही ग्रहण-है, उनके संग्रह को योगसंग्रह कहते हैं, वे बत्तीस हैं—(१) आलोचन-गुरु के समीप जाकर पापकी आलोचना करना, (२) निरपलाप-दूसरे के सामने शिष्यकी आलोचना का प्रकाशित न किया जाना, (३) आपत्ति आने पर भी धर्ममें दृढ रहना, (४) अनिश्रितोपधान- इहलोक-परलोक सम्बन्धी सुख की इच्छा न रखकर क्रियानुष्ठान करना, (५) शिक्षा-विधि पूर्वक सूत्रादि-ग्रहण-रूप ग्रहणा और समाचारीका सम्यक्पालन-रूप आसेवना (६) निष्प्रतिकर्मता-शरीरसंस्कार का परित्याग,

तिओना क्षयरूप ओकत्रीश गुणु छे ते विषयमा जे कांई अतिचार लाग्या होय तो 'तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु'

मन, वचन अने कायाना व्यापारने योग कहे छे ते शुभ-अशुभना भेदथी बे प्रकारना होय छे छता पणु आ स्थळे प्रकरणु वश शुभयोगोनु ग्रहणु करेलु छे तेओमा ग्रहने योगसंग्रह कहे छे ते बत्रीश प्रकारना छे (१) आलोचन गुरुना पासे जईने पापनी आलोचना करवी, (२) निरपलाप-बीजाना पासे शिष्योनी आलोचना जाहेर नहि करवी, (३) आपत्ति आववा छताय धर्मभा दृढ रहेवु, (४) अनिश्रितोपधान-आ लोक-परलोक संबंधी सुखनी ईच्छा नहि राखना क्रियानुष्ठान करवा, (५) शिक्षा-विधिपूर्वक सूत्रादिग्रहणु रूप ग्रहणा अने समाचारीनु

[1]-यथाविधिसूत्रादिग्रहणलक्षणा ग्रहणा, सामाचार्याः सम्यक्पालनमासेवना।

देवानामवर्णवादः, (३०) अपश्यतोऽपि 'पश्याम्यहं देवान्' इत्युक्तिः, अजिनत्वेऽपि 'जिनोऽस्मी' त्युक्तिर्वेति ॥सू० १८॥

॥ मूलम् ॥

एगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं । बत्तीसाए जोगसंगहेहिं ॥ सू० १९ ॥

॥ छाया ॥

एकत्रिंशता सिद्धादिगुणैः । द्वात्रिंशता योगसङ्ग्रहैः ॥ सू० १९ ॥

॥ टीका ॥

'एग०' इति. 'एगतीसाए' एकत्रिंशता=एकत्रिंशत्सङ्ख्यकैः, 'सिद्धाइगुणेहिं' आदौ=सिद्धावस्थाप्राप्तिवेलायामेव यौगपद्येन स्थायिनो न तु क्रमभाविनो गुणा आदिगुणा, सिद्धानामादिगुणाः=सिद्धादिगुणास्तैः । सम्बन्धस्तूक्त एव । ते गुणा यथा–पञ्चविधज्ञानावरणीयक्षीणत्वानि पञ्च, नवविधदर्शनावरणीयक्षीणत्वानि नव, द्विविधवेदनीयक्षीणत्वे द्वे, द्विविधमोहनीयक्षीणत्वे द्वे, चतुर्विधायु:क्षीणत्वानि चत्वारि, द्विविधनामकर्मक्षीणत्वे द्वे. द्विविधगोत्रकर्मक्षीणत्वे द्वे, पञ्चविधान्तरायक्षीणत्वानि पञ्चेति मिलित्वैकत्रिंशदिति । 'बत्ती

देवोका अवर्णवाद बोलना, (३०) देवता को नहीं देखते हुए भी 'मै देवता को देखता हूँ' ऐसा कहना, इन तीस महामोहनीय स्थानों के द्वारा जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ' ॥ सू०१८॥

सिद्ध अवस्था की प्राप्तिके समय सिद्धो में एक साथ रहनेवाले गुणोको सिद्धादिगुण कहते हैं, वे पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, दो वेदनीय, दो मोहनीय, चार आयु, दो गोत्र, दो नाम, पाँच अन्तराय, इन इकतीस प्रकृतियों के क्षयरूप इकत्तीस

ર્ણવાદ બોલવો, (૩૦) દેવતાને નહિ જોવા છતાય 'હુ દેવતાને જોઉ છુ' એ પ્રમાણે કહેવુ તે આ ત્રીશ મહામોહનીય સ્થાનો દ્વારા જે કાઇ અતિચાર લાગ્યા હોય તો 'તેમાથી હુ નિવૃત્ત થાઉ છુ' (સૂ૦ ૧૮)

સિદ્ધ અવસ્થાની પ્રાપ્તિના સમયે સિદ્ધોમા એક સાથે રહેવાવાળા ગુણોને સિદ્ધાદિગુણ કહે છે તે પાચ જ્ઞાનાવરણીય, નવ દર્શનાવરણીય, બે વેદનીય, બે મોહનીય, ચાર આયુ, બે ગોત્ર, બે નામ, પાચ અન્તરાય, એ એકત્રીશ પ્રકૃ-

व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) समुचितसमयानतिक्रमेण सामाचार्यनुष्ठानरूपो लवालवः, (२८) आर्त्तरौद्रध्यानप्रहाणपूर्वकधर्मशुक्लध्यानसमादरणरूपो ध्यानसंवरणयोगः, (२९) मारणान्तिकवेदनोदयेऽपि क्षोभराहित्यम्, (३०) ज्ञ-प्रत्याख्यानपरिज्ञया 'सङ्गपरिज्ञान-सङ्गवर्जनरूपा सङ्गपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्ताऽऽचरणम्, (३२) मरणान्ते (मरणसमये)ऽपि ज्ञानाद्याराधना चेति ॥ सू० १९ ॥

॥ मूलम् ॥

तित्तीसाए आसायणाए ॥ सू० २० ॥

॥ छाया ॥

त्रयस्त्रिंशताऽऽशातनाभिः ॥ सू० २० ॥

॥ टीका ॥

'तित्तीसाए' त्रयस्त्रिंशता=त्रयस्त्रिंशत्संख्यकाभिः, 'आसायणाए'

व्युत्सर्ग, (२६) अप्रमाद, (२७) उचित समयमें सामाचारीका अनुष्ठानरूप लवालव, (२८) आर्तरौद्ररूप ध्यान के परित्याग-पूर्वक धर्मशुक्ल ध्यानका आदररूप ध्यान संवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करना, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञा से सङ्गपरित्यागरूप सङ्गपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करना, (३२) मरणपर्यन्त ज्ञानादिकी आराधना करना। इन बत्तीस योगसंग्रहों का सम्यग् आराधन नहीं होने से जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो मै उससे निवृत्त होता हूँ' ॥ सू० १९ ॥

जिससे ज्ञान आदिगुण नष्ट हो जाते हैं, अथवा सम्यग्

---

(२५) द्रव्य अने भावथी कायोत्सर्ग करवा रूप व्युत्सर्ग, (२६) अप्रमाद, (२७) उचित समयमा सामाचारीना-अनुष्ठान रूप लवा-लव, (२८) आर्त्तरौद्र-रूप ध्यानना परित्यागपूर्वक-धर्मशुकल ध्यानना आदर रूप ध्यान संवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करवो, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी संग परित्यागरूप संगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करवु ते (३२) मरण सुधी ज्ञानादिकनी आराधना करवी, आ प्रमाणे बत्रीश योगसंग्रहनु सम्यक् प्रकारे आराधन नहि थवाथी जे काइ अतिचार थया होय तो 'तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु' (सू० १९)

जेना कारणे ज्ञान आदि गुण नाश थई जता होय, अथवा सम्यग्

करणरूपा अज्ञातता, (८) अलोभः=लोभराहित्यम्, (९) परिषहोपसर्गादिसहनरूपा तितिक्षा, (१०) कौटिल्यत्यागरूपमार्जवम्, (११) संयमविषयकातिचारमलवर्जनरूपा शुचिः, (१२) सम्यक्त्वशुद्धरूपा सम्यग्दृष्टि', (१३) चित्तैकाग्रतारूपः समाधिः, (१४) आचारः=मायाराहित्यम्, (१५) विनयः=मानराहित्यम्, (१६) धैर्यसहिता या मतिस्तद्रूपा धृतिमतिः (१७) संसाराद्भयस्य मोक्षाभिलापस्य च यत्करण तद्रूपः संवेग (१८) मायाशल्यवर्जनरूपः प्रणिधिः, (१९) प्रशस्तक्रियापरायणतास्वरूपः सुविधिः, (२०) आश्रवनिरोधरूप' संवरः, (२१) आत्मदोषपरिहारः, (२२) कामपरित्यागः, (२३) मूलगुणविषयकप्रत्याख्यानम्, (२४) उत्तरगुणविषयकप्रत्याख्यानम्, (२५) द्रव्यभावेन कायोत्सर्गकरणरूपो

---

(७) अज्ञातता-गुप्त तप करना, (८) अलोभ-लोभ त्यागना, (९) तितिक्षा-परिषह-उपसर्गादिका सहन करना, (१०) आर्जव-कुटिल भावका त्याग करना, (११) शुचि=अतिचाररहित संयम पालना, (१२) सम्यग्दृष्टि=समकितकी शुद्धि, (१३) समाधि-चित्तकी एकाग्रता, (१४) आचार, (१५) विनय, (१६) धृतिमति-धैर्ययुक्तमति, (१७) संवेग-संसार से भय और मोक्ष की इच्छा, (१८) प्रणिधि-मायापरित्याग, (१९) सुविधि-उत्तम क्रियामें तल्लीन रहना, (२०) संवर-आश्रवनिरोध, (२१) आत्मदोषपरिहार, (२२) कामपरित्याग, (२३) मूलगुण-सम्बन्धी प्रत्याख्यान, (२४) उत्तरगुण-सम्बन्धी प्रत्याख्यान, (२५) द्रव्यभाव से कायोत्सर्गकरणरूप

સમ્યક્ પાલન કરવારૂપ આસેવના (૬) નિષ્પ્રતિકર્મતા-શરીરસંસ્કારનો પરિત્યાગ (૭) અજ્ઞાતતા ગુપ્તતપ કરવુ, (૮) અલોભ-લોભનો ત્યાગ કરવો, (૯) તિતિક્ષા પરિષહ-ઉપસર્ગનું સહન કરવુ, (૧૦) આર્જવ-કુટિલભાવનો ત્યાગ કરવો, (૧૧) શુચિ-અતિચારરહિત સંયમનું પાલન કરવુ, (૧૨), સમ્યગ્દૃષ્ટિ-સમકિતની શુદ્ધિ, (૧૩) સમાધિ-ચિત્તની એકાગ્રતા, (૧૪) આચાર, (૧૫) વિનય, (૧૬) ધૃતિમતિ-ધૈર્યયુક્ત મતિ, (૧૭) સંવેગ-સંસારનો ભય અને મોક્ષની ઇચ્છા, (૧૮) પ્રણિધિ-માયાપરિત્યાગ, (૧૯) સુવિધિ-ઉત્તમ ક્રિયામાં તલ્લીન રહેવું, (૨૦) સંવર આશ્રવનિરોધ, (૨૧) આત્મદોષપરિહાર, (૨૨) કામપરિત્યાગ, (૨૩) મૂલગુણસંબંધી પ્રત્યાખ્યાન, (૨૪) ઉત્તરગુણસંબંધી પ્રત્યાખ્યાન,

व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) समुचितसमयानतिक्रमेण सामाचार्यनुष्ठानरूपो लवालवः, (२८) आर्त्तरौद्रध्यानप्रहाणपूर्वकधर्मशुक्लध्यानसमादरणरूपो ध्यानसंवरणयोगः, (२९) मारणान्तिकवेदनोदयेऽपि क्षोभराहित्यम्, (३०) ज्ञ-प्रत्याख्यानपरिज्ञया 'सङ्गपरिज्ञान-सङ्गवर्जनरूपा सङ्गपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्ताऽऽचरणम्, (३२) मरणान्ते (मरणसमये)ऽपि ज्ञानाद्याराधना चेति ॥ सू० १९ ॥

॥ मूलम् ॥

तित्तीसाए आसायणाए ॥ सू० २० ॥

॥ छाया ॥

त्रयस्त्रिंशताऽऽशातनाभिः ॥ सू० २० ॥

॥ टीका ॥

'तित्तीसाए' त्रयस्त्रिंशता=त्रयस्त्रिंशत्सङ्ख्यकाभिः, 'आसायणाए'

व्युत्सर्ग, (२६) अप्रमाद, (२७) उचित समयमें सामाचारीका अनुष्ठानरूप लवालव, (२८) आर्तरौद्ररूप ध्यान के परित्याग-पूर्वक धर्मशुक्ल ध्यानका आदररूप ध्यान संवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करना, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञा से सङ्गपरित्यागरूप सङ्गपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करना, (३२) मरणपर्यन्त ज्ञानादिकी आराधना करना। इन बत्तीस योगसंग्रहों का सम्यग् आराधन नहीं होने से जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ' ॥ सू० १९ ॥

जिससे ज्ञान आदिगुण नष्ट हो जाते हैं, अथवा सम्यग्

---

(२५) द्रव्य अने भावथी कायोत्सर्ग करवा रूप व्युत्सर्ग, (२६) अप्रमाद, (२७) उचित समयमा सामाचारीना-अनुष्ठान रूप लवा-लव, (२८) आर्त्तरौद्र-रूप ध्यानना परित्यागपूर्वक-धर्मशुक्ल ध्यानना आदर रूप ध्यान संवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करवो, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी संग परित्यागरूप संगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करवु ते (३२) मरण सुधी ज्ञानादिकनी आराधना करवी, आ प्रमाणे बत्रीश योगसंग्रहनु सम्यक् प्रकारे आराधन नहि थवाथी जे कांई अतिचार थया होय तो 'तेमाथी हु निवृत्त थाउं छु' (सू० १९)

जेना कारणे ज्ञान आदि गुण नाश थई जता होय, अथवा सम्यग्

आ=समन्तात्' शात्यन्ते=अपनीयन्ते ज्ञानादयो गुणा याभिरिति, यद्वा निरुक्तरीत्या आ=आयः सम्यग्ज्ञानादिलाभस्तस्य शातना'=खण्डनाः आशातनास्ताभिः । सम्बन्धस्तु पूर्ववदेव, अत्रैकवचन त्वार्षत्वात्, एतास्त्रयस्त्रिंशदाशातनाः प्रकरणान्तरोक्ता गुरुसम्बन्धिन्यो बोद्धव्याः, ता यथा-(१) रात्निकस्य पुरतो गमनम्, (२) पार्श्वतः समश्रेण्या गमनम्, (३) ¹आसन्नतो गमनम्, एव (४) रात्निकस्य पुरतोऽवस्थानम्, (५) पार्श्वतोऽवस्थानम्, (६) आसन्नावस्थानम्, (७) पुरतो निपदनम्, (८) पार्श्वतो निपदनम्, (९) आसन्ननिपदन चेति नव । (१०) सञ्ज्ञाभूमिं गतवतोर्गुरुशिष्ययोर्गुरुतः पूर्वमाचमनम्, (११) गमनागमनयोः पूर्वमालोचनम्, (१२) गुरुणा सलपितुमागतेन सह गुरुतः पूर्वं सलपनम्, (१३) 'को जागर्तीति कः स्वपितीति वा' रात्रौ गुरुणा पृष्टस्य जाग्रतोऽपि शिष्यस्याऽ-

ज्ञानादि-रत्नत्रयका लाभ जिसके द्वारा खण्डित होता है वह गुरुसम्बन्धी 'आशातना' तेंतीस प्रकारकी है—(१) गुरु से आगे चलना, (२) बराबर चलना, (३) अत्यन्त नजदीक चलना, (४) गुरुके आगे खडा रहना, (५) बराबर खडा रहना, (६) अधिक पासमें खडा रहना, (७) गुरुके आगे बैठना, (८) बराबर बैठना, (९) अत्यन्त समीप बैठना, (१०) गुरुके साथ सञ्ज्ञाभूमि जाने पर गुरुसे पहले शौच करना, (११) उपाश्रय में आकर गुरु के पहले ईर्यावही-प्रतिक्रमण करना, (१२) गुरु से वार्तालाप करने के लिए आये हुए के साथ गुरु के पहले बोलना, (१३) 'कौन सोया कौन जागता है ?' इस प्रकार

જ્ઞાનાદિ-રત્ન-ત્રયનો લાભ જેના દ્વારા ખડિત થતો હોય તે ગુરુ-સબધી "આશાતના' તેત્રીશ પ્રકારની છે—

(૧) ગુરુની આગળ ચાલવુ, (૨) બરાબર ચાલવુ, (૩) અત્યન્ત નજીકમા ચાલવુ, (૪) ગુરુની આગળ ઉભા રહેવુ, (૫) બરાબર ઉભા રહેવુ, (૬) એકદમ નજીકમા ઉભા રહેવું, (૭) ગુરુની આગળ બેસવુ, (૮) બરાબર બેસવુ, (૯) એકદમ નજીકમા બેસવુ, (૧૦) ગુરુની સાથે સજ્ઞાભૂમિ જાતા ગુરુની પહેલા શૌચ કરવુ, (૧૧) ઉપાશ્રયમા આવીને ગુરુના પહેલા ઇર્યાવહી પ્રતિક્રમણ કરવુ, (૧૨) ગુરુની સાથે વાર્તાલાપ કરવા માટે આવેલાની સાથે ગુરુ વાત કરે તે પહેલા વાત કરવી, (૧૩) કોણ સુતેલા છે ? કોણ જાગે છે ? આ પ્રમાણે રાત્રીએ ગુરુજી પૂછે ત્યારે

१—आसन्नत =निकटत ।

भाषणम्, (१४) अशनादिकमानीय पूर्वं लघोः पुरत आलोचनम्, (१५) एवमेवोपदर्शनम्, (१६) निमन्त्रणं च, (१७) रात्निकमपृष्ट्वा स्वेच्छयैवाहारादिकस्यान्येभ्यः प्रदानम्, (१८) गुरुणा सहाऽभ्यवहरणे अप्रशस्तं विहाय प्रशस्तस्य वस्तुनो भोजनम्, (१९) सति प्रयोजने व्याहरता रात्निकेनाऽऽहूतस्यापि तूष्णींभावः, (२०) आसनासीनतयैव रात्निकाय प्रतिवाक्यदानम्, (२१) रात्निकाऽऽहूतेन शिष्येण 'तथेति' इति वक्तव्ये 'किमुच्यते? न श्रुतं पुनरुच्यताम्'-इत्यादिप्रलपनम्, (२२) प्रेरयन्तं रात्निकं प्रति त्वङ्कारशब्दोच्चारणम्, (२३) रत्नाधिकस्य पुरतः प्रयोजनादधिकं निरर्थकं कठोरं वा सभाषणम्, (२४) ग्लाना-

---

रात्रिमें गुरु के पूछने पर जागते हुए भी उत्तर नहीं देना, (१४) आहार आदि लाकर प्रथम छोटे के पास आलोचना करना, (१५) आहारपानी आदि लाकर प्रथम छोटे को दिखाना, (१६) गुरु को पूछे विना अपनी इच्छा से अन्य छोटे साधुओं को निमन्त्रणा करना, (१७) गुरु को पूछे विना ही अपनी इच्छासे अन्य साधुओं को आहार आदि देना, (१८) गुरु के साथ आहार करता हुआ मनोज्ञ २ स्वयं खाजाना, (१९) कार्यवश गुरु के बोलाने पर चुप रह जाना, (२०) आसन पर बैठे हुए ही गुरु को उत्तर देना, (२१) गुरु के बुलाने पर 'तहत्ति' न बोल कर 'क्या कहते हैं!' क्या कहना है!' ऐसा बोलना, (२२) गुरुको 'तू' शब्द बोलना, (२३) गुरु के सामने प्रयोजन से अधिक निरर्थक तथा कठोर बोलना,

---

જાગતા હોવા છતાય ઉત્તર નહિ આપવો, (૧૪) આહાર વગેરે લાવીને પ્રથમ નાનાની પાસે આલોચના કરવી, (૧૫) આહાર-પાણી આદિ લાવીને પ્રથમ નાના હોય તેને દેખાડવો, (૧૬) ગુરુજીને પૂછયા વિના પોતાની ઇચ્છાથીજ અન્ય નાના સાધુને નિમંત્રણ કરવુ, (૧૭) ગુરુજીને પૂછયા વિના પોતાની ઇચ્છાથીજ અન્ય સાધુઓને આહાર આદિ આપવુ, (૧૮) ગુરુની સાથે આહાર કરતા પોતાને જે સારૂ લાગે તે પોતેજ ખાઇ જવુ, (૧૯) કાર્યવશ ગુરુજી બોલાવે તો પણ ચુપ રહી જવુ, (૨૦) આસન ઉપર બેઠા બેઠા ઉત્તર આપવો, (૨૧) ગુરુજી બોલાવે ત્યારે " तहत्ति " નહિ કહેતા "શુ કહો છો ?" શુ કહેવુ છે ? એ પ્રમાણે જવાબ આપવો, (૨૨) ગુરુજીને 'તૂ' શબ્દથી બોલાવવા, (૨૩) ગુરુની સામે પ્રયો

आ=समन्तात्' शात्यन्ते=अपनीयन्ते ज्ञानादयो गुणा याभिरिति, यद्वा निरुक्त-रीत्या आ=आयः सम्यग्ज्ञानादिलाभस्तस्य शातना=खण्डनाः आशातना स्ताभिः। सम्बन्धस्तु पूर्ववदेव, अत्रैकवचन त्वार्षत्वात्, एतास्त्रयस्त्रिंशदाशातनाः प्रकरणान्तरोक्ता गुरुसम्बन्धिन्यो बोद्धव्याः,ता यथा-(१) रात्निकस्य पुरतो गमनम्, (२) पार्श्वतः समश्रेण्या गमनम्, (३) [1]आसन्नतो गमनम्, एव (४) रात्निकस्य पुरतोऽवस्थानम्, (५) पार्श्वतोऽवस्थानम्, (६) आसन्नावस्थानम्, (७) पुरतो निषदनम्, (८) पार्श्वतो निषदनम्, (९) आसन्ननिषदन चेति नव। (१०) सज्ञाभूमिं गतवतोर्गुरुशिष्ययोर्गुरुत' पूर्वमाचमनम्, (११) गमनागमनयो॰ पूर्वमालोचनम्, (१२) गुरुणा सल्पितुमागतेन सह गुरुतः पूर्वं सल्पनम्, (१३) 'को जागर्तीति कः स्वपितीति वा' रात्रौ गुरुणा पृष्टस्य जाग्रतोऽपि शिष्यस्याऽ-

ज्ञानादि-रत्नत्रयका लाभ जिसके द्वारा खण्डित होता है वह गुरु-सम्बन्धी 'आशातना' तेंतीस प्रकारकी है—(१) गुरु से आगे चलना, (२) बराबर चलना, (३) अत्यन्त नजदीक चलना, (४) गुरुके आगे खडा रहना, (५) बराबर खडा रहना, (६) अधिक पासमे खडा रहना, (७) गुरुके आगे बैठना, (८) बराबर बैठना, (९) अत्यन्त समीप बैठना, (१०) गुरुके साथ सज्ञाभूमि जाने पर गुरुसे पहले शौच करना, (११) उपाश्रय में आकर गुरु के पहले इर्यावही-प्रतिक्रमण करना, (१२) गुरु से वार्तालाप करने के लिए आये हुए के साथ गुरु के पहले बोलना, (१३) 'कौन सोया कौन जागता है ?' इस प्रकार

જ્ઞાનાદિ-રત્ન-ત્રયનો લાભ જેના દ્વારા ખંડિત થતો હોય તે ગુરુ-સબંધી "આશાતના' તેત્રીશ પ્રકારની છે—

(૧) ગુરુની આગળ ચાલવુ, (૨) બરાબર ચાલવુ, (૩) અત્યન્ત નજીકમા ચાલવું, (૪) ગુરુની આગળ ઉભા રહેવુ, (૫) બરાબર ઉભા રહેવુ, (૬) એકદમ નજીકમા ઉભા રહેવું, (૭) ગુરુની આગળ બેસવુ, (૮) બરાબર બેસવુ, (૯) એકદમ નજીકમા બેસવુ, (૧૦) ગુરુની સાથે સજ્ઞાભૂમિ જાતા ગુરુની પહેલા શૌચ કરવુ, (૧૧) ઉપાશ્રયમા આવીને ગુરુના પહેલા ઇર્યાવહી પ્રતિક્રમણ કરવુ, (૧૨) ગુરુની સાથે વાર્તાલાપ કરવા માટે આવેલાની સાથે ગુરુ વાત કરે તે પહેલા વાત કરવી, (૧૩) કોણ સુતેલા છે? કોણ જાગે છે? આ પ્રમાણે રાત્રીએ ગુરુજી પૂછે ત્યારે

१-आसन्नत.=निकटत ।

भापणम्, (१४) अशनादिकमानीय पूर्वं लघोः पुरत आलोचनम्, (१५) एव-मेवोपदर्शनम्, (१६) निमन्त्रण च, (१७) रात्निकमपृष्ट्वा स्वेच्छयैवाहारादि-कस्यान्येभ्यः प्रदानम्, (१८) गुरुणा सहाऽभ्यवहरणे अप्रशस्त विहाय प्रशस्तस्य वस्तुनो भोजनम्, (१९) सति प्रयोजने व्याहरता रात्निकेनाऽऽहूतस्यापि तूष्णीं-भावः, (२०) आसनासीनतयैव रात्निकाय प्रतिवाक्यदानम्, (२१) रात्निका-ऽऽहूतेन शिष्येण 'तथेति' इति वक्तव्ये 'किमुच्यते? न श्रुत पुनरुच्यताम्'-इत्यादिप्रलपनम्, (२२) प्रेरयन्त रात्निक प्रति त्वङ्कारशब्दोच्चारणम्, (२३) रत्नाधिकस्य पुरत. प्रयोजनादधिक निरर्थक कठोर वा सभापणम्, (२४) ग्लाना-

---

रात्रिमे गुरु के पूछने पर जागते हुए भी उत्तर नहीं देना, (१४) आहार आदि लाकर प्रथम छोटे के पास आलोचना करना, (१५) आहारपानी आदि लाकर प्रथम छोटे को दिखाना, (१६) गुरु को पूछे विना अपनी इच्छा से अन्य छोटे साधुओं को निमन्त्रणा करना, (१७) गुरु को पूछे विना ही अपनी इच्छासे अन्य साधुओं को आहार आदि देना, (१८) गुरु के साथ आहार करता हुआ मनोज्ञ२ स्वय खाजाना, (१९) कार्यवश गुरु के बोलाने पर चुप रह जाना, (२०) आसन पर बैठे हुए ही गुरु को उत्तर देना, (२१) गुरु के बुलाने पर 'तहत्ति' न बोल कर 'क्या कहते हैं!' क्या कहना है!' ऐसा बोलना, (२२) गुरुको 'तू' शब्द बोलना, (२३) गुरु के सामने प्रयोजन से अधिक निरर्थक तथा कठोर बोलना,

---

જાગતા હોવા છતાય ઉત્તર નહિ આપવો, (૧૪) આહાર વગેરે લાવીને પ્રથમ નાનાની પાસે આલોચના કરવી, (૧૫) આહાર-પાણી આદિ લાવીને પ્રથમ નાના હોય તેને દેખાડવો, (૧૬) ગુરુજીને પૂછયા વિના પોતાની ઇચ્છાથીજ અન્ય નાના સાધુને નિમત્રણ કરવુ, (૧૭) ગુરુજીને પૂછયા વિના પોતાની ઇચ્છાથીજ અન્ય સાધુઓને આહાર આદિ આપવુ, (૧૮) ગુરુની સાથે આહાર કરતા પોતાને જે સારૂ લાગે તે પોતેજ ખાઇ જવુ, (૧૯) કાર્યવશ ગુરુજી બોલાવે તો પણ ચુપ રહી જવુ, (૨૦) આસન ઉપર બેઠા બેઠા ઉત્તર આપવો, (૨૧) ગુરુજી બોલાવે ત્યારે " तहत्ति " નહિ કહેતા " શુ કહો છો ? " શુ કહેવુ છે ? એ પ્રમાણે જવાબ આપવો, (૨૨) ગુરુજીને 'તૂ' શબ્દથી બોલાવવા, (૨૩) ગુરુની સામે પ્રયો

दिपरिचर्यार्थं प्रेरकाय गुरवे 'त्वं कथं न सपरिचरसि'-इत्यादिरीत्योदीरणम्, (२५) कथां कथयतो रात्निकस्य 'एवं वक्तव्यम्' इति कथनम्, (२६) कथां कथयतो रात्निकस्य 'नो स्मरति भवान्' इति कथनम्, (२७) कर्मकथां श्रावयति रात्निकेऽन्यमनस्कता, (२८) रात्निककथायां परिपच्छेदनम्, (२९) धर्मकथायां 'गोचरीवेला सम्प्राप्ता' इत्यादिविप्रलापः, (३०) अनुत्थितायां परिषदि रात्निकोक्ताया एव कथाया मुहुर्मुहु रुचिररूपेण स्वयभाषणम्, (३१) रात्निकसम्बन्धिशय्यासंस्तारकादीनां पादादिना सघट्टनम्, (३२) तस्य शय्यादिषूपवेशनादि, (३३) रात्निकादुच्चासने समुपवेशनमिति ॥ सू० २० ॥

(२४) ग्लान आदि की वैयावृत्य के लिये गुरुद्वारा प्रेरणा करने पर 'आप क्यों नहीं करते हो !' ऐसा उत्तर देना। (२५) धर्मकथा करते हुए गुरु को टोकना अर्थात् 'यह ऐसा नहीं है ऐसा है' इत्यादि कहना, (२६) धर्मकथा करते हुए गुरु को 'आपको याद नहीं है क्या !' ऐसा कहना, (२७) गुरु की धर्मकथा से प्रसन्न नहीं होना, (२८) गुरु की सभा में छेदभेद करना, (२९) धर्मकथा में 'गोचरी का समय आ गया' इत्यादि बोलना, (३०) उपस्थित (बैठी हुई) सभामें गुरु से कही गई कथा को दोहरा कर सुन्दर रूप से कहना, (३१) गुरुसम्बन्धी शय्या-सथारे का पैर आदि से सघट्टा करना, (३२) गुरु की शय्या आदि पर बैठना (३३) गुरु से ऊंचे आसन पर बैठना। इन तेंतीस आशातनाओं

જનથી અધિક નિરર્થક તથા કઠોર બોલવુ, (૨૪) ગ્લાન આદિની વૈયાવૃત્ય કરવાની ગુરુદ્વારા આજ્ઞા મળતા "તમે કેમ કરતા નથી"? એવો ઉત્તર આપવો, (૨૫) ધર્મકથા કરતા હોય ત્યારે ગુરુને ટોકવુ, અર્થાત "આ પ્રમાણે નથી' 'એ પ્રમાણે છે,' ઇત્યાદિ કહેવુ (૨૬) ધર્મકથા કરતા ગુરુજીને' આપને યાદ નથી શુ ' આવી રીતે કહેવુ, (૨૭) ગુરુની ધર્મકથાથી પ્રસન્ન નહીં થવુ, (૨૮) ગુરુજીની સભામા છેદભેદ કરવુ (૨૯) ધર્મકથામા ગોચરીનો સમય થઇ ગયો છે' આ પ્રકારે બોલવુ, (૩૦) બેઠેલી સભામા ગુરુજીએ કહેલી કથાને બીજી વખત સુંદર રૂપથી કહેવી (૩૧) ગુરુજી સમ્બન્ધી શય્યા સથારાને પગ વડે કરીને સ્પર્શ કરવો. (૩૨) ગુરુજીની શય્યા વગેરે ઉપર બેસવુ, (૩૩) ગુરુજીના આસન કરતા ઉંચા આસન ઉપર બેસવુ. આ તેત્રીશ આશાતનાઓ

एवं गुरुसम्बन्धिनीस्त्रयस्त्रिंशदाशातना अभिधाय सम्प्रति तदितरा अप्याह-'अरिहंताणं' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

अरिहंताणं आसायणाए, सिद्धाणं आसायणाए, आयरियाणं आसायणाए, उवज्झायाणं आसायणाए, साहूणं आसायणाए, साहुणीणं आसायणाए, सावयाणं आसायणाए, सावियाणं आसायणाए, देवाणं आसायणाए, देवीणं आसायणाए, इहलोगस्स आसायणाए, परलोगस्स आसायणाए, केवलीणं आसायणाए, केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए, सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स आसायणाए, सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं आसायणाए, कालस्स आसायणाए, सुअस्स आसायणाए, सुयदेवयाए आसायणाए, वायणायरियस्स आसायणाए, जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिन्नं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए सज्झाइयं, सज्झाए न सज्झाइयं, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ सू० २१ ॥

॥ छाया ॥

अर्हतामाशातनया, सिद्धानामाशातनया, आचार्याणामाशातनया, उपाध्यायानामाशातनया, साधूनामाशातनया, साध्वीनामाशातनया, श्रावकाणामाशातनया, श्राविकाणामाशातनया, देवानामाशातनया, देवीनामाशातनया, इहलोकस्याऽऽशातनया, परलोकस्याऽऽशातनया, केवलिनामाशातनया, केवलि-

---

सम्बन्धी कोई अतिचार किया गया हो तो 'उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ सू० २० ॥

इस प्रकार गुरु सम्बन्धी तेंतीस (३३) आशातनाए कह कर अब अरिहन्तादि की आशातनाए कहते हैं—

સમ્બન્ધી કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય 'તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉં છું (સૂ૦ ૨૦)

આ પ્રકારે ગુરુ સમ્બન્ધી તેત્રીશ આશાતનાઓ કહ્યા પછી હવે અરિહંતાદિકની આશાતના કહે છે—

दिपरिचर्यार्थं प्रेरकाय गुरवे 'त्वं कथं न संपरिचरसि'–इत्यादिरीत्योदीरणम्, (२५) कथां कथयतो रात्निकस्य 'एवं वक्तव्यम्' इति कथनम्, (२६) कथां कथयतो रात्निकस्य 'नो स्मरति भवान्' इति कथनम्, (२७) कर्मकथां श्रावयति रात्निकेऽन्यमनस्कता, (२८) रात्निककथाया परिषच्छेदनम्, (२९) धर्मकथाया 'गोचरीवेला सम्प्राप्ता'–इत्यादिविप्रलापः, (३०) अनुत्थितायां परिषदि रात्निकोक्ताया एव कथाया मुहुर्मुहुः रुचिररूपेण स्वयभाषणम्, (३१) रात्निकसम्बन्धिशय्यासंस्तारकादीनां पादादिना संघट्टनम्, (३२) तस्य शय्यादिषूपवेशनादि, (३३) रात्निकादुच्चासने समुपवेशनमिति ॥ सू० २० ॥

(२४) ग्लान आदि की वैयावृत्य के लिये गुरुद्वारा प्रेरणा करने पर 'आप क्यों नहीं करते हो!' ऐसा उत्तर देना। (२५) धर्मकथा करते हुए गुरु को टोकना अर्थात् 'यह ऐसा नहीं है ऐसा है' इत्यादि कहना, (२६) धर्मकथा कहते हुए गुरु को 'आपको याद नहीं है क्या!' ऐसा कहना, (२७) गुरु की धर्मकथा से प्रसन्न नहीं होना, (२८) गुरु की सभा में छेदभेद करना, (२९) धर्मकथा मे 'गोचरी का समय आ गया' इत्यादि बोलना, (३०) उपस्थित (बैठी हुई) सभामें गुरु से कही गई कथा को दोहरा कर सुन्दर रूप से कहना, (३१) गुरुसम्बन्धी शय्या–संथारे का पैर आदि से संघट्टा करना, (३२) गुरु की शय्या आदि पर बैठना (३३) गुरु से ऊंचे आसन पर बैठना। इन तेंतीस आशातनाओं

જનથી અધિક નિરર્થક તથા કઠોર બોલવુ, (૨૪) ગ્લાન આદિની વૈયાવૃત્ય કરવાની ગુરુદ્વારા આજ્ઞા મળતા "તમે કેમ કરતા નથી"? એવો ઉત્તર આપવો, (૨૫) ધર્મકથા કરતા હોય ત્યારે ગુરુને ટોકવુ, અર્થાત "આ પ્રમાણે નથી' 'એ પ્રમાણે છે,' ઇત્યાદિ કહેવુ (૨૬) ધર્મકથા કરતા ગુરુજીને' આપને યાદ નથી શુ' આવી રીતે કહેવુ, (૨૭) ગુરુની ધર્મકથાથી પ્રસન્ન નહીં થવુ, (૨૮) ગુરુજીની સભામા છેદભેદ કરવુ (૨૯) ધર્મકથામા ગોચરીનો સમય થઇ ગયો છે' આ પ્રકારે બોલવુ, (૩૦) બેઠેલી સભામા ગુરુજીએ કહેલી કથાને બીજી વખત સુદર રૂપથી કહેવી (૩૧) ગુરુજી સમ્બન્ધી શય્યા સથારાને પગ વડે કરીને સ્પર્શ કરવો (૩૨) ગુરુજીની શય્યા વગેરે ઉપર બેસવુ, (૩૩) ગુરુજીના આસન કરતા ઉંચા આસન ઉપર બેસવુ. આ તેત્રીશ આશાતનાઓ

पुण्यप्रकृतिबाहुल्येनाऽन्तःसन्त्यक्तनिखिलाऽऽसक्तितया केवलमौदासीन्येनैव, तदपि च संसारावस्थायामेव, एवं केवलज्ञाने सम्प्राप्तेऽपि मोहनीयकर्माभावादनिच्छायां सत्यामपि समवसरणादिप्राप्तिस्तीर्थंकरनामकर्मप्रकृतिफलभोगस्य दुर्निवारतया तदुदयेनैव, नह्येतावता वीतरागत्वप्राप्त्युत्तरं तेषां किञ्चिद्धीयते वीतरागत्वादेः। 'सिद्धाणं०' इति, सिद्धानामाशातना यथा-न सन्ति सिद्धाश्चेष्टा-

लोगो की तरह आसक्त हो कर नहीं, किन्तु पूर्वोपार्जित पुण्य-प्रकृति का प्रबल उदय होने के कारण अनिवार्य भोगों को अनासक्त हो कर उदासीन भावसे भोगा है, इसी प्रकार मोहनीय कर्म का अभाव होने से सब प्रकार की इच्छा से रहित और वीतराग हो जाने पर भी तीर्थङ्करनामकर्म प्रकृति के उदय के कारण दुर्निवार देवकृत समवसरणादि से युक्त होते हैं। अतएव 'अर्हन्त नहीं हैं'-इत्यादि कथन करना आशातना है। सिद्धों की आशातना से, यह आशातना इस प्रकार होती है—'सिद्ध नहीं हैं,' क्यों कि उनके हलन-चलन आदि किसी प्रकार की चेष्टा का अभाव है, और यदि वे हों भी तो रागद्वेषसे मुक्त नहीं हैं, क्यों कि राग-द्वेष ध्रुव होने के कारण किसी से नष्ट नहीं किये जा सकते, और साथ ही यह भी कह सकते हैं कि जिनको आप सिद्ध कहते हैं वे भी असर्वज्ञ ही हैं, सर्वज्ञ नहीं हैं, क्यों कि

નહિ, પરન્તુ પૂર્વોપાર્જિત પુણ્ય પ્રકૃતિના પ્રબળ ઉદય હોવાના કારણે અનિવાર્ય ભોગોને અનાસકત થઇને ઉદાસીનભાવથી ભોગવ્યા છે, એ પ્રમાણે મોહનીય કર્મનો અભાવ હોવાથી સર્વ પ્રકારની ઇચ્છાથી રહિત અને વીતરાગ થવા પછી પણ તીર્થંકર નામકર્મ પ્રકૃતિના ઉદયના કારણે દુર્નિવાર દેવકૃત સમવસરણાદિથી યુકત હોય છે, એટલા માટે 'અર્હન્ત નથી' ઇત્યાદિ કહેવુ તે આશાતના છે સિદ્ધોની આશાતનાથી, તે આશાતના આ પ્રમાણે છે—'સિદ્ધ નથી' કારણ કે તેને હલન-ચલન આદિ કોઇ પ્રકારની ચેષ્ટા કરવાપણુ નથી, અને જો તેઓ હોય તો પણ રાગ-દ્વેષથી તે મુકત નથી, કારણ કે રાગ-દ્વેષ ધ્રુવ હોવાના કારણે કોઇથી નાશ થઇ શકતો નથી, અને સાથે-સાથે એ પણ કહી શકીએ છીએ કે-આપ જેને સિદ્ધ કહો છો તે પણ અસર્વજ્ઞ છે, સર્વજ્ઞ નથી, કેમકે વસ્તુના સામાન્ય-

प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याऽऽशातनया, सदेवमनुजाऽसुरस्य लोकस्याऽऽशातनया, सर्वप्राण भूतजीवसत्त्वानामाशातनया, कालस्याशातनया, श्रुतस्याशातनया, श्रुतदेवताया आशातनया, वाचनाचार्यस्याऽऽशातनया, यद् व्याविद्ध, व्यत्याम्रेडित, हीनाक्षरम्, अत्यक्षर, पदहीन, विनयहीन, योगहीन घोषहीन, सुष्ठु दत्त दुष्ठु प्रतीच्छितम्, अकाले कृतः स्वाध्यायः, काले न कृतः स्वाध्यायः, अस्वाध्याये स्वाध्यायित, स्वाध्याये न स्वाध्यायित, तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० २१ ॥

॥ टीका ॥

'अरिहंताण' अर्हताम्, कर्मणि सम्बन्धसामान्ये वा षष्ठी, तेनाऽर्हत्क-र्मिकयाऽर्हत्सम्बन्धिन्या वेत्यर्थ । एवमग्रेऽपि, आशातना चाऽत्र—'न सन्त्यर्हन्त स्तत्पदवाच्यानामप्यस्मदादिवद्भोगाऽऽसक्तत्वाद्' इत्याद्युक्त्या जायते । ननु नेय माशातना तात्त्विकत्वात् तथाहि—श्रूयन्त एवाऽर्हन्तोऽपि विषमविपाकपभोग-भोगिनो,देवकृतैः समवसरणस्फाटिकादिसिंहासनादिभिरष्टविधमहाप्रातिहार्यैश्च युक्ता, इति चेन्न, नहि ते सरागिण इवाऽऽसक्त्या भोगान् भुञ्जते स्म, अपितु पूर्वार्जित-

अरिहंतो की आशातना से, यह आशातना इस प्रकार है—'अर्हन्त नहीं हैं, क्यों कि जिनको हम अर्हन्त कह रहे हैं वे भी कभी भोगों का फल कडवा समझते हुए भी भोगते ही थे, तथा केवलज्ञान प्राप्त होने पर भी देवकृत समवसरण स्फटिकसिं-हासन आदि से युक्त होते ही हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि-'यह आशातना कैसे? क्यों कि ऐसा उल्लेख तो अर्हन्त भगवान के लिये शास्त्रों में आता ही है।' इसका उत्तर यह है कि-'अर्हन्त भगवान ने जो ससार अवस्थामे भोगादि भोगा है वह सरागी

અરિહંતોની આશાતનાથી, તે આશાતના આ પ્રમાણે છે 'અર્હન્ત નથી' કારણ કે જેને અમો અર્હન્ત કહીએ છીએ તે પણ કોઈ વખત 'ભોગોનું ફલ કડવુ છે' એમ સમજતા છતાય ભોગવતાજ હતા, તથા કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત થવા છતાય પણ દેવકૃત સમવસરણ સ્ફટિકસિંહાસન આદિથી યુક્ત હોયજ છે, અહિં પ્રશ્ન થાય છે કે—આ આશાતના કેવી રીતે? કારણ કે એવો ઉલ્લેખ તો અર્હન્ત ભગવાન માટે શાસ્ત્રમા આવે છેજ, તેનો ઉત્તર એ છે કે 'અર્હન્ત ભગવાને જે સસાર-અવસ્થામા ભોગાદિ ભોગવ્યા છે તે સરાગી લોકો પ્રમાણે આસકત થઈને

पुण्यप्रकृतिबाहुल्येनाऽन्तःसन्त्यक्तनिखिलाऽऽसक्तितया केवलमौदासीन्येनैव, तदपि च संसारावस्थायामेव, एवं केवलज्ञाने सम्प्राप्तेऽपि मोहनीयकर्माभावादनिच्छायां सत्यामपि समवसरणादिप्राप्तिस्तीर्थंकरनामकर्मप्रकृतिफलभोगस्य दुर्निवारतया तदुदयेनैव, नह्येतावता वीतरागत्वप्राप्त्युत्तरं तेषां किञ्चिद्धीयते वीतरागत्वादेव। 'सिद्धाण०' इति, सिद्धानामाशातना यथा-न सन्ति सिद्धाश्चेष्टा-

लोगों की तरह आसक्त हो कर नहीं, किन्तु पूर्वोपार्जित पुण्य-प्रकृति का प्रबल उदय होने के कारण अनिवार्य भोगों को अनासक्त हो कर उदासीन भावसे भोगा है, इसी प्रकार मोहनीय कर्म का अभाव होने से सब प्रकार की इच्छा से रहित और वीतराग हो जाने पर भी तीर्थङ्करनामकर्म प्रकृति के उदय के कारण दुर्निवार देवकृत समवसरणादि से युक्त होते हैं। अतएव 'अर्हन्त नहीं हैं'-इत्यादि कथन करना आशातना है। सिद्धों की आशातना से, यह आशातना इस प्रकार होती है—'सिद्ध नहीं हैं,' क्यों कि उनके हलन-चलन आदि किसी प्रकार की चेष्टा का अभाव है, और यदि वे हों भी तो रागद्वेषसे मुक्त नहीं हैं, क्यों कि राग-द्वेष ध्रुव होने के कारण किसी से नष्ट नहीं किये जा सकते, और साथ ही यह भी कह सकते हैं कि जिनको आप सिद्ध कहते है वे भी असर्वज्ञ ही हैं, सर्वज्ञ नहीं हैं, क्यों कि

નહિ, પરન્તુ પૂર્વોપાર્જિત પુણ્ય પ્રકૃતિના પ્રબળ ઉદય હોવાના કારણે અનિવાર્ય ભોગોને અનાસક્ત થઇને ઉદાસીનભાવથી ભોગવ્યા છે, એ પ્રમાણે મોહનીય કર્મનો અભાવ હોવાથી સર્વ પ્રકારની ઇચ્છાથી રહિત અને વીતરાગ થવા પછી પણ તીર્થંકર નામકર્મ પ્રકૃતિના ઉદયના કારણે દુર્નિવાર દેવકૃત સમવસરણાદિથી યુક્ત હોય છે, એટલા માટે 'અર્હન્ત નથી' ઇત્યાદિ કહેવું તે આશાતના છે સિદ્ધોની આશાતનાથી, તે આશાતના આ પ્રમાણે છે—'સિદ્ધ નથી' કારણ કે તેને હલન-ચલન આદિ કોઇ પ્રકારની ચેષ્ટા કરવાપણુ નથી, અને જો તેઓ હોય તો પણ રાગ-દ્વેષથી તે મુક્ત નથી, કારણ કે રાગ-દ્વેષ ધ્રુવ હોવાના કારણે કોઇથી નાશ થઇ શકતો નથી, અને સાથે-સાથે એ પણ કહી શકીએ છીએ કે-આપ જેને સિદ્ધ કહો છો તે પણ અસર્વજ્ઞ છે, સર્વજ્ઞ નથી, કેમકે વસ્તુના સામાન્ય-

ष्यदर्शनाद्रागद्वेषयुक्तत्वाच, रागद्वेषौ हि ध्रौव्यान्न केनापि [1]दवयितु शक्येते, किञ्च ये सिद्धपदवाच्यास्तेऽपि वयमिवाऽसर्वज्ञा, यतः पदार्थानां सामान्यधर्मग्राहि दर्शनं, विशेषधर्मग्राहि च ज्ञानमिति सामान्यज्ञानोत्तरकाल एव विशेषज्ञानोत्पत्तेः सर्वत्र दृष्टत्वान्नास्ति दर्शनज्ञानयोर्यौगपद्य (मेककालावच्छिन्नत्व) मिति ज्ञान-दर्शनयोः परस्पराऽऽवारकतया ज्ञानोपयोगे दर्शनोपयोगस्य, दर्शनोपयोगे ज्ञानो-पयोगस्य चाऽभाव एव, भावे वा ज्ञानदर्शनयोरेकत्वमापद्येत, तस्माज्ज्ञानत्व-सामान्यावच्छिन्नयोर्दर्शनज्ञानयोर्यौगपद्येनाऽयौगपद्येन वा भवदभिमतेषु सिद्धपद-वाच्येष्वसम्भवान्नास्ति तेषु सर्वज्ञताऽपीति । ननु कथमियमाशातना ? सिद्धाना-

---

वस्तु का सामान्यधर्मग्राही दर्शन और विशेषधर्म्मग्राही ज्ञान होता है, तथा पदार्थों का सामान्य ज्ञान हुए विना विशेष ज्ञान हो नहीं सकता, अतः एक समयमें एक ही उपयोग सिद्ध होता है, कारण यह है कि दर्शनोपयोग के समयमें ज्ञानोपयोग नहीं और ज्ञानोपयोग के समयमें दर्शनोपयोग नहीं, इसलिये एक समयमें सामान्य-विशेषात्मक उभय धर्म का ज्ञान असंभव है, यदि सम्भव कहें तो ज्ञान और दर्शन में एकत्व हो जायगा, क्यों कि वैसी अवस्था में पदार्थस्वरूप जितना ज्ञानसे प्रतीत होगा दर्शन से भी उतना ही होगा, इस कारण ज्ञान दर्शन का यौगपद्य (एक साथ स्थिति) न रहने से 'सिद्ध असर्वज्ञ हैं'-इत्यादि ।

ધર્મગ્રાહી દર્શન અને વિશેષધર્મગ્રાહી જ્ઞાન હોય છે, તથા પદાર્થોનું સામાન્ય જ્ઞાન થયા વિના વિશેષ જ્ઞાન થઈ શકતુંજ નથી એટલા કારણથી એક સમયમાં એકજ ઉપયોગ સિદ્ધ થાય છે, કારણ કે દર્શન-ઉપયોગના સમયમાં જ્ઞાન-ઉપયોગ હોય નહિ અને જ્ઞાન-ઉપયોગના સમયે દર્શનોપયોગ હોય નહિ, એટલા માટે એક સમયમાં સામાન્ય-વિશેષાત્મક બન્ને ધર્મનું જ્ઞાન થવું અસભવિત છે, જો સભવ છે એમ કહેશો તો જ્ઞાન અને દર્શનમાં એકત્વ આવી જશે, કારણ કે તેવી અવસ્થામાં પદાર્થસ્વરૂપ જેટલા જ્ઞાનથી પ્રતીત થશે તેટલું જ દર્શનથી થશે, એ કારણથી જ્ઞાન-દર્શનનું યૌગપદ્ય-એક સાથેની સ્થિતિ નહિ રહેવાથી 'સિદ્ધ અસર્વજ્ઞ છે' ઇત્યાદિ

१-दूरीकर्त्तुम् ।

मुक्ताभ्य एव युक्तिभ्योऽसत्त्वात्, सत्त्वेऽपि वा तत्तद्दोषसम्पृक्तत्वादिति चेत्तुच्छ-मिदम्, यतः 'सिद्धाः' इति प्राप्तस्यैव हि प्रतिषेधो भवति, सिद्धाः सन्तीत्यत एव भवताऽप्युच्यते, 'न सन्ती'-ति, प्रसिद्धप्रतियोगिकस्यैव ह्यभावस्य सर्वत्र ग्रहण दृश्यते, गोशृङ्ग नास्तीति वक्तु शक्यते यतो गोशृङ्गमन्यत्रोपलभ्यते, यच्च नोपलभ्यते न तत्प्रतियोगिकाभावो वक्तु शक्यते-'शशशृङ्ग नास्त्यश्वशृङ्ग नास्तीति। यद्यपि पदपार्थक्ये शशादेः शृङ्गादेश्च वाच्याः सन्त्येव घटादेरिव,

यदि कोई कहे कि-यह आशातना कैसे? क्योंकि ऊपर कही हुई युक्तियों से यह बात सत्य ही जान पडती है' तो इस का उत्तर यह है कि-'तुमने जो कहा है कि-'सिद्ध नहीं हैं'-इसी से 'सिद्ध हैं'-ऐसा सिद्ध हुआ, क्योंकि सत् (विद्यमान) वस्तु का ही निषेध किया जाता है, जो वस्तु विद्यमान नहीं है उसका निषेध भी नहीं किया जासकता है, 'गायके सींग नहीं हैं' ऐसा कहा जाता है, इसलिए कि गाय के सींग होते हैं, जो वस्तु त्रिकालमें होने की नहीं, जैसे घोडे या खरगोश के सींग, तो ऐसी वस्तुओं का निषेध भी प्रायः बुद्धिमान मनुष्यों के मुख से नहीं किया जाता, यों तो शशशृग आदि पदों को अलग २ रखने पर प्रत्येक का अर्थ प्रसिद्ध ही रहता है, किन्तु इकट्ठा कर देने पर 'शशशृग' 'अश्वशृग' आदि शब्दों का अर्थ होगा 'खरगोश के सींग' 'घोडे

જો કોઇ કહે કે-'આ આશાતના કેવી રીતે'? કેમકે ઉપર કહેવામા આવેલી યુકિતઓથી આ વાત તદન સત્યજ દેખાય છે, તો એનો ઉત્તર એ છે કે-તમે જે કહ્યુ કે 'સિદ્ધ નથી,' એ વાકય ઉપર સિદ્ધ છે, તેમ નિશ્ચય થયેલ છે કારણ કે સત્-વિદ્યમાન-વસ્તુનોજ નિષેધ થઇ શકે છે, જે વસ્તુ વિદ્યમાન ન હોય તેનો નિષેધ પણ કરી શકાતો નથી 'ગાયને શીંગ નથી' એમ કહેવામા આવે છે તે એટલા માટે કે 'ગાયને શીંગ હોય છે જ' જે વસ્તુ ત્રિકાળમા હોયજ નહિ, જેમકે 'ઘોડા અથવા ખરગોશના શીંગ' તો એવી વસ્તુઓનો નિષેધ પણ ઘણુ કરી બુદ્ધિમાન મનુષ્યના મુખથી કરવામા આવતો નથી જેમકે શશશૃંગ આદિ પદોને જૂદા—જૂદા રાખવાથી પ્રત્યેકનો અર્થ પ્રસિદ્ધજ રહે છે પરન્તુ એકઠા કરવાથી 'શશશૃગ' 'અશ્વશૃગ' આદિ શબ્દોનો અર્થ થશે 'ખરગોશના શીંગ' 'ઘોડાના

ग्दर्शनाद्रागद्वेषयुक्तत्वाच्च, रागद्वेषौ हि ध्रौव्यान्न केनापि 'दवयितु शक्येते, किञ्च ये सिद्धपदवाच्यास्तेऽपि वयमिवाऽसर्वज्ञा, यतः पदार्थाना सामान्यधर्मग्राहि दर्शन, विशेषधर्मग्राहि च ज्ञानमिति सामान्यज्ञानोत्तरकाल एव विशेषज्ञानोत्पत्तेः सर्वत्र दृष्टत्वान्नास्ति दर्शनज्ञानयोर्यौगपद्य (मेककालावच्छिन्नत्व) मिति ज्ञान दर्शनयोः परस्पराऽऽवारकतया ज्ञानोपयोगे दर्शनोपयोगस्य, दर्शनोपयोगे ज्ञानोपयोगस्य चाऽभाव एव, भावे वा ज्ञानदर्शनयोरेकत्वमापद्येत, तस्माज्ज्ञानत्वसामान्यावच्छिन्नयोर्दर्शनज्ञानयोर्यौगपद्येनाऽयौगपद्येन वा भवदभिमतेषु सिद्धपदवाच्येष्वसम्भवान्नास्ति तेषु सर्वज्ञताऽपीति । ननु कथमियमाशातना ? सिद्धाना-

वस्तु का सामान्यधर्मग्राही दर्शन और विशेषधर्म्मग्राही ज्ञान होता है, तथा पदार्थों का सामान्य ज्ञान हुए विना विशेष ज्ञान हो नहीं सकता, अतः एक समयमें एक ही उपयोग सिद्ध होता है, कारण यह है कि दर्शनोपयोग के समयमें ज्ञानोपयोग नही और ज्ञानोपयोग के समयमें दर्शनोपयोग नहीं, इसलिये एक समयमें सामान्य–विशेषात्मक उभय धर्म का ज्ञान असभव है, यदि सभव कहें तो ज्ञान और दर्शन में एकत्व हो जायगा, क्यों कि वैसी अवस्था में पदार्थस्वरूप जितना ज्ञानसे प्रतीत होगा दर्शन से भी उतना ही होगा, इस कारण ज्ञान दर्शन का यौगपद्य (एक साथ स्थिति) न रहने से 'सिद्ध असर्वज्ञ हैं'–इत्यादि ।

धर्मग्राही दर्शन अने विशेषधर्मग्राही ज्ञान होय छे, तथा पदार्थोनुं सामान्य ज्ञान थया विना विशेष ज्ञान थई शकतुंज नथी એટલા કારણથી એક સમયમા એકજ ઉપયોગ સિદ્ધ થાય છે, કારણ કે દર્શન–ઉપયોગના સમયમા જ્ઞાન–ઉપયોગ હોય નહિ અને જ્ઞાન–ઉપયોગના સમયે દર્શનોપયોગ હોય નહિ, એટલા માટે એક સમયમા સામાન્ય–વિશેષાત્મક બન્ને ધર્મનું જ્ઞાન થવુ અસભવિત છે, જો સભવ છે એમ કહેશો તો જ્ઞાન અને દર્શનમા એકત્વ આવી જશે, કારણ કે તેવી અવસ્થામા પદાર્થસ્વરૂપ જેટલા જ્ઞાનથી પ્રતીત થશે તેટલુ જ દર્શનથી થશે, એ કારણથી જ્ઞાન–દર્શનનું યૌગપદ્ય–એક સાથેની સ્થિતિ નહિ રહેવાથી 'સિદ્ધ અસર્વજ્ઞ છે' ઇત્યાદિ

१–दूरीकर्तुम् ।

प्रक्षीणसकलकषायाणां तेषां सम्यक्त्वमेव कुतः ? न चोपयोगयौगपद्यमन्तरेण सर्वज्ञता कथमिति वाच्यम्, यौगपद्येनोपयोगद्वयाभावस्य जीवस्वाभाव्यान्नयाभिमतत्वाच्च, तयोरैक्यं तु न, विभिन्नाऽऽवरणकत्वात् । द्रव्यार्थिकनयेन ज्ञानदर्शनयोरेकत्वं, ज्ञाननयमाश्रित्य सर्वमेवेदं ज्ञानमिति दर्शननयमाश्रित्य च सर्वमेवेदं दर्शनमिति नास्त्यसर्वज्ञताशङ्कालेशोऽपीति ।

'आयरियाणं' आचार्याणाम्, 'आसायणाए' आशातनया, आचार्याशातना च-'बाला अकुलीना अतिमन्दबुद्धयश्चेमे, अन्योपदेशदक्षा न च किञ्चिदाचरन्ति' इत्यादिविकथनरूपा । एवमुपाध्यायानामप्याशातना बोद्धव्या ।

है कि उनके सम्पूर्ण कषाय नष्ट हो गये हैं। एक समय में दो उपयोग नहीं होते हैं, इसका कारण यह है कि जीवका स्वभाव ही ऐसा है। ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग दोनों को एक तो इसलिये नहीं कह सकते है कि दोनोंका आवरण भिन्न है। रही बात असर्वज्ञताकी, उसका उत्तर यह है कि द्रव्यार्थिकनय के मतसे ज्ञान और दर्शनमें एकता है क्यों कि ज्ञाननय की अपेक्षा सब ज्ञानमय है और दर्शननय की अपेक्षा सब दर्शनमय, इसलिये सिद्ध सर्वज्ञ है।

आचार्यकी आशातनासे, वह इस प्रकार—"ये बालक हैं, अकुलीन हैं, अल्प-बुद्धि हैं, औरों को तो उपदेश देते हैं पर खुद कुछ नहीं करते" इत्यादि। इसी प्रकार उपाध्याय की आशातना समझनी चाहिये।

છે—તેમના કષાયો સંપૂર્ણ નાશ થયા છે એક સમયમાં બે ઉપયોગ થાય નહિ એનું કારણ એ છે કે - જીવનો સ્વભાવજ એવો છે જ્ઞાનોપયોગ અને દર્શનોપયોગ એ બન્નેને એટલા માટે એક કહેતા નથી કે બન્નેના આવરણ જૂદા જૂદા છે હવે અસર્વજ્ઞતાની વાત રહી, તેનો ઉત્તર એ છે કે દ્રવ્યાર્થિક નયના મતથી જ્ઞાન અને દર્શનમાં એકતા છે, કેમ કે જ્ઞાનનયની અપેક્ષાએ સર્વ જ્ઞાનમય છે અને દર્શન-નયની અપેક્ષાએ સર્વ દર્શનમય છે, એ કારણે સિદ્ધ સર્વજ્ઞ છે

આચાર્યની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે છે-'આ બાલક છે, અકુલીન છે, અલ્પબુદ્ધિ છે, બીજાને ઉપદેશ આપે છે પણ પોતે કાંઈ કરતા નથી'-ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે ઉપાધ્યાયની આશાતના સમજવી જોઇએ

तथापि मिथः सम्बद्धाना शशशृङ्गादीनामप्रसिद्धिरेव, अत एव 'एष वन्ध्यासुतो याति, खपुष्पकृतशेखरः। कूर्मक्षीरचये स्नातः, शशशृङ्गधनुर्धरः ॥' इत्यादिषु समुदितार्थाभावेन प्रातिपदिकत्वाभावाऽऽपत्तिमाशङ्क्य वन्ध्यापदार्थ-पुत्रपदार्थादेरेकैकस्य प्रसिद्धया बौद्धमर्थमादायाऽथवत्त्वात्प्रातिपदिकत्वमित्याहुर्वैयाकरणाः, तस्मात् 'सिद्धा न सन्ती'-ति दुष्प्रतिपादम्। यदुक्त 'निश्चेष्टत्वमिति' तदत्यन्तमसत्, तेषा सिद्धसकलकार्यत्वान्निःशरीरत्वाच्च, रागद्वेषौ तु

के सींग' इत्यादि, वह अप्रसिद्ध है। यही कारण है कि 'एष वन्ध्यासुतो याति' इत्यादि स्थलों मे यद्यपि अलग २ रखने पर वन्ध्या शब्द और सुत शब्द का अर्थ प्रसिद्ध ही है, परन्तु इकट्ठा कर देने पर 'वन्ध्यासुत' 'कूर्मक्षीर' (कछुएका दूध) आदि शब्दों का अर्थ कुछ भी नही होता है, अतएव अनर्थक होने से प्रातिपदिक सज्ञाका होना असभव जानकर वैयाकरणोंने एक एक पदार्थकी प्रसिद्धि रहने के कारण समुदायमें बौद्ध (बुद्धिकृत) अर्थ को मानकर प्रातिपदिक सज्ञा आदि कार्य किये है, इस कारण 'सिद्ध नही है' ऐसा कहना सर्वथा असगत है। दूसरी बात यह है कि आपने जो सिद्धों को निश्चेष्ट कहा वह भी ठीक नही है, कारण यह कि सिद्धो के कर्तव्य कोई बाकी रहा नही और शरीर भी नही जिससे वे चेष्टा करे। राग-द्वेष भी उनमें इसलिये नही

શીંગ' ઇત્યાદિ, તે પ્રસિદ્ધ નથી, એજ કારણે 'एष वन्ध्यासुतो याति' ઇત્યાદિ સ્થળોમા યદ્યપિ જુદા જુદા રાખવા પર વન્ધ્યા શબ્દ અને સુત શબ્દનો અર્થ પ્રસિદ્ધ છે પરન્તુ બન્ને શબ્દો એકઠા કરવાથી 'वन्ध्यासुत, 'कूर्मक्षीर' (કાચબાનુ દૂધ) વગેરે શબ્દોનો કોઇ પણ અર્થ થશે નહિ, એટલા કારણથી અનર્થક હોવાના કારણે પ્રતિપદિક સજ્ઞાનો અસભવ જાણીને વૈયાકરણીઓએ એક એક પદાર્થની પ્રસિદ્ધિ રહેવાના કારણે સમુદાયમા બૌદ્ધ (બુદ્ધિકૃત) અર્થ માનીને પ્રાતિપાદિક સજ્ઞા આદિ કાર્ય કરેલુ છે એ કારણથી 'સિદ્ધ નથી' એમ કહેવુ તે સર્વથા અસગત છે બીજી વાત એ છે કે તમે સિદ્ધોને નિશ્ચેષ્ટ કહો છો તે પણ ઠીક નથી, કારણ એ છે કે સિદ્ધોને કોઇ કર્તવ્ય બાકી રહેલુ જ નથી, અને શરીર પણ નથી કે જેનાથી ચેષ્ટા કરે, રાગ-દ્વેષ પણ તેમનામા એટલા માટે નથી

प्रक्षीणसकलकषायाणां तेषां सम्भवतामेव कुतः ? न चोपयोगयौगपद्यमन्तरेण सर्वज्ञता कथमिति वाच्यम्, यौगपद्येनोपयोगद्वयाभावस्य जीवस्वाभाव्यान्नया-भिप्रेतत्वाच्च, तयोरैक्यं तु न, विभिन्नाऽऽवरणकत्वात्। द्रव्यार्थिकनयेन ज्ञानदर्शनयोरेकत्वं, ज्ञाननयमाश्रित्य सर्वमेवेदं ज्ञानमिति दर्शननयमाश्रित्य च सर्वमेवेदं दर्शनमिति नास्त्यसर्वज्ञताशङ्कालेशोऽपीति।

'आयरियाणं' आचार्याणाम्, 'आसायणाए' आशातनया, आचार्या-शातना च-'बाला अकुलीना अतिमन्दबुद्धयश्चेमे, अन्योपदेशदक्षा न च किञ्चि-दाचरति' इत्यादिविकथनरूपा। एवमुपाध्यायानामप्याशातना बोद्धव्या।

है कि उनके सम्पूर्ण कषाय नष्ट हो गये हैं। एक समय में दो उपयोग नहीं होते हैं, इसका कारण यह है कि जीवका स्वभाव ही ऐसा है। ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग दोनों को एक तो इसलिये नहीं कह सकते है कि दोनोंका आवरण भिन्न२ है। रही बात अस-र्वज्ञताकी, उसका उत्तर यह है कि द्रव्यार्थिकनय के मतसे ज्ञान और दर्शनमें एकता है क्यों कि ज्ञाननय की अपेक्षा सब ज्ञानमय है और दर्शननय की अपेक्षा सब दर्शनमय, इसलिये सिद्ध सर्वज्ञ है।

आचार्यकी आशातनासे, वह इस प्रकार—"ये बालक हैं, अकुलीन हैं, अल्पबुद्धि हैं, औरों को तो उपदेश देते है पर खुद कुछ नहीं करते" इत्यादि। इसी प्रकार उपाध्याय की आशातना समझनी चाहिये।

કે—તેમના કષાયો સંપૂર્ણ નાશ થયા છે એક સમયમાં બે ઉપયોગ થાય નહિ એનું કારણ એ છે કે - જીવનો સ્વભાવજ એવો છે જ્ઞાનોપયોગ અને દર્શનોપયોગ એ બન્નેને એટલા માટે એક કહેતા નથી કે બન્નેના આવરણ જૂદા જૂદા છે હવે અસર્વજ્ઞતાની વાત રહી, તેનો ઉત્તર એ છે કે દ્રવ્યાર્થિક નયના મતથી જ્ઞાન અને દર્શનમાં એકતા છે, કેમ કે જ્ઞાનનયની અપેક્ષાએ સર્વ જ્ઞાનમય છે અને દર્શન-નયની અપેક્ષાએ સર્વ દર્શનમય છે, એ કારણે સિદ્ધ સર્વજ્ઞ છે

આચાર્યની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે છે-'આ બાલક છે, અકુલીન છે, અલ્પબુદ્ધિ છે, બીજાને ઉપદેશ આપે છે પણ પોતે કાંઈ કરતા નથી'-ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે ઉપાધ્યાયની આશાતના સમજવી જોઇએ

'साहूण' साधूनाम्, 'आसायणाए' आशातनया, साध्वाशातना चेत्थम्- 'एते साधवो विरूपनेपथ्या हीनसंस्कारा जडा व्यर्थजीवना मुण्डितमुण्डा भिक्षामात्रशरणाः' इत्यादि। एवमेव साध्वीनामप्याशातना ज्ञातव्या। 'सावयाण' श्रावकाणाम्, 'आसायणाए' आशातनया, श्रावकाऽऽशातना च- 'अहो इमेऽभिगतजीवाजीवा उपलब्धपुण्यपापा आश्रव-संवर-निर्जराक्रियाधिकरणबन्धमोक्षकुशला जिनप्रवचनपरिज्ञानेन यथार्थं मानुष्यकं लब्ध्वाऽपि न विरतिं श्रयन्ते धिग्धिग्'-इत्यादिरूपा। श्राविकाणामप्याशातनेदृश्येव। 'देवाण' देवानाम्, 'आसायणाए' आशातनया, सा च- 'देवास्तु विषयवासनावासित-

साधु मुनिराजकी आशातना से, वह इस प्रकार 'ये साधु मैलेकुचैले वस्त्रोंके धारक, संस्कारहीन, जड, मूढ, सिर मुंडाकर जीवन को व्यर्थ करने वाले हैं, इत्यादि। इसी प्रकार साध्वीकी आशातना समझनी चाहिये।

श्रावक की आशातना से, वह जैसे-'हाय! जीव अजीव के स्वरूप और पुण्य पापके मर्म को जानने वाले, तथा आश्रव संवर निर्जरा क्रिया अधिकरण बन्ध और मोक्ष, इनमें हेय उपादेय का ज्ञान रखने वाले, एवं जिन प्रवचन के यथार्थ ज्ञाता होकर भी ये श्रावक सर्वविरति को धारण नहीं करते हैं 'धिक्कार हैं' इत्यादि। श्राविकाओं की भी आशातना इसी प्रकार की है।

देवों की आशातना से, वह इस प्रकार-"देवता तो विषय

સાધુ મુનિરાજની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે છે-'એ સાધુ મેલા-ગંધાતા કપડા ધારણ કરે છે, સંસ્કારહીન, જડ, મૂઢ, શિર મુંડાવી જીવનને વ્યર્થ કરનાર છે ઇત્યાદિ આ પ્રમાણે સાધ્વીની આશાતના સમજવી જોઇએ

શ્રાવકની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-હાય ? જીવ-અજીવના સ્વરૂપ અને પુણ્ય-પાપના મર્મને જાણવાવાળા, તથા આશ્રવ સંવર નિર્જરા ક્રિયા અધિકરણ, બન્ધ અને મોક્ષ, તેમા હેય-ઉપાદેયનું જ્ઞાન રાખવાવાળા, એ પ્રમાણે જિન પ્રવચનને યથાર્થ જાણનાર હોઇને પણ તે શ્રાવક સર્વવિરતિને ધારણ કરતા નથી, ધિક્કાર છે ઇત્યાદિ શ્રાવિકાઓની આશાતના પણ આ પ્રમાણે જ છે

દેવોની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-દેવતા તો વિષયવાસનામાં આસક્ત,

त्तित्तवृत्तयोऽप्रत्याख्याना अविरताः शक्तिमन्तः सन्तोऽपि शासनसमुन्नतिमकुर्वाणा सन्ति'-इत्येवंरूपा। देवीनामप्याशातनैवमेव। 'इहलोगस्स' इहलोको=मनुष्यलोकस्तस्य 'आसायणाए' आशातनया न्यूनाधिकत्वनिरूपणादिलक्षणया।

एवमेव परलोकस्याऽऽशातनाऽपि, अत्र परलोकः=स्वर्गनरकादिलक्षणः। 'केवलीण' केवलिनाम्, 'आसायणाए' आशातनया='केवलिनः कैवल्यात्कवलाहारादिकं न कुर्वन्ति'-इत्यादिरूपया। 'केवलिपन्नत्तस्स' केवलिप्रज्ञप्तस्य 'धम्मस्स' धर्मस्य=जीवदया-सत्या-ऽस्तेय-ब्रह्मचर्य-क्षान्ति-पञ्चेन्द्रियनिग्रहरूपस्य, 'आसायणाए' आशातनया=विपरीतनिरूपणस्वरूपया। 'सदेवमणुयासुरस्स' सदेवमनुष्यासुरस्य=देव-मनुष्या-ऽसुरसहितस्य, 'लोगस्स' लोकस्य, 'आसायणाए' आशातनया=वितथप्ररूपणस्वरूपया। 'सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं' प्राणाः=प्राणिनो व्यक्तेन्द्रिया द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियलक्षणाः, भूता =

वासनामें आसक्त, अप्रत्याख्यानी, अविरती हैं, और शक्तिमान होते हुए भी शासन की उन्नति नहीं करते हैं" इत्यादि। इसी प्रकार देवी की भी आशातना समझना।

इस लोक की न्यूनाधिकत्व-निरूपणरूप आशातनासे, ऐसेही 'स्वर्ग नरक आदि रूप परलोक की आसातनासे।'

'केवली कवलाहार आदि नहीं करते हैं' इत्यादि विरुद्ध प्ररूपणारूप केवली की आशातना से। केवलिप्ररूपित धर्मकी विपरीत प्ररूपणारूप आशातना से। देव मनुष्य और असुर सहित लोककी असत्य प्ररूपणारूप आशातना से। द्वीन्द्रियादि प्राणी,

---

અપ્રત્યાખ્યાની, અવિરતિ છે, અને શક્તિમાન હોવા છતાય પણ શાસનની ઉન્નતિ કરતા નથી, ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે દેવીની પણ આશાતના સમજવી

આ લોકની ન્યૂનાધિકત્વ નિરૂપણ રૂપ આશાતનાથી, એવીજ રીતે સ્વર્ગ-નરક આદિ રૂપ પરલોકની આશાતનાથી

"કેવલી કવલ આહાર આદિ કરતા નથી" વગેરે વિરુદ્ધ પ્રરૂપણારૂપ કેવલીની આશાતનાથી કેવલી પ્રરૂપિત ધર્મની વિપરીત પ્રરૂપણા રૂપ આશાતનાથી દેવ-મનુષ્ય અને અસુર સહિત લોકની અસત્ય પ્રરૂપણા રૂપ આશાતનાથી દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી, વનસ્પતિકાયરૂપ ભૂત, પંચેન્દ્રિયરૂપ જીવ અને પૃથ્વી આદિ સત્ત્વ, એ

'साहूण' साधूनाम्, 'आसायणाए' आशातनया, साध्वाशातना चेत्थम्- 'एते साधवो निरुपनेपथ्या हीनसंस्कारा जडा व्यर्थजीवना मुण्डितमुण्डा भिक्षामात्रशरणाः' इत्यादि । एवमेव साध्वीनामप्याशातना ज्ञातव्या । 'सावयाण' श्रावकाणाम्, 'आसायणाए' आशातनया, श्रावकाऽऽशातना च- 'अहो इमेऽभिगतजीवाजीवा उपलब्धपुण्यपापा आश्रव-संवर-निर्जराक्रियाधिकरणबन्धमोक्षकुशला जिनप्रवचनपरिज्ञानेन यथार्थं मानुष्यकं लब्ध्वाऽपि न विरतिं श्रयन्ते धिग्धिग्'-इत्यादिरूपा । श्राविकाणामप्याशातनेदृश्येव । 'देवाण' देवानाम्, 'आसायणाए' आशातनया, सा च- 'देवास्तु विषयवासनावासित

साधु मुनिराजकी आशातना से, वह इस प्रकार 'ये साधु मैलेकुचैले वस्त्रोंके धारक, संस्कारहीन, जड, मूढ, सिर मुंडाकर जीवन को व्यर्थ करने वाले हैं, इत्यादि। इसी प्रकार साध्वीकी आशातना समझनी चाहिये।

श्रावक की आशातना से, वह जैसे-'हाय! जीव अजीव के स्वरूप और पुण्य पापके मर्म को जानने वाले, तथा आश्रव संवर निर्जरा क्रिया अधिकरण बन्ध और मोक्ष, इनमें हेय उपादेय का ज्ञान रखने वाले, एवं जिन प्रवचन के यथार्थ ज्ञाता होकर भी ये श्रावक सर्वविरति को धारण नहीं करते हैं 'धिक्कार है' इत्यादि। श्राविकाओं की भी आशातना इसी प्रकार की है।

देवों की आशातना से, वह इस प्रकार-"देवता तो विषय

સાધુ મુનિરાજની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે છે-'એ સાધુ મેલા-ગંધાતા કપડા ધારણ કરે છે, સંસ્કારહીન, જડ, મૂઢ, શિર મુંડાવી જીવનને વ્યર્થ કરનાર છે ઇત્યાદિ આ પ્રમાણે સાધ્વીની આશાતના સમજવી જોઇએ

શ્રાવકની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-હાય ? જીવ-અજીવના સ્વરૂપ અને પુણ્ય-પાપના મર્મને જાણુવાવાળા, તથા આશ્રવ સંવર નિર્જરા ક્રિયા અધિકરણ, બન્ધ અને મોક્ષ, તેમા હેય-ઉપાદેયનું જ્ઞાન રાખવાવાળા, એ પ્રમાણે જિન પ્રવચનને યથાર્થ જાણુનાર હોઇને પણ તે શ્રાવક સર્વવિરતિને ધારણ કરતા નથી, ધિક્કાર છે ઇત્યાદિ શ્રાવિકાઓની આશાતના પણ આ પ્રમાણે જ છે

દેવોની અશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-દેવતા તો વિષયવાસનામાં આસકત,

चित्तवृत्तयोऽप्रत्याख्याना अविरताः शक्तिमन्तः सन्तोऽपि शासनसमुन्नतिमकुर्वाणा सन्ति'-इत्येवरूपा। देवीनामप्याशातनैवमेव। 'इहलोगस्स' इहलोकः=मनुष्यलोकस्तस्य 'आसायणाए' आशातनया न्यूनाधिकत्वनिरूपणादिलक्षणया।

एवमेव परलोकस्याऽऽशातनाऽपि, अत्र परलोकः=स्वर्गनरकादिलक्षणः। 'केवलीण' केवलिनाम्, 'आसायणाए' आशातनया='केवलिनः कैवल्यात्कवलाहारादिकं न कुर्वन्ति'-इत्यादिरूपया। 'केवलिपन्नत्तस्स' केवलिप्रज्ञप्तस्य 'धम्मस्स' धर्मस्य=जीवदया-सत्या-ऽस्तेय-ब्रह्मचर्य-क्षान्ति-पञ्चेन्द्रियनिग्रहरूपस्य, 'आसायणाए' आशातनया=विपरीतनिरूपणस्वरूपया। 'सदेवमणुयासुरस्स' सदेवमनुष्यासुरस्य=देव-मनुष्या-ऽसुरसहितस्य, 'लोगस्स' लोकस्य, 'आसायणाए' आशातनया=वितथप्ररूपणस्वरूपया। 'सव्वपाणभूयजीवसत्ताण' प्राणाः=प्राणिनो व्यक्तेन्द्रिया द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियलक्षणाः, भूता =

वासनामें आसक्त, अप्रत्याख्यानी, अविरती हैं, और शक्तिमान होते हुए भी शासन की उन्नति नहीं करते हैं" इत्यादि। इसी प्रकार देवी की भी आशातना समझना।

इस लोक की न्यूनाधिकत्व-निरूपणरूप आशातनासे, ऐसेही 'स्वर्ग नरक आदि रूप परलोक की आसातनासे।'

'केवली कवलाहार आदि नहीं करते हैं' इत्यादि विरुद्ध प्ररूपणारूप केवली की आशातना से। केवलिप्ररूपित धर्मकी विपरीत प्ररूपणारूप आशातना से। देव मनुष्य और असुर सहित लोककी असत्य प्ररूपणारूप आशातना से। द्वीन्द्रियादि प्राणी,

---

અપ્રત્યાખ્યાની, અવિરતિ છે, અને શકિતમાન હોવા છતાય પણ શાસનની ઉન્નતિ કરતા નથી, ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે દેવીની પણ આશાતના સમજવી

આ લોકની ન્યૂનાધિકત્વ નિરૂપણ રૂપ આશાતનાથી, એવીજ રીતે સ્વર્ગ-નરક આદિ રૂપ પરલોકની આશાતનાથી

"કેવલી કવલ આહાર આદિ કરતા નથી" વગેરે વિરુદ્ધ પ્રરૂપણારૂપ કેવલીની આશાતનાથી કેવલી પ્રરૂપિત ધર્મની વિપરીત પ્રરૂપણા રૂપ આશાતનાથી દેવ-મનુષ્ય અને અસુર સહિત લોકની અસત્ય પ્રરૂપણા રૂપ આશાતનાથી દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી, વનસ્પતિકાયરૂપ ભૂત, પંચેન્દ્રિયરૂપ જીવ અને પૃથ્વી આદિ સત્વ, એ

वनस्पतयः, जीवाः=पञ्चेन्द्रियाः, सत्त्वाः=पृथिव्यप्तेजोवायव ; प्राणाश्च भूताश्च जीवाश्च सत्त्वाश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे प्राण भूत-जीव-सत्त्वाः, सर्वे च ते प्राण-भूत-जीव-सत्त्वाश्चेति सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वाः, उक्त च—

'प्राणा द्वि-त्रि-चतुः प्रोक्ता, भूतास्तु तरवः स्मृता'।
जीवा' पञ्चेन्द्रिया ज्ञेया', शेषा. सत्त्वा इतीरिताः' इति ।

तेषाम् 'आसायणाए' आशातनया=वितथप्ररूपणादिरूपया, वितथ प्ररूपणा यथा—'अङ्गुष्ठपर्वमात्रात्मवन्तो द्वीन्द्रियादयः, भूतसत्त्वा वनस्पतिपृथिव्यादिरूपा अजीवा एव चेतनगतस्पन्दनादिचेष्टारहितत्वात्, जीवास्तु क्षणिका' इत्यादि । 'कालस्स' कालस्य, 'आसायणाए' आशातनया, कालाऽऽशातना च-'वर्त्तनालक्षण कालो नास्ति' इत्यपलापरूपा, काल एव कर्ता यथा-'कालः पचति भूतानि, काल सहरते प्रजाः । कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालो हि दुरतिक्रमः ॥' इत्येकान्तकालकर्तृत्वरूपया वा । 'सुयस्स' श्रूयते इति श्रुत=भग

वनस्पतिकायरूप भूत, पञ्चेन्द्रियरूप जीव और पृथिवी आदि सत्त्व, इन सबकी असत्य प्ररूपणारूप आशातना से, वह असत्य प्ररूपणा जैसे—'द्वीन्द्रिय आदिमें आत्मा अगूठे के पर्व (पोर) के बराबर होती है, वनस्पति और पृथिवी आदि तो हलन चलन आदि चेष्टा के न होने से अचेतन ही हैं और जीव भी क्षणिक ही हैं' इत्यादि । वर्त्तनालक्षण काल नही है' इस प्रकारकी, अथवा 'काल ही सबकुछ करता है जीवो को पचाता है उनका सहार करता और ससार के सोये रहने पर जागता है अतएव काल दुर्निवार है' इस प्रकार काल को एकान्त कर्त्ता माननेरूप आशातना से । भगवान महावीर के मुखचन्द्र से निस्सृत, गणधरके कर्णमें पहुँचा

સર્વના અસત્ય પ્રરૂપણારૂપ આશાતનાથી, તે અસત્ય પ્રરૂપણા- જેમકે 'દ્વીન્દ્રિય આદિમા આત્મા અગુઠાના પર્વ (પોર)ની બરાબર હોય છે વનસ્પતિ અને પૃથ્વી વગેરે હલન-ચલન આદિ ચેષ્ટા કરતા નથી તેથી અચેતનજ છે, અને જીવ પણ ક્ષણિક છે' ઇત્યાદિ વર્ત્તનાલક્ષણ કાલ નથી' 'આ પ્રકારની' અથવા કાલજ સર્વ કાઇ કરે છે જીવોને પચાવે છે તેમનો સહાર કરે છે અને સસાર સુવે છે ત્યારે તે કાલ જાગે છે, એટલા માટે 'કાલ' દુર્નિવાર છે' એ પ્રમાણે કાલને એકાન્ત કર્તા માનવા રૂપ આશાતનાથી, ભગવાન મહાવીરના મુખરૂપચન્દ્રમાથી નિકળી ગણધરના

वन्मुखसुधांशुनिःसृत-गणधरश्रवणपुटप्रविष्ट-विशिष्टार्थप्रदर्शकाऽजरामरत्वससाधक-वाक्पीयूषमात्र, तस्य, 'आसायणाए' आशातनया=वितथप्ररूपणादिलक्षणया। 'सुयदेवयाए' श्रुताधिष्ठात्रीदेवता-श्रुतदेवता=जिनवाणी, तस्याः, 'आसायणाए' आशातनया, अत्राऽऽशातना च-विपरीतश्रद्धानप्ररूपणादिरूपा। 'वायणायरियस्स' वाचनाचार्यः श्रुताध्यापनाचार्यस्तस्य, 'आसायणाए' आशातनया='अयमध्यापको विनयवन्दनाद्यर्थं मुहुर्मुहुर्मां प्रेरयति-इत्येवमादिप्रकथनस्वरूपया। 'ज वाइद्ध' इत्यादिपदव्याख्या 'आगमे तिविहे' इत्यत्र पङ्क्तिकाया गता ॥ सू० २१ ॥

एवमेकविधाऽसयमादारभ्य त्रयस्त्रिंशत्तमपर्यन्तैः स्थानैरर्हदाद्याशातना-

हुआ, सामान्य विशेषात्मक पदार्थों के बोधक और भव्य जीवों को अजर अमर करनेवाले-वचनामृत स्वरूप श्रुतकी असत्य प्ररूपणा आदि आशातना से। श्रुतदेवता की आशातना से। ये विनय वन्दना आदि के लिये मुझे वारवार तग करते रहते हैं' इस प्रकार की वाचनाचार्य की आशातना से तथा व्याविद्ध-क्रमरहित (आगेपीछे बोलना), व्यत्याम्रेडित (अपनी मति से पाठ बनाकर बोलना) आदि पूर्वोक्त (पृष्ट) दोषों से जो कोई अतिचार किया गया हो तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ और उसका 'मिच्छा मि दुक्कड' देता हूँ ॥ सू० २१ ॥

इस प्रकार एकविध असयम से लेकर तेतीस (३३) स्थानों, तथा अरिहन्त आदिकी आशातनाओं के द्वारा किये गये हुए अति-

કાનમાં પહોંચેલા સામાન્ય-વિશેષાત્મક પદાર્થોના બોધક અને ભવ્ય જીવોને અજર-અમર કરવા વાળા વચનામૃતસ્વરૂપ શ્રુતની અસત્ય પ્રરૂપણા આદિ આશાતનાથી, શ્રુત દેવની આશાતનાથી, 'એ વિનય વદના આદિ માટે મને વારવાર તગ કર્યા કરે છે, એ પ્રમાણે વાચનાચાર્યની આશાતનાથી તથા વ્યાવિદ્ધ-ક્રમરહિત (આગલ પાછલ બોલવુ), વ્યત્યામ્રેડિત (પોતાની ઇચ્છાથી પાઠ બનાવી બોલવુ) આદિ પૂર્વે કહેલા (પૃષ્ટ) દોષોથી જે કાઇ અતિચાર લાગ્યા હોય તેનાથી નિવૃત્ત થાઉં છુ અને તેનો 'मिच्छा मि दुक्कड' આપુ છુ (સૂ० ૨૧)

આ પ્રમાણે એક સયમથી લઇને તેત્રીસ (૩૩) સ્થાનો, તથા અરિહન્ત આદિની આશાતના દ્વારા થયેલા અતિચારોથી નિવૃત્ત થઇને ફરીથી અતિચાર નહિ

वनस्पतयः, जीवाः=पञ्चेन्द्रियाः, सत्त्वाः=पृथिव्यप्तेजोवायव ; प्राणाश्च भूताश्च जीवाश्च सत्त्वाश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे प्राण भूत–जीव–सत्त्वाः, सर्वे च ते प्राण–भूत–जीव–सत्त्वाश्चेति सर्व–प्राण–भूत–जीव–सत्त्वाः, उक्त च—

'प्राणा द्वि–त्रि–चतुः प्रोक्ता, भूतास्तु तरव' स्मृताः।
जीवा' पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेपा॰ सत्त्वा इतीरिताः' इति ।

तेषाम् 'आसायणाए' आशातनया=वितथप्ररूपणादिरूपया, वितथ प्ररूपणा यथा–'अङ्गुष्ठपर्वमात्रात्मवन्तो द्वीन्द्रियादयः, भूतसत्त्वा वनस्पतिपृथिव्यादिरूपा अजीवा एव चेतनगतस्पन्दनादिचेष्टारहितत्वात्, जीवास्तु क्षणिका" इत्यादि । 'कालस्स' कालस्य, 'आसायणाए' आशातनया, कालाऽऽशातना च–'वर्त्तनालक्षण॰ कालो नास्ति' इत्यपलापरूपा, काल एव कर्ता यथा–'कालः पचति भूतानि, काल॰ संहरते प्रजाः । कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालो हि दुरतिक्रम' ॥' इत्येकान्तकालकर्तृत्वरूपया वा । 'सुयस्स' श्रूयते इति श्रुत=भग

वनस्पतिकायरूप भूत, पञ्चेन्द्रियरूप जीव और पृथिवी आदि सत्त्व, इन सबकी असत्य प्ररूपणारूप आशातना से, वह असत्य प्ररूपणा जैसे—'द्वीन्द्रिय आदिमें आत्मा अंगूठे के पर्व (पोर) के बराबर होती है, वनस्पति और पृथिवी आदि तो हलन चलन आदि चेष्टा के न होने से अचेतन ही हैं और जीव भी क्षणिक ही हैं' इत्यादि। वर्त्तनालक्षण काल नहीं है' इस प्रकारकी, अथवा 'काल ही सबकुछ करता है जीवों को पचाता है उनका संहार करता और संसार के सोये रहने पर जागता है अतएव काल दुर्निवार है' इस प्रकार काल को एकान्त कर्त्ता माननेरूप आशातना से। भगवान महावीर के मुखचन्द्र से निस्सृत, गणधरके कर्णमें पहुँचा

सर्वना असत्य प्ररूपणारूप आशातनाथी, ते असत्य प्ररूपणा– जेमके 'द्वीन्द्रिय आदिमा आत्मा अंगुठाना पर्व (पोर)नी बराबर होय छे वनस्पति अने पृथ्वी वगेरे हलन-चलन आदि चेष्टा करता नथी तेथी अचेतनज छे, अने जीव पण क्षणिक छे' इत्यादि वर्त्तनालक्षण काल नथी' 'आ प्रकारनी' अथवा कालज सर्व कांई करे छे जीवोने पचावे छे तेमनो संहार करे छे अने संसार सुवे छे त्यारे ते काल जागे छे, एटला माटे 'काल' दुर्निवार छे' ए प्रमाणे कालने एकान्त कर्त्ता मानवा रूप आशातनाथी, भगवान महावीरना मुखरूपचन्द्रमाथी निकळी गणधरना

ग्गहधारा पंचमहव्वयधारा अट्ठारससहस्ससीलंगधारा अक्खयायार-चरित्ता ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि

'खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणई ॥१॥
एवमहं आलोइय, निंदिअ गरहिअ दुगंछिय सम्मं ।

॥ सू० २२ ॥

नैर्ग्र
सि
म
म

भ्यः । इदमेव
द्ध शल्यकर्त्तन
सर्वदुःखप्रहीण-
न्ते सर्वदुःखाना-
द्यामि अनुपाल-
मनुपालयन् तस्य
विराधनायाम् ।
ापसम्पद्ये, अकल्प
, अक्रिया परिजा-
पद्ये, अबोधिं परि-
यत्स्मरामि यच्च न
ासिकस्यातिचारस्य
ि अनिदानो दृष्टि-
र्म्मभूमिषु ये केऽपि
व्रतधारा अष्टादश-
ा मनसा मस्तकेन

ाम् ।
मैत्री मे सर्वभूतेषु, वैरं मम न ... १ ॥
एवमहमालोच्य, निन्दित्वा गर्हयित्वा जुगुप्सित्वा सम्यक् ।
त्रिविधेन प्रतिक्रामन्, वन्दे जिनानां चतुर्विंशतिम् ॥ २ ॥ ॥ सू० २२ ॥

भिक्षाऽतिचारेभ्यः प्रतिक्रान्तः पुनरतिचाराकरणार्थं प्रतिचिक्रमयाऽऽदौ नमस्करोति-'नमो चउवीसाए' इत्यादिना ।

॥ मूलम् ॥

नमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाइमहावीरपज्जवसाणाणं। इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुन्नं नेयाउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमविसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं। इत्थं ठिआ जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करंति। तं धम्मं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि। तं धम्मं सद्दहंतो पत्तियंतो रोअंतो फासंतो पालंतो अणुपालंतो तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए, असंजमं परियाणामि, संजमं उवसंपज्जामि, अबंभं परियाणामि बंभं उवसंपज्जामि। अकप्पं परियाणामि, कप्पं उवसंपज्जामि। अन्नाणं परियाणामि, नाणं उवसंपज्जामि। अकिरियं परियाणामि, किरियं उवसंपज्जामि। मिच्छत्तं परियाणामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि। अबोहिं परियाणामि, बोहिं उवसंपज्जामि। अमग्गं परियाणामि, मग्गं उवसंपज्जामि। जं संभरामि जं च न संभरामि, जं पडिक्कमामि जं च न पडिक्कमामि तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि। समणोहं संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मो अनियाणो दिट्ठिसंपन्नो मायामोसविवज्जिओ अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु जावंति केइ साहू रयहरणमुहपत्तियगोच्छगपडि-

---

चारों से निवृत्त हो कर फिरसे अतिचार न करने के लिए प्रतिक्रमण करना जरूरी है, इसलिये प्रथम नमस्कार करते हुए प्रतिक्रमण करते हैं—'नमो चोवीसाए' इत्यादि ।

કરવા માટે પ્રતિક્રમણ કરવું એ જરૂરની વસ્તુ છે, એટલા માટે નમસ્કાર કરીને પ્રતિક્રમણ કરે છે 'नमो चोवीसाए' ઇત્યાદિ

भिश्चाऽतिचारेभ्यः प्रतिक्रान्तः पुनरतिचाराकरणार्थं प्रतिचिकसयाऽऽदौ नमस्क-
रोति-'नमो चउवीसाए' इत्यादिना ।

॥ मूलम् ॥

नमो चउवीसाए तित्थयराण उसभाइमहावीरपज्जवसाणाण।
इणमेव निग्गंथ पावयण सच्च अणुत्तर केवलिय पडिपुन्न नेया-
उयं ससुद्ध सल्लगत्तण सिद्धिमग्ग मुत्तिमग्ग निज्जाणमग्ग निव्वा-
णमग्ग अवितहमविसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्ग। इत्थ ठिआ जीवा
सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिनिव्वायति सव्वदुक्खाणमत करति।
त धम्म सद्दहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि।
त धम्म सद्दहतो पत्तियतो रोअतो फासतो पालतो अणुपालतो
तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुठिओमि आराहणाए विर-
ओमि विराहणाए, असजम परियाणामि, सजम उवसपज्जामि,
अबभ परियाणामि बभ उवसपज्जामि। अकप्प परियाणामि,
कप्प उवसपज्जामि। अन्नाण परियाणामि, नाणं उवसंपज्जामि।
अकिरिय परियाणामि, किरिय उवसपज्जामि। मिच्छत्त परि-
याणामि, सम्मत्त उवसपज्जामि। अबोहिं परियाणामि, बोहिं
उवसपज्जामि। अमग्ग परियाणामि, मग्ग उवसपज्जामि। ज
सभरामि ज च न सभरामि, ज पडिक्कमामि ज च न पडि-
क्कमामि तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि।
समणोह सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मो अनियाणो दिट्ठि-
सपन्नो मायामोसविवज्जिओ अढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु
कम्मभूमीसु जावति केइ साहू रयहरणमुहपत्तियगोच्छगपडि-

चारों से निवृत्त हो कर फिरसे अतिचार न करने के लिए प्रति-
क्रमण करना जरूरी है, इसलिये प्रथम नमस्कार करते हुए प्रति-
क्रमण करते हैं—'नमो चोवीसाए' इत्यादि ।

કરવા માટે પ્રતિક્રમણ કરવું એ જરૂરની વસ્તુ છે, એટલા માટે નમસ્કાર કરીને
પ્રતિક્રમણ કરે છે 'नमो चोवीसाए' ઇત્યાદિ

॥ टीका ॥

'चउवीसाए०' इति स्पष्टोऽर्थः। 'उसभाइ०' अत्र प्राकृतत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी, व्यक्तमन्यत्। एवं नमस्कृत्य तीर्थङ्करप्रणीतप्रवचनप्रशंसनपूर्वकं प्रकृतमाह- 'इणमेव' इदमेव नान्यत्, 'निग्गंथ' नैर्ग्रन्थ-निर्गता ग्रन्थाः=द्रव्यतः स्वर्णादयो, भावतो मिथ्यात्वाऽविरत्यादिलक्षणा येभ्यस्ते, यद्वा ग्रन्थेभ्यो निष्क्रान्ता निर्ग्रन्थाः=मुनयस्तेषामिदम् 'पावयण' प्रकर्षेण=यथार्थत उच्यन्ते पदार्था यत्र तत्प्रवचनं तदेव प्रावचनम्-स्वार्थिकः प्रज्ञादिपाठादण्। सामायिकप्रभृतिप्रत्याख्यानपर्यन्तं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं वा, एतदेव विशिनष्टि-'सच्च' इत्यादिना, सन्तः=प्राणिनः पदार्था मुनयो वा तेभ्यो हितं, सत्सु=मुनिजीवादिपदार्थेषु यथाक्रमं मुक्तिप्रापकत्व-यथावस्थितचिन्तनाभ्यां साधु वा सत्यम्[1], यद्वा सन्तमर्थं मापयति=प्रत्याययतीति निरुक्तप्रक्रियया सत्यम्।

'अणुत्तर' न उत्तरम्=उत्तर (प्रधान) यस्मात्तदनुत्तरम्-अनन्यसदृशमित्यर्थः। 'केवलिय' केवलिना प्रोक्तं यद्वा केवलमेव कैवलिकम्-अद्वितीयमि-

श्री ऋषभदेव स्वामी से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीसों तीर्थङ्कर भगवान को मेरा नमस्कार हो। इस प्रकार नमस्कार करके तीर्थङ्कर प्रणीत प्रवचनकी स्तुति करते हैं-यही निर्ग्रन्थ अर्थात् स्वर्ण रजत आदि द्रव्यरूप और मिथ्यात्व आदि भावरूप ग्रन्थ (गाँठ) से रहित-मुनिसम्बन्धी सामायिक आदि प्रत्याख्यान-पर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटकस्वरूप तीर्थङ्करों से उपदिष्ट प्रवचन, सत्य, सर्वोत्तम, अद्वितीय, समस्त गुणों से परिपूर्ण, मोक्षमार्ग

શ્રી ઋષભદેવ સ્વામીથી આરંભીને શ્રી મહાવીરસ્વામી સુધી ચોવીસ તીર્થંકરભગવાનને મારા નમસ્કાર છે આ પ્રમાણે નમસ્કાર કરીને તીર્થંકર પ્રણીત પ્રવચનની સ્તુતિ કરે છે આ નિર્ગ્રન્થ-અર્થાત્ સોનું-ચાંદી આદિ દ્રવ્યરૂપ અને મિથ્યાત્વ આદિ ભાવરૂપ ગ્રન્થ-ગાંઠથી રહિત-મુનિ સંબંધી સામાયિક આદિ પ્રત્યાખ્યાન પર્યન્ત બાર અંગ ગણિપિટકસ્વરૂપ તીર્થંકરોથી ઉપદેશાએલુ પ્રવચન, સત્ય, સર્વોત્તમ, અદ્વિતીય, સમસ્ત ગુણોથી પરિપૂર્ણ, મોક્ષમાર્ગપ્રદર્શક, અગ્નિમા

१-'तस्मै हितं'-मिति, 'तत्र साधु'-रिति वा यत् प्रत्ययः।
२-बोधयति।

विभावः, 'पडिपुन्न' प्रतिपूर्णं सूत्रतोऽक्षरमात्रादिन्यूनतया, अर्थतोऽध्याहारा-ऽऽकाङ्क्षादिभिश्च रहित सर्वप्रमाणोपेतमपवर्गप्रापककृत्स्नगुणसयुत वा। 'नेयाउय' न्यायेन चरति न्यायमनुगच्छति न्यायमनतिक्रान्त न्याये भव वा नैयायिक-मोक्ष-गमकम्। 'ससुद्ध' स=सामस्त्येन शुद्ध=कषायादिमलरहित निघर्षच्छेद-ताप-ताडन-कोटिविशुद्धहेमवन्निर्दोषमिति यावत्। 'सल्लगत्तण' शल्य=मायादि पाप वा कृन्तति=छिनत्तीति, कृत्यते=छिद्यतेऽनेनेति वा शल्यकर्त्तनम्। वादिमत प्रतिक्षिपति-'सिद्धिमग्ग' सिद्धिः=साध्यनिष्पत्तिः अविचलसुखप्राप्तिस्तस्या मार्ग =उपायः-सिद्धिमार्गः। 'मुत्तिमग्ग' मुक्तिः=अहितार्थकर्मप्रहाण, तस्य मार्ग। विप्रतिपत्तिं निरस्यति-'निज्जाणमग्ग' निर्याण=सकलकर्मभ्य आत्मनो निःस-रण, तस्य मार्गो निर्याणमार्ग =विशिष्टनिर्वाणावाप्तिनिदानमित्यर्थः। 'निव्वाण-मग्ग' निर्वाण=निर्वृतिः=निखिलकर्मक्षयजन्य परमसुख, यद्वा निर्वायते=अपुनरा[1]-वृत्ति गम्यतेऽस्मिन्निति, तस्य मार्गो निर्वाणमार्ग। वस्त्वन्तर पूर्वतः सुस्थमपि कालान्तरेण विक्रियते प्रवचन तु न तथा कालत्रयेऽप्यविकृतत्वादिति निगमयन्नाह-'अवितह' अवितथ=तथ्यम्, आह- सत्याऽवितथयो, पर्यायत्वात् पौनरुक्त्य कथ नेति? उच्यते-पूर्वं सत्यार्थप्रतिपादकत्वात्सत्यमित्युक्तमिह तु सत्वस्वरूपत्वाद-वितथमिति 'अविसधि=अव्यवच्छिन्नम्, एतच्च विदेहक्षेत्रमपेक्ष्योक्त, भरतक्षेत्राद्य-

प्रदर्शक, अग्निमें तपाये हुए सोने के समान निर्मल (कषाय मलसे रहित), मायादि शल्यका नाशक, अविचल सुखका साधन मार्ग, कर्मनाशका मार्ग, आत्मा से कर्मको दूर करनेका मार्ग, शीतलीभूत होनेका मार्ग, अवितथ अर्थात् तीनों कालमें भी अविनाशी, महा-विदेह क्षेत्रकी अपेक्षा सदा और भरतक्षेत्र आदिकी अपेक्षा इक्कीस हजार वर्ष रहनेवाला और सब दुःखों का नाश करनेवाला मार्ग है।

તપાએલા સોના સમાન નિર્મલ (કષાયમલથી રહિત), માયાદિશલ્યનાશક, અવિચલ સુખનો સાધન-માર્ગ, કર્મનાશ કરવાનો માર્ગ, આત્માને લાગેલા કર્મને દૂર કરવાનો માર્ગ, શીતલીભૂત થવાનો માર્ગ, અવિતથ અર્થાત ત્રણે કાલમા અવિનાશી, મહાવિદેહ ક્ષેત્રની અપેક્ષા સદા અને ભરતક્ષેત્ર આદિની અપેક્ષા એકવીશ હજાર વર્ષ રહેવાવાળો અને સર્વ દુઃખનો નાશ કરવાવાળો માર્ગ છે

टि १-क्रियाविशेषमिदम्।

॥ टीका ॥

'चउवीसाए०' इति स्पष्टोऽर्थः। 'उसभाइ०' अत्र प्राकृतत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी, व्यक्तमन्यत्। एवं नमस्कृत्य तीर्थङ्करप्रणीतप्रवचनप्रशंसनपूर्वकं प्रकृतमाह- 'इणमेव' इदमेव नान्यत्, 'निग्गथं' नैर्ग्रन्थ-निर्गता ग्रन्थाः=द्रव्यतः स्वर्णादयो, भावतो मिथ्यात्वाऽविरत्यादिलक्षणा येभ्यस्ते, यद्वा ग्रन्थेभ्यो निष्क्रान्ता निर्ग्रन्थाः=मुनयस्तेषामिदम् 'पावयण' प्रकर्षेण=यथार्थत उच्यन्ते पदार्था यत्र तत्प्रवचनं तदेव प्रावचनम्-स्वार्थिकः प्रज्ञादिपाठादण्। सामायिकप्रभृतिप्रत्याख्यानपर्यन्तं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं वा, एतदेव विशिनष्टि-'सच्चं' इत्यादिना, सन्तः=प्राणिनः पदार्था मुनयो वा तेभ्यो हितं, सत्सु=मुनिजीवादिपदार्थेषु यथाक्रमं मुक्तिप्रापकत्व-यथावस्थितचिन्तनाभ्यां साधु वा सत्यम्[1], यद्वा सन्तमर्थं मापयति=[2]प्रत्याययतीति निरुक्तप्रक्रियया सत्यम्।

'अणुत्तरं' न उत्तरम्=उच्चतरं (प्रधानं) यस्मात्तदनुत्तरम्-अनन्यसदृशमित्यर्थः। 'केवलियं' केवलिना प्रोक्तं यद्वा केवलमेव कैवलिकम्-अद्वितीयमि-

श्री ऋषभदेव स्वामी से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीसो तीर्थङ्कर भगवान को मेरा नमस्कार हो। इस प्रकार नमस्कार करके तीर्थङ्कर प्रणीत प्रवचनकी स्तुति करते हैं-यही निर्ग्रन्थ-अर्थात् स्वर्ण रजत आदि द्रव्यरूप और मिथ्यात्व आदि भावरूप ग्रन्थ (गाँठ) से रहित-मुनिसम्बन्धी सामायिक आदि प्रत्याख्यान-पर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटकस्वरूप तीर्थङ्करों से उपदिष्ट प्रवचन, सत्य, सर्वोत्तम, अद्वितीय, समस्त गुणों से परिपूर्ण, मोक्षमार्ग

શ્રી ઋષભદેવ સ્વામીથી આરભીને શ્રી મહાવીરસ્વામી સુધી ચોવીસ તીર્થંકરભગવાનને મારા નમસ્કાર હો આ પ્રમાણે નમસ્કાર કરીને તીર્થંકર પ્રણીત પ્રવચનની સ્તુતિ કરે છે આ નિર્ગ્રન્થ-અર્થાત્ સોનું-ચાદી આદિ દ્રવ્યરૂપ અને મિથ્યાત્વ આદિ ભાવરૂપ ગ્રન્થ-ગાઠથી રહિત-મુનિ સબધી સામાયિક આદિ પ્રત્યાખ્યાન પર્યન્ત બાર અગ ગણિપિટકસ્વરૂપ તીર્થંકરોથી ઉપદેશાએલુ પ્રવચન, સત્ય, સર્વોત્તમ, અદ્વિતીય, સમસ્ત ગુણોથી પરિપૂર્ણ, મોક્ષમાર્ગપ્રદર્શક, અગ્નિમા

१-'तस्मै हितं'-मिति, 'तत्र साधु'-रिति वा यत् प्रत्ययः।
२-बोधयति।

तिभावः, 'पडिपुन्न' प्रतिपूर्ण सूत्रतोऽक्षरमात्रादिन्यूनतया, अर्थतोऽध्याहारा-ऽऽकाङ्क्षादिभिश्च रहित सर्वप्रमाणोपेतमपवर्गप्रापककृत्स्नगुणसयुत वा। 'नेयाउद' न्यायेन चरति न्यायमनुगच्छति न्यायमनतिक्रान्त न्याये भव वा नैयायिक-मोक्ष-गमकम्। 'सम्रुद्ध' स=सामस्त्येन शुद्ध=कषायादिमलरहित निघर्षच्छेद-ताप-ताडन-कोटिविशुद्धहेमवन्निर्दोषमिति यावत्। 'सल्लगत्तण' शल्य=मायादि पाप वा कृन्तति=छिनत्तीति, कृत्यते=छिद्यतेऽनेनेति वा शल्यकर्तनम्। वादिमत प्रतिक्षिपति-'सिद्धिमग्ग' सिद्धिः=साध्यनिष्पत्तिः अविचलसुखप्राप्तिस्तस्या मार्ग.=उपायः-सिद्धिमार्गः। 'मुत्तिमग्ग' मुक्तिः=अहितार्थकर्मप्रहाण, तस्य मार्ग। विमतिपत्तिं निरस्यति-'निज्जाणमग्ग' निर्याण=सकलकर्मभ्य आत्मनो निःस-रण, तस्य मार्गो निर्याणमार्ग.=विशिष्टनिर्वाणावाप्तिनिदानमित्यर्थः। 'निव्वाण-मग्ग' निर्वाण=निर्वृतिः=निखिलकर्मक्षयजन्य परमसुख, यद्वा निर्वायते=अपुनरा[1]-वृत्ति गम्यतेऽस्मिन्निति, तस्य मार्गो निर्वाणमार्गः। वस्त्वन्तर पूर्वतः सुस्थमपि कालान्तरेण विक्रियते प्रवचन तु न तथा कालत्रयेऽप्यविकृतत्वादिति निगमयन्नाह-'अवितह' अवितथ=तथ्यम्, आह- सत्याऽवितथयो. पर्यायत्वात् पौनरुक्त्य कथ नेति? उच्यते-पूर्वं सत्यार्थप्रतिपादकत्वात्सत्यमित्युक्तमिह तु सत्त्वस्वरूपत्वाद-वितथमिति 'अविसधि=अव्यवच्छिन्नम्, एतच्च विदेहक्षेत्रमपेक्ष्योक्त, भरतक्षेत्राद्य-

---

प्रदर्शक, अग्निमें तपाये हुए सोने के समान निर्मल (कषाय मलसे रहित), मायादि शल्यका नाशक, अविचल सुखका साधन मार्ग, कर्मनाशका मार्ग, आत्मा से कर्मको दूर करनेका मार्ग, शीतलीभूत होनेका मार्ग, अवितथ अर्थात् तीनों कालमें भी अविनाशी, महा-विदेह क्षेत्रकी अपेक्षा सदा और भरतक्षेत्र आदिकी अपेक्षा इक्कीस हजार वर्ष रहनेवाला और सब दुःखों का नाश करनेवाला मार्ग है।

તપાએલા સોના સમાન નિર્મલ (કષાયમલથી રહિત), માયાદિશલ્યનાશક, અવિચલ સુખનો સાધન-માર્ગ, કર્મનાશ કરવાનો માર્ગ, આત્માને લાગેલા કર્મને દૂર કરવાનો માર્ગ, શીતલીભૂત થવાનો માર્ગ, અવિતથ અર્થાત ત્રણે કાલમા અવિનાશી, મહાવિદેહ ક્ષેત્રની અપેક્ષા સદા અને ભરતક્ષેત્ર આદિની અપેક્ષા એકવીશ હજાર વર્ષ રહેવાવાળો અને સર્વ દુ ખનો નાશ કરવાવાળો માર્ગ છે

टि १-क्रियाविशेषमिदम्।

पेक्षयैकत्रिंशतिसहस्रावच्छिन्नवर्षाण्येव निरवच्छेदमवस्थिते'। 'सव्वदुक्खप्पहीण-मग्ग' सर्वदुःखप्रक्षीण=निःश्रेयस तस्य मार्गः=सर्वदुःखप्रक्षीणमार्गः।

इत्थ प्रवचनस्य विशेषणबाहुल्येन यन्निर्गलित तदाह—'इत्थठिया' इत्थमिति 'अत्र' इत्यस्यार्थेऽव्ययम्, इत्थम्=अत्र=प्रोक्तविशेषणविशिष्टे निर्ग्रन्थ प्रवचने स्थिता'=वर्त्तमानाः जीवाः=प्राणिनः, 'सिज्झति' सिध्यन्ति=सिद्धिगतिं प्राप्नुवन्ति 'अणिमाद्यष्टसिद्धियुक्ता भवन्ति वा। 'बुज्झति' बुध्यन्ते=केवलिनो भवन्ति, 'मुचति' मुच्यन्ते=कर्मबन्धात्पृथग् भवन्ति 'परिनिव्वायति' परिनि र्वान्ति=सर्वथा सुखिनो भवन्ति। 'सव्वदुक्खाणमत करति' सर्वाणि च तानि दुःखानि=सर्वदुःखानि=शारीरमानसादीनि तेषामन्तो नाशस्त कुर्वन्ति।' इत्थ ज्ञात्वा ससारसागर तितीर्षुरात्मानमुद्दिश्याऽऽह—'त' तम्=पूर्वोक्तविशेषण-विशिष्टम्, 'धम्म' धर्म्म=निर्ग्रन्थप्रवचनस्वरूपम् 'सद्दहामि' श्रद्दधे=अयमेव केवल ससारपारावारपारोत्तारक इति भावये। 'पत्तियामि' प्रत्येमि=विश्वा-

इस मार्गमें रहे हुए प्राणी सिद्धगति से, अथवा अणिमा आदि आठ सिद्धियों से युक्त होते हैं, केवल पदको प्राप्त होते हैं, कर्मबन्ध से मुक्त होते है, सर्व सुख को प्राप्त होते हैं और शारी-रिक मानसिक सर्व दुःखोंसे निवृत्त होते है। उस धर्मकी मैं श्रद्धा करता हूँ अर्थात् एक यही ससार समुद्र से तारनेवाला है ऐसी भावना करता हूँ, अन्तःकरण से प्रतीति करता हूँ, उत्साहपूर्वक आसेवन करता हूँ, आसेवना द्वारा स्पर्श करता हूँ और प्रवृद्ध परि-

આ માર્ગમા રહેલા પ્રાણી સિદ્ધગતિથી અથવા અણિમાદિ આઠ સિદ્ધિઓથી યુક્ત હોય છે, કેવલપદને પ્રાપ્ત થાય છે, કર્મબન્ધથી મુક્ત થાય છે, સર્વ સુખોને પ્રાપ્ત કરે છે અને શારીરિક માનસિક દુઃખોથી નિવૃત્ત થાય છે-તે ધર્મની હુ શ્રદ્ધા કરૂ છુ અર્થાત્ આ સસાર સમુદ્રથી તારવાવાળો તે એકજ છે એવી ભાવના કરૂ છુ, અન્તઃકરણથી પ્રતીતિ કરૂ છુ ઉત્સાહપૂર્વક આસેવન કરૂ છુ, આસેવના દ્વારા સ્પર્શ કરૂ છુ, અને પ્રવૃદ્ધ પરિણામ-ઉચ્ચ ભાવથી પાલન કરૂ છુ, અને સર્વથા નિર-તર આરાધના કરૂ છુ તે ધર્મમા શ્રદ્ધા કરતો થકો, પ્રતીતિ કરતો થકો, રુચિ રાખતો

१– अणिमादयो यथा-"अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्व, वशित्व चाष्टद्धिय" इति॥

सभूमिं करोमि, यद्वा प्रतिपद्ये=प्रीत्या प्राप्नोमि। 'रोएमि' रोचयामि=उत्साहातिरेकेणाऽऽसेवनाभिमुखो भवामि 'फासेमि' सेवनाद्वारेण स्पृशामि। 'पालेमि' प्रवृद्धपरिणामेन पालयामि। 'अणुपालेमि' अनु=अनुकूल पालयामि, यद्वा सर्वतोभावेन करोमि। 'त धम्म' त धर्मम्, 'सद्दहतो' श्रद्दधानः='प्रवचनमिद सत्यमस्ती'-त्येवमात्मपरिणाम कुर्वाणः, 'पत्तियतो' प्रतियन्=विश्वासभूमिं कुर्वन्, यद्वा प्रतिपद्यमानः=प्रीत्या स्वीकुर्वाणः, 'रोएतो' रोचयमानः= रुचिविषय कुर्वाणः, 'फासतो' स्पृशन्=आसेवमान', 'पालतो' पालयन्= प्रवृद्धपरिणामेन सेवमानः, 'अणुपालतो' अनुपालयन्=अनुकूल पालयन्, यद्वा सर्वतोभावेन कुर्वन्, 'तस्स' तस्य=पूर्वोक्तस्य 'केवलिपन्नत्तस्स' केवलिप्रज्ञप्तस्य, 'धम्मस्स' धर्मस्य, 'अब्भुट्ठिओमि' अभ्युत्थितोऽस्मि=उद्यतो भवामि 'आराहणाए' आराधनायामर्थादासेवनाविषये, 'विरओमि' विरतोऽस्मि,=निवृत्तोऽस्मि 'विराहणाए' विराधनाया=खण्डनायाम्। एष एवार्थो विभिद्योच्यते-यत एवमतः-'असजम परियाणामि' असयमः=प्राणातिपाताद्यकुशलानुष्ठानरूपः सयमाभावस्त परिजानामि=ज्ञपरिज्ञाबलेन ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यजामि। 'सजम' सम्=शोभनाः यमाः प्राणातिपातादिनिवृत्तिरूपा यस्मिन्, यद्वा सयम्यते=निवर्त्यते सावद्यानुष्ठानादात्मा येन स सयमस्तम् 'उवसपज्जामि'

णाम (उच्चभाव) से पालता हूँ और सर्वथा निरन्तर आराधना करता हूँ। उस धर्ममें श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि रखता हुआ, स्पर्श करता हुआ, पालन करता हुआ और सम्यक् पालन करता हुआ उस केवलि प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए मै उद्यत हुआ हूँ, तथा सब प्रकार की विराधना से निवृत्त हुआ हूँ, अतएव असयम (प्राणातिपात आदि अकुशल अनुष्ठान) की ज्ञपरिज्ञा से जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से परित्याग कर सावद्य अनुष्ठान-

---

થકો, સ્પર્શ કરતો થકો, પાલન કરતો થકો, અને સમ્યક્ પાલન કરતો થકો તે કેવલિ-પ્રરૂપિત ધર્મની આરાધના માટે હુ તૈયાર થયો છુ, તથા સર્વ પ્રકારની વિરાધનાથી નિવૃત્ત થયો છુ, એટલા માટે અસયમ (પ્રાણાતિપાત આદિ અકુશલ અનુષ્ઠાન) ને જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણીને અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી પરિત્યાગ કરીને સાવદ્ય અનુષ્ઠાન નિવૃત્તિરૂપ સયમનો સ્વીકાર કરૂ છુ મૈથુનરૂપ અકૃત્યને છોડી

उपसम्पद्ये=स्वीकुर्वे। 'अबम' अब्रह्म=मैथुनलक्षणाऽकुशलकर्म' 'परियाणामि' परिजानामि=परित्यजामि। 'बम' ब्रह्म=मैथुनपरित्यागलक्षण कुशलकर्म= शीलमित्यर्थः, 'उवसपज्जामि' उपसम्पद्ये=अङ्गीकुर्वे। एवम्-'अकप्प' 'अकल्पम्= मुमुक्षुभिरनाचरित 'कप्प' कल्पः=करण-चरणस्वरूप आचारस्तम्, 'अन्नाण' जीवादिवस्तुनो यथावस्थितस्वरूपानिर्णयलक्षणमज्ञानम्, 'नाण' ज्ञायते=परिच्छि द्यते वस्त्वनेनास्माद्वेति ज्ञानम्=वस्तुयथावत्स्वरूपक, यद्वा ज्ञातिर्ज्ञान=वस्तुयथाव स्वरूपानुभवस्तत्, 'अकिरिय' अक्रियाम्, नञोऽत्र दुरर्थकत्वाद्दुष्टा क्रियामिति, यद्वा अप्रशस्त्यार्थकोऽत्र नञ्, तेनाप्रशस्ता क्रिया नास्तिकवादस्वरूपामित्यर्थः, 'किरिय' क्रिया=सम्यग्व्यापारः, सम्यग्वादो वा ताम्, 'मिच्छत्त' मिथ्यात्व= तत्त्वार्थाश्रद्धान=विपर्यस्तश्रद्धानमित्यर्थः, तथा चोक्तम्-'मिच्छत्त जिणधम्म विवरीय' इति। 'सम्मत्त' सम्यक्त्व=सामान्यविशेषाभ्या जिनप्रणीतजीवादि पदार्थसार्थस्य श्रद्धानम्। 'अबोहिं' अबोधिः=आत्मनो मिथ्यात्वपरिणामस्तम्। 'बोहिं' बोधिः=आत्मनः सकलदुःखक्षयनिदानजिनधर्मप्राप्तिस्तम्, 'अमग्ग'

निवृत्तिरूप सयम को स्वीकार करता हूँ, मैथुनरूप अकृत्य को छोड कर ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठान को स्वीकार करता हूँ, अ-कल्पनीय को छोड कर करणचरणरूप कल्प को स्वीकार करता हूँ, अज्ञान को त्याग कर ज्ञान को अङ्गीकार करता हूँ, नास्तिक वादरूप अक्रिया को छोडकर आस्तिकवाद रूप क्रिया को ग्रहण करता हूँ, मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ, आत्मा के मिथ्यात्व परिणामरूप अबोधि को छोड कर सकल दुःखनाशक जिनधर्मप्राप्तिरूप बोधि को ग्रहण करता हूँ और जिनमतसे विरुद्ध पार्श्वस्थ निह्नव तथा कुतीर्थि-सेवित अमार्ग

બ્રહ્મચર્યરૂપ શુભ અનુષ્ઠાનનો સ્વીકાર કરૂ છુ અકલ્પનીયને છોડીને કરણચરણ-રૂપ કલ્પનો સ્વીકાર કરૂ છુ અજ્ઞાનને છોડીને જ્ઞાનને અંગીકાર કરૂ છુ નાસ્તિકવાદરૂપ અક્રિયાનો ત્યાગ કરીને આસ્તિકવાદરૂપ ક્રિયાને ગ્રહણ કરૂ છું મિથ્યાત્વનો ત્યાગ કરીને સમ્યકત્વનો સ્વીકાર કરૂ છુ આત્માના મિથ્યાત્વપરિ-ણામરૂપ અબોધિને છોડીને સકલ દુ ખનો નાશ કરનાર જિનધર્મની પ્રાપ્તિરૂપ બોધિને ગ્રહણ કરૂ છુ, અને જિનમતથી વિરુદ્ધ પાર્શ્વસ્થ નિહ્નવ તથા કુતીર્થિ-

अमार्गः=जिनवचनविरुद्धपार्श्वस्थनिह्नवादिकुतीर्थिससेवितलक्षणस्तम्, 'मग्ग' मार्गो=ज्ञानादिरत्नत्रयस्वरूपस्तम्, छद्मस्थत्वात्समस्तदोपशुद्धिमाह-'ज सभरामि' यत्स्मरामि=स्मृतिपथमानयामि, 'ज च न सभरामि' यच्च न स्मरामि=छद्मस्थत्वेन विस्मृतिस्वाभाव्यात्स्मृतिपथ नाऽऽनयामि, 'ज पडिकमामि' यत्प्रतिक्रामामि=ज्ञात सत् प्रतिनिवर्त्तयामि परित्यजामि वा, 'ज च न पडिकमामि' यच्चाऽनाभोगादज्ञात सूक्ष्म न प्रतिक्रमितु शक्नोमि, 'तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिकमामि' निगदव्याख्यातमिदम् ।

इत्थ प्रतिक्रम्य सयतविरतादिविशेपणविशिष्ट स्वात्मानमनुस्मरन् सर्वसाधुवन्दना करोति-'समणोह' श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणः, तपश्चरणशीलः कश्चिदन्यो वा सम्भवतीत्यत आह-'सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मो' सयतः=वर्त्तमानकालिकसर्वसावद्यानुष्ठाननिवर्त्तकः, विरतः=अतीतकालिकपापाज्जुगुप्सापूर्वक भविष्यति च सवरपूर्वक निवृत्तः, अत एव प्रतिहत=सम्यक्प्रकारेण

को छोड कर ज्ञानादि रत्नत्रय रूप मार्ग को स्वीकार करता हूँ। इसी प्रकार जो अतिचार स्मरण में आता है या छद्मस्थ अवस्था के कारण स्मरण में नहीं आता है तथा जिसका प्रतिक्रमण किया हो या अनजानवश जिसका प्रतिक्रमण नहीं किया हो उन सब दैवसिक अतिचारों से निवृत्त होता हूँ।

इस प्रकार प्रतिक्रमण करके सयत-विरतादिरूप निज आत्मा का स्मरण करता हुआ सब साधुओं का वन्दना करता है।

सयत (वर्त्तमान में सकल सावद्य व्यापारों से निवृत्त) विरत (पहले किये हुए पापों की निन्दा और भविष्य काल के

સેવિત અમાર્ગને છોડીને જ્ઞાનાદિ-રત્નત્રયરૂપ માર્ગનો હુ સ્વીકાર કરૂ છુ એ પ્રમાણે જે અતિચાર સ્મરણમા આવે છે અથવા છદ્મસ્થ અવસ્થાના કારણે સ્મરણમા ન આવે તથા જેનું પ્રતિક્રમણ કર્યું હોય અથવા અજાણપણાથી જેનુ પ્રતિક્રમણ ન કર્યું હોય તે સર્વ દૈવસિક અતિચારોથી નિવૃત્ત થાઉ છુ

આ પ્રમાણે પ્રતિક્રમણ કરીને સયત-વિરતાદિરૂપ નિજ આત્માનું સ્મરણ કરતો થકો સર્વ સાધુઓને વદના કરૂ છું

સયત (વર્ત્તમાનમા સર્વ સાવદ્ય વ્યાપારોથી નિવૃત્ત), વિરત (પ્રથમ કરેલા

उपसम्पद्ये=स्वीकुर्वे। 'अबंभ' अब्रह्म=मैथुनलक्षणाऽकुशलकर्म' 'परियाणामि' परिजानामि=परित्यजामि। 'बंभ' ब्रह्म=मैथुनपरित्यागलक्षण कुशलकर्म= शीलमित्यर्थः, 'उवसंपज्जामि' उपसम्पद्ये=अङ्गीकुर्वे। एवम्-'अकप्प' 'अकल्पम्= मुमुक्षुभिरनाचरित 'कप्प' कल्पः=करण-चरणस्वरूप आचारस्तम्, 'अन्नाण' जीवादिवस्तुनो यथावस्थितस्वरूपानिर्णयलक्षणमज्ञानम्, 'नाण' ज्ञायते=परिच्छि- द्यते वस्त्वनेनास्माद्वेति ज्ञानम्=वस्तुयथावत्स्वरूपकं, यद्वा ज्ञातिर्ज्ञान=वस्तुयथाव स्वरूपानुभवस्तत्, 'अकिरियं' अक्रियाम्, नञोऽत्र दुरर्थकत्वाद्दुष्टा क्रियामिति, यद्वा अप्राशस्त्यार्थकोऽत्र नञ्, तेनाप्रशस्ता क्रिया नास्तिकवादस्वरूपामित्यर्थः, 'किरियं' क्रिया=सम्यग्व्यापारः, सम्यग्वादो वा ताम्, 'मिच्छत्त' मिथ्यात्व= तत्त्वार्थाश्रद्धान=विपर्यस्तश्रद्धानमित्यर्थः, तथा चोक्तम्-'मिच्छत्त जिणधम्म विवरीय' इति। 'सम्मत्त' सम्यक्त्व=सामान्यविशेषाभ्या जिनप्रणीतजीवादि पदार्थसार्थस्य श्रद्धानम्। 'अबोहिं' अबोधिः=आत्मनो मिथ्यात्वपरिणामस्तम्। 'बोहिं' बोधिः=आत्मन. सकलदुःखक्षयनिदानजिनधर्मप्राप्तिस्तम्, 'अमग्ग'

निवृत्तिरूप सयम को स्वीकार करता हूँ, मैथुनरूप अकृत्य को छोड कर ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठान को स्वीकार करता हूँ, अ कल्पनीय को छोड कर करणचरणरूप कल्प को स्वीकार करता हूँ, अज्ञान को त्याग कर ज्ञान को अङ्गीकार करता हूँ, नास्तिक वादरूप अक्रिया को छोडकर आस्तिकवाद रूप क्रिया को ग्रहण करता हूँ, मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ, आत्मा के मिथ्यात्व परिणामरूप अबोधि को छोड कर सकल दु.खनाशक जिनधर्मप्राप्तिरूप बोधि को ग्रहण करता हूँ और जिनमतसे विरुद्ध पार्श्वस्थ निह्नव तथा कुतीर्थि-सेवित अमार्ग

બ્રહ્મચર્યરૂપ શુભ અનુષ્ઠાનનો સ્વીકાર કરૂ છુ અકલ્પનીયને છોડીને કરણચરણ રૂપ કલ્પનો સ્વીકાર કરૂ છુ અજ્ઞાનને છોડીને જ્ઞાનને અંગીકાર કરૂં છુ નાસ્તિકવાદરૂપ અક્રિયાનો ત્યાગ કરીને આસ્તિકવાદરૂપ ક્રિયાને ગ્રહણ કરૂ છું મિથ્યાત્વનો ત્યાગ કરીને સમ્યકત્વનો સ્વીકાર કરૂ છુ આત્માના મિથ્યાત્વપરિ- ણામરૂપ અબોધિને છોડીને સકલ દુ ખનો નાશ કરનાર જિનધર્મની પ્રાપ્તિરૂપ બોધિને ગ્રહણ કરૂ છુ, અને જિનમતથી વિરુદ્ધ પાર્શ્વસ્થ નિહ્નવ તથા કુતીર્થિ-

बाह्य=पृथिव्यादिरजः, आभ्यन्तर=बध्यमानकर्मस्वरूप, कारणे कार्योपचारात्, ननु-रजोहरणस्पर्शवशादल्पकायाना कुन्थु-मत्कुण-पिपीलिका-मशकादीना जीवाना विनाशस्य, यथेच्छगमनभोज्यादिव्याघातस्य प्रमृष्टरजःप्रभृतिभिः कदाचित् पिपीलिकादिविवरादिसमुद्रणादिनोपघातस्य प्रायः प्रत्यक्षसिद्धत्वाद्रजोहरण सयम-योगाना न कारण प्रत्युताऽनर्थस्य, तस्मान्न धार्यमिति,

---

हजार शीलाङ्गरथ के धारक तथा आधाकर्म आदि ४२ दोषों को टाल कर आहार लेने वाले, ४७ दोष टाल कर आहार भोगने वाले, अखण्ड आचार चारित्र को पालने वाले ऐसे स्थविरकल्पी जिनकल्पी मुनिराजों को 'तिक्खुत्तो' के पाठ से वन्दना करता हूँ।

यहा पर रजोहरण धारण करने के विषयमे कोई शङ्का करता है कि-रजोहरण धारण करना एक प्रकार की हिंसा का कारण है, क्यों कि रजोहरण के स्पर्श से कुन्थु, पिपीलिका आदि छोटे २ जीवों के इच्छानुकूल चलने फिरने में बाधा हो सकती है, और इसके द्वारा एकत्रित की हुई धूली आदि से पिपीलिका आदि का विवर (दर) ढक जाने पर उनका उपघात होना प्रायः प्रत्यक्ष सिद्ध है, इसलिये रजोहरण सयम योग का कारण नहीं है प्रत्युत अनर्थ का कारण है, अतः इसका धारण करना उचित नही है।

---

૪૨ દોષોને ટાળી આહાર ગ્રહણુ કરનાના, ૪૭ દોષ ટાળીને આહાર ભોગવવાવાળા, અખડ આચાર ચારિત્ર પાલન કરવાવાળા એવા સ્થવિરકલ્પી જિનકલ્પી મુનિરાજોને તિખુત્તાના પાઠથી વદના કરૂ છુ

અહીં રજોહરણ ધારણ કરવા વિષે કોઈ શકા કરે છે કે-રજોહરણ ધારણ કરવુ એક પ્રકારની હિંસાનુ કારણ છે કારણ કે રજોહરણના સ્પર્શથી કુથવા, કીડી આદિ નાના નાના જીવોને સ્વઇચ્છાપ્રમાણે હરવા-ફરવામા તકલીફ થઇ શકે છે અને એના વડે એકઠી કરેલી ધૂલ આદિથી કીડી આદિના દર (રહેવાના દર) ઢકાઈ જવાથી તે જીવોનો ઉપઘાત થઇ જવુ પ્રાય પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ છે એટલા માટે રજોહરણ સયમ યોગોનો સાધક નથી પરન્તુ અનર્થનુ કારણ છે, માટે એને ધારણ કરવુ ઉચિત નથી

नाशित प्रत्याख्यात च=पूर्वकृतस्याऽतिचारस्य निन्दया, भविष्यतोऽकरणेन च निराकृत पापकर्म=पापानुष्ठान येन स प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, सयतश्चासौ विरतश्च सयतविरतः, (विशेषणयोरपि परस्परविशेष्यविशेषणभावात्समासो गतप्रत्यागतादिवत्) सयतविरतश्चासौ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा चेति सयतविरतप्रतिहप्रत्याख्यातपापकर्मा, पुनः कीदृशोऽहम् ? 'अणियाणो' अनिदानः=अकृतनिदानः, एतादृशो मिथ्यादृष्टिरपि सम्भवति तस्मादाह–'दिट्ठिसपन्नो' दृष्टिसम्पन्नः=सम्यग्दर्शनसहितः, अतएव 'मायामोसविवज्जिओ' मायामृषाविवर्जितः=माया–मृषावादाभ्या रहितः, एव भूत्वा 'अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु' [1]अर्द्धतृतीयेषु द्वीप समुद्रेषु=जम्बूद्वीप–धातकीखण्ड–पुष्करार्द्धरूपेषु, 'पन्नरसकम्मभूमीसु' पञ्चदशसु कर्मभूमिषु=कर्म=कृषिवाणिज्यप्रभृति मोक्षानुष्ठान वा तत्प्रधाना भूमयः कर्मभूमयः भरतपञ्चकैरवतपञ्चक–महाविदेहपञ्चक–लक्षणास्तासु स्थिता इति शेषः, 'जावंति' यावन्तः, 'केइ' केचित् 'रयहरणगुहपत्तियगोच्छगपडिग्गहधारा' रजः=बाह्याभ्यन्तर रजो ह्रियते=अपनीयतेऽनेनेति, [2]हरत्यपनयतीति वा रजोहरणम्, तत्र

लिये सवर करके सकल पापों से रहित), अतएव अतीत अनागत वर्त्तमान कालीन सब पापों से मुक्त, अनिदान–नियाणारहित, सम्यग्दर्शनसहित तथा माया मृषा का त्यागी ऐसा मै श्रमण, अढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र (कर्मभूमियों) में विचरनेवाले, रजोहरण पूजनी पात्र को धारण करने वाले और डोरासहित मुखवस्त्रिका को मुख पर बाधनेवाले, पाच महाव्रत के पालनहार और अठारह

પાપોની નિન્દા અને ભવિષ્ય કાલ માટે સવર કરીને સર્વ પાપથી રહિત), એટલા માટે અતીત, અનાગત અને વર્ત્તમાન કાલના સર્વ પાપોથી મુકત, અનિદાન–નિયાણા રહિત, સમ્યગ્દર્શન સહિત તથા માયામૃષાનો ત્યાગી એવો હુ શ્રમણ, અઢી દ્વીપ સબધી પદર ક્ષેત્રો (કર્મભૂમિ) મા વિચરવાવાળા, રજોહરણ પૂજણી પાત્રને ધારણ કરવાવાળા અને દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકાને મુખ પર બાધવાવાળા, પાચ મહાવ્રતના પાલનહાર અને અઢાર હજાર શીલાગરથના ધારણ કરનાર તથા આધાકર્મ આદિ

१–अर्द्ध तृतीय येषु तेऽर्द्धतृतीयास्तेषु ।

२–अर्थमात्रप्रदर्शनमिद, व्युत्पत्तिस्तु 'रजसो हरण'–मित्येवेति प्रेक्षावता सूक्ष्मेक्षिका ।

वाह्य=पृथिव्यादिरजः, आभ्यन्तर=वध्यमानकर्मस्वरूप, कारणे कार्योपचारात्, ननु-रजोहरणस्पर्शवशादल्पकायाना कुन्थु मत्कुण पिपीलिका मशकादीना जीवाना विनाशस्य, यथेच्छगमनभोज्यादिव्याघातस्य प्रमृष्टरजःप्रभृतिभिः कदाचित् पिपीलिकादिविवरादिसमुद्रणादिनोपघातस्य प्रायः प्रत्यक्षसिद्धत्वाद्रजोहरण सयम-योगाना न कारण प्रत्युताऽनर्थस्य, तस्मान्न धार्यमिति,

---

हजार शीलाङ्गरथ के धारक तथा आधाकर्म आदि ४२ दोषों को टाल कर आहार लेने वाले, ४७ दोष टाल कर आहार भोगने वाले, अखण्ड आचार चारित्र को पालने वाले ऐसे स्थविरकल्पी जिनकल्पी मुनिराजों को 'तिक्खुत्तो' के पाठ से वन्दना करता हूँ।

यहा पर रजोहरण धारण करने के विषयमें कोई शङ्का करता है कि-रजोहरण धारण करना एक प्रकार की हिंसा का कारण है, क्यों कि रजोहरण के स्पर्श से कुन्थु, पिपीलिका आदि छोटे २ जीवों के इच्छानुकूल चलने फिरने मे बाधा हो सकती है, और इसके द्वारा एकत्रित की हुई धूली आदि से पिपीलिका आदि का विवर (दर) ढक जाने पर उनका उपघात होना प्रायः प्रत्यक्ष सिद्ध है, इसलिये रजोहरण सयम योग का कारण नही है प्रत्युत अनर्थ का कारण है, अतः इसका धारण करना उचित नही है।

---

૪૨ દોષોને ટાલી આહાર ગ્રહણ કરનારા, ૪૭ દોષ ટાલીને આહાર ભોગવવાવાળા, અખડ આચાર ચારિત્ર પાલન કરવાવાળા એવા સ્થવિરકલ્પી જિનકલ્પી મુનિરાજોને તિખુત્તાના પાઠથી વદના કરૂ છુ

અહીં રજોહરણ ધારણ કરવા વિષે કોઈ શકા કરે છે કે-રજોહરણ ધારણ કરવું એક પ્રકારની હિંસાનું કારણ છે કારણ કે રજોહરણના સ્પર્શથી કુથવા, કીડી આદિ નાના નાના જીવોને સ્વઇચ્છાપ્રમાણે હરવા-ફરવામા તકલીફ થઈ શકે છે અને એના વડે એકઠી કરેલી ધૂલ આદિથી કીડી આદિના દર (રહેવાના દર) ઢકાઈ જવાથી તે જીવોનો ઉપઘાત થઈ જવુ પ્રાય પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ છે એટલા માટે રજોહરણ સયમ યોગોનો સાધક નથી પરન્તુ અનર્થનું કારણ છે, માટે એને ધારણ કરવુ ઉચિત નથી

अत्रोच्यते-अपरिज्ञातरजोहरणग्रहणाऽऽशयत्वाद्भ्रान्तोऽसि, येन नेत्रेऽङ्गुल्दिानतो द्विचन्द्रादिप्रतिभानवद्रजोहरणधारणस्याऽन्यथात्वमित्थमाशङ्कसे, हन्त विकृताङ्ग! नासौ त्वत्पक्षः क्षोदक्षेमक्षमः, नहि वय धृतरजोहरणा यूयमिव गजनिमीलिकया सञ्चरामः पर्यटामोऽन्यद्वा निञ्चिद्व्यवहरामो, येन रजोहरण स्पर्शादिना जीवक्लेशलेशोऽपि समुत्पद्येत, चक्षुषा समीक्ष्य कुन्थुपिपीलिकादीनामनुपलम्भे सति उपलम्भेऽपि वा तद्रक्षणसक्षणतयैव तत्राऽप्यतिकोमलोर्णादिरचितेन रजोहरणेन प्रमार्ज्म इति कथमुपघातादिसम्भवः ? न ह्यपथ्याशिनोऽपरिपाकादिकायदोषसद्भावात्पथ्याशन केनापि सद्विवेकजुषा विदुषा परिहीयते, जीवाद्यव-

इस शका (प्रश्न) का उत्तर देते हैं-अरे भ्राता! रजोहरण धारण करने के आशय से अनभिज्ञ होने के कारण आप भ्रान्त हैं। इस कारण आपका पक्ष तर्क की कसौटी पर खरा (बराबर) नही उतरता, क्यों कि बाह्य-पृथ्वी आदि रज और आभ्यन्तर-बाधे हुए कर्मरूपी रज जिससे दूर किया जाय उसे रजोहरण कहते हैं। उस सुकोमल रजोहरण द्वारा हम उपयोग-सहित यत्नायुक्त प्रमार्जन करते हैं, इसलिये प्रमार्जन (पूजने) से जीवोपघात होने की सभावना नही हो सकती।

यदि किसी को अपथ्य भोजन से अजीर्ण होजाय तो क्या पथ्याहारी लोग पथ्य भोजन करना छोड देंगे! कदापि नही। इसी प्रकार यदि कदाचित् असयमी द्वारा प्रमार्जन करते जीवोपघात

આ શકાનો ઉત્તર આપે છે કે-અરે ભ્રાતા! રજોહરણ ધારણ કરવાના આશયથી અનભિજ્ઞ હોવાના કારણે તૂ ભ્રાન્ત છે તેથી તમારો પક્ષ તર્કની કસોટી ઉપર બરાબર નથી ઉતરતો, કેમ કે બાહ્ય-પૃથ્વી આદિ રજ અને આભ્યન્તર-બાધેલા કર્મરૂપી રજ જેનાથી દૂર કરી શકાય તેને રજોહરણ કહે છે તે સુકોમલ રજોહરણ દ્વારા ઉપયોગ સહિત યતનાયુક્ત પ્રમાર્જન કરીએ છીએ, એ કારણે પ્રમાર્જન (પૂજવા)થી જીવોપઘાતક થવાની સભાવના નથી

જો કદાચિત કોઈને અપથ્ય આહારથી અજીર્ણ થઇ જાય તો શુ પથ્ય આહાર કરવાવાળા માણસો ખાવું છોડી દેશે! ન જ છોડે એજ રીતે જો કદાચિત અસયમી દ્વારા પ્રમાર્જન કરતા જીવોપઘાત થઇ જાય તો શુ સયમી રજોહરણને

लोकनपूर्वकेऽपि प्रमार्जने त्वत्कल्पितेन सम्भावितोपघातेन तु वयनाऽपराध्यामो, न वा शास्त्रसिद्धान्तगन्धोऽपि तथा, यतो रजोहरणधारणतत्प्रमार्जनादिकमस्माभिर्जन्तुजातत्राणार्थमेव क्रियते नतूपघातधिया, अत एव व्याधिग्रस्ताना प्राणिनामुपकारार्थं चिकित्सता विज्ञेन विहिते चिकित्साप्रयोगे कदाचित्तेषा व्यापत्तौ सत्यामपि नासौ प्रायश्चित्तार्हश्चिकित्सकः। किञ्च यदि सम्मार्जनादिना कदाचित्सभावित दोषमपेक्ष्य रजोहरणग्रहणप्रतिषेधाऽऽग्रहग्रहिलोऽसि, तदा मन्ये त्वयाऽशन–पान–

हो जाय तो क्या सयमी रजोहरण का त्याग करदे ! कदापि नही ! क्यों कि सयमी द्वारा जीवोपघात होने की सभावनाही नहीं है। जीवों को देखकर यत्नापूर्वक प्रमार्जन करने पर भी तुमने जो कल्पना की उस सभावित जीवोपघात का अपराध हमें नही लग सकता, इस कारण तुम्हारी शङ्का जरा भी शास्त्रानुकूल नहीं है, क्यों कि जीवों की रक्षा के लिये ही सयमी रजोहरण धारण करते हैं एव उसके द्वारा प्रमार्जन करते हैं, उपघात के लिये नहीं। यदि उपकार की दृष्टि से रोगियों की चिकित्सा करने वाले वैद्य की चिकित्सा से किसी रोगी को किसी भी प्रकार की क्षति पहुच भी जाय तो भी वह वैद्य अपराधी नहीं हो सकता, क्यों कि वैद्य रोगी की हितबुद्धि से ही चिकित्सा करता है।

इस पर भी यदि तुम रजोहरण धारण करने में आपत्ति समझते हो तो मैं मानता हूँ कि तुम्हें अशन, पान, भ्रमण,

ત્યાગ કરી દે ! ન જ કરે કેમકે સયમી દ્વારા જીવોપઘાત થવાની સભવનાજ નથી જીવોને જોતા થકા યત્નાપૂર્વક પ્રમાર્જન કર્યા છતા તમે જે કલ્પના કરી તે સભાવિત જીવોપઘાતનો અપરાધ અમને નથી લાગી શકતો, એ કારણે તમારી શકા જરાય શાસ્ત્રાનુકુલ નથી, કેમ કે સયમી મુનિ જીવોની રક્ષા અર્થેજ રજોહરણ ધારણ કરે છે તેમજ તેના વડે પ્રમાર્જન કરે છે, જીવોપઘાત માટે નહી જો ઉપકારની દૃષ્ટિથી રોગિઓની ચિકિત્સા કરવાવાળા વૈદ્યની ચિકિત્સાથી કોઇ રોગીને કોઇ પણ જાતની હાનિ પહોચી પણ જાય તો પણ વૈદ્ય અપરાધી થઇ શકતો નથી, કારણ કે વૈદ્ય તો રોગીની હિતબુદ્ધિથીજ ચિકિત્સા કરવાવાળો છે

તે છતા જો તમે રજોહરણ ધારણ કરવામા આપત્તિ માનશો તો મને માનવુ

अत्रोच्यते—अपरिज्ञातरजोहरणग्रहणाऽऽशयत्वाद्भ्रान्तोऽसि, येन नेत्रेऽङ्गुल्दिानतो द्विचन्द्रादिप्रतिभानवद्रजोहरणधारणस्याऽन्यथात्वमित्यमाशङ्कसे, हन्त त्रिकृताङ्ग! नासौ त्वत्पक्षः क्षोदक्षेमक्षमः, नहि वय धृतरजोहरणा यूयमिव गजनिमीलिकया सञ्चरामः पर्यटामोऽन्यद्वा निश्चिद्व्यवहरामो, येन रजोहरण स्पर्शादिना जीवक्लेशलेशोऽपि समुत्पद्येत, चक्षुषा समीक्ष्य कुन्थुपिपीलिकादीना मनुपलम्भे सति उपलम्भेऽपि वा तद्रक्षणसक्षणतयैव तत्राऽप्यतिकोमलोर्णादिरचितेन रजोहरणेन प्रमार्ज्म इति कथमुपघातादिसम्भवः? न ह्यपथ्याशिनोऽपरिपाकादिकायदोपमद्भावात्पथ्याशन केनापि सद्विवेकजुपा विदुपा परिहीयते, जीवाश्च

इस शका (प्रश्न) का उत्तर देते हैं—अरे भ्राता! रजोहरण धारण करने के आशय से अनभिज्ञ होने के कारण आप भ्रान्त है। इस कारण आपका पक्ष तर्क की कसौटी पर खरा (बराबर) नही उतरता, क्यों कि बाह्य–पृथ्वी आदि रज और आभ्यन्तर–बाधे हुए कर्मरूपी रज जिससे दूर किया जाय उसे रजोहरण कहते हैं। उस सुकोमल रजोहरण द्वारा हम उपयोग–सहित यत्नायुक्त प्रमार्जन करते हैं, इसलिये प्रमार्जन (पूजने) से जीवोपघात होने की सभावना नही हो सकती।

यदि किसी को अपथ्य भोजन से अजीर्ण होजाय तो क्या पथ्याहारी लोग पथ्य भोजन करना छोड देंगे! कदापि नहीं। इसी प्रकार यदि कदाचित् असयमी द्वारा प्रमार्जन करते जीवोपघात

આ શકાનો ઉત્તર આપે છે કે–અરે ભ્રાતા! રજોહરણ ધારણ કરવાના આશયથી અનભિજ્ઞ હોવાના કારણે તૂ ભ્રાન્ત છે તેથી તમારો પક્ષ તર્કની કસોટી ઉપર બરાબર નથી ઉતરતો, કેમ કે બાહ્ય–પૃથ્વી આદિ રજ અને આભ્યન્તર–બાધેલા કર્મરૂપી રજ જેનાથી દૂર કરી શકાય તેને રજોહરણ કહે છે તે સુકોમલ રજોહરણ દ્વારા ઉપયોગ સહિત યતનાયુક્ત પ્રમાર્જન કરીએ છીએ, એ કારણે પ્રમાર્જન (પૂજવા)થી જીવોપઘાતક થવાની સભાવના નથી

જો કદાચિત કોઈને અપથ્ય આહારથી અજીર્ણ થઈ જાય તો શુ પથ્ય આહાર કરવાવાળા માણસો પથ્ય ખાવું છોડી દેશે! ન જ છોડે એજ રીતે જો કદાચિત અસયમી દ્વારા પ્રમાર્જન થાતા જીવોપઘાત થઈ જાય તો શુ સયમી રજોહરણનો

॥ छाया ॥

केऽपि भणन्ति मूढाः, सयमयोगाना कारण नैवम् ।
रजोहरणमिति प्रमार्जनादिभिरुपघातभावात् ॥ १ ॥
मूइङ्गलिकादीना, विनाशसन्तानभोग्यविरहादयः ।
रजोदरिस्थगनससर्जनादिना भवत्युपघात. ॥ २ ॥
प्रत्युपेक्ष्य प्रमार्जन,–मुपघातः कथ नु तत्र भवेत् ।
अप्रमृज्य च दोषा वर्ज्या आदावागाढव्युत्सर्गे ॥ ३ ॥
आत्मपरपरित्यागो द्विधापि शास्त्रस्य (शासितुः) अकौशल नूनम् ।
ससर्जनादिदोषा देहे इव अविधिना नो भवन्ति ॥ ४ ॥

इत्यास्ता विस्तरः, प्रकृतमनुस्रियते–मुखवस्त्रिका–वायुकायादियतनार्थं मुखोपरि दवरकेण बन्धनीयमष्टपुटमुपकरणम्, गुच्छकः=पात्रादिप्रमार्जनीविशेषः, 'पूँजनी' इति भाषाप्रसिद्धः, प्रतिगृह्णाति=भक्तपानादिक स्वस्मिन्नाधत्त इति प्रतिग्रह.=भक्तपानादिपात्रम्, रजोहरण च मुखवस्त्रिका च, गुच्छकश्च प्रतिग्रहश्चेति रजोहरणमुखवस्त्रिकागुच्छकप्रतिग्रहास्तान् धरन्ते ये ते रजोहरण–मुखवस्त्रिका–गुच्छक–प्रतिग्रहधारा [1] । इत्थ [2]निह्नवादयोऽपि सभवन्तीति तदपाकरणार्थमाह–'पचमहव्वयधारा' पञ्चमहाव्रतानि=प्राणातिपाताऽनृतभाषणाऽदत्ताऽऽदाना–ऽब्रह्मचर्यपरिग्रहव्युपरमलक्षणानि धरन्त इति पञ्चमहाव्रतधारा [3] । न केवलमेत एव किन्तूक्तगुणविशिष्टाः सन्तोऽपि–'अट्ठारससहस्ससीलगधारा' अष्टादशसहस्रशीलाङ्गधारा । अष्टादशशीलाङ्गसहस्राणि तु यथा–यो न करोति मनसाऽऽहारसञ्ज्ञाविप्रयुत श्रोत्रेन्द्रियसवृत. क्षान्तिसम्पन्न. पृथिवीकायारम्भम् (१), एवमप्कायारम्भम् (२), तेजस्कायारम्भम् (३), वायुकायारम्भम् (४), वनस्पतिकायारम्भम् (५), द्वीन्द्रियारम्भम् (६), त्रीन्द्रियारम्भम् (७), चतुरिन्द्रियारम्भम् (८), पञ्चेन्द्रियारम्भम् (९), अजीवारम्भ च (१०) । एते क्षान्तिपदेन

१–' धारा.' कर्मण्यण् ।

२–निह्नुवत इति निह्नवाः, पचादेराकृतिगणत्वात्कर्त्तर्यच्, यद्वा निह्नवः= अपलापोऽस्त्येषामिति निह्नवा., निह्नवशब्दादर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्, सञ्ज्ञेय तान्त्रिकी ।

३–' धारा.' कर्मण्यण् ।

भ्रमण-भाषणो-त्थान-पार्श्वपरिवर्तन-मलमूत्रत्यागादिकाः क्रिया अपि परिहरणीया एव स्युः, त्वत्सम्भावितस्योक्तदोषस्य कदाचित्ताभ्योऽपि सद्भावादिति कथं जीवसि? कथं वा न निगृहीतोऽसीति ब्रूहि, तूष्णीं वाऽऽस्स्व, त्वत्पक्षे जीवदयास्वरूपमेव गगनकुसुमायत इति विभावय च। तस्मान्मुनीना संयमनिर्वाहार्थं रजोहरणाद्युपकरणग्रहणं परमावश्यकमिति बोध्यम्।

अत्र संक्षिप्तपूर्वोत्तरपक्षसङ्ग्रहगाथा अप्यन्यत्रोक्ता यथा—

'केई भणंति मूढा, संजमजोगाण कारणं नेव।
रयहरणंति पमज्जण,–माईहुववायभावाओ ॥ १ ॥

मूइगलिआईण, विणाससन्नाणभोगविरहाई।
रयहरिथगण–सस,–ज्जणाऽऽइणा होइ उववाओ ॥ २ ॥

पडिलेहिउं पमज्जण,–मुववाओ कहणु तत्थ होज्जाउ?।
अप्पमज्जिउं च दोसा, वज्जाऽऽदाणाइवोसिरणे ॥ ३ ॥

आयपरपरिचाओ, दुहावि सत्थस्सऽकोसलं नूणं।
ससज्जणाइदोसा, देहेव्वऽविहीए णो हुंति ॥ ४ ॥

भाषण, उत्थान (उठना), शयन, पार्श्वपरिवर्तन (करवट बदलना) और मल-मूत्र-परित्याग आदि क्रियाओं को भी छोडना होगा, क्यों कि तुम्हारे द्वारा कथित दोष इन क्रियाओं में भी आसकता है तो फिर बताओ कि जीवित ही कैसे रह सकोगे? तुम्हारे कथनमे जीवदया का स्वरूप आकाशकुसुम के समान हो जायगा, यह भी सोचो। इसलिये 'किसी भी जीवको किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचने पावे' इसी हेतु मुनियोंको रजोहरण आदि उपकरण धारण करना संयमनिर्वाह के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

પડશે કે તમોને અશન, પાન, ભ્રમણ, ભાષણ, ઉત્થાન (ઉઠવુ), શયન, પાર્શ્વપરિવર્તન (પડખુ ફેરવવુ) અને મલમૂત્ર પરિત્યાગ આદિ ક્રિયાઓને છોડી દેવી પડશે કારણ કે તમારા તરફથી કથિત (કહેલ) દોષ એ સર્વ ક્રિયાઓમા પણ આવી શકે છે, તો પછી કહો કે જીવિતજ કઇ રીતે રહી શકશો! તમારા કથનમા જીવદયાનુ સ્વરૂપ આકાશ-કુસુમ સમાન થઇ જશે આ માટે 'કોઇપણ જીવને કોઇ પ્રકારનુ કષ્ટ ન પહોચે' આ હેતુથી મુનિયોને રજોહરણ આદિ ઉપકરણ ધારણ કરવુ સયમનિર્વાહ અર્થે અત્યત આવશ્યક છે

॥ छाया ॥

केऽपि भणन्ति मूढाः, संयमयोगानां कारणं नैवम् ।
रजोहरणमिति प्रमार्जनादिभिरुपघातभावात् ॥ १ ॥
मूइङ्गलिकादीना, विनाशसन्तानभोग्यविरहादयः ।
रजोहरिस्थगनससर्जनादिना भवत्युपघात. ॥ २ ॥
प्रत्युपेक्ष्य प्रमार्जन,-मुपघातः कथ नु तत्र भवेत् ।
अप्रमृज्य च दोपा वर्ज्या आदावागाढव्युत्सर्गे ॥ ३ ॥
आत्मपरपरित्यागो द्विधापि शास्त्रस्य (शासितुः) अकौशल नूनम् ।
ससर्जनादिदोपा देहे इव अविधिना नो भवन्ति ॥ ४ ॥

इत्यास्तां विस्तरः, प्रकृतमनुस्रियते-मुखवस्त्रिका-वायुकायादियतनार्थं मुखोपरि दवरकेण बन्धनीयमष्टपुटमुपकरणम्, गुच्छकः=पात्रादिप्रमार्जनीविशेषः, पूँजनी' इति भाषाप्रसिद्धः, प्रतिगृह्णाति=भक्तपानादिकं स्वस्मिन्नाधत्त इति प्रतिग्रहः=भक्तपानादिपात्रम्, रजोहरण च मुखवस्त्रिका च, गुच्छकश्च प्रतिग्रहश्चेति रजोहरणमुखवस्त्रिकागुच्छकप्रतिग्रहास्तान् धरन्ते ये ते रजोहरण-मुखवस्त्रिका-गुच्छक-प्रतिग्रहधारा [1] । इत्थं [2]निह्नवादयोऽपि सभवन्तीति तदपाकरणार्थमाह-'पचमहव्वयधारा' पञ्चमहाव्रतानि=प्राणातिपाताऽनृतभाषणाऽदत्ताऽऽदाना-ऽब्रह्मचर्यपरिग्रहव्युपरमलक्षणानि धरन्त इति पञ्चमहाव्रतधारा [3] । न केवलमेत एव किन्तूक्तगुणविशिष्टाः सन्तोऽपि-'अट्ठारससहस्ससीलंगधारा' अष्टादशसहस्रशीलाङ्गधारा । अष्टादशशीलाङ्गसहस्राणि तु यथा-यो न करोति मनसाऽऽहारसञ्ज्ञाविप्रयुत श्रोत्रेन्द्रियसंवृत क्षान्तिसम्पन्न. पृथिवीकायारम्भम् (१), एवमप्कायारम्भम् (२), तेजस्कायारम्भम् (३), वायुकायारम्भम् (४), वनस्पतिकायारम्भम् (५), द्वीन्द्रियारम्भम् (६), त्रीन्द्रियारम्भम् (७), चतुरिन्द्रियारम्भम् (८), पञ्चेन्द्रियारम्भम् (९), अजीवारम्भं च (१०) । एते क्षान्तिपदेन

१-' धाराः' कर्मण्यण् ।

२-निह्नुवत इति निह्नवाः, पचादेराकृतिगणत्वात्कर्त्तर्यच्, यद्वा निह्नव.=अपलापोऽस्त्येपामिति निह्नवा., निह्नवशब्दादर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्, सञ्ज्ञेय तान्त्रिकी ।

३-' धारा.' कर्मण्यण् ।

भ्रमण-भाषणो-त्थान-पार्श्वपरिवर्तन-मलमूत्रत्यागादिका० क्रिया अपि परिहरणीया एव स्युः, त्वत्सम्भावितस्योक्तदोषस्य कदाचित्ताभ्योऽपि सद्भावादिति कथ जीवसि ? कथ वा न निगृहीतोऽसीति ब्रूहि, तूष्णीं वाऽऽस्स्व, त्वत्पक्षे जीवदयास्वरूपमेव गगनकुसुमायत इति विभावय च । तस्मा मुनीना सयम निर्वाहार्थं रजोहरणाद्युपकरणग्रहण परमावश्यकमिति बोध्यम् ।

अत्र सक्षिप्तपूर्वोत्तरपक्षसङ्ग्रहगाथा अप्यन्यत्रोक्ता यथा—

'केई भणति मूढा, सजमजोगाण कारण नेव ।
रयहरणति पमज्जण,-माईहुवघायभावाओ ॥ १ ॥
मूइगलिआईण, विणाससनाणभोगविरहाई ।
रयदरिथगण-सस,-ज्जणाऽऽइणा होइ उवघाओ ॥ २ ॥
पडिलेहिउ पमज्जण,-मुवघाओ कहणु तत्थ होज्जाउ ? ।
अप्पमज्जिउ च दोसा, वज्जाऽऽदागाढवोसिरणे ॥ ३ ॥
आयपरपरिच्चाओ, दुहावि सत्थस्सऽकोसल नूण ।
ससज्जणाइदोसा, देहेऽव्वऽविहीए णो हुति ॥ ४ ॥

भाषण, उत्थान (उठना), शयन, पार्श्वपरिवर्तन (करवट बदलना) और मल-मूत्र-परित्याग आदि क्रियाओं को भी छोडना होगा, क्यो कि तुम्हारे द्वारा कथित दोष इन क्रियाओ में भी आसकता है तो फिर बताओ कि जीवित ही कैसे रह सकोगे ? तुम्हारे कथनमें जीवदया का स्वरूप आकाशकुसुम के समान हो जायगा, यह भी सोचो। इसलिये 'किसी भी जीवको किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचने पावे' इसी हेतु मुनियोंको रजोहरण आदि उपकरण धारण करना सयमनिर्वाह के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

પડશે કે તમોને અશન, પાન, ભ્રમણ, ભાષણ, ઉત્થાન (ઉઠવુ), શયન, પાર્શ્વપરિવર્તન (પડખુ ફેરવવુ) અને મલમૂત્ર પરિત્યાગ આદિ ક્રિયાઓને છોડી દેવી પડશે કારણ કે તમારા તરફથી કથિત (કહેલ) દોષ એ સર્વ ક્રિયાઓમા પણ આવી શકે છે, તો પછી કહો કે જીવિતજ કઇ રીતે રહી શકશો! તમારા કથનમા જીવદયાનુ સ્વરૂપ આકાશ-કુસુમ સમાન થઇ જશે આ માટે 'કોઇપણ જીવને કોઇ પ્રકારનુ કષ્ટ ન પહોચે' આ હેતુથી મુનિયોને રજોહરણ આદિ ઉપકરણ ધારણ કરવુ સયમનિર્વાહ અર્થે અત્યત આવશ્યક છે

अतएव, 'अक्खयाचारचरित्ता' आचारः=आधाकर्मादिदोषपरित्यागः, चारित्र=सामायिकादि, आचारश्च चारित्र चेत्याचारचारित्रे, अक्षते=अखण्डिते आचारचारित्रे येषा ते-अक्षताऽऽचारचारित्राः देशतः सर्वतश्चाऽविप्लुताऽऽचार-चारित्रा इत्यर्थः। सम्प्रत्युपसञ्जिहीर्पयाऽऽह-'ते सव्वे' तान् सर्वान्=गच्छगतॉ-स्तन्निर्गतॉश्च जिनकल्पिकादीन् साधून् 'सिरसा' शिरसा=करशिरःसयोगेनेति भावः, अग्रे 'मत्थएण' (मस्तकेन) इत्यस्योपादानात्, 'मणसा' मनसा= हृदयेन, 'मत्थएण' मस्तकेन=शिरसा नतेनेति शेष', अतएव 'सिरसा' 'मत्थ-एण' इत्यनयो' पर्यायत्वेऽपि न पौनरुक्त्यम्, यत्तु पौनरुक्त्यभयाद्गुलिकाप्रवा-हेण वा 'मत्थएण वदामि' इति वाचा वदेदिति व्याख्यान तदत्यन्ताऽसामञ्ज-स्यात्सूत्राक्षराभिप्रायापरिज्ञानाद्वा विद्वदश्रद्धेयमेवेति सहृदयाः प्रमाणम्। न च- 'सिरसा' इत्यनेन कायिकस्य 'मणसा' इत्यनेन मानसिकस्य च वन्दनस्योक्तौ वाचिकस्यापि तस्योपादानमावश्यकमेवेति युक्तमेवेति वाच्यम्, 'तान् सर्वान् शिरसा मनसा मस्तकेन वन्दे' इत्युक्तौ वाचिकवन्दनस्याऽर्थापत्तिलभ्यत्वात्, नहि वाक्प्रयोग विनैवमुक्तिः [१]समस्तीत्यास्ता तावत्। इत्थ सर्वसाधूनभिवन्द्य निखि-लप्राणिजातक्षमापणपूर्वक मैत्रीमभिव्यनक्ति-'सव्व०' इति 'सव्वजीवे' सर्वे च ते जीवाः सर्वजीवास्तान्=क्षुद्रक्षुद्रेतराखिलप्राणिनः, 'खामेमि' क्षमयामि= सर्वेभ्यो जीवेभ्य, क्षमामभिकाङ्क्षामीत्यर्थ, 'सव्वे जीवा' सर्वे जीवाः 'मे' मम अज्ञानादिवशाज्जातमपराधमितिशेषः 'खमतु' क्षमेरन्। 'मे' मम, 'सव्वभूएसु' सर्वभूतेषु, 'मित्ती' मैत्री=मित्रभाव अस्तीत्यध्याहियते, 'यत्र

इस प्रकार सन्त मुनिराजों को वन्दना करके समस्त जीवों की क्षमापनापूर्वक मित्रभावना प्रकट करते हैं—'मै सब जीवों से अपने अपराध की क्षमा मागता हूँ और वे सभी मेरे अपराध की

એ પ્રમાણે સન્ત મુનિરાજોને વદના કરીને સમસ્ત જીવોની ક્ષમાપનાપૂર્વક મિત્રભાવના પ્રગટ કરે છે 'હુ સર્વ જીવો પાસે મારા અપરાધની ક્ષમા માગુ છુ, અને

टि० १-समस्ति=सभवति।

जाता दश। एवं मुक्ति (निर्लोभता) पदेन (१०), आर्जवेन (१०), मार्दवेन (१०), लाघवेन (१०), सत्येन (१०), संयमेन (१०), तपसा (१०), त्यागेन (१०), ब्रह्मचर्येण च (१०); जाताः सर्वे श्रोत्रेन्द्रियपदेन शतमेकम् (१००)। एवं चक्षुषा (१००), घ्राणेन (१००), रसनया (१००), स्पर्शेन च (१००), जाताः सर्वे आहारसञ्ज्ञापदेन शतानि पञ्च (५००)। एवं भयसञ्ज्ञापदेन (५००), मैथुनसञ्ज्ञापदेन (५००), परिग्रहसञ्ज्ञापदेन च (५००)। जाताः सर्वे 'न करोति' पदेन सहस्रद्वयम् (२०००), एवं 'न कारयति' पदेन(२०००), 'नानुजानाति' पदेन (२०००), जाताः सर्वे: 'मनसा' पदेन षट् सहस्राणि (६०००)। एवं वचसा (६०००), कायेन च (६०००), जाताः सर्वेऽष्टादश सहस्राणि शीलाङ्गानि, तानि धरन्ते इत्यष्टादशशीलाङ्गसहस्रधारा इति। उक्तं च—

जोए[1] करणे सण्णा, इंदिय भोम्माइ समणधम्मे य।
अण्णोण्णेहिं अब्भत्था, अट्ठारह सीलसहस्साइं ॥ १ ॥

---

[1] छाया—योगाः[3] करणानि[3] सञ्ज्ञा[4] इन्द्रियाणि[5] भूम्यादयः[10] श्रमणधर्माश्च[10]।
अन्योन्यैरभ्यस्ता[1] अष्टादशशीलसहस्राणि ॥ १ ॥

अठारह हजार शीलाङ्गरथ ये हैं—१-पृथ्वीकाय आरम्भ, २-अप्काय आरम्भ, ३-तेजस्काय आरम्भ, ४-वायुकाय आरम्भ, ५-वनस्पतिकाय आरम्भ, ६-बेन्द्रिय आरम्भ, ७-तेन्द्रिय आरम्भ, ८-चतुरिन्द्रिय आरम्भ, ९-पचेन्द्रिय आरम्भ, १०-अजीव आरम्भ, ये १० भेद क्षान्ति के हुए, इसी प्रकार मुक्ति के (१०), आर्जव के (१०), मार्दव के (१०), लाघव के (१०), सत्य के (१०), संयम के (१०), तप के (१०), त्याग के (१०), ब्रह्मचर्य के (१०), ये सब श्रोत्रेन्द्रिय के १०० भेद हुए, इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय के १००, घ्राणेन्द्रिय के १००, रसेन्द्रिय के १००, स्पर्शेन्द्रिय के १००, ये सब आहार सञ्ज्ञा के ५०० भेद हुए, इसी प्रकार भयसञ्ज्ञा के ५००, मैथुनसञ्ज्ञा के ५००, और परिग्रहसञ्ज्ञा के ५०० हुए, इस प्रकार सब २००० भेद हुए, इन्हें न करने, न कराने और न अनुमोदन करने के द्वारा तिगुना करने पर ६००० भेद हुए, इन्हें फिर मन, वचन, काया से तिगुना करने पर १८००० होते हैं।

अतएव, 'अक्खयाचारचरित्ता' आचारः=आधाकर्मादिदोषपरित्यागः, चारित्र=सामायिकादि, आचारश्च चारित्र चेत्याचारचारित्रे, अक्षते=अखण्डिते आचारचारित्रे येषा ते-अक्षताऽऽचारचारित्राः देशतः सर्वतश्चाऽविप्लुताऽऽचार-चारित्रा इत्यर्थः। सम्प्रत्युपसञ्जिहीर्षयाऽऽह-'ते सव्वे' तान् सर्वान्=गच्छगताँ-स्तन्निर्गताँश्च जिनकल्पिकादीन् साधून् 'सिरसा' शिरसा=करशिरःसयोगेनेति भावः, अग्रे 'मत्थएण' (मस्तकेन) इत्यस्योपादानात्, 'मणसा' मनसा= हृदयेन, 'मत्थएण' मस्तकेन=शिरसा नतेनेति शेष', अतएव 'सिरसा' 'मत्थ-एण' इत्यनयोः पर्यायत्वेऽपि न पौनरुक्त्यम्, यत्तु पौनरुक्त्यभयादङ्गुलिकाप्रवा-हेण वा 'मत्थएण वदामि' इति वाचा वदेदिति व्याख्यान तदत्यन्ताऽसामञ्ज-स्यात्सूत्राक्षराभिप्रायापरिज्ञानाद्वा विद्वदश्रद्धेयमेवेति सहृदयाः प्रमाणम्। न च-'सिरसा' इत्यनेन कायिकस्य 'मणसा' इत्यनेन मानसिकस्य च वन्दनस्योक्तौ वाचिकस्यापि तस्योपादानमावश्यकमेवेति युक्तमेवेति वाच्यम्, 'तान् सर्वान् शिरसा मनसा मस्तकेन वन्दे' इत्युक्तौ वाचिकवन्दनस्याऽर्थापत्तिलभ्यत्वात्, नहि वाक्प्रयोग विनैवमुक्तिः 'समस्तीत्यास्ता तावत्। इत्थ सर्वसाधूनभिवन्द्य निखि-लप्राणिजातक्षमापणपूर्वक मैत्रीमभिव्यनक्ति-'सव्व०' इति 'सव्वजीवे' सर्वे च ते जीवाः सर्वजीवास्तान्=क्षुद्रक्षुद्रेतराखिलप्राणिनः, 'खामेमि' क्षमयामि= सर्वेभ्यो जीवेभ्य. क्षमामभिकाङ्क्षामीत्यर्थ, 'सव्वे जीवा' सर्वे जीवाः 'मे' मम अज्ञानादिवशाज्जातमपराधमितिशेष 'खमतु' क्षमेरन्। 'मे' मम, 'सव्वभूएसु' सर्वभूतेषु, 'मित्ती' मैत्री=मित्रभावः अस्तीत्यध्याह्रियते, 'यत्र

इस प्रकार सन्त मुनिराजों को वन्दना करके समस्त जीवों की क्षमापनापूर्वक मित्रभावना प्रकट करते हैं—'मै सब जीवों से अपने अपराध की क्षमा मागता हूँ और वे सभी मेरे अपराध की

એ પ્રમાણે સન્ત મુનિરાજોને વદના કરીને સમસ્ત જીવોની ક્ષમાપનાપૂર્વક મિત્રભાવના પ્રગટ કરે છે 'હુ સર્વ જીવો પાસે મારા અપરાધની ક્ષમા માગુ છુ, અને

टि० १-समस्ति=समवति।

जाता दश। एवं मुक्ति (निर्लोभता) पदेन (१०), आर्जवेन (१०), मार्दवेन (१०), लाघवेन (१०), सत्येन (१०), सयमेन (१०), तपसा (१०), त्यागेन (१०), ब्रह्मचर्येण च (१०); जाताः सर्वे श्रोत्रेन्द्रियपदेन शतमेकम् (१००)। एवं चक्षुषा (१००), घ्राणेन (१००), रसनया (१००), स्पर्शेन च (१००), जाताः सर्वे आहारसञ्ज्ञापदेन शतानि पञ्च (५००)। एवं भयसञ्ज्ञापदेन (५००), मैथुनसञ्ज्ञापदेन (५००), परिग्रहसञ्ज्ञापदेन च (५००)। जाताः सर्वे 'न करोति' पदेन सहस्रद्वयम् (२०००), ए 'न कारयति' पदेन(२०००), 'नानुजानाति' पदेन (२०००), जाताः सर्वैः 'मनसा' पदेन षट् सहस्राणि (६०००)। एवं वचसा (६०००), कायेन च (६०००), जाताः सर्वेऽष्टादश सहस्राणि शीलाङ्गानि, तानि धरन्ते इत्यष्टादशशीलाङ्गसहस्रधारा इति। उक्तं च—

जोए[1] करणे सण्णा, इंदिय भोम्माइ समणधम्मे य।
अण्णोण्णेहिं अब्भत्था, अट्ठारह सीलसहस्साइ ॥ १ ॥

---

[1] छाया—योगाः[3] करणानि[3] सञ्ज्ञा[४] इन्द्रियाणि[५] भूम्यादय[१०] श्रमणधर्माश्च[१०]।
अन्योन्यैरभ्यस्ता अष्टादशशीलसहस्राणि ॥ १ ॥

अठारह हजार शीलाङ्गरथ ये हैं—१-पृथ्वीकाय आरम्भ, २-अप्काय आरम्भ, ३-तेजस्काय आरम्भ, ४-वायुकाय आरम्भ, ५-वनस्पतिकाय आरम्भ, ६-बेन्द्रिय आरम्भ, ७-तेन्द्रिय आरम्भ, ८-चतुरिन्द्रिय आरम्भ, ९-पचेन्द्रिय आरम्भ, १०-अजीव आरम्भ, ये १० भेद क्षान्ति के हुए, इसी प्रकार मुक्ति के (१०), आर्जव के (१०), मार्दव के (१०), लाघव के (१०), सत्य के (१०), सयम के (१०), तप के (१०), त्याग के (१०), ब्रह्मचर्य के (१०), ये सब श्रोत्रेन्द्रिय के १०० भेद हुए, इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय के १००, घ्राणेन्द्रिय के १००, रसेन्द्रिय के १००, स्पर्शेन्द्रिय के १००, ये सब आहार सज्ञा के ५०० भेद हुए, इसी प्रकार भयसज्ञा के ५००, मैथुनसज्ञा के ५००, और परिग्रहसज्ञा के ५०० हुए, इस प्रकार सब २००० भेद हुए, इन्हें न करने, न कराने और न अनुमोदन करने के द्वारा तिगुना करने पर ६००० भेद हुए, इन्हें फिर मन, वचन, काया से तिगुना करने पर १८००० होते हैं।

चतुर्विंशतिसख्यकान् 'जिणे' जिनान् रागद्वेषादिकर्मशत्रुजेतॄन् 'वन्दे' वन्दे=स्तौम्यभिवादये च। चतुर्विंशतिजिनवन्दनयाऽ ययनसमापनमङ्गलार्थम्॥सू० २२॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूछत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-व्रतिविरचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-तोषण्याख्याया व्याख्याया चतुर्थं प्रतिक्रमणाख्यमध्ययन समाप्तम् ॥५॥

इत्यादि रूप) करके तीन करण और तीन योग से निर्मल बना हुआ मैं चौवीसों जिनेश्वरों को नमस्कार करता हूँ॥ ॥ सू० २२॥

॥ इति चतुर्थ अध्ययन सम्पूर्ण ॥

અને ત્રણ યોગથી નિર્મલ બનેલો હુ ચોવીસ જિનેશ્વરોને નમસ્કાર કરૂ છુ (સૂ૦ ૨૨)

ઇતિ ચોથુ અધ્યયન સ પૂર્ણ



काचन क्रिया नास्ति तत्रास्तिर्भवन्तीपरः[१] प्रयोक्तव्य'—इति वैयाकरणसिद्धान्तात्। 'केणवि' केनापि सह, सहार्थे तृतीया, ननु सहशब्दस्य तदर्थकशब्दान्तरस्य वा प्रयोगाभावेन कथं सहार्थे तृतीयेति चेन्मैवम्, 'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्या'-मित्यादाविव 'सहेनाऽप्रधाने' इतिन्यासेनैव योगार्थलाभे सिद्धे 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इत्यत्र युक्तग्रहणं 'सहशब्दाभावेऽपि तदर्थमात्रसत्त्वेऽपि तृतीये'-ति बोधनार्थम्, अत एव 'वृद्धो यूने'-त्यादयो निर्देशा अपि सगच्छन्ते, एतेन 'वीरो[३]युध्यति कर्मभिः' इत्यादिषु तृतीया कथमिति प्रत्युक्तमित्यलमिहातिप्रसङ्गेन, 'मज्झ' मम, 'वेर' वैर=विरोधः, 'न' नहि अस्तीतीहापि पूर्ववदध्याहृत ज्ञेयम्। उक्तः क्षमापणापूर्वको मैत्रीभावः, सम्प्रति मङ्गलमयमुपसंहारमाह—'एवमहं' एवम्=उक्तैः प्रकारैः अहमित्यात्मनिर्देशे, 'सम्मं' सम्यक्=यथावत् सम्यगित्यस्य सर्वैः क्त्वान्तैः सह सम्बन्धः, 'आलोइय' आलोच्य=आलोचनाविषयीकृत्य, 'निंदिय' निन्दित्वा=स्वसाक्षिकं सम्यग्विनिन्द्य, 'गरहिय' गर्हित्वा=गुरुसाक्षिकं सम्यग्विनिन्द्य, 'दुगुंछिय' जुगुप्सित्वा='धिङ्मा पापकरं मूढधियं' मित्यादिभर्त्सनापूर्वकं निन्दित्वा, 'तिविहेण' त्रयो विधाः=प्रकारा यस्य स त्रिविधस्तेन=त्रिप्रकारेण वाङ्-मनः-कायलक्षणेन कृत-कारिता-ऽनुमोदित-लक्षणेन चेत्यर्थः। 'पडिकंतो' प्रतिक्रान्तः=क्षालिताखिलातिचारमलतया परमशुचित्वमाप्तः, 'चउव्वीसं' चतुर्विंशतिम्=

क्षमा करे, क्यों कि सब जीवों के साथ मेरा मित्रभाव है, किसी के भी साथ वैरभाव नहीं है। इस तरह विधिपूर्वक आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा (पापकारी मुझ मूढात्मा को धिक्कार है

તે સર્વ જીવો મારા અપરાધની ક્ષમા કરે, કારણ કે સર્વ જીવો સાથે મારે મિત્રભાવ છે, કોઈની સાથે મારે વૈરભાવ નથી એ પ્રમાણે વિધિપૂર્વક આલોચના, નિન્દા, ગર્હા અને જુગુપ્સા (પાપકારી મારા મૂઢાત્માને ધિક્કાર છે ઇત્યાદિ રૂપ) કરીને ત્રણ કરણ

२—भवन्तीपरः=लट्परः भवन्तीति लट संज्ञा पूर्वाचार्याणाम्।

३—युध धातोरात्मनेपदित्वाद्युध्यतीति युधमिच्छतीति क्यजिति सिद्धान्तकौमुदी।

चतुर्विंशतिसङ्ख्यकान् 'जिणे' जिनान् रागद्वेषादिकर्मशत्रुजेतॄन् 'वन्दे' वन्दे= स्तौम्यभिवादये च। चतुर्विंशतिजिनवन्दनयाऽध्ययनसमापनमङ्गलार्थम् ॥सू० २२॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित-कोल्हापुर-राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-व्रतिविरचितायां श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-तोषण्याख्यायां व्याख्यायां चतुर्थं प्रतिक्रमणाख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥५॥

इत्यादि रूप) करके तीन करण और तीन योग से निर्मल बना हुआ मैं चौवीसों जिनेश्वरों को नमस्कार करता हूँ ॥ ॥ सू० २२ ॥

॥ इति चतुर्थ अध्ययन सम्पूर्ण ॥

અને ત્રણ યોગથી નિર્મલ બનેલો હુ ચોવીસ જિનેશ્વરોને નમસ્કાર કરૂ છુ (સૂ० २२)

ઇતિ ચોથુ અધ્યયન સંપૂર્ણ



काचन क्रिया नास्ति तत्रास्तिर्भवन्तीपरः[१] प्रयोक्तव्य'—इति वैयाकरणसिद्धान्तात्। 'केणवि' केनापि सह, सहार्थे तृतीया, ननु सहशब्दस्य तदर्थकशब्दान्तरस्य वा प्रयोगाभावेन कथं सहार्थे तृतीयेति चेन्मैवम्, 'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्या'–मित्यादावित्र 'सहेनाऽप्रधाने' इतिन्यासेनैव योगार्थलाभे सिद्धे 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इत्यत्र युक्तग्रहणं 'सहशब्दाभावेऽपि तदर्थमात्रसत्त्वेऽपि तृतीये'-ति बोधनार्थम्, अत एव 'वृद्धो यूने'–त्यादयो निर्देशा अपि सङ्गच्छन्ते, एतेन 'वीरो[३]युध्यति कर्मभिः' इत्यादिषु तृतीया कथमिति प्रत्युक्तमित्यलमिहातिप्रसङ्गेन, 'मज्झ' मम, 'वेर' वैर=विरोधः, 'न' नहि अस्तीतीहापि पूर्ववदध्याहृत ज्ञेयम्। उक्तः क्षमापणापूर्वको मैत्रीभावः, सम्प्रति मङ्गलमयमुपसंहारमाह—'एवमहं' एवम्=उक्तैः प्रकारैः अहमित्यात्मनिर्देशे, 'सम्म' सम्यक्=यथावत् सम्यगित्यस्य सर्वैः क्त्वान्तैः सह सम्बन्धः, 'आलोइय' आलोच्य=आलोचनाविषयीकृत्य, 'निंदिय' निन्दित्वा=स्वसाक्षिकं सम्यग्विनिन्द्य, 'गरहिय' गर्हित्वा=गुरुसाक्षिकं सम्यग्विनिन्द्य, 'दुगुछिय' जुगुप्सित्वा='धिङ्मां पापकरं मूढधियं' मित्यादिभर्त्सनापूर्वकं निन्दित्वा, 'तिविहेण' त्रयो विधाः=प्रकारा यस्य स त्रिविधस्तेन=त्रिप्रकारेण वाङ्–मनः–कायलक्षणेन कृत–कारिता–ऽनुमोदित–लक्षणेन चेत्यर्थः। 'पडिकंतो' प्रतिक्रान्तः=क्षालिताखिलातिचारमलतया परमशुचित्वमाप्त, 'चउव्वीस' चतुर्विंशतिम्=

क्षमा करे, क्यों कि सब जीवों के साथ मेरा मित्रभाव है, किसी के भी साथ वैरभाव नहीं है। इस तरह विधिपूर्वक आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा (पापकारी मुझ मूढात्मा को धिक्कार है

તે સર્વ જીવો મારા અપરાધની ક્ષમા કરે, કારણ કે સર્વ જીવો સાથે મારે મિત્રભાવ છે, કોઈની સાથે મારે વૈરભાવ નથી એ પ્રમાણે વિધિપૂર્વક આલોચના, નિન્દા, ગર્હા અને જુગુપ્સા (પાપકારી મારા મૂઢાત્માને ધિક્કાર છે ઇત્યાદિ રૂપ) કરીને ત્રણ કરણ

२–भवन्तीपरः=लट्पर' भवन्तीति लट सञ्ज्ञा पूर्वाचार्याणाम्।

३–युध धातोरात्मनेपदित्वाद्युध्यतीति युधमिच्छतीति क्यजिति सिद्धान्तकौमुदी।

सिंहासन, अशोकवृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि, क्षत्र धरावें, चँवर विजावें, पुरुषाकार पराक्रम के धरणहार, अढाई द्वीप पन्द्रह्क्षेत्र मे विचरे, जघन्य दो क्रोड केवली और उत्कृष्ट नव क्रोड केवली केवलज्ञान केवलदर्शन के धरणहार सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जाननहार।

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी (दिवस सम्बन्धी) अविनय आशातना की हो तो बारम्बार हे अरिहन्त भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करिये। हाथ जोड, मान मोड, शीस नमाकर १००८ वार नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं (करेमि) वन्दामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वदामि।

आप मागलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामी ' हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव भव में सदा काल शरण हो।

ऋषभानन स्वामी (८) श्री अनतवीर्य स्वामी, (९) श्री सुरप्रभ स्वामी, (१०) श्री विशालप्रभ स्वामी, (११) श्री वजधर स्वामी, (१२) श्री चद्रानन स्वामी, (१३) श्री चद्रबाहु स्वामी, (१४) श्री भुजगदेव स्वामी (१५) श्री ईश्वर स्वामी, (१६) श्री नेमप्रभ स्वामी, (१७) श्री वीरसेन स्वामी, (१८) श्री महाभद्र स्वामी, (१९) श्री देवराज स्वामी (२०) श्री अजितसेन स्वामी

ते जघन्य तीर्थकर २० अने उत्कृष्ट होय तो १६० अगर १७० तेमने मारी तमारी समय समयनी वदना होजो!

ते स्वामीनाथ केवा छे! मान तमारा मन मननी वात जाणी देखी रह्या छे, घटघटनी वात जाणी देखी रह्या छे, समय समयनी वात जाणी देखी रह्या छे, चौद राजुलोक अजलीजल प्रमाणे जाणी देखी रह्या छे ते स्वामीने अनत ज्ञान छे, अनत दर्शन छे, अनत चारित्र छे, अनत तप छे, अनत धैर्य छे, अने अनत वीर्य छे, ए षट (७) गुणे करी सहित छे चोत्रीश अतिशये करी बिराजमान छे, पात्रीस प्रकारनी सत्य वचन वाणीना गुणो करी सहित छे एक हजारने आठ उत्तम लक्षणे करी सहित छे, अढार दोष रहित छे, बार गुणे करी सहित छे, चार कर्म घनघाति

। अथ पञ्चममध्ययनम् ।

अथ 'इच्छामि खमासमणो' इति पट्टिका द्विः पठित्वा परमेष्ठिना भाववन्दना विधातव्या, तदनु 'अनन्त चउवीसी जिन नमो' इत्यादि पठेत् । ततश्च

॥ अथ पञ्चम अध्ययन ॥

'नमो चउवीस०' की पट्टी (पाटी) पूरी होने के बाद 'इच्छामि खमासमणो' की पट्टी दो बार बोलकर पचपरमेष्ठी की भाववन्दना करनी चाहिये[1] ।

पाच पदों की वदना ।

टि० १– पहिले पद श्री अरिहन्तजी जघन्य बीस तीर्थंकरजी उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेवजी उन में वर्तमान काल में बीस विहरमानजी महाविदेहक्षेत्र में विचरते हैं एक हजार आठ लक्षण के धारणहार, चौतीस अतिशय, पैतीस वाणी करके विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित अनन्त–ज्ञान, अनन्त–दर्शन, अनन्त–चारित्र, अनन्त–बलवीर्य्य, अनन्तसुख, दिव्यध्वनि, भामण्डल, स्फटिक-

---

અથ પચમઅધ્યયન

"नमो चउवीसाए"ની પાટી પૂરી થયા પછી "इच्छामि खामासमणो" ની પાટી બે વાર બોલીને પચ પરમેષ્ઠીની ભાવવદના કરવી જોઇએ[1]

પહેલા ખામણા–શ્રી અરિહ ત દેવને

(બન્ને ઢીચણ નીચા ઢાળી ખામણા બોલવા)

[1]પહેલા ખામણા શ્રી પચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે જયવતા તીર્થંકર દેવ બિરાજે છે, તેમને કરૂ છુ તે સ્વામીના ગુણગ્રામ કરતા જઘન્ય રસ ઉપજે તો કર્મની ક્રોડી ખપે અને ઉત્કૃષ્ટો રસ ઉપજે તો આ જીવ તીર્થંકર નામ ગોત્ર ઉપાર્જે હાલ બિરાજતા વીશ તીર્થંકરોના નામ—

(૧) શ્રી સીમધર સ્વામી, (૨) શ્રી જુગધર સ્વામી, (૩) શ્રી બાહુ સ્વામી, (૪) શ્રી સુબાહુ સ્વામી (૫) શ્રી સુજાત સ્વામી, (૬) શ્રી સ્વયપ્રભ સ્વામી, (૭) શ્રી

सिंहासन, अशोकवृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि, छत्र धरावें, चँवर विजावें, पुरुषाकार पराक्रम के धरणहार, अढाई द्वीप पन्द्रहक्षेत्र मे विचरे, जघन्य दो क्रोड केवली और उत्कृष्ट नव क्रोड केवली केवलज्ञान केवलदर्शन के धरणहार सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जाननहार।

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी (दिवस सम्बन्धी) अविनय आशातना की हो तो वारम्बार हे अरिहन्त भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करिये। हाथ जोड, मान मोड, शीस नमाकर १००८ वार नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण (करेमि) वन्दामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वदामि।

आप मागलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामी! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव भव में सदा काल शरण हो।

ઋષભાનન સ્વામી (૮) શ્રી અનતવીર્ય સ્વામી, (૯) શ્રી સુરપ્રભ સ્વામી, (૧૦) શ્રી વિશાલપ્રભ સ્વામી, (૧૧) શ્રી વજ્રધર સ્વામી, (૧૨) શ્રી ચદ્રાનન સ્વામી, (૧૩) શ્રી ચદ્રબાહુ સ્વામી, (૧૪) શ્રી ભુજગદેવ સ્વામી (૧૫) શ્રી ઇશ્વર સ્વામી, (૧૬) શ્રી નેમપ્રભ સ્વામી, (૧૭) શ્રી વીરસેન સ્વામી, (૧૮) શ્રી મહાભદ્ર સ્વામી, (૧૯) શ્રી દેવરાજ સ્વામી (૨૦) શ્રી અજિતસેન સ્વામી

તે જઘન્ય તીર્થકર ૨૦ અને ઉત્કૃષ્ટ હોય તો ૧૬૦ અગર ૧૭૦ તેમને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો!

તે સ્વામીનાથ કેવા છે! માના તમારા મન મનની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ઘટઘટની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, સમય સમયની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ચૌદ રાજુલોક અજલીજલ પ્રમાણે જાણી દેખી રહ્યા છે તે સ્વામીને અનત જ્ઞાન છે, અનત દર્શન છે, અનત ચારિત્ર છે, અનત તપ છે, અનત ધૈર્ય છે, અને અનત વીર્ય છે, એ ષટ (છ) ગુણે કરી સહિત છે ચોત્રીશ અતિશયે કરી બિરાજમાન છે, પાત્રીશ પ્રકારની સત્ય વચન વાણીના ગુણો કરી સહિત છે એક હજારને આઠ ઉત્તમ લક્ષણે કરી સહિત છે, અઢાર દોષ રહિત છે, બાર ગુણે કરી સહિત છે, ચાર કર્મ ઘનઘાતિ

। अथ पञ्चममध्ययनम् ।

अथ 'इच्छामि खमासमणो' इति पट्टिका द्विः पठित्वा परमेष्ठिना भाव वन्दना विधातव्या, तदनु 'अनन्त चउवीसी जिन नमो' इत्यादि पठेत् । ततश्च

॥ अथ पञ्चम अध्ययन ॥

'नमो चउवीस०' की पटी (पाटी) पूरी होने के बाद 'इच्छामि खमासमणो' की पटी दो बार बोलकर पचपरमेष्ठी की भाववन्दना करनी चाहिये[1]।

पाच पदों की वदना।

टि० १– पहिले पद श्री अरिहन्तजी जघन्य बीस तीर्थंकरजी उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेवजी उन में वर्तमान काल में बीस विहरमानजी महाविदेहक्षेत्र में विचरते हैं एक हजार आठ लक्षण के धारणहार, चौतीस अतिशय, पैतीस वाणी करके विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित अनन्त–ज्ञान, अनन्त–दर्शन, अनन्त–चारित्र, अनन्त–बलवीर्य, अनन्तसुख, दिव्यध्वनि, भामण्डल, स्फटिक-

અથ પચમઅધ્યયન

"नमो चउवीसाए"ની પાટી પૂરી થયા પછી "इच्छामि खामासमणो" ની પાટી બે વાર બોલીને પચ પરમેષ્ઠીની ભાવવદના કરવી જોઇએ ૧

પહેલા ખામણા–શ્રી અરિહત દેવને

(બન્ને ઢીચણ નીચા ઢાળી ખામણા બોલવા)

[1]પહેલા ખામણા શ્રી પચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે જયવતા તીર્થંકર દેવ બિરાજે છે, તેમને કરૂ છુ તે સ્વામીના ગુણગ્રામ કરતા જઘન્ય રસ ઉપજે તો કર્મની ક્રોડી ખપે અને ઉત્કૃષ્ટો રસ ઉપજે તો આ જીવ તીર્થંકર નામ ગોત્ર ઉપાર્જે હાલ બિરાજતા વીશ તીર્થંકરોના નામ —

(૧) શ્રી સીમધર સ્વામી, (૨) શ્રી જુગધર સ્વામી, (૩) શ્રી બાહુ સ્વામી, (૪) શ્રી સુબાહુ સ્વામી (૫) શ્રી સુજાત સ્વામી, (૬) શ્રી સ્વયપ્રભ સ્વામી, (૭) શ્રી

(१२) अन्यलिंगसिद्धा (१३) गृहस्थलिंगसिद्धा (१४) एकसिद्धा (१५) अनेकसिद्धा, जहा जन्म नहीं, जरा नही, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दु.ख नहीं, दारिद्रय नहीं, कर्म नही, काया नहीं, मोह नहीं, माया नही, चाकर नही, ठाकर नही, भूख नहीं, तृषा नहीं, जोत में जोत विराजमान, सकल कार्य सिद्ध करके चवदे प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवन्त हुए। अनन्तसुखों में तल्लीन, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, निराबाध, क्षायिक समकित, अटल अवगाहना, अमूर्ता, अगुरलघु, अनन्तवीर्य, यह आठ गुण करके सहित हैं।

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी अविनय-आशातना की हो तो वारम्वार हे सिद्ध भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड, मान मोड, शीस नमाकर तिक्खुत्ता के पाठ से १००८ वार नमस्कार करता हूँ।

---

(७) શ્રી સુપાર્શ્વનાથ સ્વામી, (૮) શ્રી ચદ્રપ્રભ સ્વામી, (૯) શ્રી સુવિધિનાથ સ્વામી, (૧૦) શ્રી શીતલનાથ સ્વામી, (૧૧) શ્રી શ્રેયાસનાથ સ્વામી, (૧૨) શ્રી વાસુપૂજ્ય સ્વામી, (૧૩) શ્રી વિમળનાથ સ્વામી, (૧૪) શ્રી અનતનાથ સ્વામી, (૧૮) શ્રી ધર્મનાથ સ્વામી, (૧૬) શ્રી શાતિનાથ સ્વામી, (૧૭) શ્રી કુથુનાથ સ્વામી, (૧૮) શ્રી અરનાથ સ્વામી, (૧૯) શ્રી મલ્લિનાથ સ્વામી, (૨૦) શ્રી મુનિસુવ્રત સ્વામી, (૨૧) શ્રી નમિનાથ સ્વામી, (૨૨) શ્રી નેમીનાથ સ્વામી, (૨૩) શ્રી પાર્શ્વનાથ સ્વામી, (૨૪) શ્રી (વીર વર્ધમાન) મહાવીર સ્વામી

આ એક ચોવીસી અનત ચોવીશી પદર ભેદે સીઝી બુઝી, આઠ કર્મક્ષય કરી મોક્ષ પધાર્યા, તેમને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો। આઠ કર્મના નામ-જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, મોહનીય, આયુષ્ય, નામ, ગોત્ર અને અતરાય, એ આઠે કર્મક્ષય કરી મુક્તિ શિલાએ પહોચ્યા છે, તે મુક્તિશિલા કયા છે।

સમપૃથ્વીથી ૭૯૦ જોજન ઉચપણે તારા મડળ આવે ત્યાથી દશ જોજન ઉચે સૂર્યનું વિમાન છે, ત્યાથી ૮૦ જોજન ઉચપણે ચદ્રમાનું વિમાન છે, ત્યાથી ચાર જોજન ઉચપણે નક્ષત્રના વિમાન છે, ત્યાથી ચાર જોજન ઉચપણે બુધનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે શુક્રનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે બૃહસ્પતિનો

दूजे पद श्री सिद्ध भगवान महाराज पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध हैं। आठ कर्म खपाय के मोक्ष पहुँचे हैं। (१) तीर्थसिद्धा (२) अतीर्थसिद्धा, (३) तीर्थकरसिद्धा, (४) अतीर्थकरसिद्धा (५) स्वय बुद्धसिद्धा (६) प्रत्येकबु सिद्धा (बुद्धबोधितसिद्धा), (८) स्त्रीलिंगसिद्धा, (९) पुरुषलिंगसिद्धा, (१०) नपुसकलिंगसिद्धा, (११) स्वलिंगसिद्धा,

---

ક્ષય કર્યા છે બાકીના ચાર કર્મ પાતળા પડયા છે મુકિત જવાના કામી થકા વીચરે છે, ભવ્ય જીવના સ દેહ ભાગે છે સજોગી, સશરીરી, કેવળજ્ઞાની, યથાખ્યાત ચારિત્રના ધરણહાર છે, ક્ષાયિક સમકિત, શુકલલેશ્યા, શુભધ્યાન, શુભજોગ સહિત છે, ૬૪ ઇંદ્રોના પૂજનીક, વ દનિક અર્ચનિક છે પ ડિત વીર્ય આદિ અન ત ગુણે કરી સહિત છે

ધન્ય તે ગ્રામ, નગર, રાજધાની, પુર, પાટણ જ્યા જ્યા પ્રભુ દેશના દેતા થકા વિચરતા હશે ત્યા ત્યા રાઇસર, તલવર, માડ બી, કોડ બી, શેઠ, સેનાપતિ, ગાથાપતિ આદિ, સ્વામીની દેશના સાભળી કર્ણ પવિત્ર કરતા હશે, સ્વામીના દર્શન દેદાર કરી નેત્ર પવિત્ર કરતા હશે, અશનાદિક ચૌદ પ્રકારનું દાન દઇ કર પવિત્ર કરતા હશે, ચરણે મસ્તક નમાવી કાયા પવિત્ર કરતા હશે વ્રત પચ્ચખ્ખાણ આદરી આત્માને નિર્મળ કરતા હશે અને પ્રશ્ન પૂછી મનના સ દેહ દૂર કરતા હશે, તેમને ધન્ય છે સ્વામીનાથ! આપશ્રી પ ચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રમા બિરાજો છો, હુ અપરાધી, દીનકિંકર, ગુણહીન, અહીંયા બેઠો છુ આજના દિવસ સ બ ધી આપના જ્ઞાન, દર્શન ચારિત્ર, તપને વિષે અવિનય, આશાતના, અભકિત, અપરાધ કીધા હોય તો હાથ જોડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી, ભુજો ભુજો (વાર વાર) કરી ખમાવુ છુ (અહિં તિખુત્તાનો પાઠ ત્રણવાર બોલવો)

બીજાં ખામણા-શ્રી સિદ્ધ ભગવતોને

બીજા ખામણા અન તા સિદ્ધ ભગવ તજીને કરૂ છુ તે ભગવ તજીના ગુણગ્રામ કરતા જઘન્ય રસ ઉપજે તો કર્મની કોડી ખપે, અને ઉત્કૃષ્ટો રસ ઉપજે તો જીવ તીર્થ કરનામગોત્ર ઉપાર્જે આ ભરતક્ષેત્રને વિષે આ ચોવીશીમા ચોવીશ તીર્થ કરો સદ્ધ થયા, તેમના નામ કહુ છુ –

(૧) શ્રી ઋષભદેવ સ્વામી, (૨) શ્રી અજિતનાથ સ્વામી, (૩) શ્રી સ ભવનાથ સ્વામી, (૪) શ્રી અભિન દન સ્વામી, (૫) શ્રી સુમતિનાથ સ્વામી, (૬) શ્રી પદ્મપ્રભ સ્વામી

(१२) अन्यलिंगसिद्धा (१३) गृहस्थलिंगसिद्धा (१४) एकसिद्धा (१५) अनेकसिद्धा, जहां जन्म नहीं, जरा नही, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नही, शोक नहीं, दुःख नही, दारिद्रय नही, कर्म नही, काया नहीं, मोह नही, माया नही, चाकर नही, ठाकर नही, भूख नही, तृषा नही, जोत में जोत विराजमान, सकल कार्य सिद्ध करके चवदे प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवन्त हुए। अनन्तसुखों में तल्लीन, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, निराबाध, क्षायिक समकित, अटल अवगाहना, अमूर्ता, अगुरुलघु, अनन्तवीर्य, यह आठ गुण करके सहित है।

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी अविनय-आशातना की हो तो बारम्बार हे सिद्ध भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड, मान मोड, शीस नमाकर तिक्खुत्ता के पाठ से १००८ बार नमस्कार करता हूँ।

---

(૭) શ્રી સુપાર્શ્વનાથ સ્વામી, (૮) શ્રી ચંદ્રપ્રભ સ્વામી, (૯) શ્રી સુવિધિનાથ સ્વામી, (૧૦) શ્રી શીતલનાથ સ્વામી, (૧૧) શ્રી શ્રેયાસનાથ સ્વામી, (૧૨) શ્રી વાસુપૂજ્ય સ્વામી, (૧૩) શ્રી વિમળનાથ સ્વામી, (૧૪) શ્રી અનંતનાથ સ્વામી, (૧૮) શ્રી ધર્મનાથ સ્વામી, (૧૬) શ્રી શાંતિનાથ સ્વામી, (૧૭) શ્રી કુંથુનાથ સ્વામી, (૧૮) શ્રી અરનાથ સ્વામી, (૧૯) શ્રી મલ્લિનાથ સ્વામી, (૨૦) શ્રી મુનિસુવ્રત સ્વામી, (૨૧) શ્રી નમિનાથ સ્વામી, (૨૨) શ્રી નેમીનાથ સ્વામી, (૨૩) શ્રી પાર્શ્વનાથ સ્વામી, (૨૪) શ્રી (વીર વર્ધમાન) મહાવીર સ્વામી

આ એક ચોવીસી અનંત ચોવીશી પંદર ભેદે સીઝી બુઝી, આઠ કર્મક્ષય કરી મોક્ષ પધાર્યા, તેમને મારી તમારી સમય સમયની વંદના હોજો। આઠ કર્મના નામ-જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, મોહનીય, આયુષ્ય, નામ, ગોત્ર અને અંતરાય, એ આઠે કર્મક્ષય કરી મુક્તિ શિલાએ પહોચ્યા છે, તે મુકિતશિલા કયા છે।

સમપૃથ્વીથી ૭૯૦ જોજન ઉંચપણે તારા મંડળ આવે ત્યાથી દશ જોજન ઉંચે સૂર્યનું વિમાન છે, ત્યાથી ૮૦ જોજન ઉંચપણે ચંદ્રમાનું વિમાન છે, ત્યાથી ચાર જોજન ઉંચપણે નક્ષત્રના વિમાન છે, ત્યાથી ચાર જોજન ઉંચપણે બુધનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉંચપણે શુક્રનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉંચપણે બૃહસ્પતિનો

तीजे पद श्री आचार्यजी छत्तीस गुण करके विराजमान पाच महाव्रत पालें, पाच आचार पालें, पाच इन्द्रिय जीतें, चार कषाय टालें, नव-वाड-सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पालें, पाच समिति तीन गुप्ति शुद्ध आराधें, यह ३६ गुण और आठ सम्पदा (१ आचारसम्पदा, २ श्रुतसम्पदा, ३ शरीरसम्पदा, ४ वचनसम्पदा, ५ वाचनासम्पदा, ६ मतिसम्पदा, ७ प्रयोगसम्पदा, ८ संग्रहपरिज्ञा-सम्पदा) सहित हैं।

ऐसे आचार्य महाराज न्याय पक्षवाले, भद्रिकपरिणामी, परम पूज्य, कल्पनीय अचित्त वस्तु के ग्रहणहार, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुण के अनुरागी, सौभागी हैं। ऐसे श्री आचार्यजी महाराज आपकी (दिवससम्बन्धी) अविनय-आशातना की हो तो बारम्बार हे आचार्यजी महाराज! मेरा अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड मान मोड, शीस नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ वार नमस्कार करता हूँ।

તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે મગળનો તારો છે, ત્યાથી ત્રણ જોજન ઉચપણે છેલ્લો શનિશ્ચરનો તારો છે એમ નવસો જોજન લગી જ્યોતિષચક્ર છે

ત્યાથી અસખ્યાતા જોજન ક્રોડા ક્રોડી ઉચપણે બાર દેવલોક આવે છે તેના નામ – સુધર્મ, ઈશાન, સનત્કુમાર, માહેન્દ્ર બ્રહ્મલોક, લાતક, મહાશુક્ર, સહસ્રાર, આણત, પ્રાણત, આરણ અને અચ્યુત, ત્યાથી અસખ્યાતા જોજનની ક્રોડા ક્રોડી ઉચપણે ચઢીએ ત્યારે નવ ગ્રૈવેયક આવે, તેના નામ – ભદ્દે, સુભદ્દ, સુજાએ, સુમાણુસે, પ્રિયદસણે, આમોહે, સુપડિબદ્ધે અને જસોધરે, તેમા ત્રણત્રિક છે, પહેલી ત્રિકમા ૧૧૧ વિમાન છે, બીજીમા ૧૦૭ અને ત્રીજીમા ૧૦૦ વિમાન છે ત્યાથી અસખ્યાતા જોજનની ક્રોડાક્રોડી ઉચાપણેએ ચડીએ ત્યારે પાચ અનુત્તર વિમાન આવે, તેના નામ – વિજય, વિજયત જયત અપરાજિત અને સર્વાર્થસિદ્ધ

આ સર્વાર્થસિદ્ધ મહાવિમાનની ધ્વજાથી બાર જોજન [illegible]ચપણે મુક્તિશિલા છે તે મુક્તિશિલા કેવી છે? પીસ્તાલીશ જોજનની લાબી પહોળી છે, મધ્યે આઠ જોજનની જાડી છે ઉતરતા છેડે માખીની પાખ કરતા પણ પાતળી છે ગોક્ષીર, શખ, ચદ્ર, અકરત્ન, રૂપાનો પટ, મોતીનો હાર અને ક્ષીર સાગરના પાણી થકી પણ અધિક ઉજળી છે

चौथे पद श्री उपाध्यायजी, पच्चीस गुण करके सहित (ग्यारह अंग, बारह उपांग, चरणसत्तरी, करणसत्तरी-इन पचीस गुण करके सहित), ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित सम्पूर्ण जानें, १४ पूर्व के पाठक और निम्नोक्त बत्तीस सूत्र के जानकार हैं।

તે સિદ્ધશિલા ઉપર એક જોજન, તેના છેલ્લા ગાઉના છઠ્ઠા ભાગને વિષે સિદ્ધ ભગવતજી નિરજન નિરાકાર બિરાજી રહ્યા છે તે ભગવતજી કેવા છે? અવર્ણે, અગધે, અરસે, અફાસે, અમૂર્તિ, અવિનાશી, ભૂખ નહિ, દુ ખ નહિ, રોગ નહિ, શોક નહિ, જન્મ નહિ, જરા નહિ, મરણ નહિ, કાયા નહિ, કર્મ નહિ, અનત અનત આત્મિક સુખની લહેરમા બિરાજી રહ્યા છે ધન્ય સ્વામીનાથ? આપ શ્રી સિદ્ધક્ષેત્રને વિષે બિરાજો છો, હુ અપરાધી દીનકિંકર, ગુણહીન અહીં બેઠો છુ, આપના જ્ઞાન દર્શનને વિષે આજના દિવસમ બધી અવિનય, અશાતના, અભક્તિ અપરાધ થયો હોય તો હાથ જોડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી ભુજો ભુજો કરી ખમાવુ છુ (અહીં તિખુત્તાનો પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

ત્રીજા ખામણા-કેવળી ભગવાનોને

ત્રીજા ખામણા પચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે બિરાજતા જયવતા કેવળી ભગવાનને કરૂ છુ તે સ્વામી જઘન્ય હોય તો બે ક્રોડ અને ઉત્કૃષ્ટા હોય તો નવક્રોડ કેવળી, તે સર્વને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો તે સ્વામી કેવા છે? મારા તમારા મન મનની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ઘટ ઘટની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, સમય સમયની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ચૌદરાજુ લોક અજલિ-જલ-પ્રમાણે જાણી દેખી રહ્યા છે, અનતુ જ્ઞાન છે, અનતુ દર્શન છે, અનતુ ચારિત્ર છે, અનતો તપ છે, અનત ધૈર્ય છે, અનત વીર્ય છે-એ ષટે (છ) ગુણે કરી સહિત છે ચાર કર્મ ઘનઘાતી ક્ષય કર્યા છે, બાકીના ચાર કર્મ પાતળા પડયા છે મુક્તિ જવાના કામી થકા વિચરે છે, ભવ્ય જીવોના સ દેહ ભાગે છે સજોગી, સશરીરી, કેવળજ્ઞાની, કેવળદર્શની, યથાખ્યાત ચારિત્રના ધરણહાર છે, ક્ષાયિક સમકિત, શુકલ ધ્યાન, શુકલ લેશ્યા, શુભ ધ્યાન, શુભ જોગ, પડિત વીર્ય આદિ અનત ગુણે કરી સહિત છે

ધન્ય તે સ્વામી ગામાગર, નગર, રાયહાણી, જ્યા જ્યા દેશના દેતા થકા વિચરતા હશે, ત્યા ત્યા રાઈસર, તલવર, માડબી, કોડબી, શેઠ, સેનાપતિ, ગાથાપતિ આદિ સ્વામીની દેશના સાભળી કર્ણ પવિત્ર કરતા હશે, તેમને ધન્ય છે? સ્વામીના દર્શન

ग्यारह अंग–आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उवासगदसा, अंतगडदसा, अणुत्तरोववाई, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र।

बारह उपांग–उववाई, रायप्पसेणी, जीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूद्वीपपन्नत्ती, चन्दपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, निरयावलिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा।

चार मूलसूत्र–उत्तराध्ययन, दशवैकालिकसूत्र, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार।

चार छेद–दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहारसूत्र, निशीथ सूत्र, और बत्तीसवा आवश्यक, इत्यादि अनेक स्वसमय परसमय के जानकर, सात नय, निश्चय, व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत

દેદાર કરી નેત્ર પવિત્ર કરતા હશે તેમને ધન્ય છે સ્વામીને અશનાદિક ચૌદ પ્રકારનું દાન દઇ કર પવિત્ર કરતા હશે, તેમને પણ ધન્ય છે

ધન્ય સ્વામીનાથ! આપ પંચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે બિરાજો છો, હું અપરાધી દીનકિંકર ગુણહીન અહીં બેઠો છું આજના દિવસ સંબંધી આપના જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર તપને વિષે અવિનય, આશાતના, અભક્તિ, અપરાધ થયો હોય, તો હાથ જોડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી ભુજો ભુજો કરી ખમાવું છું (અહીં તિખુત્તાના પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

ચોથા ખામણા

ચોથા ખામણા ગણધરજી, આચાર્યજી, ઉપાધ્યાયજીને કરૂં છું ગણધરજી બાવન ગુણે કરી સહિત છે, આચાર્યજી છત્રીશ ગુણે કરી સહિત છે, ઉપાધ્યાયજી પચ્ચીશ ગુણે કરી સહિત છે, માના તમારા ધર્મગુરુ, ધર્માચાર્ય, ધર્મ ઉપદેશના દાતાર, પંડિતરાજ, મુનિરાજ મહાપુરુષ, ગીતાર્થ, બહુસૂત્રી, સૂત્રસિદ્ધાંતના પારગામી, તરણ-તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન, રત્નચિંતામણિ સમાન, જિન શાસનના શણગાર, ધર્મના નાયક, સંઘના મુખી, સંઘના નાયક આદિ અનેક ઉપમાએ કરી બિરાજમાન હતા ઘણા સાધુ–સાધ્વીએ આલોવી, પડિક્કમી, નિન્દી, નિઃશલ્ય થઇને પ્રાય દેવલોક પધાર્યા છે તેમનો ઘણો ઘણો ઉપકાર છે

આજ વર્તમાન [illegible] તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન, રત્નચિંતામણિ [illegible] ના શણગાર, ધર્મના નાયક, સંઘના મુખી, સંઘના

तथा अन्यमत के जानकार मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नही पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

ऐसे उपाध्यायाजी महाराज मिथ्यात्वरूप अंधकार के मेटन-हार, समकित रूप उद्योत के करनहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करे, सारए, वारए, धारए इत्यादि अनेक गुण करके सहित हैं। ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज आपकी अविनय-आशातना की हो तो हे उपाध्यायजी महाराज! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये, हाथ जोड, मान मोड, शीस नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ वार नमस्कार करता हूँ।

पाचवें पद "णमो लोए सव्वसाहूण"-अढाईद्वीप पन्द्रह क्षेत्र

નાયક આદિ અનેક ઉપમાએ કરી બિરાજમાન જે જે સાધુ-સાધ્વી વીતરાગ દેવની આજ્ઞામા બિરાજતા હોય, તેમને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો

તે સ્વામી કેવા છે? પચ મહાવ્રતના પાલનહાર છે, પાચ સમિતિએ અને ત્રણ ગુપ્તિએ સહિત, છકાયના પિયર, છકાયના નાથ, સાત ભયના ટાલણહાર, આઠ મદના ગાલણહાર, નવવાડ વિશુદ્ધ બ્રહ્મચર્યના પાલણહાર, દશવિધ યતિ ધર્મના અજવાળક, બાર ભેદે તપશ્ચર્યાના કરણહાર, સત્તર ભેદે સચમના ધરણહાર, બાવીશ પરિષહના જિતણહાર, સત્તાવીશ સાધુજીના ગુણે કરી સહીત ૪૨-૪૭-૯૬ દોષ રહિત આહાર પાણીના લેનાર, બાવન અનાચારના ટાલણહાર, સચિત્તના ત્યાગી, અચેતના ભોગી, કચન-કામિનીના ત્યાગી, માયા-મમતાના ત્યાગી, સમતાના સાગર, દયાના આગર, આદિ અનેક ગુણે કરી સહિત છે

ધન્ય મહારાજ! આપ ગામ, નગર, પૂર, પાટણને વિષે વિચરો છો, અમે અપરાધી, દીનકિંકર, ગુણહીન અહીં બેઠા છીએ આજના દિવસસબધી આપના જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, તપને વિષે અવિનય, આશાતના, અભક્તિ અપરાધ થયો હોય, તો હાથ જોડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી ભુજો ભુજો કરી ખમાવુ છુ (અહીં તિખુત્તાનો પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

પાચમા ખામણા

પાચમા ખામણા પાચ ભરત, પાચ ઇરવત પાચ મહાવિદેહ એ અઢી દ્વીપ

ग्यारह अंग–आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उवासगदसा, अंतगडदसा, अणुत्तरोववाई, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र।

बारह उपांग–उववाई, रायप्पसेणी, जीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूद्वीपपन्नत्ती, चन्दपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, निरयावलिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा।

चार मूलसूत्र–उत्तराध्ययन, दशवैकालिकसूत्र, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार।

चार छेद–दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहारसूत्र, निशीथ सूत्र, और बत्तीसवा आवश्यक, इत्यादि अनेक स्वसमय परसमय के जानकर, सात नय, निश्चय, व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत

દેદાર કરી નેત્ર પવિત્ર કરતા હશે તેમને ધન્ય છે સ્વામીને અશનાદિક ચૌદ પ્રકારનું દાન દઈ કર પવિત્ર કરતા હશે, તેમને પણ ધન્ય છે

ધન્ય સ્વામીનાથ! આપ પંચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે બિરાજો છો, હું અપરાધી દીનકિંકર ગુણહીન અહીં બેઠો છું આજના દિવસ સંબંધી આપના જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર તપને વિષે અવિનય, આશાતના, અભક્તિ, અપરાધ થયો હોય, તો હાથ જોડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી ફુણે ફુણે કરી ખમાવું છું (અહીં તિખુત્તાના પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

ચોથા ખામણા

ચોથા ખામણા ગણધરજી, આચાર્યજી, ઉપાધ્યાયજીને કરૂં છું ગણધરજી બાવન ગુણે કરી સહિત છે, આચાર્યજી છત્રીશ ગુણે કરી સહિત છે, ઉપાધ્યાયજી પચ્ચીશ ગુણે કરી સહિત છે, માના તમારા ધર્મગુરુ, ધર્માચાર્ય, ધર્મ ઉપદેશના દાતાર, પંડિતરાજ, મુનિરાજ મહાપુરુષ, ગીતાર્થ, બહુસૂત્રી, સૂત્રસિદ્ધાંતના પારગામી, તરણ-તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન, રત્નચિંતામણિ સમાન, જિન શાસનના શણગાર, ધર્મના નાયક, સંઘના મુખી, સંઘના નાયક આદિ અનેક ઉપમાએ કરી બિરાજમાન હતા ઘણા સાધુ–સાધ્વીઓ આલોવી, પડિક્કમી, નિન્દી, નિઃશલ્ય થઈને પ્રાયઃ દેવલોક પધાર્યા છે તેમનો ઘણો ઘણો ઉપકાર છે

આજ વર્તમાન કાળે તરણ, તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન, રત્નચિંતામણિ સમાન, જિનશાસનના શણગાર, ધર્મના નાયક, સંઘના મુખી, સંઘના

ऐसे मुनिराज महाराज आपकी अविनय आशातना की हो तो हे मुनिराज ! मेरा अपराध वारम्वार क्षमा करिये । हाथ जोड, मान मोड, शीस नमाकर, तिक्खुत्ता के पाठ से १००८ वार नमस्कार करता हूँ ।

॥ दोहा ॥

अनन्त चौवीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ता कोड ।
केवल ज्ञानी गणधरा, वन्दू बे कर जोड ॥ १ ॥
दोय कोडि केवलधरा, विहरमान जिन बीस ।
सहस्र युगल कोडी नमूं, साधु नमू निशदीस ॥ २ ॥
धन साधु धन साधवी, धन धन है जिन धर्म ।
ये समर्यां पातक झरे, टूटे आठों कर्म ॥ ३ ॥
अरिहत सिद्ध समरु सदा, आचारज उवज्झाय ।
साधु सकल के चरण को, वन्दू शीस नमाय ॥ ४ ॥
अगूठे अमरित वसे, लब्धि तणा भण्डार ।
श्री गुरु गौतम समरिये, वाछित फल दातार ॥ ५ ॥
लोभी गुरु तारे नही, तिरे सो तारण हार ।
जो तू तिरियो चाह तो, निरलोभी गुरु धार ॥ ६ ॥
गुरु दीपक गुरु चादणो, गुरु विन घोर अधार ।
पलक न विसरु तुमभणी, गुरु मुझ प्राण अधार ॥ ७ ॥

હાથ જોડી, મસ્તક નમાવી ભુલો ભુલો કરી ખમાવુ છુ (અહીં તિખુત્તાનો પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

અને સાધુ-સાધ્વીજી બિરાજતા હોય, તો નીચેની ગાથા બોલી ત્રણ વખત સવિધિ વદના કરવી

સાધુ વદે તે સુખીયા થાય, ભવો ભવના તો પાતક જાય,
ભાવ ધરીને વદે જેહ, વહેલો મુક્તે જાશે તેહ

છઠ્ઠા ખામણા

(છઠ્ઠા ખામણા અઢીદ્વીપ માંહે અઢીદ્વીપ બહાર અસખ્યાતા શ્રાવક-શ્રાવિકાને કરૂ છુ તે શ્રાવકજી કેવા છે?

रूप लोक के विषे सर्व साधुजी जघन्य दो हजार करोड, उत्कृष्ट नव हजार करोड जयवन्ता विचरे। पाँच महाव्रत पालें, पाँच इन्द्रिय जीतें, चार कषाय टालें, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, क्षमावन्त, वैराग्यवन्त, मनसमाधारणीया, वयसमाधारणीया, कायसमाधारणीया, नाणसम्पन्ना, दंसणसम्पन्ना, चारित्तसम्पन्ना, वेदनीयसमाअहियासनीया, मरणातिकसमाअहियासनीया हैं-ऐसे सत्ताईस गुण करके सहित, पाँच आचार पालें, छह काय की रक्षा करें, सात कुव्यसन, आठ मद छोडें, नववाड सहित ब्रह्मचर्य्य पालें, दस प्रकार यतिधर्म धारें, बारह भेदे तपस्या करें, सत्रह भेदे संयम पालें, अठारह पापों को त्यागें, बाईस परिषह जीतें, तीस महामोहनीय कर्म निवारें, तेतीस आशातना टालें, बयालीस दोष टाल के आहार पानी लेवें, सैंतालीस दोष टाल के भोगें, बावन अनाचार टालें, तेडिया (बुलाया) आवे नहीं, नातिया जीमे नहीं, सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करें, नगे पैर चालें-इत्यादि कायाक्लेश करें और मोह-ममता-रहित हैं।

क्षेत्रने विषे बिराजता साधु साध्वीजीने करु छु तेओ जघन्य होय तो बे हजार क्रोड साधु-सा वी, अने उत्कृष्टा होय तो नव हजार क्रोड साधु-साध्वी, तेमने मारी तमारी समय समयनी व दना होजो

ते स्वामी केवा छे? पाच महाव्रतना पालणहार छे, पाच समितिए अने त्रण गुप्तिए सहित, छ कायना पियर, छ कायना नाथ, सात भयना टालणहार, आठ मदना गालणहार, नववाडविशुद्ध ब्रह्मचर्यना पालणहार, दशविध यतिधर्मना अजवालक, बार भेदे तपश्चर्याना करणहार, सत्तर भेदे सयमना धरणहार, बावीश परिषहना जीतणहार, सतावीश साधुजीना गुणे करी सहित, ४२-४७-९६ दोष रहित आहार पाणीना लेवणहार, बावन अनाचारना टालणहार, सचित्तना त्यागी, अचेतना भोगी, कचन कामिनीना त्यागी, माया-ममताना त्यागी, समताना सागर, दयाना आगर, आदि अनेक गुणे करी सहित छे

धन्य स्वामीनाथ! आप गाम, नगर, पुर, पाटणने विषे बिराजो छो, हु अपराधी, दीन किकर, गुणहीन अहीं बेठो छु आजना दिवससबधी आपना ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपने विषे अविनय, आशातना अभक्ति, अपराध कीधो होय तो

चतुरशीतिलक्षयोनिगतान् जीवान् क्षमाप्य सार्द्धसप्तनवतिलक्षाधिकैककोटि कुलकोटिविराधनासम्बन्धि मिथ्यादुष्कृतं दत्वा पापाष्टादशरूपपट्टिकामुच्चार्य कायोत्सर्गाभिधस्य पञ्चमावश्यकस्याज्ञां गृह्णीयात् । तत्र पूर्वस्मिन्नध्ययने मूलोत्तर-

अनन्तर 'अनन्तचउवीसी जिन नमो' इत्यादि पढे, बाद में चौरासी लाख योनि गत जीवों से क्षमापना करके एक करोड साढे सत्तानवे लाख (१९७५००००) कुल कोटि (कोडी) जीवों की विराधना-सम्बन्धी मिथ्यादुष्कृत देकर और अठारह पापस्थान की पट्टी बोलकर गुरु से कायोत्सर्ग नामक पाँचवें आवश्यक की आज्ञा ग्रहण करे।

त्यार बाद 'अनन्त चउवीसी जिन नमो" ईत्यादि बोले, पछी चोरासी लाख योनिगत जीवोनी पासे क्षमापना मागीने एक करोड साडा सत्ताणु लाख (१९७५००००) कुल कोटी (क्रोडी) जीवोनी विराधना संबंधी मिथ्या दुष्कृत आपीने अने अढार पाप स्थाननी पाटी बोलीने गुरुपासे कायोत्सर्ग नामना पांचमा आवश्यकनी आज्ञा ग्रहण करवी

हजार एक सौ बीस (१८२४१२०) प्रकारे "तस्स मिच्छामि दुक्कड" ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणइ ॥
एवमहं आलोइय, निंदिय गरहिय दुगंछिउं सम्मं ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥

छेद्या होय, भेद्या होय, परितापना-किलामना उपजावी होय, तो अरिहन्त अनंता सिद्ध भगवंतनी साखे "तस्स मिच्छामि दुक्कड"

खामेमि सव्वे जीवा — खमावुं छुं सर्व जीवोने,
सव्वे जीवा खमंतु मे — सर्व जीवो मने क्षमा आपजो
मित्तीमे सव्वभूएसु — सर्व जीवो साथे मारे मित्रता छे
वेरं मज्झ न केणुई — कोईनी साथे मारे वेर नथी
एवमहं आलोइय — ए प्रकारे हुं आलोचना करी,
निंदियगरहियदुगंछिउं सम्मं, — निंदा करी, (गुरुनी साक्षीए) विशेषे निंदा करी, दुगंछा करी सम्यक् प्रकारे,
तिविहेणु पडिक्कंतो — त्रण प्रकारे (मन, वचन, कायाए) अतिक्रमण करतो थको
वंदामि जीणे चउव्वीसं — चोविश जीनेश्वर प्रभुने वंदु छुं

॥ चौरासी लाख जीव योनि का पाठ ॥

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दश लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख नारकी, चार लाख देवता, चार लाख तिर्यञ्च पचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्यकी जात ऐसे चार गति में चौरासी लाख जीव-योनि के सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त जीवों में से हालते चालते उठते बैठते सोते किसी जीव का हनन किया हो, कराया हो, हनता प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामणा उपजाई हो, मन वचन काया करके अठारह लाख चौबीस

હું થી તમથી, દાને, શીયળે, તપે, ભાવે, ગુણે કરી અધિક છે, બે વખત આવશ્યક પ્રતિક્રમણના કરનાર છે, મહિનામા બે, ચાર અને ■ પોષાના કરનાર છે, સમકિત સહિત બાર વ્રતધારી, અગિયાર પડિમાના સેવણહાર છે, ત્રણ મનોરથના ચિંતવનાર છે, દુબળા-પાતળા જીવની દયાના આણનાર છે, જીવ અજીવ આદિ નવ તત્વના જાણનાર છે, એકવીશ શ્રાવકજીના ગુણે કરી સહિત છે, પરધન પત્થર બરાબર લેખે છે, પરસ્ત્રી માત બેન સમાન લેખે છે, દૃઢધર્મી, પ્રિયધર્મી, દેવતાના ડગાવ્યા ડગે નહિ એવા છે, ધર્મનો રંગ હાડ હાડની મીંજાએ લાગ્યો છે એવા શ્રાવક, શ્રાવિકા, સંવર, પોષા, પ્રતિક્રમણમા બિરાજતા હશે તેમને આજના દિવસ સંબંધી અવિનય, આશાતના, અભકિત, અપરાધ કર્યો હોય, તો હાથ જોડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી ભુજો ભુજો કરી ખમાવુ છુ)

સાધુ-સાધ્વીને વાદુ છુ, શ્રાવક-શ્રાવિકાને ખમાવુ છુ, ચોરાશી લાખ જીવાજોનિના જીવને ખમાવુ છુ -

૭ લાખ પૃથ્વીકાય, ૭ લાખ અપકાય, ૭ લાખ તેઉકાય ૭ લાખ વાયુકાય, ૧૦ લાખ પ્રત્યેક વનસ્પતિકાય, ૧૪ લાખ સાધારણ વનસ્પતિકાય, ૨ લાખ બે ઇંદ્રિય, ૨ લાખ તેઈંદ્રિય, ૨ લાખ ચોરેંદ્રિય, ૪ લાખ નારકી, ૪ લાખ દેવતા, ૪ લાખ તિર્યંચ પચેંદ્રિય, ૧૪ લાખ મનુષ્ય જાતિ, એ ચોરાશી લાખ જીવાજોનિના જીવને હાલતા, ચાલતા, ઉઠતા, બેસતા જાણતા, અજાણતા, હણ્યા હોય, હણાવ્યા હોય,

चतुरशीतिलक्षयोनिगतान् जीवान् क्षमाप्य सार्द्धसप्तनवतिलक्षाधिकैककोटि कुलकोटिविराधनासम्बन्धि मिथ्यादुष्कृत दत्त्वा पापाष्टादशकपट्टिकामुच्चार्य कायोत्सर्गाभिधस्य पञ्चमावश्यकस्याज्ञा गृह्णीयात् । तत्र पूर्वस्मिन्नध्ययने मूलोत्तर-

अनन्तर 'अनन्तचउवीसी जिन नमो' इत्यादि पढे, वाद में चौरासी लाख योनि गत जीवों से क्षमापना करके एक करोड साढे सत्तानवेलाख (१९७५००००) कुल कोटि (कोडी) जीवों की विराधना-सम्बन्धी मिथ्यादुष्कृत देकर और अठारह पापस्थान की पट्टी बोलकर गुरु से कायोत्सर्ग नामक पाँचवें आवश्यक की आज्ञा ग्रहण करे।

ત્યાર બાદ 'અનન્ત ચઉવીસી જિન નમો" ઇત્યાદિ બોલે, પછી ચોરાસી લાખ યોનિગત જીવોની પાસે ક્ષમાપના માગીને એક કરોડ સાડા સત્તાણુ લાખ (૧૯૭૫૦૦૦૦) કુલ કોટી (કોડી) જીવોની વિરાધના સબધી મિથ્યા દુષ્કૃત આપીને અને અઢાર પાપ સ્થાનની પાટી બોલીને ગુરુપાસે કાયોત્સર્ગ નામના પાચમા આવશ્યકની આજ્ઞા ગ્રહણ કરવી

हजार एक सौ वीस (१८२४१२०) प्रकारे "तस्स मिच्छामि दुक्कड" ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेर मज्झ न केणइ ॥
एवमह आलोइय, निदिय गरहिय दुगछिउ सम्म।
तिविहेण पडिक्कतो, वदामि जिणे चउव्वीस ॥

છેદ્યા હોય, ભેદ્યા હોય, પરિતાપના-કિલામના ઉપજાવી હોય, તો અરિહન્ત અનતા સિદ્ધ ભગવતની સાખે "તસ્સ મિચ્છામિ દુક્કડ"

ખામેમિ સવ્વે જીવા	ખમાવુ છુ સર્વ જીવોને,
સવ્વે જીવા ખમતુ મે	સર્વ જીવો મને ક્ષમા આપજો
મિત્તીમે સવ્વભૂએસુ	સર્વ જીવો સાથે મારે મિત્રતા છે
વેર મજ્ઝ ન કેણઇ	કોઇની સાથે મારે વેર નથી
એવમહ આલોઇય	એ પ્રકારે હુ આલોચના કરી,
નિંદિયગરહિયદુગછિઉ સમ્મ,	નિંદા કરી, (ગુરુની સાક્ષીએ) વિશેષે નિંદા કરી, દુગછા કરી
તિવિહેણ પડિક્કતો	સમ્યક્ પ્રકારે, ત્રણ પ્રકારે (મન, વચન, કાયાએ) પ્રતિક્રમણ કરતો થકો
વદામિ જીણે ચઉવ્વીસ	ચોવિશ જીનેશ્વર પ્રભુને વદુ છુ

गुणेषु स्खलितस्य निन्दाऽभिहिता, इह त्वाचारमस्खलितस्य चारित्रपुरुषस्यातिचार लक्षणव्रणोत्पत्तिसम्भवात्तच्चिकित्सारूप कायोत्सर्ग उच्यते, अथवा प्रोक्ते प्रति क्रमणाध्ययने मिथ्यात्वादिरित्यादिपञ्चविधप्रतिक्रमणद्वारा कर्माऽऽगमप्रतिरोध उपपादित', इह तु कायोत्सर्गविधिना पूर्वसञ्चिताना कर्मणा प्रक्षयो भवतीति प्रतिपाद्यते–'इच्छामि ण' इत्यादि–

॥ मूलम् ॥

इच्छामि ण भते तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे ।
देवसियपायच्छित्तविसोहणट्ठ करेमि काउस्सग्ग ॥१॥

॥ छाया ॥

इच्छामि खलु भगवन् युष्माभिरभ्यनुज्ञात' सन् ।
दैवसिकप्रायश्चित्तविशोधनार्थ करोमि कायोत्सर्गम् ॥१॥

॥ टीका ॥

व्याख्या प्रस्फुटा ॥१॥

पूर्व (चौथे) अध्ययन में मूल और उत्तर गुणो मे स्खलित की निन्दा कही है, इस पाँचवें अध्ययन में आचार से स्खलित चारित्ररूप पुरुष के अतिचाररूप व्रण (घाव) होने के सभव से उस की चिकित्सारूप कायोत्सर्ग कहा जाता है। अथवा प्रतिक्रमणाध्ययन में मिथ्यात्व आदि पॉच प्रकार के प्रतिक्रमण द्वारा कर्मों के आगमन का प्रतिरोध किया गया है, और यहाँ कायोत्सर्ग द्वारा पूर्वसञ्चित कर्मों का क्षय दिखलाया जाता है–'इच्छामि ण भते' इत्यादि ।

प्रथम पहेला (ચોથા) અધ્યયનમા મૂલ અને ઉત્તર ગુણોમા સ્ખલિતની નિન્દા કહી છે આ પાચમા અધ્યયનમા આચારથી સ્ખલિત ચારિત્રરૂપ પુરુષના અતિચાર રૂપ વ્રણ (ઘા) થવાના સભવથી તેની ચિકિત્સારૂપ કાર્યોત્સર્ગ કહેવો છે, અથવા પ્રતિક્રમણાધ્યયનમા મિથ્યાત્વ આદિ પાચ પ્રકારના પ્રતિક્રમણ દ્વારા કર્મોના આવવાપણા કરવામા આવે છે, અને અહીં કાર્યોત્સર્ગ દ્વારા પૂર્વ સચિત બતાવામા આવેલ છે (इच्छामि ण भते) ઇત્યાદિ

'करेमि भते ? सामाइय०' 'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग०' 'तस्सोत्तरीकरणेण०' इत्येताः सर्वाः पट्टिकाः पठित्वा कायोत्सर्गं विदध्यात्, तत्र 'लोगस्स उज्जोयगरे०' इति पट्टिका वारचतुष्टय मनसा सस्मृत्य सनमस्कार कायोत्सर्गं समाप्य च पुनरपि 'लोगस्स उज्जोयगरे०' इत्यादि पट्टिका पूर्णामुच्चारयेत्, ततः 'इच्छामि खमासमणो०' इति पट्टिका द्विः पठित्वा गुरुसमीपे प्रत्याचक्षीत ॥ १ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित-कलापाऽऽलापक–प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहू-छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'–पदभूषित -कोल्हापुर-राजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्यश्री-घासीलाल–व्रतिविरचितायां श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-तोषण्याख्याया व्याख्याया पञ्चम कायोत्सर्गाख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ ५ ॥

उसमें प्रथम 'इच्छामि ण भते' की पट्टी से कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करके 'करेमि भते ! सामाइय०' और 'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग०' तथा 'तस्सोत्तरीकरणेण०' बोलकर कायोत्सर्ग करे' और कायोत्सर्गमें च्यार 'लोगस्स०' मनमे गिन कर नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्ग की समाप्ति करें, फिर 'लोगस्स०' की पट्टी प्रगट बोलें। तदनन्तर 'इच्छामि खमासमणो०' की पट्टी दो वार बोल कर गुरुके निकट प्रत्याख्यान करें ॥ १ ॥

॥ इति पञ्चमअध्ययन समाप्त ॥

તેમા પ્રથમ 'इच्छामि ण भत्ते,' ની પાટીથી કાયોત્સર્ગની પ્રતિજ્ઞા કરીને 'करेमि भते सामाइय' અને 'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग' તથા 'तस्सोत्तरीकरणेण' બોલીને કાયોત્સર્ગ કરવો અને કાયોત્સર્ગમા ચાર 'लोगस्स' મનમા ઉચ્ચારણ વગર બોલીને નમસ્કારપૂર્વક કાયોત્સર્ગની સમાપ્તિ કરવી, અને પછી 'लोगस्स'ની પાટી પ્રગટ બોલવી, તે પછી 'इच्छामि खमाममणो' ની પાટી બે વાર બોલીને ગુરુ સમીપે પ્રત્યાખ્યાન કરવુ (૧)

ઇતિ પાચમુ અધ્યયન સપૂર્ણ.

गुणेषु स्खलितस्य निन्दाऽभिहिता, इह त्वाचारमस्खलितस्य चारित्रपुरुषस्यातिचार लक्षणव्रणोत्पत्तिसम्भवाच्चिकित्सारूपः कायोत्सर्ग उच्यते, अथवा प्रोक्ते प्रति क्रमणाऽध्ययने मिथ्यात्वाविरत्यादिपञ्चविधप्रतिक्रमणद्वारा कर्माऽऽगमप्रतिरोध उपपादितः, इह तु कायोत्सर्गविधिना पूर्वसञ्चितानां कर्मणां प्रक्षयो भवतीति प्रतिपाद्यते-'इच्छामि णं' इत्यादि-

॥ मूलम् ॥

इच्छामि णं भंते तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे ।
देवसियपायच्छित्तविसोहणट्ठं करेमि काउस्सग्गं ॥१॥

॥ छाया ॥

इच्छामि खलु भगवन् युष्माभिरभ्यनुज्ञातः सन् ।
दैवसिकप्रायश्चित्तविशोधनार्थं करोमि कायोत्सर्गम् ॥१॥

॥ टीका ॥

व्याख्या प्रस्फुटा ॥१॥

पूर्व (चौथे) अध्ययन में मूल और उत्तर गुणों में स्खलित की निन्दा कही है, इस पाँचवें अध्ययन में आचार से स्खलित चारित्ररूप पुरुष के अतिचाररूप व्रण (घाव) होने के संभव से उस की चिकित्सारूप कायोत्सर्ग कहा जाता है। अथवा प्रतिक्रमणाध्ययन में मिथ्यात्व आदि पाँच प्रकार के प्रतिक्रमण द्वारा कर्मों के आगमन का प्रतिरोध किया गया है, और यहाँ कायोत्सर्ग द्वारा पूर्वसञ्चित कर्मों का क्षय दिखलाया जाता है-'इच्छामि णं भंते' इत्यादि।

પ્રથમ પહેલા (ચોથા) અધ્યયનમાં મૂલ અને ઉત્તર ગુણોમાં સ્ખલિતની નિન્દા કહી છે આ પાંચમાં અધ્યયનમાં આચારથી સ્ખલિત ચારિત્રરૂપ પુરુષના અતિચાર રૂપ વ્રણ (ઘા) થવાના સંભવથી તેની ચિકિત્સારૂપ કાયોત્સર્ગ કહેલો છે, અથવા પ્રતિક્રમણાધ્યયનમાં મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ પ્રકારના પ્રતિક્રમણ દ્વારા કર્મોના આવવાપણાનો પ્રતિરોધ કરવામાં આવે છે, અને અહીં કાયોત્સર્ગ દ્વારા પૂર્વ સંચિત કર્મોનો ક્ષય બતાવવામાં આવેલ છે (इच्छामि णं भंते) ઇત્યાદિ.

(६) परिमाणकृत (७) निरवशेषम् (८)। सङ्केत (९) चैव अद्धायाः (१०) प्रत्याख्यान भवति दशधा ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

'पच्चक्खाणे' प्रत्याख्यायते=गुरसाक्षिक तदभावे स्वसाक्षिक वा प्रतिषिध्यते हेयवस्तु, अनागतपाप वा येनेति 'प्रत्याख्यानम्। 'दसविहे' दशविध 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्त भगवतेत्यर्थात्। 'तजहा' तद्यथा-

---

भविष्यमें लगनेवाले पापों से निवृत्त होने के लिये गुरुसाक्षी या आत्मसाक्षी से हेय वस्तु के त्याग करने को प्रत्याख्यान कहते हैं, वह दस प्रकार का है—

ભવિષ્યમા લાગવાવાળા પાપોથી નિવૃત્ત થવા માટે ગુરુની સાક્ષી અથવા તો આત્મની સાક્ષીથી હેય વસ્તુનો ત્યાગ કરવો તેને પ્રત્યાખ્યાન કહે છે, તે દસ પ્રકારના છે-

---

१-'प्रत्याख्यानम्' अत्र करणे, यद्वा भावे प्रत्याङ्-पूर्वकात् चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि इत्यस्माल्ल्युटि, तस्यार्द्धधातुकत्वात्तस्मिन् परे चक्षिङ' ख्शाआदेशे, ख्शाञः शकारस्य 'शस्य यो वे' ति यादेशे प्रत्याख्यानम्। यत्तु 'ख्या प्रकथने' इत्यस्य प्रत्याङ्पूर्वकस्य ल्युडन्तस्य प्रत्यारयान भवती'—ति 'तथा प्रत्याख्यातीति प्रत्याख्याते'-ति च केचिदाहुस्तद्व्याकरणाज्ञानमूलकम्, 'रया प्रकथने' इत्यस्य सार्वधातुकमात्रविषयकत्वात्, तदुक्त 'सस्थानत्व नम. ख्यात्रे' इति वार्तिके व्याकरणमहाभाष्यकारपतञ्जलिना-'नमः ख्यात्रे' इत्यत्र चक्षिङ ख्शाआदेशे शकारस्य 'शस्य यो वे' ति कृतो यादेश. 'शर्परे विसर्जनीय' ' इति सूत्र प्रत्यसिद्ध शर्परखर्परत्वाद्विसर्गस्य विसर्ग एव भवति न तु 'कुप्वो ⨯ क ⨯ पौ चे'-ति सस्थानत्व (जिह्वामूलीयत्व) मिति 'नम. ख्यात्रे' इत्यत्र सस्थानत्वाभावश्चक्षिङ ख्शाआदेशस्य प्रयोजनमितरथा जिह्वामूलीयस्य दुर्वारत्वात्, यदि तु 'ख्या प्रकथने' इत्यस्य उणादौ प्रयोग स्यात्तदास्मात्तृचि 'नम ख्यात्रे' इत्यत्र 'शर्परे०' इत्यस्याप्रत्या जिह्वामूलीयो दुर्वार स्यादिति भाष्यासङ्गति स्पष्टैव। अतएव 'पुख्यानम्' इत्यत्र 'पुम खय्यम्परे' इति रु, 'सौप्रख्ये भव' इत्यर्थे 'योपधाद्गुरूपोत्तमादि'-ति वुञ्, 'आख्यातम्' इत्यादौ 'सयोगादरातो धातोर्यण्वत' इति-निष्ठानत्वम्, 'पर्याख्यानम्, इत्यादौ णत्व च 'शस्य यो वे'-त्यस्याऽसिद्धत्वेन नेति प्रपञ्चितमन्यत्र विस्तरेण।

। अथ षष्ठमध्ययनम् ।

अनन्तरोक्ते पञ्चमाध्ययने पूर्वसञ्चिताना कर्मणा प्रक्षयः प्रतिपादित', सम्प्रतीह षष्ठाध्ययने आगन्तूना कर्मणा निरोधः प्रोच्यते, अथवा पूर्वत्र कायोत्सर्गद्वारा व्रणचिकित्सा सम्प्रोक्ता, चिकित्सोत्तर च गुणप्रतिपत्तिर्भवतीतीह गुणधारणापराऽऽख्ये प्रत्याख्यानाध्ययने मूलोत्तरगुणधारणामाह—'दसविहे' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

दसविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते तजहा—
'अणागयमइक्कत, कोडीसहिय नियटिय चेव ।
सागारमणागार, परिमाणकड निरवसेस ।
सकेय चेव अद्धाए, पच्चक्खाण भवे दसहा ॥सू० १॥

॥ छाया ॥

दशविध प्रत्याख्यान प्रज्ञप्त तद्यथा—अनागतम्-(१) अतिक्रान्तम् (२) कोटिसहित (३) नियन्त्रित (४) चैव। साकारम् (५) आनाकार

अथ छठा अध्ययन

पाँचवें अध्ययनमें पूर्वसञ्चित कर्मों का क्षय कहा गया है। इस छठे अध्ययनमें नवीन बन्धनेवाले कर्मों का निरोध कहा जाता है। अथवा पाँचवें अध्ययनमें कायोत्सर्ग द्वारा अतिचाररूप व्रण की चिकित्सा का निरूपण किया गया है। चिकित्साके अनन्तर गुण की प्राप्ति होती है, इसलिये 'गुणधारण' नामक इस प्रत्याख्यान अ ययनमें मूलोत्तर गुण की धारणा कहते हैं—'दसविहे पच्चक्खाणे' इत्यादि।

અથ છઠ્ઠ અધ્યયન

પાચમા અધ્યયનમા પૂર્વસચિત કર્મોનો ક્ષય કહેવામા આવ્યુ છે હવે આ છઠ્ઠા અધ્યયનમા નવીન બન્ધ થવાવાળા કર્મોનો નિરોધ કહેવામા આવે છે અથવા પાચમા અધ્યયનમા કાયોત્સર્ગ દ્વારા અતિચાર રૂપ વ્રણ-ઘાવની ચિકિત્સાનું નિરૂપણ કરવામા આવ્યુ છે, ચિકિત્સા કર્યા પછી ગુણની પ્રાપ્તિ થાય છે, એ માટે "ગુણધારણ" નામના આ પ્રત્યાખ્યાન અધ્યયનમા મૂલોત્તર ગુણની ધારણા કહે છે 'दसविहे पच्चक्खाणे" ઇત્યાદિ

(६) परिमाणकृत (७) निरवशेषम् (८)। सङ्केत (९) चैव अद्धायाः (१०) प्रत्याख्यान भवति दशधा ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

'पच्चक्खाणे' प्रत्याख्यायते=गुरुसाक्षिक तदभावे स्वसाक्षिक वा प्रतिषिध्यते हेयवस्तु, अनागतपाप वा येनेति [1]प्रत्याख्यानम्। 'दसविहे' दशविध 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्त भगवतेत्यर्थात्। 'तजहा' तद्यथा-

---

भविष्यमें लगनेवाले पापों से निवृत्त होने के लिये गुरुसाक्षी या आत्मसाक्षी से हेय वस्तु के त्याग करने को प्रत्याख्यान कहते हैं, वह दस प्रकार का है—

ભવિષ્યમા લાગવાવાળા પાપોથી નિવૃત્ત થવા માટે ગુરુની સાક્ષી અથવા તો આત્મની સાક્ષીથી હેય વસ્તુનો ત્યાગ કરવો તેને પ્રત્યાખ્યાન કહે છે, તે દસ પ્રકારના છે-

---

१-'प्रत्याख्यानम्' अत्र करणे, यद्वा भावे प्रत्याङ्-पूर्वकात् चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि इत्यस्माल्ल्युटि, तस्यार्द्धधातुकत्वात्तस्मिन् परे चक्षिङ' ख्शाञादेशे, ख्शाञः शकारस्य 'शस्य यो वे' ति यादेशे प्रत्याख्यानम्। यत्तु 'ख्या प्रकथने' इत्यस्य प्रत्याङ्पूर्वकस्य ल्युडन्तस्य प्रत्याख्यान भवती'—ति 'तथा प्रत्याख्यातीति प्रत्याख्याते'-ति च केचिदाहुस्तद्व्याकरणाज्ञानमूलकम्, 'ख्या प्रकथने' इत्यस्य सार्वधातुकमात्रविषयकत्वात्, तदुक्त 'सस्थानत्व नम. ख्यात्रे' इति वार्तिके व्याकरणमहाभाष्यकारपतञ्जलिना-'नमः ख्यात्रे' इत्यत्र चक्षिङः ख्शाञादेशे शकारस्य 'शस्य यो वे' ति कृते यादेश 'शर्परे विसर्जनीयः' इति सूत्र प्रत्यसिद्धः शर्परखर्परत्वाद्विसर्गस्य विसर्ग एव भवति न तु 'कुप्वो ✕क ✕पौ चे'-ति सस्थानत्व (जिह्वामूलीयत्व) मिति 'नम ख्यात्रे' इत्यत्र सस्थानत्वाभावश्चक्षिङः ख्शाञादेशस्य प्रयोजनमितरथा जिह्वामूलीयस्य दुर्वारत्वात्, यदि तु 'ख्या प्रकथने' इत्यस्य तनादौ प्रयोग. स्यानदास्मात्तर्हि 'नम ख्यात्रे' इत्यत्र 'शर्परे०' इत्यस्याप्रप्त्या जिह्वामूलीयो दुर्वार स्यादिति भाष्यासङ्गतिः स्पष्टैव। अतएव 'पुख्यानम्' इत्यत्र 'पुमः खय्यम्परे' इति रु, 'सौमख्ये भवः' इत्यर्थे 'योपधाद्गुरूपोत्तमादि'-ति वुञ्, 'आख्यातम्' इत्यादौ 'सयोगादरातो धातोर्यण्वतः' इतिनिष्ठानत्वम्, 'पर्याख्यानम्, इत्यादौ णत्व च 'शस्य यो वे'-इत्यस्याऽसिद्धत्वेन नेति प्रपञ्चितमन्यत्र विस्तरेण।

'अणागय' अनागत=वैयावृत्त्यादिकारणवशान्निर्दिष्टसमयात्प्रागेव तपः करणम् (१) 'अइक्कंत' अतिक्रान्त=निर्दिष्टसमयमतिक्रम्य तपोविधानम् (२)। 'कोडीसहिय' कोटिसहितम्=यया कोटया तपः समारब्ध तयैव तस्य परिसमापनम्, अर्थाच्चतुर्भक्तादिना समारब्ध तपश्चतुर्भक्तादिनैव समापनीयम्। 'णियटिय' नितरां यन्त्रितं=प्रतिज्ञया प्रतिबद्ध नियन्त्रितम्=वैयावृत्त्यादिप्रगाढ-कारणसद्भावेऽपि 'मयाऽवश्यमेवामुकदिवसे तपः कर्तव्य'-मिति प्रतिज्ञाया कृताया कारणे सत्यपि नियमिततपश्चरणम् (४)। एतच्च वज्रर्षभनाराचसंहननधारिणाऽनगारेणैव क्रियते। 'सागार' उत्सर्गोऽपवादहेतुगर्भेणाऽऽकारेण सह वर्तत इति साकारम्, इहोत्सर्गपक्षेऽनाभोग-सहसाकाराभ्यामवश्य भाव्यम्, अपवादपक्षे च महत्तराद्याकारैः (५)। 'अणागार' अविद्यमाना आकाराः=

(१) अनागत-वैयावृत्त्य (वेयावच्च) आदि कारणवश नियत समय से पहले तप करना, (२) अतिक्रान्त-नियत समय के बाद तप करना, (३) कोटिसहित-जिस कोटि (चतुर्भक्त आदि क्रम) से प्रारम्भ किया उसीसे समाप्त करना, (४) नियन्त्रित-वैयावृत्त्य (वेयावच्च) आदि प्रबल कारणों के हो जाने पर भी सकल्पित तप का परित्याग न करना, यह प्रत्याख्यान वज्रऋषभनाराचसंहननधारी अनगार ही कर सकते है। (५) सागार-जिसमे उत्सर्ग अवश्य रखने योग्य अणाभोग और सहसागार रूप तथा अपवाद (महत्तर आदि) रूप आगार हो उसे सागार कहते है, (६) अणागार-जिसमे उक्त

(१) અનાગત-વૈયાવૃત્ત્ય (વેયાવચ્ચ) આદિ કારણ વશ નિયત (નિર્ણય કરેલા) સમય પહેલા તપ કરવું, (૨) અતિક્રાન્ત નિયત (નિર્ણય કરેલા) સમય પછી તપ કરવુ, (૩) કોટિસહિત-જે કોટિ (ચતુર્ભક્ત આદિ ક્રમ) થી પ્રારંભ કર્યો તેનાથીજ સમાપ્ત કરવુ, (૪) નિયન્ત્રિત-વૈયાવૃત્ત્ય આદિ પ્રબલ કારણો બની જાય તોપણ સંકલ્પ કરેલા તપનો પરિત્યાગ ન કરવો, આ પ્રત્યાખ્યાન વજ્રઋષભનારાચ-સંહનન-ધારી અણગારજ કરી શકે છે, (૫) સાગાર-જેમા ઉત્સર્ગ અવશ્ય રાખવા યોગ્ય "અણત્થણાભોગ" અને 'સહસાગાર રૂપ" તથા અપવાદ (મહત્ત[illegible] આદિ) રૂપ આગાર હોય તેને સાગાર કહે છે (૬) અણાગાર-જેમા [illegible] રૂપ આગાર (છૂટ) રાખવામા નહિ આવે

अनाभोगसहसाकारव्यतिरिक्ता महत्तरादयो यत्र तदनाकारम् (६)। 'परिमाणकड' परिमाण=दत्त्यादिरूप कृत=विहित यस्मिस्तत् (७)। 'निरवसेस' निर्गतानि अवशेषाणि=अवशिष्टान्यशनपानादीनि यत्र तत्, सर्वथाऽशनादिपरित्यागरूपमित्यर्थः (८)। 'सकेय' सङ्केतः=अङ्गुल्यादिचालनस्वरूपश्चिह्नविशेषः, सोऽस्मिन्नस्तीति सङ्केतम्[1] -अङ्गुल्यादिसङ्केतावधिकमित्यर्थः, मुष्टिमोचनाऽङ्गुल्यादिपरिचालनादि-क्रियातः प्रागेव प्रत्याख्यानमिति भावः (९)। 'अद्धाए' अद्धा=कालो= मुहूर्त्तपौरुष्यादिकस्तस्याः (१०)। प्रत्याख्यानमिति दशस्वपि सम्बध्यते। अद्धाप्रत्याख्यान चानेकधा तदुपदर्श्यते—

(१) नमोक्कारसहियपच्चक्खाण—

उग्गए सूरे नमुक्कारसहिय पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहार असण पाण खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेणं (२) वोसिरामि ।

अपवाद रूप आगार (छूट) न रक्खे जायँ उसे अणागार कहते हैं, (७) परिमाणकृत-जिसमें दत्ति (दात) आदिका परिमाण किया जाय। (८) निरवशेष-जिसमें अशनादि का सर्वथा त्याग हो। (९) सकेत-जिसमे मुट्ठी खोलने आदि का सकेत हो, जैसे-'मैं जबतक मुट्ठी नही खोलूँगा तबतक मेरे प्रत्याख्यान है' इत्यादि। (१०) अद्धा-प्रत्याख्यान-मुहूर्त्त पौरषी आदि काल सम्बन्धी प्रत्याख्यान। इसके अनेक भेद है, उनमें से मुख्य २ दस भेद कहते हैं जो सस्कृत टीका मे स्पष्ट हैं ॥ सू० १ ॥

તેને અણુગાર કહે છે (૭) પરિમાણકૃત-જેમા દત્તિ (દાત) આદિનું પરિમાણ કરવામા આવે (૮) નિરવશેષ-જેમા અશનાદિનો સર્વથા ત્યાગ હોય (૯) સ કેત-જેમા મુઠ્ઠી ખોલવા આદિનો સ કેત હોય, જેવી રીતે કે — "હુ જ્યા સુધી મુઠ્ઠી નહિ ખોલુ ત્યા સુધી મારે પ્રત્યાખ્યાન છે" ઇત્યાદિ. (૧૦) અદ્ધાપ્રત્યાખ્યાન-મુહૂર્તપોરપી આદિ કાલ સ બન્ધી પ્રત્યાખ્યાન તેના અનેક ભેદ છે, તેમા મુખ્ય મુખ્ય દસ ભેદ કહે છે જે સ સ્કૃત ટીકામા સ્પષ્ટ છે (સૂ૦૧)

---

१ अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् ।

'अणागय' अनागत=वैयावृत्त्यादिकारणवशान्निर्दिष्टसमयात्प्रागेव तपः करणम् (१) 'अइक्कत' अतिक्रान्त=निर्दिष्टसमयमतिक्रम्य तपोविधानम् (२)। 'कोडीसहिय' कोटिसहितम्=यया कोटया तपः समारब्ध तयैव तस्य परिसमापनम्, अर्थाच्चतुर्भक्तादिना समारब्ध तपश्चतुर्भक्तादिनैव समापनीयम्। 'णियटिय' नितरा यन्त्रित=प्रतिज्ञया प्रतिबद्ध नियन्त्रितम्=वैयावृत्त्यादिप्रगाढ-कारणसद्भावेऽपि 'मयाऽवश्यमेवामुकदिवसे तपः कर्तव्य'-मिति प्रतिज्ञाया कृताया कारणे सत्यपि नियमिततपश्चरणम् (४)। एतच्च वज्रर्षभनाराचसहन नधारिणाऽनगारेणैव क्रियते। 'सागार' उत्सर्गाऽपवादहेतुगर्भेणाऽऽकारेण सह वर्तत इति साकारम्, इहोत्सर्गपक्षेऽनाभोग-सहसाकाराभ्यामवश्य भाव्यम्, अपवादपक्षे च महत्तराद्याकारे' (५)। 'अणागार' अविद्यमाना आकाराः=

(१) अनागत-वैयावृत्त्य (वेयावच्च) आदि कारणवश नियत समय से पहले तप करना, (२) अतिक्रान्त-नियत समय के बाद तप करना, (३) कोटिसहित-जिस कोटि (चतुर्भक्त आदि क्रम) से प्रारम्भ किया उसीसे समाप्त करना, (४) नियन्त्रित-वैयावृत्त्य (वेयावच्च) आदि प्रबल कारणो के हो जाने पर भी सकल्पित तप का परित्याग न करना, यह प्रत्याख्यान वज्रऋषभनाराचसहननधारी अनगार ही कर सकते है। (५) सागार-जिसमें उत्सर्ग अवश्य रखने योग्य अण्णत्थणाभोग और सहसागार रूप तथा अपवाद (महत्तर आदि) रूप आगार हो उसे सागार कहते है, (६) अणागार-जिसमे उक्त

(१) અનાગત-વૈયાવૃત્ય (વૈયાવચ્ચ) આદિ કારણ વશ નિયત (નિર્ણય કરેલા) સમય પહેલા તપ કરવું, (૨) અતિક્રાન્ત નિયત (નિર્ણય કરેલા) સમય પછી તપ કરવુ, (૩) કોટિસહિત-જે કોટિ (ચતુર્ભક્ત આદિ ક્રમ) થી પ્રારભ કર્યો તેનાથીજ સમાપ્ત કરવુ, (૪) નિયત્રિત-વૈયાવૃત્ય આદિ પ્રબલ કારણો બની જાય તોપણ સકલ્પ કરેલા તપનો પરિત્યાગ ન કરવો, આ પ્રત્યાખ્યાન વજ્રઋષભનારાચ-સહનન-ધારી અણગારજ કરી શકે છે, (૫) સાગાર-જેમા ઉત્સર્ગ અવશ્ય રાખવા યોગ્ય "અણ્ણત્થણાભોગ" અને ' સહસાગાર રૂપ" તથા અપવાદ (મહત્તર-મોટા આદિ) રૂપ આગાર હોય તેને સાગાર કહે છે (૬) અણાગાર-જેમા કહેલા અપવાદ રૂપ આગાર (છૂટ) રાખવામા નહિ આવે

अनाभोगसहसाकारव्यतिरिक्ता महत्तरादयो यत्र तदनाकारम् (६)। 'परिमाणकड' परिमाण=दत्त्यादिरूप कृत=विहित यस्मिस्तत् (७)। 'निरवसेस' निर्गतानि अवशेषाणि=अवशिष्टान्यशनपानादीनि यत्र तत्, सर्वथाऽशनादिपरित्यागरूपमित्यर्थः (८)। 'सकेय' सङ्केतः=अङ्गुल्यादिचालनस्वरूपश्चिह्नविशेषः, सोऽस्मिन्नस्तीति सङ्केतम्[1] -अङ्गुल्यादिसङ्केतावधिकमित्यर्थः, मुष्टिमोचनाऽङ्गुल्यादिपरिचालनादि-क्रियातः प्रागेव प्रत्याख्यानमिति भावः (९)। 'अद्धाए' अद्धा=कालो= मुहूर्त्तपौरुष्यादिकस्तस्याः (१०)। प्रत्याख्यानमिति दशस्वपि सम्बध्यते। अद्धाप्रत्याख्यान चानेकधा तदुपदर्श्यते—

(१) नमोक्कारसहियपच्चक्खाण—

उग्गए सूरे नमुक्कारसहिय पच्चक्खामि चउव्विहपि आहार असण पाण खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेण (२) वोसिरामि ।

अपवाद रूप आगार (छूट) न रक्खे जायँ उसे अणागार कहते हैं, (७) परिमाणकृत-जिसमें दत्ति (दात) आदिका परिमाण किया जाय। (८) निरवशेष-जिसमे अशनादि का सर्वथा त्याग हो। (९) सकेत-जिसमे मुट्ठी खोलने आदि का सकेत हो, जैसे-'मैं जबतक मुट्ठी नही खोलूंगा तबतक मेरे प्रत्याख्यान है' इत्यादि। (१०) अद्धा-प्रत्याख्यान-मुहूर्त्त पौरुषी आदि काल सम्बन्धी प्रत्याख्यान। इसके अनेक भेद है, उनमें से मुख्य २ दस भेद कहते हैं जो सस्कृत टीका मे स्पष्ट हैं॥ सू० १॥

तेने अणागार कहे छे (७) परिमाणकृत-जेमा दत्ति (दात) आदिनुं परिमाण करवामा आवे (८) निरवशेष-जेमा अशनादिनो सर्वथा त्याग होय (९) सकेत-जेमा मुट्ठी खोलवा आदिनो सकेत होय, जेवी रीते के — "हु ज्या सुधी मुट्ठी नहि खोलु त्या सुधी मारे प्रत्याख्यान छे" इत्यादि (१०) अद्धाप्रत्याख्यान-मुहूर्तपोरुषी आदि काल सबन्धी प्रत्याख्यान तेना अनेक भेद छे, तेमा मुख्य मुख्य दस भेद कहे छे जे सस्कृत टीकामा स्पष्ट छे (सू०१)

१ अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् ।

(९) अभिग्गहपच्चक्खाणं–

उग्गए सूरे गंठिसहियं मुट्ठिसहिय पच्चक्खामि-चउव्विहंपि आहारं असण पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१), सहसागारेणं (२), महत्तरागारेणं (३), सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (४) वोसिरामि ।

(१०) निव्विगयपच्चक्खाणं–

उग्गए सूरे निव्विगइय पच्चक्खामि-चउव्विहंपि आहार-असणं पाणं खाइम -साइम अन्नत्थणाभोगेणं (१), सहसागारेणं (२), लेवालेवेणं (३), गिहत्थसंसट्ठेणं (४) उक्खित्तविवेगेणं (५), पडुच्चमक्खिएणं (६), पारिट्ठावणियागारेणं (७), महत्तरागारेण (८), सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (९) वोसिरामि ॥ सू० १ ॥



प्रत्याख्यानों के आगारों का यन्त्र

आगार		अन्नत्थ णा भोगेण	सहसा गारेण	पच्छन्न कालेण	दिसा मोहेण	साहु वयणेण	सव्व समाहि वत्तिया	महत्तरा गारेण	सागा रिया गारेण	आउ-ट्टण पसारेण	गुरु अब्भुट्ठा णेण	पारिट्ठा-वणिया-गारेण	लेवा लेवेण	गिह-त्थस सट्ठेण	उक्खित्ता विवेगेण	पडुच्च मक्खि एण	आगार सख्या
सख्या	प्रत्याख्यान																
१	नवकारसी	१	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	२
२	पौरुषी	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	६
३	पुरिमड्ढ	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	०	०	०	७
४	एकाशन	१	१	०	०	०	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	८
५	एकलठाण	१	१	०	०	०	१	१	१	०	१	१	०	०	०	०	७
६	आबिल	१	१	०	०	०	१	१	०	०	०	१	१	१	१	०	८
७	चउत्थ भक्त (उपवास)	१	१	०	०	०	१	१	०	०	०	१	०	०	०	०	५
८	दिवसचरिम	१	१	०	०	०	१	१भ०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
९	अभिग्रह	१	१	०	०	०	१	१भ०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
१०	नीवी	१	१	०	०	०	१	१	०	०	०	१	१	१	१	१	९

પ્રત્યાખ્યાનના આગારનો યન્ત્ર

આગાર સંખ્યા	આગાર પ્રત્યાખ્યાન	અન્નત્થ ણાભોગેણ	સહસાગારેણ	પચ્છન્નકાલેણ	દિસામોહેણ	સાહુવયણેણ	સવ્વ સમાહિ વત્તિયા	મહત્તરાગારેણ	સાગારિયાગારેણ	આઉંટણ પસારેણ	ગુરુ અબ્ભુટ્ઠાણેણ	પારિટ્ઠાવણિયાગારેણ	લેવાલેવેણ	ગિહત્થ સંસટ્ઠેણ	ઉક્ખિત્તા વિવેગેણ	પડુચ્ચમક્ખિએણ	આગાર સંખ્યા
૧	નવકારસી	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૨
૨	પોરસી	૧	૧	૧	૧	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૬
૩	પુરિમઢ્ઢ	૧	૧	૧	૧	૧	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૭
૪	એકાશન	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૧	૧	૧	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૮
૫	એકલઠાણુ	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૧	૧	૦	૧	૧	૦	૦	૦	૦	૭
૬	આંબિલ	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૧	૧	૧	૦	૮
૭	ચઉત્થભકત	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૦	૦	૦	૦	૫
૮	દિવસચરિમ	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૧ભ૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૪
૯	અભિગ્રહ	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૧ભ૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૦	૪
૧૦	નીવી	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૧	૦	૦	૦	૧	૧	૧	૧	૧	૯

एवं यथाशक्ति प्रत्याख्याय गुरोरभिमुखस्तदभावे पूर्वाभिमुख उत्तराभिमुखो वा भूत्वा दक्षिणं जानु भूमौ संस्थाप्य वामं चोर्ध्वीकृत्य साञ्जलिपुटं 'नमोत्थु णं' इति पठेत्, तथाहि—

॥ मूलम् ॥

नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीआणं पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जियभयाणं ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

नमोऽस्तु अर्हद्भ्यो भगवद्भ्य आदिकरेभ्यस्तीर्थकरेभ्यः स्वयंसंबुद्धेभ्यः पुरुषोत्तमेभ्यः पुरुषसिंहेभ्यः पुरुषवरपुण्डरीकेभ्यः पुरुषवरगन्धहस्तिभ्यो लोको-

---

इस प्रकार यथाशक्ति प्रत्याख्यान करके गुरुके निकट और उनके न रहने पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठे, और दाहिने जानु (घुटने) को जमीनसे अडा कर बायें जानु को ऊंचा रखकर उसके ऊपर अञ्जलिपुट धरकर 'नमोत्थु णं' का पाठ बोले—

આ પ્રમાણે યથાશકિત પ્રત્યાખ્યાન કરીને ગુરુની પાસે અને તેઓની હાજરી ન હોય તો પૂર્વ અથવા ઉત્તરદિશા તરફ મુખ રાખીને બેસવું અને જમણા પગના ઘુંટણને જમીનથી અડાવી અર્થાત્ નીચો રાખી તથા ડાબા ઘુંટણને ઉંચો રાખી તેના ઉપર બે હાથ જોડી "નમોત્થુ ણં" નો પાઠ બોલવો—

धर्मेभ्यो लोकनाथेभ्यो लोकहितेभ्यो लोकप्रदीपेभ्यो लोकप्रद्योतकरेभ्यः, अभयदयेभ्यश्चक्षुर्दयेभ्यो मार्गदयेभ्यः शरणदयेभ्यो जीवदयेभ्यो बोधिदयेभ्यो धर्मदयेभ्यो धर्म्मदेशकेभ्यो धर्मनायकेभ्यो धर्मसारथिभ्यो धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्तिभ्यो द्वीपत्राण शरण गतिः प्रतिष्ठा अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरेभ्यो व्यावृत्तच्छद्मभ्यो जिनेभ्यो जापकेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो बुद्धेभ्यो बोधकेभ्यो मुक्तेभ्यो मोचकेभ्यः सर्वज्ञेभ्यः सर्वदर्शिभ्यः शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेय स्थान सम्प्राप्तेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभयेभ्यः ॥ सू० २ ॥

॥ टीका ॥

'नमोत्थु ण' नमोऽस्तु 'ण' इति वाक्यालङ्कारेऽव्ययम् । 'अरिहंताणं' अरीन्=रागादिरूपान् शत्रून् घ्नन्ति=नाशयन्तीति व्युत्पत्त्याऽत्र सिद्धाऽर्हतोरुभयोररिहन्तृपदेन ग्रहण बोध्य, तेभ्योऽरिहन्तृभ्यः, एवमग्रेऽपि सर्वत्रेदृशस्थले । 'भगवताण' व्याख्यातो भगवच्छब्दार्थः। 'आइगराण' आदौ=प्रथमतः स्वस्वशासनापेक्षया श्रुतचारित्रधर्मलक्षण कार्य कुर्वं ति तच्छीला आदिकरास्तेभ्यः 'तित्थयराण' तीर्यते=पार्यते ससारमोहमहोदधिर्येन यस्मात्त्रस्मिन्वेति तीर्थ=चतुर्विधः सङ्घस्तत्करणशीलत्वात् तीर्थकरास्तेभ्यः । 'सयसबुद्धाण' स्वय=परोपदेशमन्तरेण सम्बुद्धाः=सम्यक्तया बोध प्राप्ताः-स्वयसम्बुद्धास्तेभ्य । 'पुरिसुत्तमाण' पुरुषेषु उत्तमाः श्रेष्ठा ज्ञानाद्यनन्तगुणवत्त्वात् इति पुरुषोत्तमास्तेभ्य' । पुरिससीहाण' पुरुषेषु सिंहा

कर्म रूप शत्रुको जीतने वाले अरिहन्त और सिद्ध भगवान को नमस्कार हो । श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आदि करनेवाले, जिससे ससार समुद्र तिरा जाय उसे 'तीर्थ' कहते हैं, वह तीर्थ चार प्रकार का है-साधु साध्वी श्रावक श्राविका ! इस चतुर्विध सघ की स्थापना करने वाले, स्वय बोधको पाने वाले, ज्ञानादि अनन्त गुणोंके

કર્મરૂપ શત્રુને જીતવાવાળા અરિહન્ત અને સિદ્ધ ભગવાનને નમસ્કાર થાય શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મની આદિ કરવાવાળા, જેનાથી સ સારસમુદ્ર તરી શકાય તેને "તીર્થ" કહે છે, તે તીર્થ ચાર પ્રકારના છે, સાધુ-સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા, એ ચતુર્વિધ સઘની સ્થાપના કરવાવાળા, સ્વય બોધને પ્રાપ્ત કરવાવાળા, જ્ઞાનાદિ અનન્ત ગુણોના ધારક હોવાથી પુરુષોમા શ્રેષ્ઠ, રાગદ્વેષ આદિ શત્રુઓનો પરાજય

१-कृञो हेतुताच्छील्येति कर्त्तरि टः ।

रागद्वेषादिशत्रुपराजये दृष्टाद्भुतपराक्रमत्वादिति, यद्वा पुरुषाः सिंहा इवेति पुरुषसिंहास्तेभ्यः । 'पुरिसवरपुंडरीयाणं' पुण्डरीकं=धवलकमलं, वरं च तत्पुण्डरीकं वरपुण्डरीकं=धवलकमलप्रधानं, पुरुषो वरपुण्डरीकमिवेत्युपमितसमासे पुरुषवरपुण्डरीकं, पुरुषवरपुण्डरीकं च पुरुषवरपुण्डरीकं च पुरुषवरपुण्डरीकं चेत्यादिरीत्यैकशेषे पुरुषवरपुण्डरीकाणि, तेभ्यः, भगवतो वरपुण्डरीकोपमा च विनिर्गताऽशुभमलीमसत्वात् सर्वैः शुभानुभावैः परिशुद्धत्वाच्च, यद्वा यथा पुण्डरीकाणि पङ्काज्जातान्यपि सलिले वर्द्धितान्यपि चोभयसम्बन्धमपहाय निर्लेपानीव जलोपरि रमणीयानि सन्दृश्यन्ते निजानुपमगुणगणबलेन सुरासुरनरनिकरशिरोधारणीयतयाऽतिमहनीयानि परमसुखास्पदानि च भवन्ति तथेमे भगवन्तः कर्मपङ्काज्जाता भोगाम्भोवर्द्धिताः सन्तोऽपि निर्लेपास्तदुभयतिरश्चन्ते गुणसम्पदाऽऽस्पदतया च केवलादिगुणभावादखिलभव्यजनशिरोधारणीया भवन्तीति, विस्तरस्त्वत्र शास्त्रान्तरेभ्योऽवलोकनीयः । 'पुरिसवरगंधहत्थीणं' गन्धयुक्ता हस्तिनो गन्ध-

धारक होनेसे पुरुषों मे श्रेष्ठ, राग द्वेष आदि शत्रुओंका पराजय करनेमे अलौकिक पराक्रम शाली होनेसे पुरुषों में सिंह के समान, समस्त अशुभ रूप मलसे रहित होने के कारण विशुद्ध, श्वेतकमल के समान निर्मल, अथवा जैसे कीचड से उत्पन्न और जलके योग से बढा हुआ होकर भी कमल उन दोनों के संसर्ग को छोड कर सदा निर्लेप रहा करता है और अपने अलौकिक सुगन्धि आदि गुणों से देव मनुष्य आदि के शिरोभूषण बनता है, वैसेही भगवान कर्मरूप कीचड से उत्पन्न और भोगरूप जलसे बढे हुए होकर भी उन दोनों के संसर्ग को छोडकर निर्लेप रहते हैं, और केवलज्ञान आदि गुणों से परिपूर्ण रहने के कारण भव्यजनों के शिरोधार्य होते

કરવામાં અલૌકિક પરાક્રમશાલી હોવાથી પુરુષોમાં સિંહ સમાન, સર્વ પ્રકારના અશુભ રૂપ મલથી રહિત હોવાના કારણે વિશુદ્ધ શ્વેત કમલના જેવા નિર્મલ, અથવા જેમ કાદવમાંથી ઉત્પન્ન અને જલ-પાણીના યોગથી વધેલો હોવા છતાં કમલ એ બન્નેનો સંસર્ગ ત્યજી હમેશાં નિર્લેપ રહે છે અને પોતાના અલૌકિક સુગંધ આદિ ગુણોથી દેવ મનુષ્ય આદિના શિરનું આભૂષણ બને છે તેવી જ રીતે ભગવાન કર્મરૂપ કાદવથી ઉત્પન્ન અને ભોગરૂપ જલથી વધીને પણ એ બન્નેનો સંસર્ગ ત્યજી નિર્લેપ રહે છે, અને કેવલ જ્ઞાન આદિ ગુણોથી પરિપૂર્ણ રહેવાના કારણે ભવ્ય જીવોને શિરોધાર્ય

त्तमेभ्यो लोकनाथेभ्यो लोकहितेभ्यो लोकप्रदीपेभ्यो लोकप्रद्योतकरेभ्यः, अभय दयेभ्यश्चक्षुर्दयेभ्यो मार्गदयेभ्यः शरणदयेभ्यो जीवदयेभ्यो बोधिदयेभ्यो धर्म-दयेभ्यो धर्मदेशकेभ्यो धर्मनायकेभ्यो धर्मसारथिभ्यो धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्ति-भ्यो द्वीपत्राण शरण गतिः प्रतिष्ठा अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरेभ्यो व्यावृत्तच्छद्मभ्यो जिनेभ्यो जापकेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो बुद्धेभ्यो बोधकेभ्यो मुक्तेभ्यो मोचके भ्यः सर्वज्ञेभ्यः सर्वदर्शिभ्यः शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरा वृत्तिसिद्धिगतिनामधेय स्थान सम्प्राप्तेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभयेभ्यः ॥ सू० २ ॥

॥ टीका ॥

'नमोत्थु ण' नमोऽस्तु 'ण' इति वाक्यालङ्कारेऽव्ययम् । 'अरिहंताणं' अरीन्=रागादिरूपान् शत्रून् घ्नन्ति=नाशयन्तीति व्युत्पत्त्याऽत्र सिद्धाऽर्हतोरुभयोररि-हन्तृपदेन ग्रहण बोध्य, तेभ्योऽरिहन्तृभ्यः, एवमग्रेऽपि सर्वत्रेदृशस्थले । 'भगवंताणं' व्याख्यातो भगवच्छब्दार्थः। 'आइगराणं' आदौ=प्रथमतः स्वस्वशासनापेक्षया श्रुतचारित्रधर्मलक्षण कार्यं कुर्वन्ति तच्छीला आदिकरास्तेभ्यः 'तित्थयराणं' तीर्यते= पार्यते ससारमोहमहोदधिर्येन यस्मात्रस्मिन्वेति तीर्थ=चतुर्विध' सङ्घस्तत्करण-शीलत्वात् तीर्थकरास्तेभ्यः । 'सयसंबुद्धाणं' स्वयं=परोपदेशमन्तरेण सम्बुद्धाः= सम्यक्तया बोध प्राप्ताः-स्वयसम्बुद्धास्तेभ्यः । 'पुरिसुत्तमाणं' पुरुषेषु उत्तमाः श्रेष्ठा ज्ञानाद्यनन्तगुणवत्त्वात् इति पुरुषोत्तमास्तेभ्यः । 'पुरिससीहाणं' पुरुषेषु सिंहा

कर्म रूप शत्रुको जीतने वाले अरिहन्त और सिद्ध भगवान को नमस्कार हो । श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आदि करनेवाले, जिससे ससार समुद्र तिरा जाय उसे 'तीर्थ' कहते है, वह तीर्थ चार प्रकार का है-साधु साध्वी श्रावक श्राविका ! इस चतुर्विध सघ की स्थापना करने वाले, स्वय बोधको पाने वाले, ज्ञानादि अनन्त गुणोंके

કર્મરૂપ શત્રુને જીતવાવાળા અરિહન્ત અને સિદ્ધ ભગવાનને નમસ્કાર થાય શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મની આદિ કરવાવાળા, જેનાથી સસારસમુદ્ર તરી શકાય તેને "તીર્થ" કહે છે, તે તીર્થ ચાર પ્રકારના છે, સાધુ-સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા, એ ચતુર્વિધ સઘની સ્થાપના કરવાવાળા, સ્વય બોધને પ્રાપ્ત કરવાવાળા, જ્ઞાનાદિ અનન્ત ગુણોના ધારક હોવાથી પુરુષોમા શ્રેષ્ઠ, રાગદ્વેષ આદિ શત્રુઓનો પરાજય

१-कृञो हेतुताच्छील्येति कर्तरि ट. ।

नाहाणं' लोकाना=भव्याना नाथाः=नेतारो योग[1]-[2]क्षेमकरत्वादिति लोकनाथास्तेभ्यः, 'लोगहियाणं' लोकः=एकेन्द्रियादिः सर्वप्राणिगणस्तस्मै हिताः रक्षोपायपथप्रदर्शकत्वाल्लोकहितास्तेभ्यः। 'लोगपईवाणं' लोकस्य=भव्यजनसमुदायस्य प्रदीपास्तन्मनोऽभिनिविष्टानादिमिथ्यात्वतमःपटलव्यपगमेन विशिष्टात्मतत्त्वप्रकाशकत्वाद्दीपतुल्यास्तेभ्यः, यथा प्रदीपस्य सकलजीवार्थं तुल्यप्रकाशकत्वेऽपि चक्षुष्मन्त एव तत्प्रकाशसुखभाजो भवन्ति न त्वन्धास्तथा भव्या एव भगवदनुभावसमुद्भूतपरमानन्दसन्दोहभाजो भवन्ति नाभव्या इति प्रतिबोधयितु प्रदीपदृष्टान्त', अत एव च लोकपदेन भव्यानामेव ग्रहणम्। 'लोगपज्जोयगराणं' लोकशब्देनात्र-लोक्यते=दृश्यते केवलाऽऽलोकेन यथावस्थिततयेति व्युत्पत्त्या

और लब्ध रत्नत्रय के पालनरूप क्षेम के कारण होनेसे भव्य जीवों के नायक। एकेन्द्रिय आदि सकल प्राणिगण के हितकारक। जिस प्रकार दीपक सबके लिये समान प्रकाशकारी है तो भी नेत्रवाले ही उससे लाभ उठा सकते हैं, नेत्रहीन नहीं, उसी प्रकार भगवान का उपदेश सबके लिये समान हितकर होने पर भी भव्यजीव ही उससे लाभ उठाते हैं, अभव्य नहीं, अतएव भव्यों के हृदय में अनादिकालसे रहे हुए मिथ्यात्वरूप अन्धकार को मिटाकर आत्माके यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करनेवाले। 'लोक' शब्दसे यहाँ लोक और अलोक दोनों का ग्रहण है, अतएव केवलज्ञान रूपी आलोक

અલબ્ધ રત્નત્રયના લાભરૂપ યોગ અને લબ્ધ રત્નત્રયના પાલનરૂપ ક્ષેમના કારણ હોવાથી ભવ્ય જીવોના નાયક, એકેન્દ્રિય આદિ સકલ પ્રાણિગણના હિતકારક જે પ્રમાણે દીપક સર્વને માટે સમાન પ્રકાશ આપનાર છે તો પણ નેત્રવાળા જીવો જ તેનો લાભ પ્રાપ્ત કરી શકે છે, પણ નેત્ર હીન પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી, તે પ્રમાણે ભગવાનનો ઉપદેશ સૌના માટે સમાન હિતકર હોવા છતાય ભવ્ય જીવો જ તેનો લાભ પામી શકે છે, અભવ્ય જીવો પામી શકતા નથી એટલા માટે ભવ્ય જીવોના હૃદયમા અનાદિ કાલથી રહેલ મિથ્યાત્વરૂપ અન્ધકારને નિવારણ કરી આત્માના યથાર્થ સ્વરૂપને પ્રકાશિત કરવાવાળા લોક શબ્દથી આ સ્થળે

१-२—अलब्धलाभो योग, लब्धपरिरक्षण क्षेम, इह च प्रकरणादलब्धलब्धपदाभ्या रत्नत्रयस्य ग्रहणम्।

हस्तिनः, वराश्च, ते गन्धहस्तिनो वरगन्धहस्तिनः, पुरुषा वरगन्धहस्तिनः पुरुषवरगन्धहस्तिनस्तेभ्यः। गन्धहस्तिलक्षणं यथा—

"यस्य गन्धं समाघ्राय, पलायन्ते परे गजाः।
तं गन्धहस्तिनं विद्यान्नृपतेर्विजयावहम्" ॥ इति।

अत एव यथा गन्धहस्तिगन्धमाघ्राय गजान्तराणीतस्ततो द्रुतं पलाय्य क्वापि निलिलीयन्ते तद्वदचिन्त्यातिशयप्रभाववशाद्भगवद्विहरणसमीरणगन्धसम्बन्धगन्धतोऽपीति[२]-डमर-मरकादय उपद्रवा द्राग् दिक्षु प्रद्रवन्तीति, गन्धगजाश्रितराजवद्भगवदाश्रितो भव्यगणः सर्वदा विजयवान् भवतीति भवत्युभयोर्युक्तं सादृश्यम्, [३]एतच्चेह सर्वत्र चन्द्रमुखादिवदेकदेशिकतयैव न सर्वव्यापकतयेति नात्र कश्चिदपि विपश्चिता केनापि कर्तुं क्षमः क्षोदक्षेमः। 'लोगुत्तमाणं' लोकेषु=भव्यसमाजेषु उत्तमाश्चतुस्त्रिंशदतिशय-पञ्चत्रिंशद्वाणीगुणोपेतत्वात् तेभ्यः। 'लोग-

हैं। जिसका गन्ध सूँघते ही सब हाथी डर के मारे भग जाते हैं उस हाथी को 'गन्धहस्ती' कहते हैं, उस गन्धहस्ती के आश्रय से जैसे राजा सदा विजयी होता है उसी प्रकार भगवानके अतिशय से देशके अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि स्वचक्र-परचक्र-भयपर्यन्त छह प्रकार की ईति, और महामारी आदि सभी उपद्रव तत्काल दूर होजाते हैं, और आश्रित भव्यजीव सदा सब प्रकार से विजयी होते हैं। चोतीस अतिशयों और वाणी के पैंतीस गुणो से युक्त होने के कारण लोगो मे उत्तम, अलभ्य रत्नत्रय के लाभरूप योग

થાય છે જેનો ગંધ સુંઘતાજ સર્વ હાથી ડરીને ભાગી જાય છે તે હાથીને "ગન્ધહસ્તી' કહે છે તે ગંધહસ્તીના આશ્રયથી જેમ રાજા હમેશા વિજયી થાય છે તે પ્રમાણે ભગવાનના અતિશયથી દેશ ॥ અતિવૃષ્ટિ અનાવૃષ્ટિ આદિ સ્વચક્ર પરચક્ર-ભય પર્યન્ત છ પ્રકારની ઈતિ અને મહામારી આદિ સર્વ ઉપદ્રવો તત્કાલ દૂર થઈ જાય છે, અને આશ્રિત ભવ્ય જીવો સદાય સર્વ પ્રકારથી વિજયવાન્ થાય છે ચોત્રીશ અતિશયો અને વાણીના પાંત્રીશ ગુણોથી યુક્ત હોવાના કારણે લોકોમા ઉત્તમ,

१-गन्धत'=लेशत इत्यर्थ, "गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सबन्धगर्वयो" इति कोशात्।

२-ईतयो यथा-"अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषिका शलभा खगा। प्रत्यासन्नाश्च राजान' षडेता ईतय' स्मृता ॥" इति।

३-सादृश्यम्।

प्रदर्शयति, तथा भगवन्तोऽपि भवाऽरण्ये रागद्वेषलुण्टाकलुण्टिताऽऽत्मगुणधनेभ्यो दुराग्रहपट्टिकाऽऽच्छादितज्ञानचक्षुर्भ्यो मिथ्यात्वोन्मार्गे पातितेभ्यस्तदपनयनपूर्वकं ज्ञानचक्षुर्दत्त्वा मोक्षमार्गं प्रदर्शयन्ति। एतदेव भङ्ग्यन्तरेणाऽऽह—'मग्गदयाणं' मार्गः=सम्यग्रत्नत्रयलक्षणः शिवपुरपथः, यद्वा विशिष्टगुणस्थानावापकः क्षयोपशमभावो मार्गस्तस्य दयाः=दातारस्तेभ्यः। 'सरणदयाणं' शरणं=परित्राणं, कर्मरिपुवशीकृततया व्याकुलानां प्राणिनां रक्षणस्थानं वा तस्य दयास्तेभ्यः। 'जीवदयाणं' जीवेषु=एकेन्द्रियादिसमस्तप्राणिषु दया=सङ्कटमोचनलक्षणा येषामिति, यद्वा जीवन्ति मुनयो येन स जीवः=संयमजीवितं तस्य दयास्तेभ्यः। 'धम्मदयाणं' धर्मः=दुर्गतिप्रपतज्जन्तुसंरक्षणलक्षणः श्रुतचारित्रात्मकस्तस्य दया-

(अरण्य) में राग-द्वेषरूप लुटेरों से ज्ञानादि गुण लुटाये हुए तथा कदाग्रह रूप पट्टे से ज्ञाननेत्र को ढक कर मिथ्यात्व के गड्ढे में गिराये हुए उन भव्य जीवों के उस कदाग्रह रूप पट्टे को दूर कर उन्हें ज्ञान नेत्र देने वाले, अतएव सम्यक्रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष मार्ग, अथवा विशिष्ट गुण को प्राप्त कराने वाला क्षयोपशमभाव रूप मार्ग को देनेवाले, कर्मशत्रुओं से दुःखित प्राणियों को शरण (आश्रय) देनेवाले, पृथिव्यादि षड्जीवनिकाय में दया रखने वाले, अथवा मुनियों के जीवनाधारस्वरूप संयमजीवित को देनेवाले, सम-संवेग आदि के प्रकाशक, अथवा जिनवचन में रुचि को देनेवाले, दुर्गति में पड़ते हुए प्राणियों के धारक, अथवा श्रुत-चारित्र रूप धर्म को देनेवाले, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक अर्थात्

તથા કદાગ્રહ રૂપી પાટા બાંધી જ્ઞાનનેત્રને ઢાંકીને મિથ્યાત્વ રૂપ ખાડામાં નાખેલા તે ભવ્ય જીવોના કદાગ્રહ રૂપ પાટાને દૂર કરી તેમને જ્ઞાનનેત્ર આપવાવાળા, એટલે કે સમ્યક્ રત્નત્રયસ્વરૂપ મોક્ષમાર્ગ, અથવા વિશિષ્ટ ગુણ પ્રાપ્ત કરાવનાર ક્ષયોપશમ ભાવ રૂપ માર્ગના આપવાવાળા કર્મશત્રુઓથી દુઃખિત પ્રાણીઓને શરણ-આશ્રય દેનારા, પૃથ્વી આદિ ષડ્જીવનિકાયમાં દયા રાખવાવાળા, અથવા મુનિઓના જીવનાધાર સ્વરૂપ સંયમજીવનના દેવાવાળા સમ સંવેગ આદિના પ્રકાશક, અથવા જિનવચનમાં રુચિ આપનારા, દુર્ગતિમાં પડતા જીવોને ધારણ કરનાર, અથવા શ્રુત-ચારિત્ર રૂપ ધર્મના દેવાવાળા ધર્મ ઉપદેશક ધર્મના નાયક અર્થાત્ પ્રવર્તક ધર્મના સારથી

लोकालोकयोरुभयोर्ग्रहणं, तेन लोकस्य=लोकालोकलक्षणस्य सकलपदार्थस्य प्रद्योतः–लोकालोकप्रद्योतस्तं कर्तुं शीलं येषां ते लोकालोकप्रद्योतकराः=सर्वलोकप्रकाशकरणशीलास्तेभ्यः, ताच्छील्ये कर्तरि टः प्रत्ययः। 'अभयदयाणं' न भयमभयं भयानामभावो[1] वा अभयमक्षोभलक्षणं आत्मनोऽवस्थाविशेषो मोक्षसाधनभूतमुत्कृष्टधैर्यमिति यावत्, दयन्ते=ददतीति दयाः[2], अभयस्याभय[3] वा दयाः अभयदया[4], यद्वा–अभया=भयविरहिता दया=सर्वजीवसङ्कटप्रतिमोचनस्वरूपाऽनुकम्पा येषां तेऽभयदयास्तेभ्यः। 'चक्खुदयाणं' चक्षुः=ज्ञानं निखिलवस्तुतत्त्वाऽवभासकतया चक्षुःसादृश्यात्, तस्य दयाः=दायकाश्चक्षुर्दयास्तेभ्यः, यथा हरिणादिशरण्येऽरण्ये लुण्टाकलुण्टितेभ्यः पट्टिकादिदानेन चक्षूंषि पिधाय हस्तपादादि बद्ध्वा तैर्गर्त्ते पातितेभ्यः कश्चित्पट्टिकाद्यपनोदनेन चक्षुर्दत्त्वा मार्गं

(प्रकाश)से समस्त लोकालोक के प्रकाश करने वाले। मोक्ष के साधक, उत्कृष्ट धैर्यरूपी अभय को देनेवाले, अथवा समस्त प्राणियों के संकट को छुडानेवाली दया (अनुकम्पा)के धारक। ज्ञान नेत्र के दायक, अर्थात् जैसे किसी गहन वनमें लुटेरों से लूटे गये और आखों पर पट्टी बाधकर तथा हाथ–पैर पकडकर गड्ढे में गिराये गये पथिक के सब बन्धनो को तोडकर कोई दयालु नेत्र खोल देता है, इसी प्रकार भगवान भी संसाररूपी अपार कान्तार

લોક અને અલોક બન્નેનું ગ્રહણ કરેલું છે, એટલા માટે કેવળજ્ઞાન રૂપી આલોક (પ્રકાશ) થી સમસ્ત લોકાલોકનો પ્રકાશ કરવાવાળા મોક્ષના સાધક, ઉત્કૃષ્ટ ધૈર્યરૂપી અભયના દેવાવાળા, અથવા સમસ્ત પ્રાણીઓના સંકટને છોડાવવાવાળી દયા (અનુકમ્પા)ના ધારક જ્ઞાન નેત્રના આપવાવાળા, અર્થાત્ જેમ કોઈ ગાઢ વનમાં લુટારાથી લુટાએલા અને નેત્ર ઉપર પાટા બાંધીને તથા હાથ પગને પકડીને ગહરા ખાડામાં ફેંકી દીધા હોય તેવા મુસાફરને કોઈ દયાળુ માણસ આવીને તેના તમામ બંધનો તોડીને નેત્રને ખોલી આપે છે, એ પ્રમાણે ભગવાન પણ સંસાર રૂપી વિષમ વનમાં રાગ-દ્વેષ રૂપી લુટારાઓથી જ્ઞાનાદિ ગુણ લુટાએલા

१– 'अविघ्न'–मित्यादिवदभावार्थकनञा 'अव्ययं विभक्ती'–त्यव्ययीभावः।

२– 'दया'–पचादेराकृतिगणत्वादच्।

३– अव्ययीभावपक्षे पष्ठ्या 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' इत्यमादेशः।

प्रदर्शयति, तथा भगवन्तोऽपि भवाऽरण्ये रागद्वेषलुण्टाकलुण्टिताऽऽत्मगुणधनेभ्यो दुराग्रहपट्टिकाऽऽच्छादितज्ञानचक्षुर्भ्यो मिथ्यात्वोन्मार्गे पातितेभ्यस्तदपनयनपूर्वकं ज्ञानचक्षुर्दत्त्वा मोक्षमार्गं प्रदर्शयन्ति। एतदेव भङ्ग्यन्तरेणाऽऽह-'मग्गदयाण' मार्गः=सम्यग्रत्नत्रयलक्षणः शिवपुरपथः, यद्वा विशिष्टगुणस्थानावापकः क्षयोपशमभावो मार्गस्तस्य दयाः=दातारस्तेभ्यः। 'सरणदयाण' शरण=परित्राणं, कर्मरिपुवशीकृततया व्याकुलानां प्राणिनां रक्षणस्थानं वा तस्य दयास्तेभ्यः। 'जीवदयाण' जीवेषु=एकेन्द्रियादिसमस्तप्राणिषु दया=सङ्कटमोचनलक्षणा येषामिति, यद्वा जीवन्ति मुनयो येन स जीवः=संयमजीवितं तस्य दयास्तेभ्यः। 'धम्मदयाण' धर्मः=दुर्गतिप्रपतज्जन्तुसंरक्षणलक्षणः श्रुतचारित्रात्मकस्तस्य दया-

(अरण्य) में राग-द्वेषरूप लुटेरों से ज्ञानादि गुण लुटाये हुए तथा कदाग्रह रूप पट्टे से ज्ञाननेत्र को ढक कर मिथ्यात्व के गड्ढे में गिराये हुए उन भव्य जीवों के उस कदाग्रह रूप पट्टे को दूर कर उन्हे ज्ञान नेत्र देने वाले, अतएव सम्यक्रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष मार्ग, अथवा विशिष्ट गुण को प्राप्त कराने वाला क्षयोपशमभाव रूप मार्ग को देनेवाले, कर्मशत्रुओं से दुःखित प्राणियों को शरण (आश्रय) देनेवाले, पृथिव्यादि षड्जीवनिकाय मे दया रखने वाले, अथवा मुनियों के जीवनाधारस्वरूप संयमजीवित को देनेवाले, सम-संवेग आदि के प्रकाशक, अथवा जिनवचन में रुचि को देनेवाले, दुर्गति में पडते हुए प्राणियों के धारक, अथवा श्रुत-चारित्र रूप धर्म को देनेवाले, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक अर्थात्

તથા કદાગ્રહ રૂપી પાટા બાંધી જ્ઞાનનેત્રને ઢાંકીને મિથ્યાત્વ રૂપ ખાડામાં નાખેલા તે ભવ્ય જીવોના કદાગ્રહ રૂપ પાટાને દૂર કરી તેમને જ્ઞાનનેત્ર આપવાવાળા, એટલે કે સમ્યક્ રત્નત્રયસ્વરૂપ મોક્ષમાર્ગ, અથવા વિશિષ્ટ ગુણ પ્રાપ્ત કરાવનાર ક્ષયોપશમ ભાવ રૂપ માર્ગના આપવાવાળા કર્મશત્રુઓથી દુઃખિત પ્રાણીઓને શરણ-આશ્રય દેનારા, પૃથ્વી આદિ ષડ્જીવનિકાયમાં દયા રાખવાવાળા, અથવા મુનિયોના જીવનાધાર સ્વરૂપ સંયમજીવનના દેવાવાળા સમ સંવેગ આદિના પ્રકાશક, અથવા જિનવચનમાં રુચિ આપનારા, દુર્ગતિમાં પડતા જીવોને ધારણ કરનાર, અથવા શ્રુત-ચારિત્ર રૂપ ધર્મના દેવાવાળા ધર્મ ઉપદેશક ધર્મના નાયક અર્થાત્ પ્રવર્તક ધર્મના સારથી

स्तेभ्यः[१]। 'धम्मदेसयाण' धर्मः प्राक्प्रतिपादितलक्षणस्तस्य देशकाः=उपदेशकास्तेभ्यः। 'धम्मनायगाण' धर्मस्य नायकाः=नेतारः प्रभव इति यावत् धर्मनायकास्तेभ्यः। धम्मसारहीण' धर्मस्य सारथयः धर्मसारथयस्तेभ्यः, भगवत्सु सारथित्वाऽऽरोपेण धर्मे रथत्वाऽऽरोपो व्यज्यत इति परम्परितरूपकमलङ्कारस्तस्माद् यथा सारथयो रथद्वारा तत्स्यमध्वनीन सुखपूर्वकमभीष्ट स्थान नयन्त्युन्मार्गगमनादितश्च गतिरुन्धन्ति तथा भगवन्तो धर्मद्वारा मोक्षस्थानमिति भावः। 'धम्मवरचाउरन्तचक्कवट्टीण' दान-शील-तपो-भावैः चतसृणा=नरकादिगतीना चतुर्णां वा कषायाणामन्तो=नाशो यस्मात्, अथवा चतस्रो गतीश्चतुरः कषायान् वा अन्तयति=नाशयतीति, यद्वा चतुर्भिर्दान-शील-तपो-भावैः कृत्वा अन्तो[२]=रम्यः, अथवा चत्वारः=दानादयः अन्ताः=अवयवा यस्य, यद्वा चत्वारि=दानादीनि अन्तानि=स्वरूपाणि यस्य, 'अन्तोऽवयवे स्वरूपे च' इति हेमचन्द्रः, स

प्रवर्त्तक, धर्म के सारथी अर्थात् जिस प्रकार रथपर चढे हुए को सारथी रथके द्वारा सुखपूर्वक उसके अभीष्ट स्थान पर पहुँचाता है उसी प्रकार भव्य प्राणियों को धर्मरूपी रथ के द्वारा सुखपूर्वक मोक्ष स्थान पर पहुँचाने वाले, दान-शील-तप और भाव से नरक आदि चार गतियों का अथवा चार कषायों का अन्त करने वाले, अथवा चार दान शील तप और भाव से अन्त-रमणीय, या दान आदि चार अन्त - अवयव वाले, अथवा दान आदि चार अन्त - स्वरूप वाले,

અર્થાત્ જેવી રીતે રથ પર બેઠેલાને સારથી રથ દ્વારા સુખપૂર્વક તેના ધારેલા સ્થાનકે પહોંચાડે છે તે પ્રમાણે ભવ્ય પ્રાણીઓને ધર્મરૂપી રથ વડે સુખપૂર્વક મોક્ષ સ્થાન પર પહોંચાડવાવાળા દાન-શીલ-તપ અને ભાવથી નરક આદિ ચાર ગતિઓનો અથવા ચાર કષાયોનો અન્ત કરવાવાળા, અથવા ચાર દાન-શીલ-તપ અને ભાવથી અન્ત-રમણીય, અથવા દાન આદિ ચાર અન્ત-અવયવવાળા, અથવા દાન આદિ ચાર અન્ત-સ્વરૂપવાળા શ્રેષ્ઠ ધર્મને "ધર્મવરચાતુરન્ત" કહે છે, એજ

१-इहोत्तरेषु सर्वत्र 'त दयन्ते' इत्यपव्याख्यानम् 'अधीगर्थदयेशाम्-इति कर्मणि षष्ठ्युपपत्तेः, शेषत्वाविवक्षाया द्वितीयाया सत्त्वेऽपि वा 'कर्मण्यण्' (३।२।१) इत्यणुत्पत्त्या 'अभयदायेभ्य' इत्याद्यनिष्टप्रयोगापत्तेर्दुर्वारत्वादित्यास्तामिदम्।

२-अन्तो=रम्यः—'मृतावबसिते रम्ये समाप्तावन्त इष्यते' इति विश्वकोष.।

चतुरन्तः, स एव चातुरन्तः[1], स्वार्थिकः प्रज्ञाद्यण्, चातुरन्त एव चक्रं जन्म-जरा-मरणोच्छेदकत्वेन चक्रतुल्यत्वात्, वरं च तत् चातुरन्तचक्रं वरचातुरन्तचक्रं, वरपदेन राजचक्रापेक्षयाऽस्य श्रेष्ठत्वं व्यज्यते, लोकद्वयसाधकत्वात्, धर्म एव वरचातुरन्तचक्रं धर्मवरचातुरन्तचक्रं तादृशस्य धर्मातिरिक्तस्यासम्भवात्, अत एव सौगतादिधर्माभासनिरासः, तेषां तात्त्विकार्थप्रतिपादकत्वाभावेन श्रेष्ठत्वाभावात्, धर्मवरचातुरन्तचक्रेण वर्त्तितुं शीलं येषामिति धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्तिनस्तेभ्यः, चक्रवर्तिपदेन षट्खण्डाधिपतिसादृश्यं व्यज्यते, तथाहि चत्वारः=उत्तरदिशि हिमवान्, शेषदिक्षु चोपाधिभेदेन समुद्राः अन्ताः=सीमानस्तेषु स्वामित्वेन भवाश्चातुरन्ताः, चक्रेण=रत्नभूतप्रहरणविशेषेण वर्त्तितुं शीलं येषां ते चक्रवर्तिनः, चातुरन्ताश्च ते चक्रवर्त्तिनश्चातुरन्तचक्रवर्त्तिनः, धर्मेण=न्यायेन वराः=श्रेष्ठा इतरराजापेक्षयेति धर्मवराः 'धर्माः पुण्य-यम-न्याय-स्वभावाऽऽचार-सोमपाः' इत्यमरः, ते च ते चातुरन्तचक्रवर्त्तिनश्चेति धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्तिनः, यद्वा चातुरन्तं च तच्चक्रं-चातुरन्तचक्रं वरं च तच्चातुरन्तचक्रं-वरचातुरन्तचक्रं, धर्मो

श्रेष्ठ धर्म को 'धर्मवरचातुरन्त' कहते हैं, यही जन्म जरा मरण के नाशक होने से चक्र के समान है, अतएव धर्मवरचातुरन्त रूप चक्र के धारक। यहां पर 'वर' पद देने से राजचक्र की अपेक्षा धर्मचक्र की उत्कृष्टता सूचित की गयी है, तथा सौगत आदि धर्म का निराकरण किया गया है, क्यों कि राजचक्र केवल इस लोकका साधक है परलोकका नहीं, तथा सौगत आदि धर्म यथार्थ तत्त्वों का निरूपक न होने से वह श्रेष्ठ नहीं है। 'चक्रवर्त्ती' पद देने से तीर्थङ्करों को छह खण्ड के अधिपति राजा की उपमा दी गई है, क्यों कि वह राजा भी चार अर्थात् उत्तर दिशामें हिमवान और पूर्व-दक्षिण-पश्चिम दिशामें

જન્મ જરા અને મરણનું નાશક હોવાથી ચક્ર સમાન છે એટલે ધર્મવરચાતુરન્ત રૂપ ચક્રના ધારક અહિંઆ 'વર' પદ આપવાથી રાજ્યચક્રની અપેક્ષા ધર્મચક્રની ઉત્કૃષ્ટતા તથા સૌગત આદિ ધર્મનું નિરાકરણ કરવામા આ્યુ છે કારણ કે-રાજ્યચક્ર કેવલ આ લોકનું સાધન છે, પરલોકનું નથી, તથા સૌગત આદિ ધર્મ યથાર્થ તત્વનું નિરૂપક ન હોવાથી તે શ્રેષ્ઠ નથી 'ચક્રવર્તિ' પદ આપવાથી તીર્થંકરોને ૬ ખડના અધિપતિ રાજાની ઉપમા આપી છે કારણ કે તે રાજા પણ ચાર અર્થાત્ ઉત્તર દિશામા હિમવાન્ અને

वरचातुरन्तचक्रमिव-धर्मवरचातुरन्तचक्र तेन वर्तितु वर्तयितु वा शीलमेषामिति। 'दीवो' द्वीपः ससारसमुद्रे निमज्जता द्वीपतुल्यत्वात्, 'ताण' त्राण=कर्म-कदर्थिताना भव्याना रक्षणसक्षणः, अत एव तेषा 'सरणगई' शरणगतिः= आश्रयस्थानम्, 'पइट्ठाण' प्रतिष्ठान=कालत्रयेऽप्यविनाशित्वेन स्थितः, 'दीवो'-इत्यादीनि 'पइट्ठा' इत्यन्तानि सौत्रत्वाच्चतुर्थ्यर्थे प्रथमैकवचनान्तानि, 'त्राण'-मिति नपुसकत्व 'प्रतिष्ठे'-ति स्त्रीत्व च भगवतः सर्वशक्तिमत्त्वप्रदर्शनाय। 'अप्प-डिहयवरनाणदसणधराण' प्रतिहत=भित्त्याद्यावरणस्खलित, न प्रतिहतमप्रतिहत ज्ञान च दर्शन चेति ज्ञानदर्शने, वरे=श्रेष्ठे च ते ज्ञानदर्शने वरज्ञानदर्शने=केवल ज्ञानकेवलदर्शने अप्रतिहते वरज्ञानदर्शने-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शने, धरन्तीति धरा' अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनयोर्धराः-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरा =आवरणरहितकेवलज्ञान-केवलदर्शनधारिणस्तेभ्यः। 'विअट्टछउमाण' छाद्यते=आव्रियते केवलज्ञानकेवल दर्शनाद्यात्मनोऽनेति छद्म=घातिकर्मवृन्द ज्ञानावरणीयादिरूप वा कर्मजातम्, व्यावृत्त=निवृत्त छद्म येभ्यस्ते व्यावृत्तच्छद्मानस्तेभ्य'। 'जिणाण' जिनेभ्य'= स्वय-राग-द्वेष-शत्रुजेतृभ्य.। 'जावयाण' जापयन्ति=जयन्त भव्यजीवगण

लवण समुद्र हैं सीमा जिसकी ऐसे भरतक्षेत्र पर एकशासन राज्य करता है। ससार समुद्रमे डूबते हुए जीवोंके एक मात्र आश्रय होने से द्वीप समान, कर्मों से सत्रस्त भव्य जीवो की रक्षामे दक्ष होने से त्राणरूप, उनको शरण देने के कारण शरण-गति-आश्रयस्थान। तीनो कालमे अविनाशी स्वरूपवाले होने से प्रतिष्ठानरूप। आवरण रहित केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक। ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का नाश करने वाले। राग-द्वेषरूप शत्रु

પૂર્વ-દક્ષિણ-પશ્ચિમ દિશામા લવણ સમુદ્ર છે સીમા જેની એવા ભરત ક્ષેત્ર પર એક-શાસન રાજ્ય કરે છે સસારસમુદ્રમા ડૂબતા જીવોને એકમાત્ર આશ્રય હોવાથી દ્વીપ સમાન, કર્મોથી સતાપ પામેલા ભવ્ય જીવોની રક્ષામા દક્ષ હોવાથી (કુશળ હોવાથી) ત્રાણરૂપ, તેઓને શરણ દેવાવાળા હોવાથી શરણગતિ-આશ્રયસ્થાન ત્રણે કાળમા અવિનાશી સ્વરૂપવાળા હોવાથી પ્રતિષ્ઠાન રૂપ આવરણરહિત કેવલજ્ઞાન કેવલ દર્શનના ધારક જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોનો નાશ કરવાવાળા રાગ-દ્વેષરૂપ

धर्मदेशनादिना प्रेरयन्तीति जापकाः[1], तेभ्यः। 'तिन्नाणं' स्वयं संसारौघं तीर्णास्तेभ्यः। 'तारयाणं' तारयन्त्यन्यानिति तारकास्तेभ्यः। 'बुद्धाणं' बुद्धेभ्यः=स्वयं बोधं प्राप्तेभ्यः। 'बोहयाणं' बोधयन्त्यन्यानिति बोधकास्तेभ्यः। 'मुत्ताणं' अमोचिषत स्वयं कर्मपञ्जरादिति मुक्तास्तेभ्यः। 'मोयगाणं' मुच्यमानानन्यान् प्रेरयन्तीति मोचकास्तेभ्यः। 'सव्वन्नूणं' सर्वं=सकलद्रव्य-गुण-पर्याय-लक्षणं वस्तुजातं याथातथ्येन जानन्तीति सर्वज्ञास्तेभ्यः। 'सव्वदरिसीणं' सर्वं=समस्तपदार्थस्वरूपं सामान्येन द्रष्टुं शीलं येषां ते सर्वदर्शिनस्तेभ्यः। 'सिवं' शिवं निखिलोपद्रवरहितत्वाच्छिवं (कल्याण) मयम्, स्थानमित्यस्य विशेषणमिदम्, शिवादीनां सर्वेषां द्वितीयान्तानामग्रेतनेन 'सम्प्राप्तेभ्यः' इत्यनेन सम्बन्धः। 'अयलं' अचलम्=स्वाभाविकप्रायोगिकचलनक्रियाशून्यम्। 'अरुयं' अरुजम्-अविद्यमाना रुजा यस्मिंस्तत्, तत्रात्मनामविद्यमानशरीरमनस्कत्वादाधि-व्याधिरहितमित्यर्थः। 'अणंतं' अविद्यमानोऽन्तो=नाशो यस्य तत्। अत एव 'अक्खयं' नास्ति लेशतोऽपि क्षयो यस्य तत्-अविनाशीत्यर्थः। 'अव्वाबाहं' न विद्यते व्याबाधा=पीडा द्रव्यतो भावतश्च यत्र तत्। 'अपुणरावित्ति' अविद्यमाना पुनरावृत्तिः=संसारे पुनरवतरणं यस्मात् तत्, यत्र गत्वा न कदाचिदप्यात्मा विनिवर्त्तते, समाम्नातमन्यत्रापि-'न स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते' इति। इत्थमुक्तशिवत्वादिविशेषणविशिष्टम् 'सिद्धिगइनामधेयं' सिद्धिगतिरिति

को स्वयं जीतने वाले और दूसरों को जीताने वाले। भवसमुद्र को स्वयं तैरने वाले और दूसरों को तिराने वाले। स्वयं बोध को प्राप्त करने वाले और दूसरों को प्राप्त कराने वाले। स्वयं मुक्त होने वाले और दूसरे को मुक्त कराने वाले। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधारहित, पुनरागमनरहित, ऐसे सिद्धिस्थान अर्थात् मोक्ष को प्राप्त सिद्ध

શત્રુઓને પોતેજ જીતવાવાળા અને બીજાઓને જીતાવવાવાળા ભવસમુદ્રને પોતે તરવાવાળા અને બીજાને તારવાવાળા, સ્વયં બોધ પ્રાપ્ત કરનારા અને બીજાને બોધ પ્રાપ્ત કરાવનારા, સ્વયં મુકત થવાવાળા અને બીજાને મુકત કરનારા સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી તથા નિરુપદ્રવ, નિશ્ચલ, કર્મરોગ રહિત, અનન્ત, અક્ષય,

१- जापका-'जि' धातोर्णौ 'क्रीङ्जीनां'-मित्यात्वे ण्यन्ताण्वुल्।

वरचातुरन्तचक्रमिव-धर्मवरचातुरन्तचक्र तेन वर्तितु वर्तयितु वा शीलमेषामिति। 'दीवो' द्वीपः ससारसमुद्रे निमज्जता द्वीपतुल्यत्वात्, 'ताण' त्राण=कर्मकदर्थिताना भव्याना रक्षणसक्षणः, अत एव तेषा 'सरणगई' शरणगतिः= आश्रयस्थानम्, 'पइट्ठाण' प्रतिष्ठान=कालत्रयेऽप्यविनाशित्वेन स्थितः, 'दीवो'-इत्यादीनि 'पइट्ठा' इत्यन्तानि सौत्रत्वाच्चतुर्थ्यर्थे प्रथमैकवचनान्तानि, 'त्राण'-मिति नपुसकत्व 'प्रतिष्ठे'-ति स्त्रीत्व च भगवत. सर्वशक्तिमत्त्वप्रदर्शनाय। 'अप्पडिहयवरनाणदसणधराण' प्रतिहत=भित्त्याद्यावरणस्खलित, न प्रतिहतमप्रतिहत ज्ञान च दर्शन चेति ज्ञानदर्शने, वरे=श्रेष्ठे च ते ज्ञानदर्शने वरज्ञानदर्शने=केवलज्ञानकेवलदर्शने अप्रतिहते वरज्ञानदर्शने-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शने, धरन्तीति धरा' अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनयोर्धरा'-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरा =आवरणरहितकेवलज्ञानकेवलदर्शनधारिणस्तेभ्यः। 'विअट्टछउमाण' छाद्यते=आव्रियते केवलज्ञानकेवलदर्शनाद्यात्मनोऽनेति छद्म=घातिकर्मवृन्द ज्ञानावरणीयादिरूप वा कर्मजातम्, व्यावृत्त=निवृत्त छद्म येभ्यस्ते व्यावृत्तच्छद्मानस्तेभ्यः। 'जिणाण' जिनेभ्यः= स्वय-राग-द्वेष-शत्रुजेतृभ्य'। 'जावयाण' जापयन्ति=जयन्त भव्यजीवगण

लवण समुद्र है सीमा जिसकी ऐसे भरतक्षेत्र पर एकशासन राज्य करता है। ससार समुद्रमे डूबते हुए जीवोंके एक मात्र आश्रय होने से द्वीप समान, कर्मों से सत्रस्त भव्य जीवों की रक्षामें दक्ष होने से त्राणरूप, उनको शरण देने के कारण शरणगति-आश्रयस्थान। तीनों कालमें अविनाशी स्वरूपवाले होने से प्रतिष्ठानरूप। आवरण रहित केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक। ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का नाश करने वाले। राग-द्वेषरूप शत्रु

પૂર્વ-દક્ષિણ-પશ્ચિમ દિશામા લવણ સમુદ્ર છે સીમા જેની એવા ભરત ક્ષેત્ર પર એકશાસન રાજ્ય કરે છે સસારસમુદ્રમા ડૂબતા જીવોને એકમાત્ર આશ્રય હોવાથી દ્વીપ સમાન, કર્મોથી સતાપ પામેલા ભવ્ય જીવોની રક્ષામા દક્ષ હોવાથી (કુશળ હોવાથી) ત્રાણરૂપ, તેઓને શરણ દેવાવાળા હોવાથી શરણગતિ-આશ્રયસ્થાન ત્રણે કાલમા અવિનાશી સ્વરૂપવાળા હોવાથી પ્રતિષ્ઠાન રૂપ આવરણરહિત કેવલજ્ઞાન કેવલ દર્શનના ધારક જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના નાશ કરવાવાળા. રાગ-દ્વેષરૂપ

धर्मदेशनादिना प्रेरयन्तीति जापकाः[1], तेभ्यः। 'तिन्नाण' स्वयं संसारौघं तीर्णास्तेभ्यः। 'तारयाण' तारयन्त्यन्यानिति तारकास्तेभ्यः। 'बुद्धाण' बुद्धेभ्यः=स्वयं बोधं प्राप्तेभ्यः। 'बोहयाण' बोधयन्त्यन्यानिति बोधकास्तेभ्यः। 'मुत्ताण' अमोचिषत स्वयं कर्मपञ्जरादिति मुक्तास्तेभ्यः। 'मोयगाण' मुच्यमानानन्यान् प्रेरयन्तीति मोचकास्तेभ्यः। 'सव्वन्नूण' सर्वं=सकलद्रव्य-गुण-पर्याय-लक्षणं वस्तुजातं याथातथ्येन जानन्तीति सर्वज्ञास्तेभ्यः। 'सव्वदरिसीण' सर्वं=समस्तपदार्थस्वरूपं सामान्येन द्रष्टुं शील येषां ते सर्वदर्शिनस्तेभ्यः। 'सिव' शिवं निखिलोपद्रवरहितत्वाच्छिवं (कल्याण) मयम्, स्थानमित्यस्य विशेषणमिदम्, शिवादीनां सर्वेषां द्वितीयान्तानामग्रेतनेन 'सम्प्राप्तेभ्य' इत्यनेन सम्बन्धः। 'अयल' अचलम्=स्वाभाविकप्रायोगिकचलनक्रियाशून्यम्। 'अरुय' अरुजम्-अविद्यमाना रुजा यस्मिंस्तत्, तत्रात्मनामविद्यमानशरीरमनस्कत्वादाधिव्याधिरहितमित्यर्थः। 'अणंत' अविद्यमानोऽन्तो=नाशो यस्य तत्। अत एव 'अक्खय' नास्ति लेशतोऽपि क्षयो यस्य तत्-अविनाशीत्यर्थः। 'अव्वाबाह' न विद्यते व्याबाधा=पीडा द्रव्यतो भावतश्च यत्र तत्। 'अपुणरावित्ति' अविद्यमाना पुनरावृत्तिः=संसारे पुनरवतरणं यस्मात् तत्, यत्र गत्वा न कदाचिदप्यात्मा विनिवर्त्तते, समाम्नातमन्यत्रापि-'न स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते' इति। इत्थमुक्तशिवत्वादिविशेषणविशिष्टम् 'सिद्धिगइनामधेय' सिद्धिगतिरिति

को स्वयं जीतने वाले और दूसरों को जीताने वाले। भवसमुद्र को स्वयं तैरने वाले और दूसरों को तिराने वाले। स्वयं बोध को प्राप्त करने वाले और दूसरों को प्राप्त कराने वाले। स्वयं मुक्त होने वाले और दूसरे को मुक्त कराने वाले। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधारहित, पुनरागमनरहित, ऐसे सिद्धिस्थान अर्थात् मोक्ष को प्राप्त सिद्ध

शत्रुओने पोतेज छतवावाणा अने बीजाओने छतावववाणा, भवसमुद्रने पोते तरवावाणा अने बीजाने तारवावाणा, स्वयं बोध प्राप्त करनारा अने बीजाने बोध प्राप्त करावनारा, स्वयं मुक्त थवावाणा अने बीजाने मुक्त करनारा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोग रहित, अनन्त, अक्षय,

१- जापका-'जि' धातोर्णौ 'क्रीङ्जीनां'-मित्यात्वे ण्वन्ताण्वुल्।

नामधेय=नाम यस्य तत्। 'ठाण' स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थान लोकाग्रलक्षण 'सपत्ताण' सम्प्राप्तेभ्यः=समाश्रितेभ्यः। 'नमो जिणाण' नमो जिनेभ्यः, कीदृशेभ्य. ? 'जियभयाण' जित भय यैस्तेभ्य इति सिद्धपक्षे, अर्हत्पक्षे तु 'नमोत्थुण जाव सपाविउकामस्स' नमोऽस्तु यावत्सिद्धिगतिनामक स्थान सम्प्राप्तुकामाय, 'ण' इतिवाक्यालङ्कारेऽव्ययपदम् ॥ सू० २ ॥

इत्थ नमस्कारान्त प्रत्याख्यानप्रकरण परिसमाप्य सम्प्रति तत्पारण समापनविधिरुच्यते—'फासिय' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

फासिय (१) पालिय (२) सोहिय (३) तीरिय (४) किट्टिय (५) आराहिय (६) अणुपालिय (७) भवइ, ज च न भवइ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

स्पृष्ट (१) पालित (२) शोधित (३) तीरित (४) कीर्तितम् (५) आराधितम् (६) आज्ञयाऽनुपालित (७) भवति, यच्च न भवति, तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ३ ॥

॥ टीका ॥

मया स्वीकृत प्रत्याख्यानमिति शेष., 'फासिय' स्पृष्ट=कायादिना

भगवान को तथा मोक्ष को प्राप्त होनेवाले अरिहन्त भगवान को नमस्कार हो ॥ सू० २ ॥

इस प्रकार नमस्कारपर्यन्त प्रत्याख्यान की विधि कहकर अब उसके पारण की विधि दिखलाते हैं— 'फासिय' इत्यादि ।

मुझ से स्वीकृत प्रत्याख्यान का काय आदि से सेवन, बार बार उपयोग देकर सरक्षण, अतिचार शोधन, समाप्तिका समय हो

બાધા રહિત, પુનરાગમન રહિત, એવા સિદ્ધ સ્થાન અર્થાત્ મોક્ષને પ્રાપ્ત થયેલા સિદ્ધ ભગવાનને તથા મોક્ષને પામવાવાળા અરિહન્ત ભગવાનને નમસ્કાર છે (સૂ૦૨)

આ પ્રમાણે નમસ્કારપર્યન્ત પ્રત્યાખ્યાનની વિધિ કહીને હવે તેને પાળવાની વિધિ બતાવે છે "फासिय" ઇત્યાદિ

મારાથી સ્વીકૃત પ્રત્યાખ્યાનનું શરીર આદિથી સમ્યક્ સેવન, વાર વાર ઉપયોગ

सेवित (१), 'पालिय' पालित=मुहुर्मुहुरुपयोगदानेन संरक्षितम् (२), 'सोहिय' शोभित=तद्गताऽतिचारपरिमार्जनं कृतम् (३), 'तीरिय' तीरित=प्रत्याख्यानावधौ सम्पूर्णता गतेऽपि कञ्चित्कालमवस्थाय तीरं नीतमित्यर्थः (४), 'किट्टिय' कीर्तित=प्रत्याख्यानेऽस्मिन्निदं च कर्त्तव्यं मया कृतमित्येवं तत्तन्नामोपादाय गुरुपुरतो विनिवेदितमित्यर्थः (५), 'आराहिय' आ=समन्तात् राधितमाराधितम्=उत्सर्गापवादादिभिः समर्यादमन्तःकरणेन सेवितम् (६), 'आणाए अणुपालिय' आज्ञयाऽनुपालित=श्रीजिनेन्द्रोक्तरीत्याऽनुष्ठितम् (७), 'भवइ' भवति=अस्ति। 'ज च' यत् 'प्रागुक्तेषु स्पृष्टादिषु मध्ये' इत्यर्थात् चकारः

जाने पर भी कुछ देर विश्राम, 'प्रत्याख्यान में अमुक अमुक विधि करनी चाहिये सो मैंने सब करली' इस प्रकार नामग्रहणपूर्वक गुरुके समक्ष निवेदन, मर्यादापूर्वक अन्तःकरण से सेवन तथा भगवान की आज्ञा के अनुसार पालन किया गया है तो भी प्रमादवश उसमें जो कुछ त्रुटि रह गई हो तो 'तस्स मिच्छा मि

રાખીને સંરક્ષણ, અતિચાર શોધન, સમાપ્તિ સમય થવા છતાય થોડીવાર વિશ્રામ, 'પ્રત્યાખ્યાનમાં અમુક અમુક વિધિ કરવી જોઇએ તે મેં સર્વ કરી લીધી' એ પ્રમાણે નામ-ગ્રહણ-પૂર્વક ગુરુની પાસે નિવેદન, મર્યાદાપુર્વક અંતઃકરણથી સેવન તથા ભગવાનની આજ્ઞા પ્રમાણે પાલન કર્યું છે તો પણ પ્રમાદ રહેવાથી તેમાં જે કાંઇ ત્રુટી રહી ગઇ હોય તો "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" તે સમ્બંધી મારૂં પાપ નિષ્ફળ

नामधेय=नाम यस्य तत्। 'ठाण' स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थान लोकाग्रलक्षण 'सपत्ताण' सम्प्राप्तेभ्यः=समाश्रितेभ्यः। 'नमो जिणाण' नमो जिनेभ्यः, कीदृशेभ्यः ? 'जियभयाण' जित भय यैस्तेभ्य इति सिद्धपक्षे, अर्हत्पक्षे तु 'नमोत्थुण जाव सपाविउकामस्स' नमोऽस्तु यावत्सिद्धिगतिनामक स्थान सम्प्राप्तुकामाय, 'ण' इतिवाक्यालङ्कारेऽव्ययपदम् ॥ सू० २ ॥

इत्थ नमस्कारान्त प्रत्याख्यानप्रकरण परिसमाप्य सम्प्रति तत्पारण समापनविधिरुच्यते—'फासिय' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

फासिय (१) पालिय (२) सोहिय (३) तीरिय (४) किट्टियं (५) आराहिय (६) अणुपालिय (७) भवइ, ज च न भवइ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

स्पृष्ट (१) पालित (२) शोधित (३) तीरित (४) कीर्तितम् (५) आराधितम् (६) आज्ञयाऽनुपालित (७) भवति, यच्च न भवति, तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ३ ॥

॥ टीका ॥

मया स्वीकृत प्रत्याख्यानमिति शेष, 'फासिय' स्पृष्ट=कायादिना

भगवान को तथा मोक्ष को प्राप्त होनेवाले अरिहन्त भगवान को नमस्कार हो ॥ सू० २ ॥

इस प्रकार नमस्कारपर्यन्त प्रत्याख्यान की विधि कहकर अब उसके पारण की विधि दिखलाते हैं— 'फासिय' इत्यादि ।

मुझ से स्वीकृत प्रत्याख्यान का काय आदि से सेवन, बार बार उपयोग देकर सरक्षण, अतिचार शोधन, समाप्तिका समय हो

બાધા રહિત, પુનરાગમન રહિત, એવા સિદ્ધ સ્થાન અર્થાત્ મોક્ષને પ્રાપ્ત થયેલા સિદ્ધ ભગવાનને તથા મોક્ષને પામવાવાળા અરિહન્ત ભગવાનને નમસ્કાર છે (સૂ૦૨)

આ પ્રમાણે નમસ્કારપર્યન્ત પ્રત્યાખ્યાનની વિધિ કહીને હવે તેને પાળવાની વિધિ બતાવે છે "फासिय" ઇત્યાદિ

મારાથી સ્વીકૃત પ્રત્યાખ્યાનનું શરીર આદિથી સમ્યક્ સેવન, વાર વાર ઉપયોગ

हिन्दी–परिशिष्ट

॥ बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ ॥

पहिला अणुव्रत–थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण, त्रसजीव–वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय पंचिंदिय जानके पहिचानके सङ्कल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी-शरीर के भीतर में पीडाकारी सापराधी को छोड निर-पराधी को आकुट्टी की बुद्धि (हनने की बुद्धि) से हनने का पच्च-क्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे पहिले स्थूल प्राणातिपात–विरमण–व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तंजहा-ते आलोउं वधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाणविच्छेए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

दूजा अणुव्रत–थूलाओ मुसावायाओ वेरमण, कन्नालिए, गोवालिए, भोमालिए, णासावहारो (थापणमोसो) कूडसक्खिवज्जे (कूडी साख,) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा, कायसा, एवं दूजा स्थूल मृषावाद विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा-ते आलोउं सहस्सब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमंतभेए[1], मोसोवएसे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

तीजा अणुव्रत–थूलाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं, खात खनकर, गाठ खोलकर, ताले पर कुंजी लगाकर, मार्ग में चलते को लूट कर, पडी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अद-त्तादान का पच्चक्खाण, सगे–सम्बन्धी, व्यापार–संबंधी तथा पडी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा–ते आलोउं तेनाहडे तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जा-इक्कमे, कूडतुल्ले, कूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

---

१ 'स्वदारसन्तोष' ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये, और स्त्री को स्वपतिसन्तोष ऐसा बोलना चाहिये ।

समुच्चयार्थ', 'न भवइ' न भवति=न जायते, 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' व्याख्यातपूर्वमिदमित्यलमाम्रेडितेन ॥ सू० ३ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित-कोल्हापुर-राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आवश्यकसूत्रस्य मुनि-तोषण्याख्याया व्याख्याया षष्ठ प्रत्याख्यानाख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ ६ ॥

॥ सम्पूर्णमिद सूत्रम् ॥



दुक्कड' उस सम्बन्धी मेरा पाप निष्फल हो-इत्यादि अर्थ पहले की तरह जान लेवें ॥ सू० ३ ॥

॥ इति छठा अध्ययन सम्पूर्ण ॥
इति आवश्यक सूत्र की
मुनितोषणी टीका का
हिन्दी भवार्थ
सपूर्ण.



थाओ। ઇત્યાદિ અર્થ પ્રથમ પ્રમાણે જાણી લેવો (સૂ૦૩)

ઇતિ છઠ્ઠું અધ્યયન સપૂર્ણ

ઇતિ આવશ્યક સૂત્રની મુનિતોષણી ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સપૂર્ણ



हिन्दी-परिशिष्ट

॥ बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ ॥

पहिला अणुव्रत-थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण, त्रसजीव-वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय पंचिंदिय जानके पहिचानके सङ्कल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी-शरीर के भीतर में पीडाकारी सापराधी को छोड निर-पराधी को आकुट्टी की बुद्धि (हनने की बुद्धि) से हनने का पच्च-क्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे पहिले स्थूल प्राणातिपात-विरमण-व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ वधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाणविच्छेए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

दूजा अणुव्रत-थूलाओ मुसावायाओ वेरमण, कन्नालिए, गोवालिए, भोमालिए, णासावहारो (थापणमोसो) कूडसक्खिवज्जे (कूडी साख,) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा, कायसा, एवं दूजा स्थूल मृषावाद विरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमंतभेए[1], मोसोवएसे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

तीजा अणुव्रत-थूलाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं, खात खनकर, गाठ खोलकर, ताले पर कुजी लगाकर, मार्ग में चलते को लूट कर, पडी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अद-त्तादान का पचक्खाण, सगे-सम्बन्धी, व्यापार-सबधी तथा पडी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एव तीजा स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ तेनाहडे तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जा-इक्कमे, कूडतुल्ले, कूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

---

१ 'स्वदारसन्तोष' ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये, और स्त्री को स्वपतिसन्तोष ऐसा बोलना चाहिये।

चौथा अणुव्रत–थूलाओ मेहुणाओ वेरमण, [१] सदारसतोसिए, अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, देवदेवी सम्बन्धी दुविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, तथा मनुष्य–तिर्यञ्च–सम्बन्धी एगविह एगविहेण न करेमि कायसा, एव चौथा स्थूल मेहुणवेरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

पाचवा अणुव्रत–थूलाओ परिग्गहाओ वेरमण, खेत्त–वत्थु का यथापरिमाण, हिरण्णसुवण्ण का यथापरिमाण, धनधान्य का यथापरिमाण, दुपयचउप्पय का यथापरिमाण, कुवियधातु का यथापरिमाण, जो परिमाण किया है, उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पचक्खाण, जावज्जीवाए, एगविह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा, एवं पाचवा स्थूलपरिग्रह परिमाण–व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा–ते आलोउ खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे धणधन्नप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

छठा दिशिव्रत–उड्ढदिशि का यथापरिमाण, अहोदिशि का यथापरिमाण किया है, इसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाच आस्रव सेवन का पचक्खाण जावज्जीवाए[१] दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एव छठे दिशिव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरिअदिसिप्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी, सइअन्तरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

१–'एगविह तिविहेण' भी कोई कोई बोलते हैं।

सातवां व्रत—उवभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे उल्लणियाविहि १, दंतणविहि २, फलविहि ३, अब्भगणविहि ४, उवट्टणविहि ५, मज्जणविहि ६, वत्थविहि ७, विलेवणविहि ८, पुप्फविहि ९, आभरणविहि १०, धूवविहि, ११, पेज्जविहि १२, भक्खणविहि १३, ओदणविहि १४, सूपविहि १५, विगयविहि १६, सागविहि महुरविहि १८, जीमणविहि १९, पाणीअविहि २०, मुखवासविहि २१, वाहणविहि २२, उवाणहविहि २३, सयणविहि २४, सचित्तविहि २५, दव्वविहि २६, इत्यादि का यथापरिमाण किया है, इसके उपरान्त उवभोगपरिभोग वस्तु को भोगनिमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेण, न करेमि मणसा वयसा कायसा, एवं सातवा उवभोगपरिभोग दुविहे पन्नत्ते, तंजहा—भोयणाओ य, कम्मओ य। भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—ते आलोउं सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पउलिओसहि-भक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया, कम्मओणं समणोवासएणं पन्नरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं, तंजहा ते आलोउं इंगाल कम्मे, वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे, फोडीकम्मे दंतवाणिज्जे, लक्ख-वाणिज्जे, केसवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया सरदहतलायसोसणया, असईजण-पोसणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

आठवां अणट्ठादण्डविरमणव्रत—चउव्विहे अणट्ठादंडे पण्णत्ते, तंजहा—अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे, एवं आठवां अणट्ठादंड सेवन का पच्चक्खाण (जिसमें आठ आगार—आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अन्नत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, एवं आठवां अणट्ठदंड, विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—ते आलोउं कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए संजुत्ताहिगरणे,

चौथा अणुव्रत–थूलाओ मेहुणाओ वेरमण, [१] सदारसतोसिए, अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, देवदेवी सम्बन्धी दुविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, तथा मनुष्य–तिर्यञ्च–सम्बन्धी एगविह एगविहेण न करेमि कायसा, एव चौथा स्थूल मेहुणवेरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समा यरियव्वा, तजहा ते आलोउ इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहि यागमणे, अनगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

पाचवा अणुव्रत–थूलाओ परिग्गहाओ वेरमण, खेत्त–वत्थु का यथापरिमाण, हिरण्णसुवण्ण का यथापरिमाण, धनधान्य का यथापरिमाण, दुपयचउप्पय का यथापरिमाण, कुवियधातु का यथापरिमाण, जो परिमाण किया है, उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए, एगविह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा, एव पाचवा स्थूलपरिग्रह परि-माण–व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा–ते आलोउ खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे धणधन्न-प्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

छठा दिशिव्रत–उड्ढदिशि का यथापरिमाण, अहोदिशि का यथापरिमाण किया है, इसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाच आस्रव सेवन का पच्चक्खाण जावज्जीवाए[१] दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एव छठे दिशिव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरिअदिसिप्पमाणा-इक्कमे, खित्तवुड्ढी, सइअन्तरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

१–'एगविह तिविहेण' भी कोई कोई बोलते हैं।

पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ अप्प-डिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-सेज्जासथारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-सेज्जासथारए, अप्पडिलेहिय - दुप्पडिलेहिय - उच्चारपासवणभूमि, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय - उच्चारपासवणभूमि, पोसहस्स सम्म अणणुपालणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

बारहवा अतिथिसविभागव्रत-समणे निग्गथे फासुयएसणि-ज्जेणं-असणपाणखाइमसाइमवत्थपडिग्गहकबलपायपुँछणेण पडिहारि-यपीढफलगसेज्जासथारएण ओसहभेसज्जेण पडिलाभेमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा परूपणा है, साधु साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दू तब शुद्ध होउ। एव बारहवें अतिथिसविभागव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समागरियव्वा, तजहा-ते आलोउ-सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरिआए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

। बडी सलेखना का पाठ ।

अह भते अपच्छिममारणन्तियसलेहणाझूसणा आराहणा पोषधशाला पूजे, पूज के उच्चारपासवण भूमिका पडिलेहे, पडिलेह के गमणागमणे पडिक्कमे, पडिक्कम के दर्भादिक सथारा सथारे, सथार के दर्भादिक सथारा दुरूहे, दुरूह के पूर्व तथा उत्तरदिशि सन्मुख पल्यकादिक आसन से बैठे, बैठ के करय-लसपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी-'नमोत्थु ण अरि-हन्ताण भगवताण जाव सपत्ताण' ऐसे अनन्त सिद्धो को नमस्कार करके, 'नमोत्थुण अरिहन्ताण भगवताण जाव सम्पाविउकामाण' जयवते वर्तमान-काले महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थङ्करों को नमस्कार करके अपने धर्माचार्यजी को नमस्कार करता हू। साधु प्रमुख चारो तीर्थ को खमाके, सर्वजीवराशि को खमा के पहिले जो व्रत आदरे हैं उनमें जो अतिचार दोष लगे हो, वे सर्व आलोच के पडिक्कम करके निंद के निःशल्य हो करके, सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि, सव्व मुसावाय पच्चक्खामि, सव्व अदिन्नादाण पच्चक्खामि, सव्व मेहुण पच्चक्खामि, सव्व परिग्गह पच्चक्खामि, सव्व कोह माण जाव मिच्छा-दसणसल्ल सव्व अकरणिज्जजोग पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण न करेमि

उवभोगपरिभोगाइरित्ते, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

नववा सामायिकव्रत–सव्वसावज्ज जोग पच्चक्खामि जावनियम पज्जुवासामि, दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा, ऐसी सद्दहणा परूपणा तो है सामायिक का अवसर आये सामायिक करु तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, एव नववें सामायिक व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा–ते आलोउ मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

दसवां देसावगासिकव्रत–दिन प्रति प्रभात से प्रारंभ करके पूर्वादिक छहों दिशा की जितनी भूमिका की मर्यादा रक्खी हो उसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाच आश्रव सेवने का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, जितनी भूमिका की हद रक्खी उसमे जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है उसके उपरान्त उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्त एगविह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा, एव दशवें देसावगासिक व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा–ते आलोउ आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहिया पुग्गलपक्खेवे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

ग्यारहवा पडिपुन्न पोषधव्रत–असण पाण खाइम साइम का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावन्नग–विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमुसलादिक सावज्जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त पज्जुवासामि, दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा कायसा ऐसी सद्दहणा परूपणा तो है पोसह का अवसर आये पोसह करूँ तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, एव ग्यारवा पडिपुन्न पोषधव्रत का

બાર વ્રતના અતિચાર સહિત પાઠ

ગુજરાતી–પરિશિષ્ટ

પહેલું અણુવ્રત થૂલાઓ પાણાઇવાયાઓ વેરમણં, ત્રસજીવ, બે ઇદ્રિય, તે ઇદ્રિય, ચઉરિંદિય, પચેદ્રિય, જીવ, જાણીપીછી, સ્વસબધી, શરીર માહેલા પીડાકારી, સઅપરાધી, વિગલેદ્રિય વિના, આકુટ્ટિ, હણવાનિમિત્તે, હણવાના પચ્ચકૂખાણ, તથા સૂક્ષ્મ એકેદ્રિય પણ હણવાના પચ્ચકૂખાણ, જાવજ્જીવાએ, દુવિહ, તિવિહેણ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા, એહવા, પહેલા, થલ પ્રાણાતિપાત વેરમણ વ્રતના પચ અઇયારા, પેયાલા જાણિયવ્વા, ન સમાયરિયવ્વા, ત જહા, તે આલોઉં, બધે, વહે, છવિચ્છેએ, અઇભારે, ભત્તપાણવોચ્છેએ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ

બીજું અણુવ્રત, થૂલાઓ મુસાવાયાઓ વેરમણ, કન્નાલિક, ગોવાલિક, ભોમાલિક, થાપણમોસો, મોટકી કુડીસાખ

ઇત્યાદિ મોટકુ જૂઠું બોલવાના પચ્ચકૂખાણ જાવજ્જીવાએ દુવિહ, તિવિહેણ ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા, એવા બીજા થૂલ મૃષાવાદ વેરમણ વ્રતના પચ અઇયારા, જાણિયવ્વા ન સમાયરિયવ્વા, ત જહા–તે આલોઉં

સહસ્સાભક્ખાણે, રહસ્સાભક્ખાણે, સદારમતભેએ, મોસોવએસે, કૂડલેહકરણે તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ

ત્રીજું અણુવ્રત, થૂલાઓ અદિન્નાદાણાઓ વેરમણ, ખાતર–ખણી, ગાઠડી છોડી, તાલુ પર કુચી કરી, પડી વસ્તુ ધણીઆતી જાણી,

ઇત્યાદિ મોટકુ અદત્તાદાન લેવાના પચ્ચકૂખાણ, સગાસબધી તથા વ્યાપાર–સબધી નભરમી વસ્તુ ઉપરાત અદત્તાદાન લેવાના પચ્ચકૂખાણ, જાવ જીવાએ, દુવિહ તિવિહેણ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા એવા ત્રીજા થૂલ અદત્તાદાન વેરમણ વ્રતના પચ અઇયારા, જાણિયવ્વા, ન સમાયરિયવ્વા ત જહા, તે આલોઉં

તેના હડે, તક્કરપઓગે, વિરુદ્ધ રજ્જાઇક્કમે, કૂડતોલે કૂડમાણે, તપ્પડિરૂ વગવવહારે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ,

ચોથુ અણુવ્રત, થૂલાઓ મેહુણાઓ વેરમણ, સદારસતોસિએ, અવસેસ મેહુણવિહિં ના પચ્ચકૂખાણ

અને જે સ્ત્રીપુરુષને મૂળ થકી કાયાએ કરી મેહુણ સેવવાના પચ્ચકૂખાણ

न कारवेमि करंतपि अन्न न समणुजाणामि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे अठारह पापस्थानक पच्चक्खके सव्व असण पाण खाइम साइम चउव्विह पि आहार पच्चक्खामि जावज्जीवाए, ऐसे चारो आहार पच्चक्ख के ज पि य इम सरीर इट्ठ, कत, पिय मणुण्ण, मणाम, धिज्ज, विसासिय समय, अणुमय, बहुमय, भण्डकरण्डसमाण, रयणकरडगभूय, मा ण सीय, मा ण उण्ह, मा ण खुहा, माण पिवासा, माण वाला, मा ण चोरा, मा ण दसमसगा, मा ण वाहिय, पित्तिय, कप्फिय, सभीम सन्निवाइय विविहा रोगायका परिसहा उवसग्गा फासा फुसतु–एव पि य ण चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु ऐसे शरीर वोसिरा के, काल अणवकखमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा परूपणा तो है, फरसना करू तो शुद्ध होऊ ऐसे अपच्छिम–मारणतिय–सलेहणा झुमणा-अराहणाए पच अइयारा जाणियव्वा, त जहा–इहलोगाससप्पओगे परलोगाससप्पओगे, जीवियाससप्पओगे, मरणाससप्पओगे कामभोगाससप्पओगे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

तस्स धम्मस्स का पाठ ।

तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए तिविहेण पडिक्कतो वदामि जिणचउव्वीस ।



બાર વ્રતના અતિચાર સહિત પાઠ.

ગુજરાતી—પરિશિષ્ટ

પહેલુ અણુવ્રત થૂલાઓ પાણાઇવાયાઓ વેરમણ, ત્રસજીવ, બે ઇંદ્રિય, તે ઇંદ્રિય, ચઉરિંદિય, પચેદ્રિય, જીવ, જાણીપીછી, સ્વસબધી, શરીર માહેલા પીડાકારી, સઅપરાધી, વિગલેદ્રિય વિના, આકુટ્ટિ, હણુવાનિમિત્તે, હણુવાના પચ્ચક્ખાણ, તથા સૂક્ષ્મ એકેદ્રિય પણ હણુવાના પચ્ચક્ખાણ, જાવજીવાએ, દુવિહ, તિવિહેણ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા, એહવા, પહેલા, થલ પ્રાણાતિપાત વેરમણ વ્રતના પચ અઇયારા, પેયાલા જાણિયવ્વા, ન સમાયરિયવ્વા, ત જહા, તે આલેઉ, બધે, વહે, છવિચ્છેએ, અઇભારે, ભત્તપાણુવોચ્છેએ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ

બીજુ અણુવ્રત, થૂલાઓ મુસાવાયાઓ વેરમણ, કન્નાલિક, ગોવાલિક, ભોમાલિક, થાપણમોસો, મોટકી કુડીસાખ

ઇત્યાદિ મોટકુ જૂઠુ બોલવાના પચ્ચક્ખાણ જાવજીવાએ દુવિહ, તિવિહેણ ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા, એવા બીજા થૂલ મૃષાવાદ વેરમણ વ્રતના પચ અઇયારા, જાણિયવ્વા ન સમાયરિયવ્વા, ત જહા—તે આલેઉ

સહસ્સાભક્ખાણે, રહસ્સાભક્ખાણે, સદારમતભેએ, મોસોવએસે, કૂડલેહકરણે તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ

ત્રીજુ અણુવ્રત, થૂલાઓ અદિન્નાદાણાઓ વેરમણ, ખાતર—ખણી, ગાઠડી છોડી, તાળુ પર કુચી કરી, પડી વસ્તુ ધણીઆતી જાણી,

ઇત્યાદિ મોટકુ અદત્તાદાન લેવાના પચ્ચક્ખાણ, સગાસબધી તથા વ્યાપાર-સબધી નભરમી વસ્તુ ઉપરાત અદત્તાદાન લેવાના પચ્ચક્ખાણ, જાવ જીવાએ, દુવિહ તિવિહેણ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા એવા ત્રીજા થૂલ અદત્તાદાન વેરમણ વ્રતના પચ અઇયારા, જાણિયવ્વા, ન સમાયરિયવ્વા ત જહા, તે આલેઉ

તેના હડે, તક્કરપઓગે, વિરુદ્ધ રજ્જાઇક્કમે, કૂડતોલે કૂડમાણે, તપ્પડિરૂ વગવવહારે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ,

ચોથુ અણુવ્રત, થૂલાઓ મેહુણાઓ વેરમણ, સદારસતોસિએ, અવસેસ મેહુણવિહિં ના પચ્ચક્ખાણ

અને જે સ્રીપુરુષને મૂળ થકી કાયાએ કરી મેહુણ સેવવાના પચ્ચક્ખાણ

હોય તેને દેવતા, મનુષ્ય, તિર્યંચ સંબંધી મેહુણના પચ્ચક્ખાણ, જાવજ્જીવાએ, દેવતા સંબંધી દુવિહં, તિવિહેણં ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા કાયસા મનુષ્ય તિર્યંચ સંબંધી

એગવિહં, એગવિહેણં, ન કરેમિ કાયસા

એવા ચોથા થૂલ મેહુણવેરમણ વ્રતના પંચ અઇયારા, જાણિયવ્વા, ન સમાયરિયવ્વા, તં જહા તે આલોઉં

ઇત્તરિયપરિગ્ગહિયાગમણે, અપરિગ્ગહિયાગમણે, અનંગકીડા, પરવિવાહકરણે, કામભોગેસુ તિવ્વાભિલાસા, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

પાંચમું અણુવ્રત થૂલાઓ પરિગ્ગહાઓ વેરમણં, ખેત્તવત્થુનું યથાપરિમાણ, હિરણ્ણસુવણ્ણનું યથાપરિમાણ, ધનધાન્યનું યથાપરિમાણ, દુપદચઉપદનું યથા-પરિમાણ, કુવિયનું યથાપરિમાણ

એ યથાપરિમાણ કીધું છે, તે ઉપરાંત પોતાનો પરિગ્રહ કરી રાખવાના પચ્ચક્ખાણ જાવજ્જીવાએ

એગવિહં, તિવિહેણં, ન કરેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા એવા પાંચમા થૂલ-પરિગ્ગહ-પરિમાણ-વેરમણ વ્રતના પંચ અઇયારા જાણિયવ્વા, ન સમાયરિયવ્વા, તં જહા-તે આલોઉં, ખેત્તવત્થુપમાણાઇક્કમે, હિરણ્ણસુવણ્ણપમાણાઇક્કમે, ધનધાન્ય-પમાણાઇક્કમે, દુપદચઉપદપમાણાઇક્કમે, કુવિયપમાણાઇક્કમે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

છઠું દિશિવ્રત, ઉડ્ઢદિશિનું યથાપરિમાણ, અધોદિશિનું યથાપરિમાણ, તિરિયદિશિનું યથાપરિમાણ

એ યથાપરિમાણ કીધું છે, તે ઉપરાંત સઇચ્છાએ કાયાએ જઇને પાંચ આશ્રવ સેવવાના પચ્ચક્ખાણ, જાવજ્જીવાએ, દુવિહં, તિવિહેણં, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા એવા છઠા દિશિવેરમણ વ્રતના પંચ અઇયારા, જાણિયવ્વા, ન સમાયરિવ્વા, તં જહા તે આલોઉં

ઉડ્ઢદિસિ પમાણાઇક્કમે, અધોદિસિ પમાણાઇક્કમે, તિરિયદિસિ પમાણાઇક્કમે ખેતવુડ્ઢી, સઇઅંતરદ્ધા, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

સાતમું વ્રત, ઉવભોગપરિભોગવિહિં પચ્ચક્ખાયમાણે, ઉલ્લણિયાવિહિં, દંતણવિહિં, ફલવિહિં, અબ્ભંગણવિહિં ઉવટ્ટણવિહિં મજ્જણવિહિં, વત્થવિહિં, વિલેવણવિહિં, પુપ્ફવિહિં, આભરણવિહિં, ધૂપવિહિં, પેજ્જવિહિં, ભક્ખણવિહિં,

ઓદણુવિહિં, સૂપવિહિં, વિગયવિહિં, સાગવિહિં, માહુરયવિહિં, જેમણુવિહિં, પાણિયવિહિં, મુહવાસવિહિં, વાહણુવિહિં, વાણુહવિહિં, સયણુવિહિં, સચિત્તવિહિં, દવ્વવિહિં

ઈત્યાદિકનુ યથાપરિમાણુ કીધુ છે, તે ઉપરાત ઉવભોગપરિભોગ, ભોગનિમિત્તે ભોગવવાના પચ્ચક્ખાણુ જાવજ્જીવાએ એગવિહ, તિવિહેણુ ન કરેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા એવા સાતમા ઉવભોગ પરિભોગ.

દુવિહે પન્નત્તે, ત જહા, ભોયણાઉય, કમ્મઉય, ભોયણાઉ, સમણોવાસએણુ પચ અઈયારા, જાણિયવ્વા ન સમાયરિયવ્વા, ત જહા–તે આલોઉ

સચિત્તાહારે, સચિત્તપડિબદ્ધાહારે, અપ્પોલિઓસહિભક્ખણયા, દુપ્પોલિ ઓસહિભક્ખણયા, તુચ્છોસહિભક્ખણયા, કમ્મઉણુ સમણોવાસએણુ, પન્નરસ કમ્માદાણાઈ

જાણિયવ્વા, ન સમાયરિયવ્વા, ત જહા–તે આલોઉં,

ઈગાલકમ્મે, વણુકમ્મે, સાડીકમ્મે, ભાડીકમ્મે, ફોડીકમ્મે, દતવાણિજ્જે, કેસવાણિજ્જે, રસવાણિજ્જે, લક્ખવાણિજ્જે, વિસવાણિજ્જે, જતપિલ્લણુ-કમ્મે, નિલ્લછણુકમ્મે, દવગ્ગિદાવણયા, સરદહતલાગપરિસોસણયા, અસઈજણુ-પોસણયા, તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકડ

આઠમુ વ્રત–અનર્થદડનુ વેરમણ, ચઉવિહે અનત્થાદડે પન્નત્તે, ત જહા, અવજ્ઝાણાચરિય પમાયાચરિય હિંસપયાણુ, પાવકમ્મોવએસ એવા આઠમા અનર્થદડ સેવવાના પચ્ચક્ખાણુ જાવજ્જીવાએ દુવિહ તિવિહેણુ ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા

એવા આઠમા અનર્થ દડ વેરમણુ વ્રતના પચ અઈયારા જાણિયવ્વા, ન સમાયરિયવ્વા, ત જહા–તે આલોઉ

કદપ્પે, કુક્કુઈએ, મોહરિએ, સજુત્તાહિગરણે, ઉવભોગપરિભોગઅઈરિત્તે, તસ્સ મિચ્છા મ દુકકડ

નવમુ સામાયિક વ્રત, સાવજ્જજોગનુ વેરમણુ જાવ નિયમ પજ્જુવાસામિ,

દુવિહ તિવિહેણુ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા

એવી મારી–તમારી સદ્દહણા પ્રરૂપણા સામાયિકનો અવસર આવે અને સામાયિક કરીએ ત્યારે સ્પર્શનાએ કરી શુદ્ધ હોજો!

એવા નવમા સામાયિક વ્રતના પચ અઈયારા જાણિયવ્વા, ન સમાયરિયવ્વા, ત જહા–તે આલોઉ મણદુપ્પણિહાણે, વયદુપ્પણિહાણે, કાયદુપ્પણિહાણે, સામાઈયસ્સ સઈ અકરણયાએ, સામાઈયસ્સ અણવટ્ઠિયસ્સ કરણયાએ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ

દશમુ દેશાવગાસિક વ્રત

દિન પ્રત્યે પ્રભાત થકી પ્રારભીને પૂર્વાદિક છ દિશિ જેટલી ભૂમિકા મોકળી રાખી છે, તે ઉપરાત સઈચ્છાએ કાયાએ જઈને પાચ આશ્રવ સેવવાના પચ્ચક્ખાણ જાવઅહોરત્ત

દુવિહ તિવિહેણ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણસા વયસા કાયસા, જેટલી ભૂમિકા મોકળી રાખી છે, તે માહિ જે દ્રવ્યાદિકની મર્યાદા કીધી છે તે ઉપરાત ઉવભોગ, પરિભોગ, ભોગ નિમિત્તે ભોગવવાના પચ્ચક્ખાણ જાવ અહોરત્ત, એગવિહ તિવિહેણ ન કરેમિ મણસા વયસા કાયસા એવા દશમા દેશાવગસિક વેરમણ વ્રતના પચ અઈયારા જાણિયવ્વા ન સમાયરિયવ્વા, ત જહા–તે આલોઉ

આણવણપ્પઓગે, પેસવણપ્પઓગે, સદ્દાણુવાએ, રૂવાણુવાએ, બહિઆ પોગ્ગલ પક્ખેવે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ

અગિયારમુ પરિપૂર્ણ પોષધ વ્રત, 'અસણ' પાણ, ખાઈમ, સાઈમ'ના પચ્ચક્ખાણ અબભના પચ્ચક્ખાણ, મણિસોવનના પચ્ચક્ખાણ, માલાવન્નગવિલેવણના પચ્ચક્ખાણ, સત્થમુસલાદિક સાવજ્જ જોગના પચ્ચક્ખાણ, જાવ અહોરત્ત પજ્જુવાસામિ

દુવિહ તિવિહેણ ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણસા વયસા કાયસા એવી મારી સદ્દહણા પ્રરૂપણા પોષાનો અવસર આવે અને પોષો કરીએ, તે વારે સ્પર્શનાએ કરી શુદ્ધ હોજો, એવા અગિયારમા પરિપૂર્ણ પોષધ વ્રતના પચ અઈયારા જાણિયવ્વા નસમાયરિયવ્વા ત જહા તે આલોઉ

અપ્પડિલેહિય–દુપ્પડિલેહિય–સેજ્જાસથારએ, અપ્પમજ્જિય–દુપ્પમજ્જિય–સેજ્જાસથારએ, અપ્પડિલેહિય–દુપ્પડિલેહિય–ઉચ્ચારપાસવણભૂમિ, અપ્પમજ્જિય–દુપ્પમજ્જિય–ઉચ્ચાર–પાસવણભૂમિ, પોસહસ્સ સમ્મ અણણુપાલણયા, તસ્સ મિચ્છ મિ દુક્કડ

બારમુ અતિથિસવિભાગ વ્રત, સમણે નિગ્ગથે ફાસુએણ એસણિજ્જેણ

અસણુ પાણુ ખાઈમ સાઈમ વત્થપડિગ્ગહકબલપાયપુચ્છણેણુ, પાઢિયારૂ પીઢ-ફલગ-સેજ્જા-સથારએણુ, ઉસહભેસજ્જેણુ, પડિલાભેમાણે, વિહરિસ્સામિ

એવી મારી સદ્દહણા પ્રરૂપણાએ કરી સુપાત્ર સાધુ-સાધ્વીજીની જોગવાઇ મળે અને નિર્દોષ આહાર પાણી વહોરાવુ, તે વારે સ્પર્શનાએ કરી શુદ્ધ હોજો!

એવા બારમા અતિથિ સવિભાગ વ્રતના પચ અઈયારા જાણિયવ્વા ન સમાયરિયવ્વા, તજહા-તે આલેઉ

સચિત્તનિક્ખેવણયા સચિત્તપેહણયા કાલાઇકક્મે પરોવએસે મચ્છરિયાએ તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડ

નમો અરિહતાણુ, નમો સિદ્ધાણુ, નમો આયરિયાણુ, નમો ઉવજ્ઝાયાણુ, નમો લોએ સવ્વસાહૂણુ

સંથારા (અણુસણુ-અનશન) નો પાઠ

અપચ્છિમ મારણન્તિય સલેહણા, પૌષધશાળા પોજીને, ઉચ્ચાર પાસવણુ ભૂમિકા પડિલેહીને, ગમણાગમણે પડિક્કમીને, સથારો દુરૂહીને, પૂર્વ તથા ઉત્તર દિશિ પલ્યકાદિક આસને બેસીને, કરયલ સપરિગ્ગહિય સિરસાવત્તય મત્થએ અજલિ કટ્ટુ એવ વયાસી, નમોત્થુણુ અરિહતાણુ ભગવતાણુ જાવ સપત્તાણુ

એમ અનતા સિદ્ધને નમસ્કાર કરીને, વર્તમાન પોતાના ધર્મગુરુ-ધર્માચાર્યને નમસ્કાર કરીને પૂર્વ જે વ્રત આદર્યા છે, તે

આલોવી, પડિક્કમિ, નિંદી, નિશલ્ય થઈને, સવ્વ પાણાઇવાય પચ્ચક્ખામિ, સવ્વ મુસાવાય પચ્ચક્ખામિ, સવ્વ અદિન્નાદાણુ પચ્ચક્ખામિ, સવ્વ મેહુણુ પચ્ચક્ખામિ, સવ્વ પરિગ્ગહ પચ્ચક્ખામિ, સવ્વ કોહ પચ્ચક્ખામિ જાવ મિચ્છા દસણુ સલ્લ, અકરણિજ્જ જોગ પચ્ચક્ખામિ જાવજ્જીવાએ, તિવિહ, તિવિહેણુ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, કરતપિ અન્ન ન સમણુજાણામિ, મણસા વયસા કાયસા, એમ અઢારે પાપ થાનક પચ્ચક્ખીને, સવ્વ અસણુ પાણુ ખાઈમ-સાઇમ ચઉવિહ આહાર પચ્ચક્ખીને, જાવજ્જીવાએ, એમ ચારે આહાર પચ્ચક્ખીને, જપિય ઈમ સરીર ઈટ્ઠ કત પિય મણુન્ન મણામ ધિજ્જ વિસાસિય સમય અણુમય બહુમય ભડકરડગસમાણુ રયણકરડગભૂય મા ણુ સી ય મા ણુ ઉણ્હ, મા ણુ ખુહા, મા ણુ પીવાસા, મા ણુ બાલા, મા ણુ ચોરા, મા ણુ દસા, મા ણુ વાહિય પિત્તિય સભિમ સન્નિવાઇય વિવિહા રોગાયકા પરિસહોવસગ્ગા

ફાસા ફુસંતિ, એયંપિ ણં ચરમેહિં ઉસ્સાસનિસ્સાસેહિં વોસિરામિ ત્તિ કટ્ટુ, એમ શરીર વોસિરાવીને, કાલ અણવકખમાણે વિહરિસ્સામિ,

એવી સદ્દહણા પ્રરૂપણાએ કરી, અણસણનો અવસર આવ્યે, અણસણ કરૂં તે વારે સ્પર્શનાએ કરી શુદ્ધ હોજો

એવા અપચ્છિમ મારણંતિય સંલેહણા ઝુસણા આરાહણના પંચ અઈયારા જાણિયવ્વા ન સમાયરિયવ્વા તં જહા તે આલોઉં

ઇહલોગાસંસપ્પઓગે, પરલોગાસંસપ્પઓગે, જીવિયાસંસપ્પઓગે, મરણાસંસપ્પઓગે, કામભોગાસંસપ્પઓગે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

એમ સમકિતપૂર્વક બાર વ્રત સંલેખણા સહિત તથા નવાણું અતિચાર એને વિષે જે કોઈ અતિક્રમ, વ્યતિક્રમ, અતિચાર, અણાચાર, જાણતા અજાણતા મન, વચન, કાયાએ કરી સેવ્યા હોય, સેવરાવ્યા હોય, સેવતા પ્રત્યે અનુમોદ્યા હોય, તે અરિહંત, અનંત સિદ્ધ ભગવાનની સાખે તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

૧ પ્રાણાતિપાત, ૨ મૃષાવાદ, ૩ અદત્તાદાન, ૪ મૈથુન, ૫ પરિગ્રહ, ૬ ક્રોધ ૭ માન, ૮ માયા, ૯ લોભ, ૧૦ રાગ, ૧૧ દ્વેષ, ૧૨ કલહ, ૧૩ અભ્યાખ્યાન, ૧૪ પૈશુન્ય, ૧૫ પરપરિવાદ, ૧૬ રઇઅરઇ, ૧૭ માયામોસો, ૧૮ મિચ્છાદંસણસલ્લ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

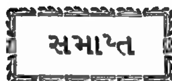
૨૫ પ્રકારના મિથ્યાત્વ

૧ અભિગ્રહિક મિથ્યાત્વ, ૨ અણાભિગ્રહિક મિથ્યાત્વ, ૩ અભિનિવેશિક મિથ્યાત્વ, ૪ સાશયિક મિથ્યાત્વ ૫ અણાભોગ મિથ્યાત્વ, ૬ લૌકિક મિથ્યાત્વ, ૭ લોકોત્તર મિથ્યાત્વ, ૮ કુપ્રાવચન મિથ્યાત્વ, ૯ જીવને અજીવ સરધે તે મિથ્યાત્વ ૧૦ અજીવને જીવ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૧ સાધુને કુસાધુ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૨ કુસાધુને સાધુ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૩ આઠ કર્મથી મૂકાણા, તેને નથી મૂકાણા સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૪ આઠ કર્મથી નથી મૂકાણા, તેને મૂકાણા સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૫ ધર્મને અધર્મ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૬ અધર્મને ધર્મ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૭ જિનમાર્ગને અન્ય માર્ગ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૮ અન્ય માર્ગને જિનમાર્ગ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૯ જિન માર્ગથી ઓછુ પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૦ જિન માર્ગથી અધિકુ પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૧ જિનમાર્ગથી વિપરીત પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૨ અવિનયમિથ્યાત્વ, ૨૩ અકિરિયામિથ્યાત્વ, ૨૪ અજ્ઞાનમિથ્યાત્વ, ૨૫ આશાતના–મિથ્યાત્વ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

ચોદ પ્રકારના સમૂચ્છિમ

ઉચ્ચારેસુ પાસવણેસુ ખેલેસુ સિંઘાણેસુ વતેસુ પિત્તેસુ પૂએસુ સોણિએસુ સુકકેસુ સુકકપોગ્ગલપગ્સિાડિએસુ વિગયજીવકલેવરેસુ, ઇત્થીપુરિસસજોગેસુ, નગર નિદ્ધમણેસુ, સવ્વેસુ ચેવ અસુઇઠાણેસુ વા તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકડં

આ ઠેકાણે 'ઇચ્છામિ ઠામિ આલોઉં જો મે દેવસિઓ અઇઆરો કઓ'થી 'જં ખડિયં જં વિરાહિયં તસ્સ મિચ્છામિ દુકકડં' સુધીનો પાઠ કહેવો પછી નવકાર મત્ર અને 'કરેમિ ભંતે સામાઇયં'થી 'અપ્પાણં વોસિરામિ' સુધી પાઠ કહેવો



ફાસા ફુસંતિ, એય પિ ણં ચરમેહિં ઉસ્સાસનિસ્સાસેહિં વોસિરામિ ત્તિ કટ્ટુ, એમ શરીર વોસિરાવીને, કાલ અણુવકખમાણે વિહરિસ્સામિ,

એવી સદ્દહણા પ્રરૂપણાએ કરી, અણસણનો અવસર આવ્યે, અણસણ કરૂ તે વારે સ્પર્શનાએ કરી શુદ્ધ હોજો

એવા અપચ્છિમ મારણંતિય સંલેહણા ઝુસણા આરાહણાના પંચ અઈયારા જાણિયવ્વા ન સમાયરિયવ્વા તં જહા તે આલોઉં

ઇહલોગાસંસપ્પઓગે, પરલોગાસંસપ્પઓગે, જીવિયાસંસપ્પઓગે, મરણાસંસપ્પઓગે, કામભોગાસંસપ્પઓગે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

એમ સમકિતપૂર્વક બાર વ્રત સંલેખણા સહિત તથા નવાણું અતિચાર એને વિષે જે કોઈ અતિક્રમ, વ્યતિક્રમ, અતિચાર, અણાચાર, જાણતા અજાણતા મન, વચન, કાયાએ કરી સેવ્યા હોય, સેવરાવ્યા હોય, સેવતા પ્રત્યે અનુમોદ્યા હોય, તે અરિહંત, અનંત સિદ્ધ ભગવાનની સાખે તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

૧ પ્રાણાતિપાત, ૨ મૃષાવાદ, ૩ અદત્તાદાન, ૪ મૈથુન, ૫ પરિગ્રહ, ૬ ક્રોધ ૭ માન, ૮ માયા, ૯ લોભ, ૧૦ રાગ, ૧૧ દ્વેષ, ૧૨ કલહ, ૧૩ અભ્યાખ્યાન, ૧૪ પૈશુન્ય, ૧૫ પરપરિવાદ, ૧૬ રઈઅરઈ, ૧૭ માયામોસો, ૧૮ મિચ્છાદંસણસલ્લ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

૨૫ પ્રકારના મિથ્યાત્વ

૧ અભિગ્રહિક મિથ્યાત્વ, ૨ અણાભિગ્રહિક મિથ્યાત્વ, ૩ અભિનિવેશિક મિથ્યાત્વ, ૪ સાશયિક મિથ્યાત્વ ૫ અણાભોગ મિથ્યાત્વ, ૬ લૌકિક મિથ્યાત્વ, ૭ લોકોત્તર મિથ્યાત્વ, ૮ કુપ્રાવચન મિથ્યાત્વ, ૯ જીવને અજીવ સરધે તે મિથ્યાત્વ ૧૦ અજીવને જીવ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૧ સાધુને કુસાધુ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૨ કુસાધુને સાધુ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૩ આઠ કર્મથી મૂકાણા, તેને નથી મૂકાણા સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૪ આઠ કર્મથી નથી મૂકાણા, તેને મૂકાણા સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૫ ધર્મને અધર્મ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૬ અધર્મને ધર્મ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૭ જિનમાર્ગને અન્ય માર્ગ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૮ અન્ય માર્ગને જિનમાર્ગ સરધે તે મિથ્યાત્વ, ૧૯ જિન માર્ગથી ઓછુ પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૦ જિન માર્ગથી અધિકુ પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૧ જિનમાર્ગથી વિપરીત પ્રરૂપે તે મિથ્યાત્વ, ૨૨ અવિનયમિથ્યાત્વ, ૨૩ અકિરિયામિથ્યાત્વ, ૨૪ અજ્ઞાનમિથ્યાત્વ, ૨૫ આશાતના-મિથ્યાત્વ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કડં

દાતાઓની નામાવલી

આદ્ય મુરબ્બીશ્રી, મુરબ્બીશ્રી, મહાયક મેમ્બરો
તથા મેમ્બરોની યાદી



ગામવાર કક્કાવારી લીસ્ટ



તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા ૨૮-૨-૫૮ સુધીમા
દાખલ થએલ મેમ્બરો,



(રૂા ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમા સામેલ કરી નથી)

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવા રોડ – ગ્રીન લોજ પાસે
રાજકોટ

શાસ્ત્રોની માહીતી.

૧	શ્રી ઉપાસક દશાંગ સૂત્ર		પહેલી આવૃત્તિ		ખલાસ	
	,,		બીજી	,,	તૈયાર છે	૮-૮-૦
૨	,, દશ વૈકાલિક ,,	ભાગ ૧	પહેલી	,,	ખલાસ	
	,,		બીજી	,,	તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૩	,, દશવૈકાલિક ,,	ભાગ ૨	પહેલી	,,		૭-૮-૦
૪	,, નિરયાવલિકા ,,	ભાગ ૧ થી ૫	પહેલી	,,		૭-૮-૦
૫	,, આચારાંગ ,,	ભાગ ૧	પહેલી	,,	ખલાસ	
	,,		બીજી	,,	તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૬	,, આચારાંગ ,,	ભાગ ૨	પહેલી	,,		૧૦-૦-૦
૭	,, આચારાંગ ,,	ભાગ ૩	પહેલી	,,		૧૦-૦-૦
૮	,, આવશ્યક ,,		પહેલી	,,	ખલાસ	
	,,		બીજી	,,	તૈયાર છે	૭-૮-૦
૯	,, વિપાક ,,		પહેલી	,,	ખલાસ	
	,,		બીજી	,,	છપાય છે	૧૦-૦-૦
૧૦	,, દશાશ્રુત સ્કંધ ,,		પહેલી	,,	ખલાસ	
	,,		બીજી	,,	છપાય છે	૭-૦-૦
૧૧	,, અન્તકૃત દશાંગ ,,		પહેલી	,,	ખલાસ	
	,,		બીજી	,,	છપાય છે	૫-૦-૦
૧૨	,, અનુત્તરોપપાતિક ,,		પહેલી	,,	ખલાસ	
	,,		બીજી	,,	છપાય છે	૩-૮-૦
૧૩	,, નંદી ,,		પહેલી	,,	છપાય છે	
૧૪	,, ઉવવાઈ ,,		પહેલી	,,	છપાય છે	
૧૫	,, ઉત્તરાધ્યયન ,,		પહેલી	,,	છપાય છે	
૧૬	,, કલ્પ ,,		પહેલી	,,	છપાય છે	૩૫-૦-૦

(પત્રાકારે) (અગાઉથી ગ્રાહક થનારને માટે રૂ। ૨૫-૦-૦)

રાજકોટ તા ૧૫-૩-૫૮



દાતાઓની નામાવલીં

આદ્ય મુરબ્બીશ્રી, મુરબ્બીશ્રી, સહાયક મેમ્બરો
તથા મેમ્બરોની યાદી



ગામવાર કક્કાવારી લીસ્ટ



તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા ૨૮-૨-૫૮ સુધીમા
દાખલ થએલ મેમ્બરો,



(રૂા ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમા સામેલ કરી નથી)

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવા રોડ – ગ્રીન લોજ પાસે
રાજકોટ

શાસ્ત્રોની માહિતી.

૧	શ્રી ઉપાસક દશાંગ સૂત્ર		પહેલી આવૃત્તિ	ખલાસ	
	"		બીજી "	તૈયાર છે	૮-૮-૦
૨	" દશ વૈકાલિક "	ભાગ ૧	પહેલી "	ખલાસ	
	"		બીજી "	તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૩	" દશવૈકાલિક "	ભાગ ૨	પહેલી "		૭-૮-૦
૪	" નિરયાવલિકા "	ભાગ ૧ થી ૫	પહેલી "		૭-૮-૦
૫	" આચારાંગ "	ભાગ ૧	પહેલી "	ખલાસ	
	"		બીજી "	તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૬	" આચારાંગ "	ભાગ ૨	પહેલી "		૧૦-૦-૦
૭	" આચારાંગ "	ભાગ ૩	પહેલી "		૧૦-૦-૦
૮	" આવશ્યક "		પહેલી "	ખલાસ	
	"		બીજી "	તૈયાર છે	૭-૮-૦
૯	" વિપાક "		પહેલી "	ખલાસ	
	"		બીજી "	છપાય છે	૧૦-૦-૦
૧૦	" દશાશ્રુત સ્કંધ "		પહેલી "	ખલાસ	
	"		બીજી "	છપાય છે	૭-૦-૦
૧૧	" અન્તકૃત દશાંગ "		પહેલી "	ખલાસ	
	"		બીજી "	છપાય છે	૫-૦-૦
૧૨	" અનુત્તરોપપાતિક "		પહેલી "	ખલાસ	
	"		બીજી "	છપાય છે	૩-૮-૦
૧૩	" નંદી "		પહેલી "	છપાય છે	
૧૪	" ઉવવાઈ "		પહેલી "	છપાય છે	
૧૫	" ઉત્તરાધ્યયન "		પહેલી "	છપાય છે	
૧૬	" કલ્પ "		પહેલી "	છપાય છે	૩૫-૦-૦
	(પત્રાકારે)		(અગાઉથી ગ્રાહક થનારને માટે રૂ ૨૫-૦-૦)		

રાજકોટ તા ૧૫-૩-૫૮



૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ ભાણજીભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મ્હેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૯	મ્હેતા સોમચંદ નેણસીભાઈ (કરાચીવાલા)	મોરબી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખંભાત	૧૦૦૧
૨૧	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	મુંબઈ	૧૦૦૦
૨૨	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ	શિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો-૩૬

(ઓછામાં ઓછી રૂ ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રંગજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા શેઠ ગુલાબભાઈ વેલસીભાઈ	વઢવાણ શહેર	૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓધડભાઈ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	બાટવીયા ગીરધર પ્રમાણંદ હા અમીચંદભાઈ	ખાખીજાળીઆ	૫૨૭
૭	મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ સો મણીબાઈ તરફથી હા મુળચંદ દેવચંદ (કરાચીવાલા)	મલાડ	૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ સૌ ચંપાબેન ગોસલીયા	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૦	પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ સો સમરતબેન (રાજસીતાપુરવાળા)	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોતમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ [illegible]ગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાચીવાળા)	લીંબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મ્હેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજી શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧
૧૯	સ્વ પિતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે હા વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જાબુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઓરંગાબાદ	૫૦૦

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ-૪

(ઓછામા ઓછી રૂા ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મગળદાસભાઇ જાણીતા મીલમાલીક	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચદ કાલીદાસભાઇ વારીયા હા શેઠ લાલચદભાઇ, જેચદભાઇ, નગીનભાઇ, વૃજલાલભાઇ તથા વલ્લભદાસભાઇ	ભાણવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચદભાઇ અજરામર હા હરગોવીંદભાઇ જેચદભાઇ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઇ જીવનભાઇ	સોલાપુર	૫૦૦૧

મુરબ્બીશ્રીઓ-૨૨

(ઓછામા ઓછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	વકીલ જીવરાજભાઇ વર્ધમાન કોઠારી હ કહાનદાસભાઇ તથા વેણીલાલભાઇ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઇ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મ્હેતા ગુલાબચદ પાનાચદ	રાજકોટ	૩૨૮લાાત્ન્ના
૪	સ્વ પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હ ભાવસાર મોતીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મ્હેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઇ વેલજીભાઇ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ હેરચદ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચદ હેરચદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચદ વસા હા મોહનલાલભાઇ તથા મોતીલાલભાઇ	મુબઇ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી	૧૯૯૩
૧૨	મ્હેતા સોમચદ તુલસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ. સો મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મ્હેતા પોપટલાલ માવજીભાઇ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચદ અમરશી હા દલપતરામભાઇ	જામજોધપુર	૧૦૦૨
૧૫	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	દામનગર	૧૦૦૨

૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ ભાણજીભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મ્હેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૯	મ્હેતા સોમચંદ નેણશીભાઈ (કરાચીવાલા)	મોરબી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખંભાત	૧૦૦૧
૨૧	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	મુંબઈ	૧૦૦૦
૨૨	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ	શિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો-૩૬

(ઓછામાં ઓછી રૂા ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રંગજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા શેઠ ગુઆભાઈ વેલસીભાઈ	વઢવાણ શહેર	૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	ખાટવીયા ગીરધર પ્રમાણંદ હા અમીચંદભાઈ	ખાખીજાળીઆ	૫૨૭
૭	મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ મણીબાઈ તરફથી હા મુળચંદ દેવચંદ (કરાચીવાલા)	મલાડ	૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ સૌ ચંપાબેન ગોસલીયા	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૦	પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ સૌ સમરતબેન (રાજસીતાપુરવાળા)	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાચીવાળા)	લીંબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મ્હેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોર્વીદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજી શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧
૧૯	સ્વ પિતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે હા વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જાબુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઓરંગાબાદ	૫૦૦

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ-૪

(ઓછામા ઓછી રૂ ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મગળદાસભાઈ જાણીતા-મીલમાલીક	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા શેઠ લાલચદભાઈ, જેચદભાઈ, નગીનભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ	ભાણવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચદભાઈ અજરામર હા હરગોવીંદભાઈ જેચદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર	૫૦૦૧

મુરબ્બીશ્રીઓ-૨૨

(ઓછામા ઓછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હ કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મ્હેતા ગુલાબચદ પાનાચદ	રાજકોટ	૩૨૮૯ાા=ાા
૪	સ્વ પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હ ભાવસાર મોતીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મ્હેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ હેરચદ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચદ હેરચદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચદ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુબઈ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી	૧૯૬૩
૧૨	મ્હેતા સોમચદ તુલસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ. સૌ મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મ્હેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચદ અમરશી હા દલપતરામભાઈ	જામજોધપુર	૧૦૦૨
૧૫	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	દામનગર	૧૦૦૨

૬	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	૨૫૦
૭	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૮	શેઠ લાલભાઈ મંગળદાસ	૨૫૧
૯	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હા. કાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૧૦	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ (પાટણવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	૨૫૧
૧૨	શાહ નરસિંહદાસ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૧૩	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. વહીવટ કર્તા શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોતમદાસ	૨૫૧
૧૪	શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈનસંઘ હા. ચંદુલાલ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૫	શાહ ચીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o શાહ બાલાભાઈ મહાસુખરામ	૨૫૧
૧૬	શાહ ભાઈલાલ ઉજમશી	૨૫૧
૧૭	શ્રી સુખલાલ ડી. શેઠ હા. ડૉ. કુ. સરસ્વતીબ્હેન શેઠ	૨૫૧
૧૮	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ કાન્તીલાલ જીવણલાલ	૨૫૧
૧૯	મોદી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	૨૫૧
૨૦	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	૨૫૧
૨૧	શ્રી છકોટી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨૨	શેઠ પોપટલાલ હંસરાજના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાબુલાલ પોપટલાલ	૨૫૧
૨૩	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૨૪	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	૨૫૧
૨૫	શાહ મણીલાલ આશારામ	૨૫૧
૨૬	શાહ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	૨૫૧
૨૭	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	૨૫૧
૨૮	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	૨૫૧
૨૯	મંઘવી જીવણલાલ છગનલાલ (સ્થા. જૈન)	૨૫૧
૩૦	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધ્રાગધ્રાવાળા	૨૫૧
૩૧	અ. સૌ. બેન રતનબાઈ નાહેચા હા. શાહ ધુલાજી ચંપાલાલજી	૨૫૧
૩૨	શાહ હરિલાલ જેઠાલાલ ભાડલાવાળા	૨૫૧
૩૩	શ્રી સરસપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	૨૫૧
૩૪	શેઠ પુખરાજજી સમતીરામજી સાદડીવાળા	૨૫૧
૩૫	શેઠ લાલચંદ મીશ્રીલાલ	૨૫૧

૨૨	શ્રી સ્થાકવાસી જૈનસંઘ	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ શેઠ અનરાજજી લાલચંદજી		
	૧૨૫ ધુકડચંદજી રૂપચંદજી		
	૧૦૦ દગડુમલજી ચાંદમલજી		
	૫૦૦		
૨૩	મ્હેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ	ધ્રાફા	૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરૂષોતમ હા ઈન્દુકુમાર	ચોરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા જૈનસંઘ હા ખાટવીઆ અમીચંદ ગીરધરભાઈ	ખાખીજાળીઆ	૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ બાવાભાઈ હા ફુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઈ	૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા મુળજીભાઈ મણીલાલ	મુંબઈ	૫૦૧
૨૯	સ્વ કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ	મુંબઈ	૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી (જેતપુરવાળા)	મુંબઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયંતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	બારરોડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી બેન ધીરજકુંવર ચુનીલાલ મ્હેતા	ભાણવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ	ધ્રાફા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧



૩૧૯ મેમ્બરોનું ગામ વાર લીસ્ટ

અમદાવાદ તથા પરાઓ

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હા ફકીરચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૨૫૧

૬ પૂજ્ય પિતાશ્રી મોતીલાલજી મ્હેતાના સ્મરણાર્થે
હા રણજીતલાલજી મોતીલાલજી મ્હેતા ૨૫૧
૭ શેઠ છગનલાલ બાગરેચા ૨૫૧

ઉમરગાવરોડ

૧ શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા ૨૫૧

ઉપલેટા

૧ શેઠ જેઠાલાલ ગોવધનદાસ ૨૫૧
૨ સ્વ બેન સતોકબેન કચરા હા, ઓતમચદભાઈ,
છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા) ૨૫૧
૩ શેઠ ખુશાલચદ કાનજીભાઈ હા શેઠ પ્રતાપભાઈ ૨૫૧
૪. મધાણી મૂળશકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા તેમના પુત્રો જયતીલાલભાઈ તથા રમણીકલાલ ૨૫૧

એડન કેમ્પ

૧ શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી ૨૫૧

કલોલ

૧ શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઈના સ્મરણાર્થે હા શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ ૨૫૧
૨ ડૉ માયાચદ મગનલાલ શેઠ હા ડૉ રતનચદ મયાચદ ૨૫૧
૩ સ્વ નાથાલાલ ઊમેદચદના સ્મરણાર્થે હા શાહ રતીલાલ નાથાલાલ ૨૫૧
૪ શાહ મણીલાલ તલકચદના સ્મરણાર્થે હા મારફતીયા ચદુલાલ મણીલાલ ૨૫૧

કડી

૧ શ્રી સ્થા દરીયાપુરી જૈન સઘ હા ભાવસાર દામોદરદાસ ઈશ્વરભાઈ ૨૫૧

કોલકી

૧ પટેલ ગોવીંદલાલ ભગવાનજી ૨૫૧
૨ પટેલ ખીમજી જેઠાભાઈ વાઘણી (તેમના સ્વ સુપુત્ર રામજીભાઈના સ્મરણાર્થે ૩૦૨

ખીચન

૧ શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ ૨૫૧

ખભાત

૧ શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા પટેલ કાન્તીલાલ અબાલાલ ૨૫૧
૩ શાહ સાકરચદ મોહનલાલ ૨૫૧
૪ શાહ ચદુલાલ હરીલાલ ૨૫૧

૩૬ સ્વ પિતાશ્રી જવાહીરલાલજી તથા પૂજ્ય ચાચાજી હજારીમલજી બરડીયાના સ્મરણાર્થે હા મૂળચંદ જવાહરલાલ ૨૫૧
૩૭ સ્વ ભાવસાર બબાભાઇ (મંગળદાસ) પાનાચંદના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્ની પુરીબેન ૨૫૧
૩૮ સ્વ પિતાશ્રી રવજીભાઇ તથા સ્વ માતુશ્રી મૂળીબાઇના સ્મરણાર્થે હા કકલભાઇ કોઠારી ૩૦૧
૩૯ ભાવસાર કેશવલાલ મગનલાલ ૨૫૧
૪૦ શાહ કેશવલાલ નાનચંદ જાખડાવાળા હા પાર્વતીબેન ૨૫૧
૪૧ શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ રાજસીતાપુરવાળા (સાબરમતી) ૨૫૧
૪૨ શ્રી સ્થા જૈન સંઘ (સાબરમતી) ૨૫૦
૪૩ બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી (રાણપુરવાળા) ૩૦૧

અમલનેર

૧ શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઇ ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા જૈનસંઘ હા શાહ ગાડાલાલ ભીખાલાલ ૨૫૧

આણંદ

૧ શેઠ રમણીકલાલ એ કપાસી હ મનસુખલાલભાઇ ૨૫૧

આસનસોલ

૧ બાવીસી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્ની મણીબાઇ તરફથી હા રમણીકલાલ, અનીલકાંત, વિનોદરાય ૨૫૧

આટકોટ

૧ શાહ ચુનીલાલ નારણજી ૩૦૧

ઉદેપુર

૧ શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ ૨૫૧
૨ શેઠ મગનલાલજી બાગરેચા ૨૫૧
૩ અ સૌ બ્હેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલલજી નાહરના ધર્મપત્ની હા શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ ૨૫૧
૪ સ્વ શેઠ કજુવાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા ૨૫૧
૫ સ્વ શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે હા પ્રાણલાલ હીરાલાલ સાખલા ૨૫૧

જુનાગઢ

૧ શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હેરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

જુનારદેન (મધ્ય પ્રાંત)

૧ ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ ૨૫૧

જેતપુર

૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા નરભેરામભાઈ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧
૨ દોશી છોટાલાલ વનેચંદ ૨૫૧
૩ કોઠારી ડોલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

જેતલસર

૧ શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧
૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જબકબેન તરફથી હા શાન્તીલાલભાઈ ગોંડલવાળા ૨૫૧

ડભાસ

૧ સ્વ તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જીવતીબાઈ તરફથી હા જયંતીભાઈ ૨૫૧

ડોડાઇચા

૧ શ્રી સ્થા જૈન સંઘ હા શેઠ ચંપાલાલજી મારફતે ૨૫૦

થાનગઢ

૧ શાહ ઠાકરશીભાઈ કરશનજી ૨૫૧
૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા સુખલાલભાઈ ૨૫૧

દહાણુ રોડ (થાણા)

૧ શાહ હરજીવનદાસ ઓધડ ખંધાર (કરાચીવાળા) ૨૫૧

દિલ્હી

૧ લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલ બેંકવાળા) ૩૫૧

ધાર (મધ્યપ્રાંત)

૧ શેઠ સાગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧

ગુંદા

૧ સ્વ મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર — ૨૫૧

ગોંડલ

૧ સ્વ ખાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસના ધર્મપત્નિ કમળબાઇ તરફથી
હા માણેકચંદભાઇ તથા કપુરચંદભાઇ — ૨૫૧

૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ
લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના બીજા વરસીતપની ખુશાલીમા — ૩૦૧

૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા હરીલાલ જુઠાભાઇ — ૩૦૧

ગોધરા

૧ શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ — ૩૦૧

ઘટકણુ

૧ શાહ મંદુલાલ કેશવલાલ — ૨૫૧

ઘોલવાડ (થાણા)

૧ મહેતા ગુલાબચંદજી ગંભીરલાલજી — ૩૦૦

ચુડા (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રી સ્થા જૈનસંઘ હા રતીલાલ ગાંધી પ્રમુખ — ૨૫૧

જલેસર (બાલાસોર)

૧ સંઘવી નાનચંદ પોપટભાઈ થાનગઢવાળા — ૨૫૧

જામજોધપુર

૧ શ્રી સ્થા જૈનસંઘ — ૩૮૭

૨ શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા — ૨૫૧

જામનગર

૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી — ૨૫૧

૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી — ૨૫૧

૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઇ — ૨૫૧

જામખંભાળીઆ

૧ શેઠ વસનજી નારણજી — ૨૫૧

૨ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા મ્હેતા રણછોડદાસ પરમાણંદ — ૨૫૧

૩ સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ — ૨૫૧

જુનાગઢ

૧ શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

જુનારદેન (મધ્ય પ્રાંત)

૧ ચેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ ૨૫૧

જેતપુર

૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા નરભેરામભાઈ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧
૨ દોશી છોટાલાલ વનેચંદ ૨૫૧
૩ કોઠારી ડોલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

જેતલસર

૧ શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧
૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જબકબેન તરફથી હા શાન્તીલાલભાઈ ગોડલવાળા ૨૫૧

ડભાસ

૧ સ્વ તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જીવતીબાઈ તરફથી હા જયંતીભાઈ ૨૫૧

ડેડાઈચા

૧ શ્રી સ્થા જૈન સંઘ હા શેઠ ચંપાલાલજી મારવે ૨૫૦

થાનગઢ

૧ શાહ ઠાકરશીભાઈ કરશનજી ૨૫૧
૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા સુખલાલભાઈ ૨૫૧

દહાડ રોડ (થાણા)

૧ શાહ હરજીવનદાસ ઓધડ ખંધાર (કરાચીવાળા) ૨૫૧

દિલ્હી

૧ લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલ બેંકવાળા) ૩૫૧

વાર (મધ્યપ્રાંત)

૧ શેઠ સાગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧

ગુંદા

૧ સ્વ મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
  હા તેમના ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

ગોંડલ

૧ સ્વ બાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસના ધર્મપત્નિ કમળબાઇ તરફથી
  હા માણેકચંદભાઈ તથા કપુરચંદભાઈ ૨૫૧

૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ
  લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના બીજા વરસીતપની ખુશાલીમા ૩૦૧

૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧

ગોધરા

૧ શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

ઘટકેણુ

૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

ઘોલવાડ (થાણા)

૧ મહેતા ગુલાબચંદજી ગંભીરલાલજી ૩૦૦

ચુડા (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રી સ્થા જૈનસંઘ હા રતીલાલ ગાંધી પ્રમુખ ૨૫૧

જલેસર (બાલાસોર)

૧ સંઘવી નાનચંદ પોપટભાઈ થાનગઢવાળા ૨૫૧

જામજોધપુર

૧ શ્રી સ્થા જૈનસંઘ ૩૮૭

૨ શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

જામનગર

૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧

૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧

૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

જામખંભાળીઆ

૧ શેઠ વસનજી નારણજી ૨૫૧

૨ શ્રી સ્થા જૈનસંઘ હા મ્હેતા રણછોડદાસ પરમાણંદ ૨૫૧

૩ સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

બગસરા (ભાયાણી)

૧ સ્વ પૂજ્ય માતુશ્રી જકલબાઈના સ્મરણાર્થે
   હા દેશાઈ વ્રજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧
૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા શેઠ માનસંગ પ્રેમચંદ ૨૫૧

બેરાજા (કચ્છ)

૧ શેઠ ગાગજી કેશવજી (જ્ઞાનભંડાર માટે) ૨૫૧

બોટાદ

૧ સ્વ વસાણી હરગોવીંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે
   હા તેમના ધર્મપત્નિ છબલબેન ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

બોડેલી

૧ શાહ પ્રવીણચંદ્ર નરસીદાસ (સાણંદવાળા) ૨૫૧
૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

ભાણવડ

૧ શેઠ જેચંદભાઈ માણેકચંદ ૩૦૧
૨ સંઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧
૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
૪ શેઠ રામજી જીણાભાઈ ૨૫૧
૫ શેઠ પદમશી ભીમજી ફોફરીઆ ૨૫૧
૬ ફોફરીઆ ગાડાલાલ કાનજીભાઈ હા અ સૌ શાંતાબેન વસનજી ૨૫૧

મદ્રાસ

૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

મનોર (થાણા)

૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવંતગઢવાળા
   હા પૂનમચંદજી શેરમલજી બોટ્યા ૨૫૧

માનકુના (કચ્છ)

૧ સ્વ મહેતા કુંવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
   હા તેમના ધર્મપત્નિ કુંવરબાઈ હરખચંદ ૨૫૧
   (માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે)

ધાગધ્રા

૧	શ્રી સ્થા જૈન મોટા સઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સઘવી નારણદાસ વખતચદ	૩૦૧
૩	ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

ધોરાજી

૧	મ્હેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈના સ્મરણાર્થે હા પટેલ દલીચદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ સૌ બચીબેન બાબુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઓઈલ મીલ પ્રા લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ રાયચદ પાનાચદ શાહના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ રાયચદ	૩૦૧
૬	ગાધી પોપટલાલ જેચદ	૨૫૦

ધધુકા

૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ ગુલાબચદભાઈના સ્મરણાર્થે હા ચોરા પોપટલાલ નાનચદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

નદુરબાર

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા શેઠ પ્રેમચદ ભગવાનલાલ	૨૫૦

પાણસણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	૨૫૧

પાલણપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા મ્હેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થાનકવાસી જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

પાલેજ

૧	સ્વ મનસુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧

બરવાળા (ઘેલાશા)

૧	સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા. તેમના ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧

બગસરા (ભાયાણી)

૧ સ્વ પૂજ્ય માતુશ્રી જકલબાઇના સ્મરણાર્થે
હા દેશાઇ વ્રજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧
૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા શેઠ માનસગ પ્રેમચદ ૨૫૧

બેરાજા (કચ્છ)

૧ શેઠ ગાગજી કેશવજી (જ્ઞાનભડાર માટે) ૨૫૧

બોટાદ

૧ સ્વ વસાણી હરગોવીંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ છબલબેન ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

બોડેલી

૧ શાહ પ્રવીણચદ્ર નરસીદાસ (સાણુદવાળા) ૨૫૧
૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચદ ૨૫૧

ભાણવડ

૧ શેઠ જેચદભાઇ માણેકચદ ૩૦૧
૨ સઘવી માણેકચદ માધવજી ૨૫૧
૩ શેઠ લાલજીભાઇ માણેકચદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
૪ શેઠ રામજી જીણાભાઇ ૨૫૧
૫ શેઠ પદમશી ભીમજી ફોફરીઆ ૨૫૧
૬ ફોફરીઆ ગાડાલાલ કાનજીભાઇ હા અ સૌ શાતાબેન વસનજી ૨૫૧

મદ્રાસ

૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચદજી ૨૫૧

મનોર (થાણા)

૧ શાહ શેરમલજી દેવીચદજી જસવતગઢવાળા
હા પૂનમચદજી શેરમલજી બોલ્યા ૨૫૧

માનકુવા (કચ્છ)

૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ કુવરબાઇ હરખચદ ૨૫૧
(માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસઘ માટે)

ધાગધ્રા

૧	શ્રી સ્થા જૈન મોટા સંઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ	૩૦૧
૩	ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

ધોરાજી

૧	મ્હેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈના સ્મરણાર્થે હા પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ સૌ બચીબેન બાબુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઓઈલ મીલ પ્રા લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાંધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

ધંધુકા

૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા વોરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

નંદુરબાર

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ	૨૫૦

પાણસણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	૨૫૧

પાલણપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા મ્હેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થાનકવાસી જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

પાલેજ

૧	સ્વ મનસુખલાલ મોહનલાલ સંઘવીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧

બરવાળા (ઘેલાશા)

૧	સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા. તેમના ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧

૨૬ સ્વ કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતુશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા જયતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ) ૨૫૧
૨૭ શેઠ ખુશાલભાઈ ખેંગારભાઈ ૨૫૦
૨૮ શાહ પ્રેમજી માલશી ગગર (મલાડ) ૨૫૧
૨૯ સ્વ પિતાશ્રી પત્તુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા કાનજી પતુભાઈ મલાડ ૨૫૧
૩૦ શાહ વેલજી જેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ સ્વ નાનબાઈના સ્મરણાર્થે ૩૦૧
૩૧ સ્વ પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા શાહ દામજી રામશી (મલાડ) ૩૦૧
૩૨ શેઠ ત્રંબકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી શ્રી અજરામર શાસ્ત્રભંડાર લીંબડી માટે (માટુંગા) ૨૫૧
૩૩ સ્વ પિતાશ્રી ભીમજી ઠોરશી તથા માતુશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ ઉમરશીભાઈ ભીમશી કચ્છપતરીવાળા (મલાડ) ૩૦૧
૩૪ શેઠ ચુનીલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા ૨૫૧
૩૫ શાહ વૃજાંગભાઈ શીવજી (મલાડ) ૨૫૧
૩૬ રતીલાલ ભાઈચંદ મહેતા ૨૫૧
૩૭ શાહ ખીમજી મૂળજી પૂંજા (મલાડ) ૨૫૧
૩૮ મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ ૨૫૧
૩૯ ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા નરસીભાઈ વલભજી ૨૫૧
૪૦ અ સૌ સમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજમશી શાહ (મલાડ) ૨૫૧
૪૧ તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ ૨૫૧
૪૨ કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ ૨૫૧
૪૩ સ્વ પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે સુરજબેન તરફથી હા તનસુખલાલભાઈ (મલાડ) ૨૫૧
૪૪ દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૫ શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા) ૨૫૧
૪૬ દોશી ચત્રભુજ સુંદરજી (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૭ દોશી જુગલકીશોર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૫૨૧
૪૮ દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૯ શાહ ત્રીભોવનદાસ માનસિંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે હા શાહ હરખચંદ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
૫૦ શાહ જેઠાલાલ ડામરશી ધાગધ્રાવાળા હા શાહ વાડીલાલ જેઠાલાલ ૨૫૦
૫૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

મુબઇ તથા પરાઓ

૧	શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ હરજીવન કેશવજી	૨૫૧
૩	ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજી (બોરીવલી)	૨૫૨
૪	શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા	૨૫૧
૫	શ્રી વર્ધમાન સ્થા જૈનસઘ હા કેસરીમલજી અનોપચદજી ગુગળીયા(મલાડ)	૨૫૧
૬	શેઠ ડુગરશી હસરાજ વીસરીયા	૨૫૧
૭	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ સૌ કાન્તાબેન રમણીકલાલ	૨૫૧
૮	શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ	૨૫૧
૯	શાહ રતનશી મોણશીની કુપની	૨૫૧
૧૦	શાહ શીવજી માણેક (કચ્છ બેરાજાવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ પાનાચદ સઘજી હા શાહ ત્રબકલાલ રતીલાલ	૨૫૧
૧૨	સ્વ પૂ પિતાશ્રી વીરચદ જેસીગભાઈ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે હા કેશવલાલ વીરચદ શેઠ	૨૫૧
૧૩	શા કુવરજી હસરાજ	૨૫૧
૧૪	સ્વ માતુશ્રી માણેકબેનના સ્મરણાર્થે હા શેઠ વલભદાસ નાનજી (પોરબદરવાળા)	૩૦૧
૧૫	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાદડીવાળા	૨૫૧
૧૬	એક સદ્દગૃહસ્થ હા શેઠ સુદરલાલ માણેકચદ	૨૫૧
૧૭	અ સૌ પાનબાઈ હા શેઠ પદમશી નરસિંભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૧૮	શ્રીયુત અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા દલીચદ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૯	સ્વ શાહ નાગશી સેજપાળ ગુદાળાવાળાના સ્મરણાર્થે હા રામજી નાગશી (મલાડ)	૩૦૧
૨૦	શાહ રામજી કરશનજી થાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચદ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ જટાશકર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે હા રણછોડદાસ (બાબુલાલ) જટાશકર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ ગોડા વણારશી ત્રીભોવન સરસઈવાળાના સ્મરણાર્થે હા જગજીવન વણારશી ગોડા (મલાડ)	૨૫૧
૨૫	સ્વ ત્રીભોવનદાસ વ્રજપાળ વીંછીયાવાળાના સ્મરણાર્થે હા હરગોવિંદદાસ ત્રીભોવનદાસ અજમેરા	૨૫૧

૨૬	સ્વ કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતુશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા જયંતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૨૭	શેઠ ખુશાલભાઈ ખેંગારભાઈ	૨૫૦
૨૮	શાહ પ્રેમજી માલશી ગંગર (મલાડ)	૨૫૧
૨૯	સ્વ પિતાશ્રી પત્તુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા કાનજી પતુભાઈ મલાડ	૨૫૧
૩૦	શાહ વેલજી જેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ સ્વ નાનબાઈના સ્મરણાર્થે	૩૦૧
૩૧	સ્વ પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા શાહ દામજી રામશી (મલાડ)	૩૦૧
૩૨	શેઠ ત્રંબકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી શ્રી અજરામર શાસ્ત્રભંડાર લીંબડી માટે (માટુંગા)	૨૫૧
૩૩	સ્વ પિતાશ્રી ભીમજી ઠોરશી તથા માતુશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ ઉમરશીભાઈ ભીમશી કચ્છપતરીવાળા (મલાડ)	૩૦૧
૩૪	શેઠ ચુનીલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા	૨૫૧
૩૫	શાહ વૃજાંગભાઈ શીવજી (મલાડ)	૨૫૧
૩૬	રતીલાલ ભાઈચંદ મહેતા	૨૫૧
૩૭	શાહ ખીમજી મૂળજી પૂંજા (મલાડ)	૨૫૧
૩૮	મેસર્સ મવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૩૯	ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા નરસીભાઈ વલભજી	૨૫૧
૪૦	અ સૌ સમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજમશી શાહ (મલાડ)	૨૫૧
૪૧	તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	૨૫૧
૪૨	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	૨૫૧
૪૩	સ્વ પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે સુરજબેન તરફથી હા તનસુખલાલભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૪૪	દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૫	શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા)	૨૫૧
૪૬	દોશી ચત્રભુજ સુંદરજી (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૭	દોશી જુગલકીશોર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૫૨૧
૪૮	દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૯	શાહ ત્રીભોવનદાસ માનસિંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે હા શાહ હરખચંદ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૫૦	શાહ જેઠાલાલ ડામરશી ધાગધ્રાવાળા હા શાહ વાડીલાલ જેઠાલાલ	૨૫૦
૫૧	શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ	૨૫૧

૫૨	સ્વ પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોંડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા વૃજલાલ શામળજી બાવીશી	૩૦૧
૫૩	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	૨૫૧
૫૪	સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા લક્ષ્મીચંદ તથા કેશવલાલભાઈ	૩૦૧
૫૫	સ્વ પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે હા દેવશી હંસરાજ કચ્છ બીડાલાવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૫૬	સ્વ માતુશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ પોપટલાલ પાનાચંદ	૨૫૧
૫૭	શેઠ નેમચંદ સ્વરૂપચંદ ખંભાતવાળા હા ભાઈ જેઠાલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૫૮	સ્વ પિતાશ્રી શાહ અંબાલાલ પરસોતમ પાણશણાવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા બાપાલાલભાઈ	૨૫૧
૫૯	બેન કેશરબાઈ ચંદુલાલ જેસીંગલાલ શાહ	૨૫૧
૬૦	ઢડીયા જેસીંગલાલ ત્રીકમજી	૨૫૧
૬૧	શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૬૨	કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચંદજી (ખાર)	૨૫૧
૬૩	સ્વ માતુશ્રી કડવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા તેમના પૌત્ર હકમીચંદ તારાચંદ દોશી (કાંદીવલી)	૨૫૧
૬૪	શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ	૨૫૧
૬૫	શાહ કોરશીભાઈ હીમજીભાઈ	૩૦૧
૬૬	પિતાશ્રી કુંદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે હા મોતીલાલ જીવણમલ (અહમદનગરવાળા)	૨૫૧
૬૭	શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા જૈન સંઘ હા શેઠ રૂપચંદ શીવલાલ કામદાર (અંધેરી)	૨૫૧
૬૮	અ સૌ કમળાબેન કામદાર હા રૂપચંદ શીવલાલ (અંધેરી)	૨૫૧
૬૯	ધી મરીના મોડર્ન હાઈસ્કુલ ટ્રસ્ટ ફંડ હા શાહ મણીલાલ ઠાકરશી	૨૫૧
૭૦	સ્વ માતુશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શામજી શીવજી કચ્છ ગુંદાળાવાળા (ગોરેગાવ)	૨૫૧
૭૧	શાહ રવજીભાઈ તથા બાઈલાલભાઈની કંપની (કાંદીવલી)	૨૫૧
૭૨	અ સૌ. લાધુબેન હા રવજી શામજી (કાંદીવલી)	૨૫૧
૭૩	અ સૌ. બેન કુંદનગોરી મનહરલાલ સંઘવી (ખારરોડ)	૨૫૧
૭૪	શાહ કરશન લધુભાઈ (દાદર)	૩૦૧
૭૫	અ સૌ. રંજનગોરી ચંદુલાલ શાહ C/o ચંદુલાલ લક્ષ્મીચંદ (માટુંગા)	૨૫૧
૭૬	મ્હેતા મોટર સ્ટોર્સ હા અનોપચંદ ડી મહેતા (મુંબઈ)	૨૫૧

માડવી (કચ્છ)

૧	શ્રી સ્થા ૭ કોટી જૈન સંઘ હા મહેતા ચુનીલાલ વેલજી	૨૭૭

મેસાણા

૧	શાહ પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા શીવલાલ પદમશી વીરમગામવાળા	૨૫૧

મોમ્બાસા

૧	શાહ દેવરાજ પેથરાજ	૨૫૦
૨	શ્રીયુત નાથાલાલ ડી મહેતા	૨૫૧

યાદગીરી

૧	શેઠ બાદરમલજી સૂરજમલજી બેન્કર્સ	૨૫૦

રાણપુર (ઝાલાવાડ)

૧	શ્રીમતી માતુશ્રી અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા ડૉ નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ	૨૫૧

રાણાવાસ (મારવાડ)

૧	શેઠ જવાનમલજી નેમીચંદજી હા બાબુરીખબચંદજી	૩૦૧

રાજકોટ

૧	ધી વાડીલાલ ડાઇંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કસ	૪૦૦
૨	શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ	૨૫૧
૩	બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા)	૨૫૦
૪	શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (એન્જીનીઅર સાહેબ)	૨૫૧
૫	શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચંદ તેમના ધર્મપત્નિના વરસીતપ પ્રસંગે	૨૫૧
૬	ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ વકીલ	૨૫૧
૭	શેઠ પ્રજારામ વીઠ્ઠલજી	૨૫૧
૮	શેઠ હકમીચંદ દીપચંદ (ગોંડલવાળા) સ્ટેશનમાસ્તર	૨૫૧
૯	બ્હેન સર્યુબાળા નોત્તમલાલ જસાણી (વરસીતપની ખુશાલી) -	૨૫૧
૧૦	મોદી સૌભાગ્યચંદ મોતીચંદ	૨૫૧
૧૧	બદાણી ભીમજી વેલજી તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ સમરતબેનના વરસીતપની ખુશાલી	૨૫૧
૧૨	દોશી મોતીચંદ ધારશીભાઈ (રીટાયર્ડ એન્જીનીઅર સાહેબ)	૨૫૧
૧૩	કામદાર ચંદુલાલ જીવરાજ	૨૫૦
૧૪	હેમાણી ઘેલુભાઈ સવચંદ	૨૫૧

રંગુન

૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલના ધર્મપત્નિ અ સૌ કમળાબેન ૨૫૧

લખતર

૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા શાહ શાન્તીલાલ રાયચંદ ૨૫૧
૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧
૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
૫ શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ શાન્તીલાલ જાદવજી ૨૫૧
૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ સમરતબેન
વ્રજલાલ તરફથી હા જયંતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાલપુર

૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧
૨ શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ ૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ
(સીવીલ એન્જીનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

લીમડી (પંચમહાલ)

૧ શાહ કુવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧
૨ છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧

લોનાવલા

૧ શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

વઢવાણ શહેર

૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા સવાઈલાલ ત્રંબકલાલ શાહ ૨૫૧
૨ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧
૩ સંઘવી મુળચંદ બેચરભાઈ હા ભાઈ જીવણલાલ ગફલદાસ ૨૫૧
૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧
૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

૬ વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ ૨૫૧
૭ સઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ ૨૫૧
૮ શાહ દેવશી દેવકરણ ૨૫૧
૯ વોરા ડોસાભાઈ લાલચદ સ્થા જૈન સઘ હા વોરા નાનચદ શીવલાલ ૨૫૧
૧૦ વોરા ધનજીભાઈ લાલચદ સ્થા જૈન સઘ હા વોરા પાનાચદ ગોબરધન ૨૫૧
૧૧ દોશી વીરચદ સુરચદ હા દોશી નાનચદ ઉજમશી ૨૫૧
૧૨ સ્વ વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ ૨૫૧

વટામણ

૧ શ્રી વટામણ સ્થા જૈનસઘ હા શ્રી ડાહ્યાભાઈ હલુભાઈ પટેલ ૨૫૧

વલસાડ

૧ શાહ ખીમચદ મૂળજીભાઈ ૨૫૧

વણી

૧ મહેતા નાનાલાલ છગનલાલના ધર્મપત્નિ સ્વ ચચળબેન તથા
પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ ૨૫૧

વડોદરા

૧ કામદાર કેશવલાલ હિમતરામ પ્રોફેસર સાહેબ (ગોંડલવાળા) ૨૫૧
૨ વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ ૨૫૧
૩ સ્વ પિતાશ્રી શાહ ફકીરચદ પુજાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા શાહ રમણલાલ ફકીરચદ ૨૫૧

વડીયા

૧ પચમીયા ભવાનભાઈ કાળાભાઈ (જેતપુરવાળા) ૨૫૧

વાકાનેર

૧ માસ્તર કાન્તીલાલ ત્રબકલાલ ખખ્ખરીયા ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા જૈન સઘ (રૂા ૨૫૦ બાકી) ૨૫૧
૩ દફતરી ચુનીલાલ પોપટભાઈ મોરબીવાળા હા ભાઈ પ્રાણલાલ ચુનીલાલ ૨૫૧

વીંછીયા

૧ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા અજમેરા રાયચદ વૃજપાળ ૨૫૧

રાજુન

૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલના ધર્મપત્નિ અ સૌ કમળાબેન ૨૫૧

લખતર

૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા શાહ શાન્તીલાલ રાયચંદ ૨૫૧
૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧
૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
૫ શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ શાન્તીલાલ જાદવજી ૨૫૧
૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ સમરતબેન
વૃજલાલ તરફથી હા જયતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાલપુર

૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧
૨ શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ ૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ
(સીવીલ એન્જીનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

લીમડી (પંચમહાલ)

૧ શાહ કુંવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧
૨ છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧॥=

લોનાવલા

૧ શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

વઢવાણ શહેર

૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા સવાઈલાલ ત્રંબકલાલ શાહ ૨૫૧
૨ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧
૩ સંઘવી મુળચંદ બેચરભાઈ હા ભાઈ જીવણલાલ ગફલદાસ ૨૫૧
૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧
૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

સતારા

1. સ્વ મદનલાલજી કુંદનમલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્નિ રાજકુવરબાઈ મદનલાલજી — ૨૫૧

સાલબની (બંગાળ)

1. દોશી ચુનીલાલ ફુલચંદ મોરબીવાળા — ૨૫૦

સાણંદ

૧	શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ	૩૦૧
૨	અ સૌ ચંપાબેન હા દોશી જીવરાજ લાલચંદ	૨૫૧
૩	પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ	૨૫૧
૪	શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ	૨૫૧
૫	પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીંબડીવાળાના સ્મરણાર્થે હા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી	૨૫૧
૬	પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે હા પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૭	સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ જયંતીલાલ નારણદાસ	૨૫૧

સુરત

1. શ્રી સ્થા જૈન સંઘ હા શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ — ૨૫૧

સુવઇ (કચ્છ)

1. સાવળા શામજી હીરજી તરફથી સદાનંદી જૈન મુનીશ્રી છોટાલાલ મહારાજના ઉપદેશથી સુવઈ સ્થા જૈન સંઘ જ્ઞાનભંડારને ભેટ — ૨૫૧

સુરેન્દ્રનગર

૧	શેઠ ચાપશીભાઈ સુખલાલ	૨૫૧
૨	ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદ	૨૫૧
૩	સ્વ કેશવલાલ મૂળજીભાઈના ધર્મપત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ ભાઈલાલ કેશવલાલ (થાનગઢવાળા)	૨૫૧
૪	શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ	૨૫૧

વીરમગામ

૧	શાહ વાડીલાલ નેમચંદ વકીલ	૨૫૦
૨	શાહ વીઠલભાઈ મોદી માસ્તર	૨૫૧
૩	શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ	૨૫૧
૪	શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા)	૨૫૧
૫	શાહ અમુલખ (બચુભાઈ) નાગરદાસના ધર્મપત્નિ અ સૌ બેન લીલાવતીના વરસીતપના પારણાની ખુશાલીમા હા ભાઈ કાન્તીલાલ નાગરદાસ	૩૦૦
૬	સ્વ શેઠ ઉજમશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૭	સ્વ શેઠ મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા ખીમચંદભાઈ (ખારાઘોડાવાળા)	૨૫૧
૮	સ્વ શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ	૨૫૧
૯	સંઘવી જેચંદભાઈ નારણદાસ	૨૫૧
૧૦	સ્વ શાહ વેલશીભાઈ સાકરચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા)	૨૫૧
૧૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી (મોટી બેનના સ્મરણાર્થે)	૨૫૧
૧૨	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈના ધર્મપત્નિ અ સૌ નારંગીબેનના વરસીતપ નિમીત્તે હા શાન્તીભાઈ	૨૫૧
૧૩	સ્વ છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ કમળાબેન તરફથી હા મંજુલાકુમારી	૨૫૧
૧૪	શ્રી સ્થા જૈન શ્રાવિકાસંઘ હા પ્રમુખ અ સૌ રંભાબેન વાડીલાલ	૨૫૧
૧૫	સ્વ ત્રીભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ અ સૌ ચંચળબેનના સ્મરણાર્થે હા ડૉ હિમતલાલ સુખલાલ	૨૫૧
૧૬	શાહ મૂળચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ	૨૫૧
૧૭	શેઠ મોહનલાલ પીતાંબરદાસ હા ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલભાઈ	૨૫૧
૧૮	શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતપ નિમીત્તે હા નથુભાઈ નાનચંદ શાહ	૩૦૧
૧૯	સ્વ મણીયાર પરસોતમદાસ સુંદરજીના સ્મરણાર્થે હા શેઠ સાકરચંદ પરસોતમદાસ	૨૫૧
૨૦	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	૨૫૧

વેરાવળ

૧	શાહ કેશવલાલ જેચંદભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ ખીમચંદ સૌભાગ્યચંદ વસનજી	૨૫૧

સતારા

૧ સ્વ મદનલાલજી કુંદનમલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ રાજકુવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

સાલબની (બંગાળ)

૧ દોશી ચુનીલાલ ફુલચંદ મોરબીવાળા ૨૫૦

સાણંદ

૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧
૨ અ સૌ ચંપાબેન હા દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧
૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧
૪ શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧
૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીંબડીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧
૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
૭ સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ જયંતીલાલ નારણદાસ ૨૫૧

સુરત

૧ શ્રી સ્થા જૈન સંઘ હા શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ ૨૫૧

સુવઇ (કચ્છ)

૧ સાવળા શામજી હીરજી તરફથી સદાનંદી જૈન મુનીશ્રી છોટાલાલ
મહારાજના ઉપદેશથી સુવઇ સ્થા જૈન સંઘ જ્ઞાનભંડારને ભેટ ૨૫૧

સુરેન્દ્રનગર

૧ શેઠ ચાપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧
૨ ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદ ૨૫૧
૩ સ્વ કેશવલાલ મૂળજીભાઈના ધર્મપત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે
હા શાહ ભાઈલાલ કેશવલાલ (થાનગઢવાળા) ૨૫૧
૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧